व्रत वैभव

भाग-2

(व्रत पूजा एवं कथाएँ)

निर्देशन

पं. गुलाबचन्द्र 'पुष्प'

संकलन/संयोजन

ब्र. जयकुमार 'निशांत'

सम्पादक

ब्र. विनोद जैन, पपौराजी

पं. विनोद कुमार, रजवांस

-: प्रकाशक :-

पं. मन्नूलाल जैन प्रतिष्ठाचार्य स्मृति ट्रस्ट

पुष्पभवन, टीकमगढ़ (म0प्र0) 472001

फोन- 07683-243138

ग्रन्थ- व्रत वैभव
आशीर्वाद- आचार्य विद्यासागर जी महाराज
प्ररेणा- उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागरजी महाराज
निर्देशन- प गुलाबचन्द्र 'पुष्प'
संकलन/संयोजन- ब्र जयकुमार 'निशान्त'
सम्पादक- ब्र.विनोद जैन, पपौराजी, प विनोदकुमार, रजवास
अवसर- श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक आदिनाथ जिनबिम्ब प्रतिष्ठा
एव गजरथ महाकत्सव, सैक्टर-8, रोहिणी, दिल्ली
सान्निध्य- आचार्य श्री 108 बाहुबली महाराज ससघ
आवृत्ति- प्रथम-1100
प्राप्तिस्थान-
1. ब्र जयकुमार 'निशांत',
प मन्नूलाल जैन प्रतिष्ठाचार्य स्मृति ट्रस्ट
पुष्प भवन, टीकमगढ (म0प्र0) 472001 फोन- 07683-243138
2. अरिहंत साहित्य सदन
4, रेनवो विहार, मुजफ्फरनगर(उ0प्र0) फोन. 0131-2433257
3. गजेन्द्र ग्रन्थमाला
2578, गली पीपल वाली, धर्मपुरा, दिल्ली- 110006 फोन-9810035356
4. श्री दिगम्बर जैन पञ्चबालयति मन्दिर
विद्यासागर नगर, सत्यम गैस के सामने, एम जी रोड, इन्दौर-10
फोन- 0731-2571851
5 संतोषकुमार जयकुमार वैटरी वाले
कटरा बाजार, सागर (म प्र) फोन-07582-243736, 244475
लागत मूल्य- 100 00
आवरण तथा शब्द सज्जा-
ए.व्ही.एस. कम्प्यूटर, टीकमगढ (म0प्र0) फोन-07683-240047
मुद्रकः- एन. एस. इन्टरप्राईजिस
2578, गली पीपल वाली, धर्मपुरा, दिल्ली-110006
मॉ० : 9810035356, 9312200580

जैन विद्या प्रशिक्षण शिविर

5 जून से 12 जून 2005

सान्निध्य :-

उपाध्यायरत्न श्री गुप्तिसागर जी महाराज

सप्रेम भेंट

श्रीमती कमला देवी जैन

धर्म चन्द जैन — कु. रमा जैन

पुष्पा जैन — मा. अंशुल जैन

रुचिका ध. प. श्री कपिल जैन

नित्या

व्रत वैभव की विषय वस्तु

व्रत वैभव भाग 1- (व्रत विवरण एवं मंत्र)

1 व्रत ग्रहण करने का उद्देश्य
2 व्रत ग्रहण करने की विधि एवं सकल्प
3. व्रत के दिन श्रावक की चर्या
4 व्रत का सम्पूर्ण विवेचन
5 मत्र एवं पूजा विधि
6 सदर्भ ग्रन्थ एव सक्षिप्तिका

व्रत वैभव भाग 2- (व्रत पूजा एवं कथाएँ)

1 आचार्यों/मुनिराजों/आर्यिका माताजी के शुभाशीष
2 विद्वानों के अभिमत
3 व्रत संबंधी आवश्यक लेख
4. अभिषेक, शान्तिधारा एव पूजन
5 व्रतोपयोगी भक्तियाँ
6 व्रत कथाएँ
7 संदर्भ ग्रन्थ एव सक्षिप्तिका

व्रत वैभव भाग 3- (व्रत उद्यापन विधान)

1 व्रत उद्यापन विधि
2 अभिषेक, शान्तिधारा एव पूजन
3 व्रतोपयोगी भक्तियाँ
4 उद्यापन विधान (अकारादिक्रम में अ से प तक)
5 सदर्भ ग्रन्थ एवं सक्षिप्तिका

व्रत वैभव भाग 4- (व्रत उद्यापन विधान)

1 व्रत उद्यापन विधि
2. अभिषेक, शान्तिधारा एव पूजन
3 व्रतोपयोगी भक्तियाँ
4 उद्यापन विधान (अकारादि क्रम में र से त्र तक)
5. संदर्भ ग्रन्थ एव सक्षिप्तिका

पं गुलाबचन्द्र 'पुष्प' प्रतिष्ठाचार्य

को प्राप्त सम्मान राशि का ग्रन्थ प्रकाशन में सदुपयोग

1 पुष्पाञ्जलि ग्रन्थ प्रकाशन समिति
2 ऋषभाञ्चल ध्यान योग केन्द्र
3 दशलक्षण पर्व 2004 ऋषभाञ्चल
4 श्रीमज्जिनेन्द्र पचकल्याणक गजरथ महोत्सव करगुवांजी, झांसी
5 पार्श्वनाथ पूजा समिति मन्दिर क्रमाक 14 पपौरा जी
6 श्रीमज्जिनेन्द्र पचकल्याणक महोत्सव पिपलानी, भोपाल
7 श्रीमज्जिनेन्द्र पचकल्याणक पचगजरथ महोत्सव सिद्ध क्षेत्र पावागिरी
8 श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव अतिशय क्षेत्र बड़ागाँव (खेकड़ा)

आवरण पृष्ठ का परिचय

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सीरौन जी (ललितपुर) उ.प्र. मे स्थापित आचार्य परमेष्ठी बिम्ब, जिसमें फल सहित वृक्ष, मुनि, आर्यिका, श्रावक एव श्राविका भी दृष्टिगोचर हैं।

* व्रत के दिन व्रत मंत्र की 3 माला अवश्य करे।
* व्रत का उद्यापन व्रत के दिन ना करके पारणा के दिन करे अथवा एक व्रत अतिरिक्त करके करे।

व्रत क्यों ?

* व्रत मानसिक शांति के प्रबल निमित्त हैं।
* व्रत मोक्ष महल की सीढी हैं।
* व्रत मन, वचन, काय की पवित्रता के साक्षात् कारण हैं।
* व्रत ही शाश्वत लक्ष्य की कुंजी हैं।
* व्रत मानवपर्याय के लिए उपहार हैं।
* परिणाम विशुद्धि व्रताचरण से ही सभव है।
* व्रतों का पूर्णफल सम्यक्विधि से ही प्राप्त होता है। मात्र उपवास (लंघन) से नहीं।
* व्रतों के बिना मानव जीवन अधूरा है।
* व्रत साधना है, मनौति नहीं।
* व्रतों के प्रति अरुचि/प्रमाद/अवमानना का भाव नहीं करना चाहिए।

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय

गृहस्थ जीवन मे होने वाले दोषों से श्रावक चाहकर भी नहीं बच पाता है, उससे दोष/पाप होते रहते हैं। उनके निराकरण के लिए तीर्थंकरों ने अपनी देशना में श्रमण धर्म के साथ श्रावक धर्म का भी विवेचन किया है। जिसके आधार से श्रावक अपनी शक्ति अनुसार गृहस्थ धर्मों का निर्वहन कर व्रतों का पालन करके मुनि धर्म की ओर अग्रसर होने के भाव से धर्माचरण करें, इसलिए आचार्यों ने श्रावकों के लिए व्रत करने का निर्देश दिया है। जिसमें व्रतों का स्वरूप अवधि, जापमन्त्र, कथा, उद्यापन आदि का विवेचन किया है। किन्तु विभिन्न क्षेत्रों मे क्षेत्रीय परम्परा अनुसार व्रत किये जाने से व्रतों की विधि आदि में विकृति एव शिथिलाचार आ जाने के कारण आचार्यों को समय-समय पर, क्षेत्र एव परिस्थितियों के अनुरूप व्रतों के स्वरूप में परिवर्तन करना पडा फिर भी, व्रतों का पालन नगन्य हो गया था। अनेक व्रतो का सृजन भी समयानुसार हुआ। आचार्यों ने हमें अनेक व्यवस्थायें अवस्था के अनुसार प्रदान की हैं। यह परिवर्तन, काल के लम्बे-लम्बे अन्तरालों में हुआ है अत इन व्रतों की एक साथ उपलब्धि दुरूह हो गई थी। जिससे भिन्न-भिन्न क्षेत्र के भिन्न-भिन्न काल के श्रावकों को शास्त्रानुसार व्रत विधि की समग्र जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती थी। जिससे श्रावक व्रतों का पालन एव उद्यापन आदि नही कर पाते थे। गृहस्थ धर्म के पालन की सुविधा के लिए व्रतों के समग्र विवेचन की आवश्यकता थी।

इसके लिए पडित प्रवर प्रतिष्ठाचार्य श्री गुलाबचन्द्र जी के निर्देश से ब्र जय 'निशान्त' ने 475 व्रतों के नाम, अवधि, विधि, जापमन्त्र, पूजा आदि को सकलित किया है। प पुष्प जी जैन जगत के सर्वमान्य प्रामाणिक एव निर्दोष क्रिया को स्वीकारने वाले सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य हैं। उनके इन गुणों का ब्र निशांत जी ने शब्दश· अनुसरण किया है। इनके

द्वारा जिन व्रतों का सकलन/सयोजन किया गया है वे निर्दोष प्रामाणिक एव शास्त्र सम्मत हैं। इसमे किसी प्रकार की शका आदि की आशका नही रह जाती है, क्योंकि आपके द्वारा जितने साहित्य का सृजन हुआ, हो रहा है वह साधु/विद्वान एव समाज में सर्वमान्य रहा है।

अक्षर-अक्षर पिरोकर शब्द-विन्यास करके साहित्य सृजन और सम्पादन के दुरूह कार्य को समर्थ विद्वान ही कर सकता है। कई लोगों के श्रम से ही इस ग्रन्थ की सयोजना हो सकी है। सम्पादक द्वय का श्रम श्लाघनीय है।

इस प्रामाणिक "व्रत वैभव" नामक ग्रन्थ को प्रतिष्ठाचार्य प मन्नूलाल जैन स्मृति ट्रस्ट प्रकाशित कर गौरवान्वित हुआ है। इस ट्रस्ट की स्थापना सन् 1995 मे सर्वोपयोगी सत् साहित्य के सृजन/प्रकाशन एव प्रचार-प्रसार के लिए हुई थी। इस ट्रस्ट से अत्यल्प कार्यकाल में प्रतिष्ठा रत्नाकर, प्रतिष्ठा पराग आदि सात जनोपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। जो ट्रस्ट का गौरव है। इसी श्रृखला मे "व्रत वैभव" को प्रकाशित करके इसे नगर-नगर, गाँव-गाँव तक पहुँचाने का सकल्प ट्रस्ट ने लिया है। ट्रस्ट का उद्देश्य है कि इस ग्रन्थ से व्रतों का स्वरूप जानकर श्रावक गृहस्थ जीवन के दोषों से अपने आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

हम मगल भावना के साथ ग्रन्थ के निर्देशक, सकलक/सयोजक, सपादक मुद्रक आदि समस्त सहयोगी जन का आभार मानते हुए इनसे दीर्घ साहित्य सेवा की कामना करते हैं।

प्रतिष्ठाचार्य पं. मन्नूलाल जैन स्मृति ट्रस्ट
टीकमगढ

सम्पादकीय

मानव जीवन का चरम लक्ष्य दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। यही कारण है कि समस्त ग्रन्थों में दुःख के कारण और सुख प्राप्ति के उपायों का बृहद् निरूपण प्राप्त होता है। प्रायः सभी शास्त्रों को पढकर अथवा सुनकर आत्मसात करने का प्रयास करते हैं किन्तु कोई विरले ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो यथार्थ में आत्मसात करने में सक्षम हो पाते हैं। उन्हीं व्यक्तियों में यदि पं. गुलाबचन्द्रजी'पुष्प' का नाम लिया जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पं गुलाबचन्द्रजी 'पुष्प' एक ऐसे व्यक्तितत्व के धनी हैं। जिस व्यक्तित्त्व की प्रतिभा में दूसरे अपने प्रतिबिम्ब सहजता से देख लेते हैं, जिस विराट व्यक्तितत्व में ऐसी क्षमता विद्यमान हो उसका शव्दों के द्वारा मूल्याकन करना निरर्थक सा प्रतीत होता है। प्रश्न ये है कि प गुलाबचन्द्र'पुष्प' जी का यह व्यक्त्त्वि क्या जन्मजात था यदि इस प्रश्न के गवाक्ष में अन्वेषण किया जाये तो उत्तर प्राप्त होता है नहीं। उन्होंने अपने जीवन में उस पुरुषार्थ को क्रियान्वित किया है जिससे उनका यह व्यक्तित्त्व देखने में आ रहा है।

प जी एक ऐसे वैज्ञानिक एवं जिज्ञासु मानव हैं जिन्होंने अपने जीवनकाल में रूढिवादिता से समझौता नहीं किया यदि उनके पास कोई समस्या आई तो उन्होंने आगम के पक्ष, विद्वानों के दृष्टिकोण, वर्तमान प्रसग एव यथार्थ मूल्याकन कर उसे सुलझाने का प्रयास किया। यही कारण है कि यदि उनकी हस्तलिखित प्रतिष्ठा विषयक डायरियाँ, ज्योतिष सम्बन्धी कॉपी, विविध सदर्भों से समाहित रहती हैं। आज भी यदि उनके अध्ययन कक्ष में उनसे यदि कोई चर्चा करना चाहता है तो पूर्वाग्रह, हठाग्रहिता को छोड़कर धैर्यता के साथ आगम के सदर्भों से पं.जी सदैव वार्ता के लिए तत्पर रहते हैं। यह तो पं जी के बाह्य पक्ष का एक सामान्य आंकलन हो सकता है, किन्तु यदि उनका अभ्यतर जीवन देखा जाये तो वे प्रति समय अपने परम ध्येय के प्रति श्रद्धावान होते हुए पर्व दिवसों में उपवास, समय पर सामायिक, हित, मित, प्रिय भाषण सतुलित आहार-बिहार

एवं निषिद्धयाशन में सदैव प्रयत्नरत रहते हैं। श्रावक के व्रत जितनी निष्ठा के साथ पालन करना चाहिए प्रायः वह निष्ठा उनमें दृष्टिगोचर होती है। अतिचार और अनाचारों के प्रति निरन्तर जागृत रहे हैं और रहते हैं।

"व्रत वैभव" नामक कृति का प्रकाशन इसलिए हुआ कि श्रावक बहुत से व्रतों को अपने जीवन में आचरित करना चाहते हैं। जैन ग्रन्थों में व्रतों के यथा कनकावलि, एशोनव आदि का नामोल्लेख तो प्राप्त होता है किन्तु उनके स्वरूप आदि के विषय में विविध मान्यताएँ हैं तथा व्रत सम्बन्धी सागोपाग विषय का किसी भी ग्रन्थ में पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं होता है। पूर्व में इस विषय में बहुतेरे प्रयास भी हुये हैं यथा व्रत विधान सग्रह.. आदि। किन्तु ये ग्रन्थ सरलता से व्रत विधि के निरूपण में पूर्णत सक्षम नहीं हुए हैं, इसी कारण से दीर्घकाल से पं जी के मन में यह भाव था कि व्रतों का एक सांगोपांग विवेचक ग्रन्थ संग्रहीत किया जाए जो व्रत अनुष्ठान करने वालों के लिए सेतु का कार्य करे। इसी भावना को साकार करने के लिए पं जी साहब चिरकाल से व्रत सम्बन्धी सामग्री का संग्रह करते आ रहे हैं। जिसके फलस्वरूप यह ग्रन्थ आपके सामने प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ के सयोजन में पं जी के सुपुत्र चि ब्र जय कुमार 'निशान्त' ने इस प्रकार से कार्य किया है जिस प्रकार कि मन्दिर के निर्माण के पश्चात् मन्दिर पर कलशारोहण का कार्य होता है। उन्होंने दिगम्बर परम्परा में मान्य व्रतों का उल्लेख उन अभिलेखों के साथ में किया है जो व्रतों की उपयोगिता, विधि, सावधानियाँ इत्यादि को इस प्रकार से प्रस्तुत करता है कि पाठक सहज ही उनके स्वरूप को उपलब्ध कर लेता है।

यह ग्रन्थ चार भागों में विभक्त है, प्रथम भाग व्रत विषयक विशिष्ट सामग्री से सयुक्त है। इसी भाग में पाठकों की सुविधानुसार प्रत्येक मासों में करणीय व्रत तथा व्रत से सम्बन्धित तिथि एव अकारादि क्रम में 475 व्रतों का अवधि, विधि, पूजन, जाप, उद्यापन आदि का निरूपण उपलब्ध है।

इसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग में सयोजक ने बडी कुशलता से परिशिष्ट सहित दैनिक उपलब्ध सकल व्रतों की लगभग 27 पूजाएँ एव उपयोगी भक्तियाँ

समाहित की हैं। इसी भाग में उन अभिलेखों को समाहित किया गया है जो व्रतों की ऐतिहासिकता, वैज्ञानिकता इत्यादि सामग्री को प्रस्तुत करते हैं।

इस ग्रन्थ के तृतीय एवं चतुर्थ भाग में व्रतों के उद्यापन हेतु अकारादि क्रम से उपयोगी विधानों का संकलन करके इस ग्रन्थ को सर्वांगीण एवं सर्वोपयोगी बनाया गया है।

ग्रन्थ वैशिष्टय

-व्रत विषयक उपलब्ध ग्रन्थों में 475 व्रतों का निरूपण करने वाला यह प्रथम ग्रन्थ होगा।

- मासों में करणीय व्रत एवं अकारादि क्रम से व्रतों का नामोल्लेख इस ग्रन्थ के अलावा अन्यत्र देखने में नहीं आता है।

- प्राचीन दिगम्बर परम्परा का निर्दोषता से पोषण करने वाले व्रतों के नामोल्लेख और स्वरूप सहित विवरण अन्यत्र दुष्प्राप्य है।

- व्रतों में अनुष्ठेय मत्र जाप, पूजन, उद्यापन विधान इस ग्रन्थ के अलावा अन्यत्र सुलभ नहीं हैं।

किसी भी ग्रन्थ का विशिष्ट रूप तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि परम गुरुओं का आशीष न हो इस ग्रन्थ के प्रेरणास्रोत आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी एव आचार्य मुनि विद्यानदजी हैं। पं.गुलाबचन्द्रजी 'पुष्प' एव ब्र जय कुमार 'निशान्त' ने समय-समय पर परम गुरुओं/ मुनिराजों का परामर्श भी लिया है जो इस विषय के पारगत एव निष्णात् विद्वान हैं उनके प्रति हृदयाभार के साथ परम पूज्य राष्ट्रसत विद्यानद जी, सराकोद्धारक उपा ज्ञानसागर जी, मुनि श्री सुधासागर जी, मुनि श्री प्रमाणसागर जी, मुनि श्री विशुद्धसागर जी, मुनि श्री सौरभसागर जी, मुनि श्री अभयसागर जी, मुनि श्री प्रसादसागर जी एवं ऐलक श्री सिद्धातसागर जी का नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है।

साहित्य सयोजना करना और उसे जन सामान्य तक पहुँचाना कितना कठिन कार्य होता है यह तो साहित्य सेवी ही जानते हैं। इस ग्रन्थ के सयोजन में अर्चना जैन(पम्मी) को किस रूप में स्मरण किया जाये उसे शब्दों में सयोजित

करना संभव नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपने व्यस्ततम क्षणों में पूर्ण समर्पण के साथ ग्रन्थ को आकार देने में जो सहयोग दिया अद्वितीय है। मनीष जैन(संजू) एक ऐसे युवा होनहार समर्पित मनीषी हैं जिन्होंने सदैव निष्ठा के साथ कार्य किया है साथ ही अनेकान्त परिवार की बहिनों ने प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से इसकी संयोजना में अपना बहूमूल्य समय दिया है। अक्षर सयोजन में दीपक जैन (ए.व्ही.एस कम्प्यूटर) एव मुद्रण में श्री नीरज जैन (दिगम्बर) का सहयोग सराहनीय है जिन्होंने अल्प समय में अथक श्रम करके ग्रन्थ जन सामान्य तक सुलभ कराया है।

इसके साथ ही हम डॉ सुरेन्द्र जैन पठा, अभिनन्दन साधेलिय के हृदय से आभारी हैं क्योंकि उन्होंने अपने उपयोगी क्षणों से भी समय निकालकर हमें कृतार्थ किया है। आशा है कि यह ग्रन्थ श्रावकों को मुक्तिपथ में पाथेय बनेगा।

-ब्र. विनोद जैन (पपौरा)
पं. विनोद जैन (रजवांस)

आमुख

संकल्प पूर्वकः सेव्ये नियमोऽशुभ कर्मवः।
निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभ कर्मणि।।

अर्थात् सेवन योग्य विषयों में संकल्प पूर्वक नियम करना अथवा हिसा, असत्य, चौर्य, कुशील और परिग्रह इन अशुभ कर्मों से संकल्प पूर्वक विरक्त होना या शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होना व्रत कहलाता है। यहाँ तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय के अनुसार शुभाश्रव रूप अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाणाणुव्रत तथा दान आदि शुभ कार्यों में प्रवृत्त होने से शुभ कर्मों का आश्रव होता है। यह श्रावक के कर्त्तव्यों में शामिल है। असत् कार्यों से निवृत्ति और सत्कार्यों में प्रवृत्ति दोनों का ही अभिप्राय एक है। व्रत के स्वरूप का यह स्पष्टीकरण है। तत्त्वार्थ सूत्र के नवम अध्याय में सवर के अन्तर्गत बारह भावना में सवर भावना का लक्षण इस प्रकार है।

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।

पुण्य पाप दोनों के आश्रव निरोध को सवर कहते हैं। द्रव्य सग्रह गाथा 35 में सवर के भेद एव व्रत का लक्षण शुभाशुभ रागादि विकल्पों से रहित बताया है।

भावार्थ यह है कि व्रत श्रावक के लिए प्रवृत्तिरूप शुभाश्रव का कारण हैं और पापाश्रव निवृत्ति रूप सवर भी है जो शुभोपयोग के अंतर्गत है। वही व्रत पुण्य-पाप निवृत्ति रूप शुद्धोपयोग के होने पर निश्चय रत्नत्रय रूप हो जाता है। विषय-कषाय के साथ किया गया उपवास सार्थक नहीं होता है।

कषाय विषयाहारो त्यागोयत्र विधीयते।
उपवासः सु विज्ञेयो शेषं लंघनकं विदुः।।

अर्थ- कषाय और इंद्रिय विषयों का जहाँ त्याग किया गया है, उसे

उपवास कहते हैं। इसका उद्देश्य यह है कि हमारी इंद्रियाँ हमारे वश में बनी रहें, हम इंद्रियों के अधीन न हो जावें और आत्म सन्मुख रहते हुऐ सामायिक, स्वाध्याय आदि सत् प्रवृत्तियों में संलग्न रह सकें। किसी रोगादि या शारीरिक कारण से केवल आहार छोड़ना उपवास न होकर लंघन कहलाता है। एक दिन-रात की अवधि में दिन में एक बार शुद्ध आहार लेना एकाशन कहलाता है। विधि पूर्वक किया गया व्रत ही महाव्रत की भूमिका बनाता है, जो परम्परा से मोक्ष को प्राप्त कराता है।

इस ग्रन्थ में 475 व्रतों का उल्लेख है। इन सबके उद्यापन की विधि भी है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। कहीं है भी तो सस्कृत में है, हिन्दी में सरल रूप में नहीं है।

दशलक्षण, नदीश्वर, णमोकार मत्र, कर्म निर्झर, लब्धि विधान, रविव्रत आदि हिन्दी पद्यों में विस्तृत उद्यापन विधि प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित की गई है। सभी व्रतों की ऐसी विधि प्रथम बार प्रकाशित हो रही है।

श्री राजवैद्य प बारेलाल जी जैन ने सन् 1952 में 'जैन व्रत विधान' पुस्तक में अनेक उपयोगी व्रतों के साथ 170 व्रतों का उल्लेख किया है। परतु इसमें 475 व्रतो का वर्णन है। अनेक नए व्रत भी हैं।

व्रतों की उद्यापन विधि आवश्यक थी जिसे इस ग्रन्थ में लिखकर कमी की पूर्ति कर दी गई है। उद्यापन न कर सकें तो व्रत को दुगना करने पर उसकी पूर्ति मानी जाती है।

व्रतोद्यापन में जो पूजा के साथ किन्ही वस्तुओं के वितरण का रिवाज है उसके सबध में हमारा सुझाव है कि अपनी शक्ति के अनुसार ही व्यय करना चाहिए। उसका सकेत भी हमने उद्यापन विधि में पढा है। शक्ति से बाहर प्रदर्शन करना उचित नहीं है।

व्रत के दिनों में निश्चित मत्र का जप, पूजा, स्वाध्याय और धर्माराधन तथा आरभ त्याग के साथ शांतिपूर्वक दिवस व रात्रि व्यतीत करना चाहिए। ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना आवश्यक है। भोजन भी ऐसा गरिष्ट न हो जो

रात्रि को पिपासा आदि बाधाएँ उत्पन्न कर पीड़ा पहुँचाए। जहाँ तक संभव हो व्रत का संकल्प किसी दिगम्बर गुरु के समक्ष करना चाहिए।

व्रतों को करने के पूर्व कुछ बिन्दुओं पर मुख्यत· से विचार करना चाहिए, जो निम्न हैं-

1 त्याग, यम और नियम रूप होता है। मद्य, माँस, मधु एव पाँच पाप आदि का त्याग यम (जीवन पर्यन्त) रूप होता है। नियम रूप त्याग ये व्रत आदि हैं।

2 उपवास में जल से मुख शुद्धि नहीं की जाती है।

3 मदिर में विराजमान प्रतिष्ठित जिनेन्द्र प्रतिमाएँ अर्हत्परमेष्ठी की हैं अत उनका अभिषेक हिन्दी या सस्कृत अभिषेक पाठ बोलकर करना चाहिए, जन्म कल्याणक का पाठ बोलकर नहीं। अभिषेक जल मस्तक व आखों के ऊपरी भाग मे लगाना चाहिए। अभिषेक जल पीना या शरीर पर चुपडना दोष है, अभिषेकजल कूप मे नहीं डालना चाहिए।

4 जैन धर्मानुसार सूर्योदय से 6 घडी का दिनमान माना है। उससे कम ग्राह्य नही है।

अष्टमी चतुर्दशी आदि व्रत भी उसी दिन किये जाते हैं। षोडशकारण, दशलक्षण आदि भी इसी प्रकार किये जाते हैं। पंचागों से ही हम अपने धर्मानुसार नियमों का पालन करते हैं। यदि पचाग की अष्टमी या दशलक्षण षोड्शकारण का प्रथम दिन 6 घड़ी कम होता है तो एक दिन पहले से हमें ये व्रत आरभ करना चाहिए। बीच मे दो तिथियाँ भी शामिल हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में उक्त पूर्व दिन का हिसाब ठीक बैठ जाता है। दो तिथि भी हो तो व्रत पहली तिथि में करना चाहिए। अंतिम दिन तो प्रत्येक व्रत का पूर्व से ही निश्चित रहता है। जैन धर्मानुसार जिसदिन छह घड़ी से कम हो तो आगे का दिन ही माना जाता है। षोड्शकारण में कुल 32 दिन होते हैं। बीच में दिन घट गया हो तो प्रारभ दिन से एक या दो दिन पूर्व से प्रारभ करना चाहिए। यह व्रत मासिक नहीं मानना चाहिए। इसमें 32 दिन ही होते

हैं 16 उपवास और 16 पारणा या एकाशन करके यह व्रत पूर्ण होता है।

इस ग्रन्थ में जो व्रत एव उद्यापन विधि का स्पष्ट और विशद् वर्णन किया गया है उन सबका अन्वेषण कर एक बडी कमी को पूर्ण करने वाले ब्र. जय "निशात" जी का समाज आभारी है। वे श्री दिग. जैन पचबालयति मदिर के विशाल आयोजन एवं निर्माण के सूत्रधार हैं। उनका परिश्रम सराहनीय है। धार्मिक प्रवृत्ति वाले साधर्मी बन्धु इससे लाभ उठावें।

इन्दौर — नाथूलाल जैन शास्त्री

प्रस्तावना

संयमोऽपि सदारक्ष्यो निज-कोष-समो बुधैः।
ततोऽधिकं यतो नास्ति निधानं जीवेन परम्।।

-कुरल काव्य 13/2

आत्म सयम की रक्षा अपने खजाने के समान ही करना चाहिए क्योंकि सयम से वढ़कर इस जीवन में और कोई निधि नहीं है। मानव जीवन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मानव जीवन में ही उत्कृष्ट संयम साधना हो सकती है।

यदि सयम-व्रत पालन न करें तो मनुष्य और पशुओं में अन्तर नहीं होता है। नरक गति में साधन हीनता है और स्वर्गों में भोगाभिलाषा की अधिकता है, वहाँ देव असयमी जीवन जीते हैं। पशु पर्याय में आगमानुसार अणुव्रत(देश सयम) धारण करने की पात्रता तो है, परन्तु सकल सयम ग्रहण करने मे पशु असमर्थ हैं। प द्यानतराय जी ने सयमधर्म की पूजा में स्पष्ट किया है- "नरक सुरग पशुगति में नाहि"। संयम के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कविवर द्यानतराय जी ने लिखा है- "जिस बिना नहीं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग कीच में" अर्थात् बिना संयम धारण किये जब तीर्थंकर को मोक्ष नहीं मिलता तब हम सामान्य श्रावकों को कैसे मिल सकता है? अत· हमें आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए निरन्तर संयम साधना करना चाहिए। श्री रइधूकवि कहते हैं "सयम बिन घडी नियत्थ जाऊँ" अर्थात् सयम के बिना जीवन की एक घड़ी भी नहीं जाना चाहिए। हमारा जीवन सयम पूर्वक ही बीतना चाहिए क्योंकि आगामी आयु का बन्ध भुज्जमान आयु के त्रिभाग रूप अपकर्ष काल में होता है, यह त्रिभाग आठ बार आ सकता है। हमें पता नहीं है कि कब आयु का बन्ध समय आवेगा, अतः हमें प्रतिसमय सयम साधना मे ही समय व्यतीत करना चाहिए। यदि असयमी अवस्था में आयुबन्ध हुआ तो अशुभ आयु का बन्ध होगा। अतः सयम ही सुखी जीवन की आधार शिला है।

श्रावकों के कर्तव्यो में आचार्यों ने सयम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। आचार्य गुणधर कहते हैं।

"दाणं पूया सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावय धम्मो ।"

कषाय पाहुड सूत्र 82

दान, पूजा, शील और उपवास ये श्रावक के चार मुख्य कर्तव्य हैं। आचार्यों ने श्रावकों के कल्याणार्थ विषय कषायों से बचने के लिए उपवास आदि को श्रावक का कर्तव्य बताया है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने श्रावकों को निर्देश देते हुए कहा है-

"दाणं पूजा मुक्खं सावयधम्मेण तेण विणा"

-रयणसार गाथा 10

श्रावक का धर्म दान-पूजा के बिना नहीं हो सकता।

आचार्य श्री पद्मनन्दि ने श्रावक के षटकर्मों का उल्लेख करते हुए सयम व्रत दान आदि को प्रतिदिन करने का निर्देश दिया है।

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने।।

-पद्मनन्दि पञ्च विशतिका अध्याय 6/7

देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दान गृहस्थ को प्रतिदिन करने चाहिए। जब श्रावक सकल्प पूर्वक सयम का पालन करता है तो उसके परिणाम निर्मल होते हैं और वह अशुभ भावों से बचता है। रयण- सार में गाथा 59 से 61 तक आचार्य कुन्दकुन्द ने अशुभ और शुभ भावों का निम्नानुसार वर्णन किया है।

हिसादि पाप, क्रोधादि कषाय, मिथ्याज्ञान, पक्षपात, मात्सर्य अष्टमद, दुरभिनिवेश, अशुभ लेश्या, विकथा में प्रवृत्ति होना अशुभ भाव हैं। अशुभ भाव को त्याग करने से सवर होता हैं।

छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ का चिन्तन बारह अनुप्रेक्षा, रत्नत्रय, दयाधर्म आदि परिणाम शुभ भाव हैं। श्रावक को गृहस्थाश्रम में दैनिक आश्रव रोकने के लिए देवपूजा, स्वाध्याय, सयम, दान

आदि का पालन अवश्य करना चाहिए। गृहस्थोचित कर्तव्यों का पालन करने से श्रावक अपने कर्मों की निर्जरा कर लेता है।

व्रताचरण की आवश्यकता-

मोह-तिमिरापहरणे, दर्शन-लाभादवाप्त-संज्ञानः
रागद्वेष-निवृत्यै, चरणं प्रतिपद्यते साधुः।1।

-रत्नकरण्डक श्रावकाचार अध्याय -3/1

मोहान्धकार के दूर होने से सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर भव्य जीव रागद्वेष की निवृत्ति के लिए चारित्र को धारण करता है। रागद्वेष आदि को नष्ट करने में सयम ही समर्थ है।

व्रतों को ग्रहण करने से ससारी जीवों के सुख का मार्ग प्रशस्त होता है। व्यक्ति महाव्रत/देशव्रत आदि का पालन कर आत्मकल्याण कर लेते हैं किन्तु असमर्थ, हीन भाग्य वाले, दीन-दु.खी, तिरस्कृत व्यक्ति जो कि महाव्रत/ देशव्रत आदि धारण नहीं कर पाते वे सामान्य व्रतों के द्वारा अपना कल्याण करते हैं। पतित एव अज्ञानी व्यक्ति भी व्रत धारण कर पावन एव सुखी हो जाते हैं। पौराणिक ग्रन्थों में उल्लेख है कि अनन्त भवों के दु·ख उठाने वाले एव कुगतियों में जन्म लेकर ससार भ्रमण करने वाले जीवों ने व्रतों के द्वारा सद्गति एव सुख प्राप्त किया है। ऐसी अनेक कथाएँ वर्णित हैं जो व्रताचरण की आवश्यकता को और भी महत्त्वपूर्ण बना देती हैं।

व्रती का लक्षण-

हिंसादिक पॉच पापों से विरत होने के साथ-साथ त्रिशल्यों से मुक्त होना भी अनिवार्य है अन्यथा यथार्थ मोक्षमार्ग के साध्य तक पहुँचना कठिन होता है क्योंकि कामनाएँ कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में विद्यमान रहतीं हैं जिससे साधना काल में चित्त निराकुलता को उपलब्ध नहीं कर पाता हैं इसीलिए "निःशल्यो व्रती" यह लक्षण सार्थक मालूम होता है।

मायानिदान-मिथ्यात्व-शल्या-भावविशेषतः।
अहिंसादि-व्रतोपेतो व्रतीति व्यपदिश्यते ।

तत्त्वार्थसार 4/78

माया, मिथ्या और निदान इन तीन शल्यों से रहित जो अहिंसा आदि व्रतों का पालन करता है वही व्रती कहलाता है। आचार्य उमास्वामी ने व्रती का लक्षण "निःशल्यो व्रती" कहा है।

व्रती के भेद-

व्रती के विविध भेदों का जो उल्लेख जिनागम में दृष्टिगोचर होता है वह मुख्यतः अतरंग और बहिरग कषायों की क्षीणता के ऊपर आधारित है। अतरग कषायों के क्षय-उपशम आदि अवस्थाओं के होने पर जो सक्लेष की हानि तथा विशुद्धि की वृद्धि होती है, साथ ही अहिसादिक व्रतों के पालन में जो निष्ठा प्रकट होती है। इन सब में अभ्यतर कषाय मल का अभाव ही जानना चाहिए। बाह्य निरतिचार व्रतों का पालन प्रशम, सवेग, अनुकपा, आस्तिक्य भावों का प्रादुर्भाव तथा अष्टाग रूप सम्यग्दर्शन के अगो में प्रवृत्ति यह व्रती के बाह्य जीवन की अवस्था होती है। प्रत्येक व्रती का यह साध्य रहता है कि वह समस्त बाह्य और अंतरग द्वन्द से छूटता हुआ परम प्राप्तव्य आत्मतत्त्व को उपलब्ध करे। इसी प्राप्तव्य हेतु विविध सोपानों अथवा प्रतिमाओं का उल्लेख भी जिनागम में दृष्टव्य है, इस प्रकार यह भेदो का जो उल्लेख वह मूलतःपर का विमोचन और स्व की उपलब्धता की ओर इगित करता है। प्रत्येक साधक को भेदों की परिभाषा में न उलझ कर उसके मूल साध्य को प्राप्त करना चाहिए।

अनगारस्तथागारी स द्विधा परिकथ्यते
महाव्रतोऽनगारः स्याद्गारी स्यादणुव्रतः।

तत्त्वार्थसार 4/79

अनगार और आगारी के भेद से व्रती दो प्रकार के हैं। महाव्रती अनगार(मुनि) कहलाते हैं और अणुव्रत के धारक आगारी (श्रावक) कहलाते हैं। चारित्र प्राभृत में भी इस प्रकार कहा गया है।

द्विविधं संयमचरणं सागारं तथा भवेत् निरागारम्
सागार सग्रन्थे परिग्रहाद्रहिते निरागारम्।

चारित्र प्राभृतम 20

चारित्राचार के दो भेद हैं सागार और निरागार। सागार चरित्राचार परिग्रह सहित गृहस्थ के होता है। और निरागार चरित्राचार परिग्रह रहित मुनि के होता है और भी कहा है-

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंग-विरतानाम्
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम्।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार, अध्याय 3/4

वह चारित्र सकल चारित्र एव विकल चारित्र के भेद से दो प्रकार का है उनमें से सकल चारित्र समस्त परिग्रहों से रहित मुनियों के और विकल चारित्र परिग्रह युक्त ग्रहस्थों के होता है। शक्त्यनुसार श्रावक धर्म तीन प्रकार का है पाक्षिक, नैष्टिक एव साधक। सप्तव्यसन का त्याग, अष्टमूलगुण पालन, रात्रिभोजन त्याग, छानकर पानी पीना, प्रतिदिन देव दर्शन करना यह पाक्षिक श्रावक का साधारण सयम है, नैष्ठिक श्रावक का सयम निम्न प्रकार है।

दर्शनं व्रतं सामायिकं प्रोषधं सचित्तं रात्रिभुक्तिश्च ।
ब्रह्मचर्य आरम्भः परिग्रहः अनुमतिः उद्दिटठ देसविरदो य ।21।

(1) दर्शन (2) व्रत (3) सामायिक (4) प्रोषध (5) सचित्तत्याग (6) रात्रि-भुक्तित्याग (7) ब्रह्मचर्य (8) आरम्भ त्याग (9) परिग्रह त्याग (10) अनुमति- त्याग (11) उद्दिष्ट त्याग। ये सब देशविरत अथवा सागार चारित्राचार हैं। जिनका पालन नैष्टिक श्रावक करता है, इन्हें प्रतिमा के नाम से भी जाना जाता है। संसार, शरीर और भोगो से विरक्ति होने लगती है तब प्रतिज्ञा का जो भाव प्रकट होता है उसे प्रतिमा कहा गया है। प बनारसीदास ने उसे इस प्रकार कहा है।

संयम भाव जगो जबै अरुचि भोग परिणाम।
उदय प्रतिज्ञा को भयो सो प्रतिमा ताको नाम।।

इन ग्यारह प्रतिमाओं का निरतिचार पालन करना ही श्रावक धर्म की उत्कृष्टता है। सागार संयमाचरण (व्रत प्रतिमा) को आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने बारह प्रकार का कहा है।

पञ्चेव गुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवन्ति तहतिण्णि।।
सिक्खावय चत्तारि य संयम चरणं च साया रं।।

चारित्र पाहुड़ 23

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह प्रकार का सागार संयमाचरण चारित्र है यह गृह निरत श्रावक के होता है। इन बारह व्रतों का निरतिचार पालन करके समाधि मरण करने वाला साधक कहलाता है। इन बारह प्रकार के व्रतों के पालनार्थ जितनी इच्छाओं का निरोध होता है वह तप की कोटी में माना गया है।

तप का लक्षण-

सम्यक् प्रकार से निष्कांक्ष भाव से इच्छाओं का निरोध करना तप है, तप का मुख्य प्रयोजन सस्कारों का क्षय कर स्व की तरफ लक्ष्य करना है, मानव विविध सस्कारों का पुज है, इसलिए जैनाचार्यों ने कुसस्कार से सुसस्कार की तरफ और फिर दानों ही सस्कारो से मुक्त होकर शुद्ध की तरफ पहुँचने का सकेत दिया है। बाह्य और अभ्यतर तप के जो भेद हैं ये दोनो ही भेद मन, वचन, काय की शुद्धि प्रकट करने के लिए किये गए हैं। अत तप के द्वारा साधक कुसस्कारों का क्षय करते हुए सुसस्कार में निवास कर शुद्ध तत्त्व को उपलब्ध करता है।

परं कर्म क्षयार्थं यत्तप्यते तत्तप· स्मृतम् ।

तत्वार्थसार अध्याय -6

अर्थात् कर्मों का क्षय करने के लिए जो किया जावे, वह तप कहलाता है।

इच्छा निरोधस्तपः

इच्छाओं को रोकना तप है। उपवास, एकाशन आदि व्रतों में भोजन, शयन विषय कषाय आदि विकारों को रोकते हैं वह तप है, वह कर्म निर्जरा में कारण है।

तप के भेद- तप के दो भेद हैं (1) बाह्य तप (2) अभ्यन्तर तप। इनके 6-6 भेद हैं।

बाह्य तप- अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसख्यान-रसपरित्याग विविक्त-शय्याशन कायक्लेशा बाह्य तपः। -तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-9 सूत्र-19

अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश ये बाह्य तप हैं।

अभ्यन्तर तप-प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग ध्यानान्युत्तरम्।

-तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-9 सूत्र-20

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग एव ध्यान ये अभ्यन्तर तप हैं।

श्रावक की अपेक्षा तप के लक्षण-

श्रावक वही है जो श्रद्धावान, विवेकवान और क्रियावान हो। यहाँ क्रियावान से हमें श्रावक का चारित्र ग्रहण करना है। वह चारित्र उसके यम और नियम के रूप में द्विधा विभक्त है। यम रूप से तो प्रत्येक श्रावक को नित्य देव दर्शन करना, छना जल ग्रहण, रात्रि भोजन त्याग तथा मद्य, मास, मधु का त्याग करना चाहिए। नियम रूप से विविध व्रतो का अनुष्ठान दिग्व्रत, देशव्रत, गुणव्रत आदि का पालन करना चाहिए। ये दोनों यम और नियम ही श्रावक के लिए तप है क्योंकि श्रावक इनके द्वारा स्वच्छंद मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को रोकने मे समर्थ हो जाता है। इसलिए इस तप के द्वारा अनिवार्य रूप से निर्जरा घटित होती रहती है। इस प्रकार श्रावक को यम और नियम को दत्त चित्त हो सम्यक् रीति से पालन करना चाहिए।

नियमश्च तपश्चेति द्वयमेतन्न भिद्यते ।242।
तेन युक्तो जनः शक्त्या तपस्वीतिनिगद्यते
तत्र सर्व प्रयत्नेन मतिः कार्या सुमेधसा ।243।

-पद्म पुराण 14/242-243

नियम और तप ये दो पदार्थ जुदे-जुदे नहीं हैं।

जो मनुष्य नियम से युक्त है वह शक्ति के अनुसार तपस्वी कहलाता है। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को सब प्रकार से नियम अथवा तप में प्रवृत्त रहना चाहिए ।

"पर्वस्वथ यथाशक्ति भुक्ति-त्यागादिकं तपः।
वस्त्रपूतं पिबेत्तोयं रात्रिभोजन-वर्जनम्।।"

-पद्मनन्दि पञ्च विंशतिका 6/25

छना जल एवं रात्रि भोजन का त्याग करते हुए श्रावक को पर्व के दिनों (अष्टमी एवं चतुर्दशी) में अपनी शक्ति के अनुसार भोजन के परित्याग आदि रूप(अनशनादि) तपों को करना चाहिए। इन पवित्र दिनों में जीव दया का पालन करना चाहिए एव कषाय आदि विकारी भाव नहीं करना चहिए।

उपवास की परिभाषा-

दी गई उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि अतरग कषाय परिणामों का निरोध और बाह्य चतुर्विध प्रकार का आहार विमोचन उपवास है। उपवास की इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि साधना का मार्ग अतरंग और बहिरग साधनो पर आधारित है। जो लोग मात्र अतरग साधन पर जोर देते हैं और बहिरग साधन को वेबुनियाद ठहराते हैं, उनकी दृष्टि अभी इस परिभाषा से समीचीन नहीं है तथा जो लोग मात्र बाह्य त्याग में ही अपना जीवन का सर्वस्व प्राप्तव्य मान लेते हैं वे भी भ्रम मे हैं। अत हमे चाहिए कि हम लोग समीचीनतया अतरग और बहिरग दोनों मार्गों की आराधना करते हुए अपने साध्य को प्राप्त करें।

कषाय विषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं बिदुः।।

मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ0 7/231

विषय कषाय के साथ आहार (चारो प्रकार का) का त्याग करना यथार्थ उपवास है, अन्यथा लघन है। विषय-कषाय के बिना मात्र आहार का त्याग करना अर्थात् कषाय की तीव्रता में आहार का त्याग करना लघन मात्र है। इससे आत्म कल्याण एव कर्म निर्जरा सम्भव नहीं है।

चार प्रकार का आहार निम्न प्रकार का है।

(1) खाद्य- पूडी, रोटी, दाल, चावल आदि।

(2) स्वाद्य- लवग, इलायची आदि।

(3) लेह्य- रबडी आदि चाटने वाले पदार्थ।

(4) पेय- पानी, दूध, शरबत, रस आदि पीने वाले पदार्थ।

उपवास के दिन इन चार प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है।

उपवास के तीन प्रकार-

प्रोषधोपवास के जो उत्तम, मध्यम और जघन्य भेद आगम ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, उन सबका अभिप्राय एकमात्र यही है कि अधिक से अधिक अपना आत्मबल प्रकट करते हुए क्षुधा, तृषा इत्यादि की बाधाओ को सहन करते हुए अपने आप को स्व में अधिक से अधिक स्थापित करना चाहिए। उत्तम आदि भेदों में अपनी शक्ति के अनुसार निर्दोष प्रवृत्ति करना चाहिए।

(1) **उत्तम उपवास**-सप्तमी त्रयोदशी को भोजनोपरान्त नियम (धारणा) करना अष्टमी या चतुर्दशी के दिन चारों प्रकार के आहार का त्याग कर नवमी या पूर्णिमा को एकाशन (पारणा) यह 16 पहर का है।

(2) **मध्यम उपवास**-सप्तमी या त्रयोदशी को साय कालीन भोजनोपरान्त उपवास लेना, अष्टमी चतुर्दशी का उपवास, नवमी पूर्णिमा को पारणा यह 12 पहर का है।

(3) **जघन्य उपवास**-अष्टमी या चतुर्दशी को प्रात काल ही उपवास लेना यह 8 पहर का है।

पर्व की परिभाषा पूज्यपाद आचार्य ने निम्न प्रकार से की है।

"प्रोषध शब्दः पर्व पर्यायवाची"। सर्वार्थ सिद्धि अध्याय-7 पृ0-279

प्रोषध शब्द का अर्थ पर्व है।

अर्थात् प्रोषध पूर्वक लिए गये उपवासादि को पर्व की सज्ञा दी गई है।

व्रत का उद्देश्य-

हिंसाया अनृताच्चैव स्तेयाद्ब्रह्मतस्तथा
परिग्रहाच्च विरतिः कथयन्ति व्रतं जिनाः।

-तत्त्वार्थसार 4/60

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिव्रतम्

-तत्वार्थसूत्र, अध्याय 7/1

हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह से निवृत्ति होने को जिनेन्द्र भगवान् व्रत कहते हैं। व्रत का उद्देश्य कषाय को कृश करना है, कायक्लेश नहीं।

संकल्पपूर्वकः सेव्ये नियमोऽशुभ-कर्मणः।
निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा-प्रवृत्तिः शुभकर्मणि।।

-सागार धर्मामृत-2/80

पञ्चेन्द्रिय जन्य विषयों को सकल्प पूर्वक त्याग करना और हिंसादिक अशुभ कर्मों से विरक्त होना अथवा पात्रदानादि शुभकार्यों में प्रवृत्ति करना व्रत कहलाता है।

व्रत एक पवित्र कर्म/अनुष्ठान है जो साधक की मनोदशा परिवर्तित करने मे सक्षम होता है। यही कारण है कि जैनाचार्यों ने पापों से विरक्ति का नाम व्रत कहा है।

व्रतों के भेद-

उपर्युक्त सभी व्रतों के भेद श्रावक अपनी योग्यता की वृद्धि करने के लिए प्रयोग करता है। जैसे-जैसे श्रावक के अथवा साधु के आत्मबल की वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे ही वह उत्तरोत्तर उच्च श्रेणी को उपलब्ध करता जाता है। विशिष्ट काय क्लेश जन्य स्थिति उत्पन्न होने पर उसके परिणामो मे विशुद्धि हानि को प्राप्त नही होती है। इसलिए व्रतो के ये विविध भेद सार्थक हैं।

नियमोयमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोग-संहारात्।
नियमः परिमित-कालो यावज्जीवं यमो ध्रियते।

-रत्नकरण्ड श्रावकाचार अध्याय 3/41

भोग और उपभोग के परिमाण का आश्रय कर नियम और यम दो प्रकार से प्रतिपादित हैं उनमें जो काल के परिमाण से सहित है वह नियम है और जो जीवन पर्यन्त के लिए धारण किया जाता है वह यम कहलाता है।

व्रत विधि की अपेक्षा से व्रत के निम्न भेद हैं-

1 सावधि 2. निरवधि 3 दैवसिक 4 नैशिक 5 मासावधि 6 वर्षावधि
7 काम्य 8 अकाम्य 9 उत्तमार्थ। -व्रत तिथि निर्णय पृ0-160

(1) **सावधि व्रत-** जिन व्रतों की प्रारम्भ तिथि निश्चित होती है वे सावधि व्रत कहलाते हैं। सावधि व्रत दो प्रकार के होते हैं-

1 तिथि अवधि 2. दिन की आवधि

(अ) तिथि अवधि- तिथि के आधार से किये जाने वाले व्रत जैसे- सुख चिन्तामणि भावना, पञ्चविंशति भावना, णमोकार पञ्चविंशति भावना आदि।

(ब) दिन की अवधि- दिन के आधार से किये जाने वाले व्रत जैसे-दुखहरण, धर्मचक्र, जिनगुणसम्पत्ति, सुख सम्पत्ति, शील कल्याणक, श्रुतिकल्याणक, चन्द्रकल्याण आदि।

(2) **निरवधि व्रत**- जिन व्रतों की कोई अवधि नही होती अर्थात् किसी भी तिथि या दिन से प्रारम्भ होने वाले व्रत निरवधि व्रत कहलाते हैं। जैसे-कवलचन्द्रायण, तपोञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली आदि।

(3) **दैवसिक व्रत**- जिन व्रतों को दिन मे किया जाता है जैसे- रत्नावली, मुक्तावली, कनकावली, जिनगुणसम्पत्ति, सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, श्रुतकल्याणक, दशलक्षण, रत्नत्रय, अष्टाह्निका।

(4) **नैसिक व्रत**- जिन व्रतों में रात्रि के समय भक्ति, जाप, ध्यान करते हुए जागरण किया जाता है।
जैसे- आकाश पञ्चमी, चन्दनषष्ठी, नक्षत्रमाला, जिनरात्रि आदि।

(5) **मासावधि व्रत**- एक माह की अवधि वाले व्रत
जैसे- षोडशकारण, मेघमाला।

(6) **वर्षावधि व्रत**- वर्ष की अवधि से होने वाले व्रत

(7) **काम्यव्रत**- जो व्रत कामना के साथ किये जाते हैं।
जैसे- संकटहरण, दुखहरण, धनदकलश।

(8) **अकाम्यव्रत** कामना से रहित व्रत अकाम्य व्रत हैं।
जैसे- कर्मचूर, कर्मनिर्जरा, मेरुपक्ति आदि।

(9) **उत्तमार्थव्रत**- आत्मशुद्धि पूर्वक किये जाने वाले व्रत
जैसे-सिंह निष्क्रीडित भाद्रवन सिंहनिष्क्रीडित, सर्वतोभद्र आदि।

व्रत संकल्प मन्त्र- व्रत लेते समय श्रीफल के साथ सकल्प

-व्रत तिथि निर्णय पृ० 201

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य ब्रह्मणो मतेस्मिन् मासानां मासोत्तमे मासे— मासे-----पक्षे ----तिथौ-------वासरे जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे आर्यखण्डे

-----प्रदेशस्य----- नगरे एतत् अवसर्पिणी कालावसान चतुर्दश प्राभृतमानिमानित सकललोकव्यवहारे श्री गौतमस्वामी श्रेणिकमहामण्डलेश्वर समाचरित सन्मार्गविशेषे -----वीर निर्वाण संवत्सरे अष्ट महाप्रातिहार्यादिशोभित श्री मदर्हत्परमेश्वर प्रतिमा/ अष्टाविंशति मूलगुण- आराधक मुनिराज सन्निधौ अह------व्रतस्य सकल्पं करिष्ये। अस्य व्रतस्य समाप्ति पर्यन्त में सावद्य त्याग गृहस्थाश्रमजन्यारम्भ परिग्रहादीनापि त्याग.।

(नौ वार णमोकार मन्त्र की जाप कर व्रत ग्रहण करें)

व्रत का संकल्प (हिन्दी)-

श्री वीतराग सर्वज्ञदेव को नमस्कार कर वृषभादि चौबीस तीर्थंकरों के द्वारा प्रवर्तित जिनधर्मानुसार मास में पक्ष मे. तिथि मे वार में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र, आर्यखण्ड भारत देश के. प्रदेश स्थित नगर में श्री वीर निर्वाण सवत्सर . . मे अष्ट प्रातिहार्य से शोभित जिनेन्द्र प्रतिमा के सान्निध्य में मैं व्रत का सकल्प करता हूँ। इस व्रत के समाप्ति पर्यन्त यथाशक्ति पापों का त्याग कर एव गृहस्थ सबंधी आरभ परिग्रहादि का भी त्याग करता हूँ। इस व्रत की विधि अनुसार व्रत पूजा, व्रत कथा एव व्रत मत्र पूर्वक एकाशन/उपवास करूँगा/करूँगी। बीमारी, सूतक, पातक, अशुद्धि आदि किसी कारणवश व्रत की तिथियाँ न मिल सकी तो उसे आगे तिथियों में व्रत करके व्रत पूरा होने पर अपनी शक्ति अनुसार व्रत का उद्यापन करूँगा/करूँगी। हे भगवन! मैं इस व्रत को यथा सभव शुद्धि पूर्वक करके अधिक से अधिक समय धर्म में लगाऊँगा। फिर भी मुझसे मन से, वचन से, काय से जाने अनजाने में कोई गलती हो जाये तो मैं भगवान से क्षमा माँगता हूँ/माँगती हूँ। हे भगवन! इस व्रत को करने से मेरे सारे कष्ट दूर हो जायें, मेरे सारे दुखों का नाश हो, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, मेरे आठों कर्मों का नाश हो और यथाशीघ्र मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो।

हे भगवन! इस व्रत को करने से मेरे सकल परिजनों को सुख समृद्धि और शाति मिले। जगत के सकल जीवों को सुख और शाति मिले।

ॐ हा ह्रीं हूं ह्रौं ह· अ सि उ सा नम· अह. . . . . (व्रत का नाम) . . . व्रत धारयामि, प्रतिष्ठयामि ह्रीं नम स्वाहा।

(वेदी पर श्रीफल चढ़ाकर नौबार णमोकार का ध्यान करें)

व्रत गुरु के समक्ष ही लेना चाहिए, गुरु का सान्निध्य न होने पर प्रतिमा के समक्ष व्रत लेकर प्रयास पूर्वक किन्ही महाराज से व्रत का संकल्प लेकर उसकी प्रायश्चित्त विधि समझ लेना चाहिए।

व्रत ग्रहण में सावधानी-

समीक्ष्य व्रत-मादेय-मात्तं पाल्यं प्रयत्नतः
छिन्नं दर्पात्प्रमादाद्वा प्रत्यवस्थाप्य-मञ्जसा।

-सागार धर्मामृत 2/79

देश कालादिक को देखकर व्रत लेना चाहिए और ग्रहण किये व्रतों का प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए। मदावेश या प्रमाद से व्रत भग हो जाये तो शीघ्र ही प्रायश्चित्त लेकर पुन· व्रत धारण करना चाहिए।

व्रतों में अतिचार-

अतिक्रमो मानस शुद्धि हानिः व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः।
तथातिचारं करणालसत्वं भंगो ह्यनाचार-मिहव्रतानाम।।

व्रत के भग करने का मन में विचार आना अतिक्रम, विषयों की अभिलाषा (व्रत भग करने वाली सामग्री को एकत्रित करना) होना व्यतिक्रम, इन्द्रियों की असावधानी अर्थात् व्रत के आचरण मे शिथिलता होना अतिचार और व्रत का सर्वथा भग हो जाना अनाचार है। अतएव व्रत में किसी भी प्रकार की असावधानी नही होनी चाहिए।

इसके साथ एक आभोग नाम का अतिचार भी कहा गया है, व्रत भग हो जाने पर प्रायश्चित्त नही करना पूर्व की तरह अनाचार रूप प्रवृत्ति करना आभोग है अर्थात् व्रत भग हो जाने पर प्रायश्चित्त न करते हुए व्रत को छोड़ देना आभोग अतिचार है।

व्रतों की रक्षा कैसे करें-

प्राणान्तेऽपि न भंक्तव्यं गुरु-साक्षिश्रितं व्रतम्।
प्राणान्तस्तत्क्षणे दुःखं व्रत-भंगो भवे भवे।।

-सागार धर्मामृत 7/52

गुरु की साक्षी में लिया हुआ व्रत यदि प्राण भी चले जायें तो भी भग नहीं करना चाहिए क्योंकि प्राणनाश (मरण) के समय मात्र ही दुख होता है

परन्तु व्रत भग होने पर भव-भव में दुख ही मिलता है। व्रत बीच में छु जावे तो उसे शुरू से करना चाहिए।

जइ अंतरम्मि कारण-वसेण एक्को व दो व उपवासा।
ण कओ तो मूलाओ पुणो वि सा होई कायव्वा।।

-वसुनन्दिश्रावकाचार 36

यदि व्रत करते हुये बीच में किसी कारण वश एक या दो उपवास किये जा सके हों तो मूल से अर्थात् प्रारम्भ से लेकर पुन. वही उपवास विधि करना चाहिये।

निरतिचार व्रतों का फल-

व्रतानि पुण्याय भवन्ति जन्तोर्न सातिचाराणि निषेवितानि
सस्यानि किं क्वापि फलन्ति लोके मलोपलीडानि कदाचनापि

-सागार धर्मामृत क्षेपक 4/1

जीवो को व्रत पुण्य फल देते हैं किन्तु अतिचार सहित व्रत पुण्य- जनक नहीं होते हैं। जिस प्रकार केवल धान बो देने से खेती फलदायक नहीं होती उसमें से होने वाले घास को निकालकर साफ करना पडता है उसके बिना फसल घर मे नहीं आती। उसी प्रकार व्रतों को निरतिचार पालन करने से पुण्य होता है, सातिचार व्रतों के द्वारा पुण्य प्राप्त नही होता, निरतिचार व्रतों का पालन करने से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। रत्नमाला नामक ग्रन्थ में आचार्य शिवकोटि जी कहते हैं।

व्रतशीलानियान्येव, रक्षणीयानि सर्वदा।
एकेनैकेन जायन्ते देहिनां दिव्य सिद्धयः।।

-रत्नमाला 3

जो शील तथा व्रत धारण करते हैं उनकी गृहस्थी की हमेशा रक्षा होती है। एक एक व्रत और एक एक शील के निमित्त से प्राणियों के दिव्य सिद्धि प्राप्त होती है।

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः।।

मोक्षार्थी पुरुष अव्रतों को छोड़कर व्रतों में स्थिर होकर परमात्मपद प्राप्त करें और परमात्मपद प्राप्तकर उन व्रतों का त्याग करें। निरतिचार व्रतों का पालन करना ही मोक्ष का साधन है, अतिचार सहित व्रत नहीं। यह मात्र संसार सुख दे सकते हैं।

-वृहद द्रव्य संग्रह मो०मा० अधिकार पृ० 256

व्रतों के उद्यापन का विधान-

पञ्चम्यादि-विधिं कृत्वा शिवान्ताम्युदय-प्रदम्
उद्योतयद्यथा-सम्पन्निमित्ते प्रोत्सहेन्मनः।

-सागार धर्मामृत 2/78

मोक्ष पर्यन्त अभ्युदय देने वाली पञ्चमी (मुक्तावली, पुष्पाञ्जलि, कनकावली, रत्नत्रय) आदि व्रतों को करके अपनी आर्थिक शक्त्यनुसार उद्यापन करें, तथा नैमित्तिक व्रत अनुष्ठान में मन उत्कृष्ट रूप से उत्साहित करें। अर्थात् अत्यन्त प्रभावना पूर्वक अनुष्ठान कर उद्यापन करें जिससे व्रत की महिमा बढ़े और लोगों को व्रत करने की प्रेरणा मिले।

उद्यापन की विधि-

कर्तव्यं जिनागारे महाभिषेक-मद्भुतम्
संघैश्चतुर्विधैः सार्धं महापूजादि-कोत्सवम्।
घण्टाचामर-चन्द्रोपक-भृंगार्यार्तिकादयः
धर्मोपकरणान्येवं देयं भक्त्या स्वशक्तितः।
पुस्तकादि-महादानम् भक्त्यादेयं वृषाकरम्
महोत्सवं विधेयं सुवाद्य-गीतादि-नर्तनैः।
चतुर्विधाय संघाया-हारदानादिकं मुदा
आमंत्र्य परया भक्त्या देयं सम्मान-पूर्वकम्।
प्रभावना जिनेन्द्राणां शासनं चैत्य-धामनि
कुर्वन्तु यथाशक्त्या स्तोकं चोद्यापनं मुदा।

-जैन व्रत विधान संग्रह पृ. 22-24

विशाल मन्दिरों का निर्माण करावें और समारोह के साथ प्रतिष्ठा कराके जिनबिम्ब स्थापन करें पश्चात् चतुर्विध सघ के साथ प्रभावना पूर्वक महाभिषेक के साथ महापूजा करें और घण्टा, झालर, चमर, छत्र, सिंहासन, चन्दोवा, झारी, भृगार आदि अनेक उपकरण शक्त्यनुसार देवें।

आचार्यादि महापुरुषों को धर्मवृद्धि, ज्ञानवृद्धि हेतु शास्त्र प्रदान करें, आहारादि देवें। अनेक वादित्रो के साथ गीत एव नृत्यादिक पूर्वक भक्ति प्रमोद भावना के साथ आहारादि चारों प्रकार के दान देवें। जिनेन्द्र भगवान के शासन के महात्म्य को प्रकट कर प्रभावना करें। इस प्रकार उद्यापन कर व्रत का विसर्जन करे। जिस व्रत का उद्यापन करे उतने पूजा के बर्तन, सामग्री, छत्र, चवर, चन्दोवा, शास्त्र, घण्टा आदि उतने ही मन्दिरों को प्रदान करे।

प्रातःसामायिकं कुर्यात्ततः तात्कालिकीं क्रियाम्
धौताम्बर धरो धीमान् जिनध्यान परायणः।

व्रती श्रावक प्रात· काल ब्रह्ममुहूर्त में सामायिक करें पश्चात् नित्यक्रियाओं से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारणकर श्री जिनेन्द्र देव का ध्यान करता हुआ मन्दिर जावें।

महाभिषेक-मद्भुत्यै-र्जिनागारे व्रतान्वितैः
कर्तव्यं सह संघेन महापूजादिकोत्सवम्।

जिनालय में महान आश्चर्य करने वाला महाभिषेक करें। फिर परिवार एव सघ के साथ समारोह पूर्वक महापूजा करें।

ततो स्वगृहमागत्य दानं दद्यान् मुनीशिने
निर्दोषं प्रासुकं शुद्धं मधुरं तृप्तिकारणम्।

पूजा के पश्चात् अपने घर में आकर निर्दोष प्रासुक शुद्ध मधुर और तृप्ति कारक आहार मुनिराजों को देवें शेष बचे आहार को कुटुम्ब के साथ स्वय करें। मुनिराज के न होने पर साधर्मीजनों को भोजन करावें।
पञ्चमी व्रत के उद्यापन की विधि बताते हुए आचार्य वसुनन्दी जी लिखते हैं।

अवसाणो पञ्च घडा-विऊण पडिमाओ जिण-वरिंदाणं।
तह पञ्च पोत्थयाणि य लिहाविऊणं संसत्तीए।।

-वसुनन्दिश्रावकाचार 355

तेसिं पइटठ्याले जं किं पि पइटठ्-जोग्ग-मुव-यरणं।
तंसव्वं कायव्वं पत्तेयं पञ्च पञ्च संखाए।।

-वसुनन्दिश्रावकाचार 356

व्रत पूर्ण हो जाने पर जिनेन्द्र भगवान की पाँच प्रतिमाएँ बनवाकर तथा पाँच शास्त्रों को लिखवाकर अपनी शक्ति के अनुसार उनकी प्रतिष्ठा के लिए जो कुछ भी प्रतिष्ठा योग्य उपकरण आवश्यक हो वे सब पाँच-पाँच की सख्या में बनवाना चाहिए। जो व्रत जितने वर्ष या दिन का किया जाता है उतने शास्त्र आदि बनवाकर मन्दिर जी में रखना चाहिए। उनकी सख्या व्रतानुसार होना चाहिए उतनी ही सामग्री, शास्त्र, पूजा के बर्तन, अछार, जाप, छत्र, चवर अष्टद्रव्य आदि उतने ही मन्दिरो मे भिजवाना चाहिए जिससे व्रत एव करने वालो की प्रभावना एवं बहुमान बढ़ता है और व्रतो को करने की प्रेरणा मिलती है।

उद्यापन की अन्य विधि-

सम्पूर्णेह्यनु कर्तव्यं स्वशक्त्योद्यापनं बुधैः
सर्वथायेऽप्यशक्त्यादि व्रतोद्यापनं सद्विधौ।

व्रत की मर्यादा पूर्ण होने पर शक्ति के अनुसार उद्यापन करें यदि उद्यापन की शक्ति नहीं हो तो व्रत को दुगुना करना चाहिए। व्रत को दुगना करना ही उद्यापन है। वसुनन्दी श्रावकाचार में भी ऐसा ही कहा गया है।

व्रत समापन विधि-

व्रत को पूर्ण करने के बाद ही उद्यापन करना चाहिए। व्रत की समाप्ति के दिन उद्यापन नहीं करना चाहिए। जिस दिन व्रत पूर्ण हो उससे अगले दिन उद्यापन होना चाहिए। दुगना व्रत करने के बाद उद्यापन आवश्यक नहीं है।

व्रत के समापन में जलयात्रा, अभिषेक, मंगलाष्टक, सकलीकरण, अगन्यास, स्वस्ति वाचन आदि के उपरान्त सम्बन्धित व्रतोद्यापन की पूजा एवं विधान अनुष्ठानपूर्वक कराना चाहिए। संकल्प मन्त्र में तत्सम्बन्धित व्रत का नाम तथा तिथि नक्षत्रादि जोड़कर संकल्प कर व्रत का समापन करना चाहिए।

व्रत समापन मन्त्र-

ॐ अद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे शुभे----- मासे--- पक्षे-----तिथौ------वासरे श्रीमदर्हत प्रतिमासन्निधौ पूर्व-----(व्रत का नाम) गृहीतं तस्य परिसमाप्तिं करिष्ये-अहं प्रमादाज्ञानवशात् व्रते जायमानदोषाः शांतिमुपयान्ति। ॐ ह्रीं क्ष्वीं स्वाहा। श्रीमज्जिनेन्द्रचरणेषु आनन्दभक्तिः सदास्तु, समाधिमरणं भवतु, पापविनाशनं भवतु।

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा सर्व शान्तिर्भवतु ह्रीं नमः।

(इस मत्र का नौ बार जाप) -व्रत तिथि निर्णयपृ0-202

व्रत समापन मंत्र (हिन्दी) -

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के . नगर में. मास में पक्ष में आज तिथि . . .वार में श्री अर्हंत प्रतिमा के सान्निध्य में .

व्रत ग्रहण किया था उसका विधि पूर्वक पालन एव उद्यापन करके मैं आगे और व्रत करने की भावना के साथ व्रत का समापन कर रहा हूँ।

यदि व्रत में प्रमाद या अज्ञानवश व्रत के समय कोई अपराध हुए हों तो उसकी क्षमायाचना करता हूँ। ॐ ह्रीं क्ष्वीं स्वाहा।

श्रीफल या सुपारी आदि चढाकर भगवान को नमस्कार कर नौ वार इस मन्त्र की जाप करें। पश्चात् शान्ति भक्ति के बाद शान्ति विर्सजन करके पूजा समाप्त करना चाहिए एव उद्यापन के अनन्तर ग्रन्थ या धार्मिक पुस्तकें, फल वितरण करना चाहिए।

-व्रत तिथि निर्णयपृ0-46

सामग्री व्यवस्था

शास्त्रों में व्रतों के उद्यापन में लगने वाली सामग्री का उल्लेख व्रतानुसार किया गया है। यथा-

षोडशकारण व्रत- षोडशकारण यन्त्र, पूजन सामग्री, 256चाँदी के स्वस्तिक, 256सुपाड़ी, 16 शास्त्र, 16 नारियल, 16 जोडी पूजा के बर्तन, 16छत्र, 16चमर आदि मंगल द्रव्य, चन्दोवा, दान करने के लिए राशि आदि आवश्यक सामान है।

-व्रत तिथि निर्णय पृ0-46

दशलक्षण- छत्र, चमर, झारी आदि मगलद्रव्य, जपमाला, कलश, दश शास्त्र, मन्दिरों के लिए दस जोडी पूजा के बर्तन, दशलक्षण यन्त्र, 100 चाँदी के स्वस्तिक, दस नारियल(सूखे), 100सुपाड़ी आवश्यक होती है। इस उद्यापन में दस घरों में फल बाँटना आवश्यक है।

-व्रत तिथि निर्णय पृ0-45

अष्टाहिन्‌का- मन्दिर में देने के लिए आठ-आठ उपकरण, आठ शास्त्र, पूजन सामग्री, चन्दोवा, पूजन में चढाने के लिए 52 चाँदी के स्वस्तिक, 52 सुपाडी, 4 नारियल की आवश्यकता होती है। सिद्धयन्त्र की भी आवश्यकता होती है।

रत्नत्रय- पूजन सामग्री, रत्नत्रय यन्त्र, तेरह शास्त्र, मन्दिरों के लिए 13 जोडी पूजन के बर्तन, छत्र, चमर, झारी आदि मगल द्रव्य, चन्दोवा तथा राशि। उद्यापन के उपरान्त साधर्मी भाइयों के तेरह घरों में फल भेजना चाहिए।

इसी प्रकार व्रत में सामग्री की योजना निम्नानुसार करना चाहिए-

उद्यापन सामग्री-

हल्दी गाँठ, श्रीफल, बादाम, सुपारी, गोला, लवंग, इलायची, चावल, धूप शुद्ध, कपूर, केशर, शुद्ध घृत, मांडना, कलावा (पचरंगा धागा), यज्ञोपवीत, रुई, माचिस, मुकुट, मालाएँ, विनायक यन्त्र, पीला कपडा, लाल तूस, खादी

सफेद, पानी का छन्ना, मगल कलश, मगलध्वजा, मन्दिर ध्वजा, मण्डल ध्वजायें, घट यात्रा कलश, पंच रत्न पुड़ियाँ, चाँदी के स्वस्तिक(व्रतानुसार), धोती दुपट्टा (मन्दिर हेतु), चन्दोवा, अछार, पूजा के बर्तन, छत्र, चमर, अष्ट प्रातिहार्य, अष्ट मंगलद्रव्य, माला(जाप्य), कोयला, आसनी बडी, आसनी छोटी, तखत, टेबिल, चौका, चौकी, दीपक बडे, दीपक छोटे, कुण्ड, पटिया लकड़ी, सजावट का सामान, संगीत पार्टी, बैण्ड बाजे, जुलूस की सामग्री, जपवाले, इन्द्र इन्द्राणी, पीला सरसों, पण्डाल, स्पीकर, जिस व्रत का उद्यापन हो उसका यन्त्र, विधान की किताबें एव मन्दिर में देने के लिए उपकरण(चाँदी के बर्तन, छत्र, शास्त्र, राशि आदि)।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

व्रतो की विधि आदि का सयोजन अनेक ग्रन्थो से किया गया है। प्रमुख ग्रन्थ निम्नानुसार हैं।

(1) हरिवश पुराण
(2) सागार धर्मामृत
(3) रत्नकरण्डक श्रावकाचार
(4) आचार्य धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ
(5) जैन व्रत तिथि निर्णय
(6) जैन व्रत विधान सग्रह
(7) व्रत कथा कोष
(8) श्रावकाचार संग्रह
(9) क्रियाकोष
(10) जैन व्रत विधि
(11) सुदृष्टि तरगणि
(12) वर्धमान पुराण
(13) सस्कृत वांगमय शब्दकोष परिच्छेद खण्ड पूर्वार्द्ध
(14) चारित्रसार
(15) जैनेन्द्र कथा कोष

आदि अनेक ग्रन्थो के माध्यम से लगभग 475 व्रतों का परिचय निम्न बिन्दुओं के रूप में दिया गया है।

(1) व्रत का नाम, (2) व्रतारम्भ तिथि, (3) व्रत की अवधि, (4) व्रत की विधि (5) व्रत की पूजा, (6) व्रत की जाप (मन्त्र) (7) व्रत का उद्यापन और (8) विशेष- जिस व्रत में कोई विशेषता हुई तो उसे विशेष शीर्षक से उल्लिखित किया गया है।

जिन व्रतों में विसगतियाँ देखने को मिलीं उनका सुधार आवश्यक समझकर कुछ सशोधन भी किया गया है। यथा तीर्थंकर कल्याणक तिथियों के अनुसार व्रतों के नाम एवं व्रतों के नाम के अनुसार तिथियों में सशोधन करना पड़ा है। जो व्रत व्यक्ति विशेष के नाम से थे उन व्रतों को दिया नही है। सराग देवों की उपासना का आगम में निषेध है इससे देवी देवताओं के नाम वाले व्रतों को भी नहीं दिया है। इसी प्रकार अन्य मतानुसार वाले व्रतों को भी नहीं दिया जा रहा है, क्योंकि वीतरागता प्राप्त करने के उद्देश्य से किये गये व्रत वीतरागता से अनुराग करने वाले होना चाहिए। रात्रि जागरण को जैन व्रत परम्परा में विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है अत. ऐसे व्रतों को भी सम्मिलित नहीं किया गया है। जैन पर्व एवं त्यौहार सम्बन्धि सभी व्रतों को देने का प्रयास किया गया है। फिर भी कुछ व्रत छूट भी गये होंगे। उन्हें विद्वज्जन अन्य स्थान से प्राप्त कर लाभ लेवे। सभी व्रतों के जाप मन्त्र संशोधित कर दिये गये हैं। जिन व्रतों के मन्त्र नहीं थे उन्हें खोज कर दिया गया है क्योंकि व्रत के दिन मन्त्र की जाप अनिवार्य है, इससे भावों में एकाग्रता आती है। कई व्रतों में उद्यापन विधि एव विधान का उल्लेख नही था उन व्रतों के उद्यापन विधान को लिखा गया है। व्रत के दिन भक्तियों का बहुत महत्त्व है। इन्हें भावशुद्धि पूर्वक पढना चाहिये। इस भाव को ध्यान में रखकर भक्तियों को भी सग्रहीत किया गया है। लगभग सभी क्षेत्रो में महिलाएँ ही सबसे ज्यादा व्रत करती हैं। उन्हे व्रतों की पूरी जानकारी नहीं होती है और यदि होती भी है तो पूजा, भक्तियाँ, विधान आदि न मिलने से परेशानी होती है। अतः इस ग्रन्थ के दूसरे खण्ड में व्रत लेने की विधि आदि का पूर्ण विवरण दिया गया है। जिसमें अभिषेक, शान्तिधारा दैनिक पूजा एव जो व्रत पूजाएँ सहज उपलब्ध नहीं होती थी उन्हें सकलित किया है। व्रतों के अलावा पूजाएँ सभी पुस्तकों में सरलता से उपलब्ध हो जाती हैं उन्हें ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं दिया जा रहा है।

ग्रन्थ की विषय वस्तु अनेक आचार्यों/मुनिराजों/आर्यिका माताओं ने देखकर आशीर्वाद प्रदान किये हैं एवं अनेक विद्वानों ने इसे आद्योपान्त पढकर सुझाव और अभिमत प्रदान किये हैं। उन सभी के चरणों में सादर नमन करते हैं।

इस ग्रन्थ के संयोजन में बहुत समय और श्रम लगा है। जिसे अनेक सन्तों का सहयोग लेकर पूरा किया जा सका है। पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी महाराज ने संपूर्ण विषय को देखकर आवश्यक निर्देशन के साथ आवश्यक लेखों के माध्यम से व्रत एव पूजन की वैज्ञानिकता, व्रतों की ऐतिहासिकता, वर्तमान समय में श्रावक की दिनचर्या आदि विषय परिमार्जित कराये हैं। पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी, समतासागर जी, आर्जवसागरजी, प्रमाणसागरजी, प्रसादसागरजी, सौरभसागरजी के सुझावों से विषय की पूर्णता हुई है। आर्यिका पूर्णमति माताजी ने व्रतों का महत्त्व देकर ग्रन्थ का वैशिष्ठ्य बढाया है।

लेखन के दुरूह एव श्रमसाध्य कार्यों को सफलता पूर्वक करने में अर्चना(पम्मी), श्री मनीष जैन(सजू) ने पूर्ण कुशलता से किया है। सशोधन एव सवर्द्धन आदि कार्यों में युवा मनीषी ब्र विनोद भैया जी (पपौराजी) एव पं विनोद कुमार जी (रजवास), ब्र सरेन्द्र जी (सागानेर), ब्र रवीन्द्र जी(सोनागिर), कौशल किशोर भट्ट का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है।

कम्पोजिंग को कुशलता पूर्वक करने के लिये श्री दीपक जैन (ए व्ही एस. कम्प्यूटर) एव स्वच्छ एव स्पष्ट छपाई के लिय श्री नीरज जैन (दिगम्बर) प्रिटिंग प्रेस आभार के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के सयोजन, सशोधन, सवर्धन में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे जिनका सहयोग प्राप्त हुआ है एव जिन्होंने अपनी चचला लक्ष्मी का उपयोग कर इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग किया है उन सभी के हम बहुत बहुत आभारी हैं।

इस ग्रन्थ से भव्य श्रावक श्राविकाएँ लाभ लेकर अपना कल्याण कर मार्ग प्रशस्त करें तो हम अपना प्रयास सफल समझेंगे।

टीकमगंढ

ब्र. पं. गुलाब चन्द्र 'पुष्प'

ब्र. पं. जय 'निशांत'

स्वस्तिक अंकन

स्वस्तिक का भाव है, "स्वस्तिं करोतीति स्वस्तिकः" अर्थात् स्वहित-कल्याण करे। "स्वस्तिक क्षेत्र कायति इति स्वस्तिकः" अर्थात् कुशल क्षेत्र कल्याण का प्रतीक है। स्वस्तिक शब्द सु-अस् धातु से बना है सु का अर्थ है-सुन्दर, मंगल अस् अर्थात् अस्तित्व या उपस्थिति। प्रत्येक शुभ कार्य में स्वस्तिक दर्शन का विशेष महत्त्व है।

इसीलिए सभी मगल कार्यों में स्वस्तिक का उपयोग एव अंकन किया जाता है। प्रत्येक अनुष्ठान में स्थापित किए जाने वाले मंगल कलश में स्वस्तिक रखा जाता है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि में भी कल्याणकों की क्रिया में स्वस्तिक एवं नद्यावर्त स्वस्तिक का उपयोग किया जाता है। वेदी प्रतिष्ठा एव शिलान्यास में स्वस्तिक अनिवार्यतः स्थापित करके यह भावना की जाती है कि यह वास्तु या प्रतिमा प्रलयकाल तक अचल रहे।

अन्य प्रकार से व्युत्पत्ति पर विचार करने पर उसके सात्थिअ, सुस्थिय, सात्थिय-रुात्थि और सात्थिउ-सोथिय रूप में मिलते हैं। जो क्रमश· अर्द्ध मागधी, शौरसैनी प्राकृत के हैं। जिसका अर्थ है स्व स्थित अर्थात् अपने आत्म स्वरूप में लीन होना। सु का संयोग होने पर उसमें सम्यक् विशेषण जुड जाने से अर्थ "सम्यक् प्रकार से आत्मा में स्थित" हो जाता है।

अमरकोश में स्वस्तिक· सु = अच्छा, अस्ति = अस्तित्व, क = कर्ता सर्वतोभद्र अर्थात् सभी दिशाओं में सबका कल्याण हो। इस प्रकार स्वस्तिक सभी का मगल करने वाला है।

स्वस्तिक अनादि-निधन आकृति है, जब छठवे काल के अतिम 49 दिनों में कुवृष्टियाँ होती हैं तब कर्मभूमि का समस्त पृथ्वी मंडल नष्ट होकर बह जाता है। चित्रापृथ्वी पर दो स्थानों पर नंद्यावर्त स्वस्तिक की आकृति रहती है जिस पर शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर तथा तीर्थंकरों की जन्मभूमि अयोध्या की रचना होती है।

शिलांकित प्राचीन स्वस्तिक दूसरी शताब्दी ईसापूर्व सम्राट खारवेल के अभिलेख में और मथुरा के शिल्प में उपलब्ध हुये हैं।

स्वस्तिक मंगलमय होने के साथ-साथ ससारी प्राणी की अज्ञानता से ससार परिभ्रमण को दर्शाते हुए उससे निकलने का मार्ग भी सम्यक् रूपेण प्रशस्त करता है।

नरसुरतिर्यङ्नारकयोनिषु परिभ्रमति जीवलोकोऽयम्।
कुशला स्वस्तिक-रचनेतीव निदर्शयति धीराणाम्।।

अर्थात् ससार में प्राणी निरन्तर जन्म-मरण करता हुआ चार मोड़ वाली रेखाओं मे निरूपित नरकगति, त्रिर्यञ्चगति, देवगति और मनुष्यगति रूप मे लोक की चौरासी लाख योनियो में घूमता है। यह स्वस्तिक की रचना से स्पष्ट निर्देशित होता है।

स्वस्तिक में खडी रेखा ससार रेखा है। उसको काटती आडी रेखा जन्म-मरण की है चारो मोड चार गतियों के प्रतीक है।

स्वस्तिक में स्थित चार बिन्दु चारों अनुयोगो को निरूपित करते है, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग, इन अनुयोगो के स्वाध्याय से मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग है। इन त्रिरत्नो की एकता से ही मोक्ष अर्थात् सिद्धत्व की प्राप्ति सम्भव है। इसलिए स्वस्तिक के ऊपर बिन्दु रत्नत्रय एवं अर्द्धचन्द्राकार सिद्धशिला प्रतीक रूप मे बनाये जाते है।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने **मूकमाटी** महाकाव्य मे इन बिन्दुओं को चारों गतियाँ सुख से शून्य है उल्लेखित किया है।

आचार्य जयसेन स्वामी ने ठोने पर स्वस्तिक बनाने का विधान स्पष्ट रूप से प्रतिष्ठा पाठ के पृष्ठ 144 पर किया है।

प्रत्यर्थिव्रजनिर्जयान्निजगुणप्राप्तावनंताक्रम-
दृष्टिज्ञानचरित्रवीर्यसुखचित्संज्ञास्वभावः परं।
आगत्यात्रनिवेशितांकितपदैः संवौषडा द्विष्ठतो
मुद्रारोपणसत्कृतैश्च वषडा गृह्णीध्वमर्चाविधिम्।

शत्रूनका समूहकूं अर्थात् बाह्याभ्यन्तर बैरीन का समूहका अत्यंत जयतैं निज गुण की प्राप्तिनैं होता संता अनंत अरु क्रम-रहित दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, सुख, चैतन्यसत्ता-रूप है स्वभाव जिनका ऐसे सर्व जिन-मुनि हैं ते इहां आय संवौषट् मंत्र निवेशन किया अरु द्विबार ठःठः मन्त्र करि स्थापन किया अरु मुद्रका आरोपण सत्कार करि तथा वषट् पद करि संनिहित किया सता पूजा की विधिनैं ग्रहण करो। ऐसै तीन बार पढै।

ॐ ह्रीं अत्र जिन प्रतिष्ठाविधाने सर्वयागमंडलोक्ता जिनमुनय अत्रावतरत, तिष्ठत् तिष्ठत् ठः ठः, ममात्रसंनिहितो भवत भवत वषट् इत्यादि त्रिबारं कुर्यात्।

मंडलमध्ये सुप्रतीकपीठे स्वस्तिकोपरि स्थापयेत्।

अरु मण्डल मध्य कर्णिक में पीठ में स्वस्तिक ऊपरि स्थापना करनी।

रविव्रत उद्यापन मे भी ठोने पर स्वस्तिक बनाकर स्थापना करने की विधि वर्णित है।

पूज्य जिनेश्वर पार्श्वनाथ का, करके विधि पूर्वक आह्वान,
भक्ति भावनाओं से प्रेरित कर, जिन प्रतिमा का श्रद्धान।
संस्थापन स्वस्तिक मंडप पर, रविव्रत विधि विधान अनुसार,
भक्तों की पूजा स्वीकारो, हे दयाल तत्काल पधार।।

पूजा मे ठोने की आवश्यकता तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार एव प्रतिष्ठा पाठो मे विशेष रूप से वर्णित है।

भृंगार-चामर-सुदर्पण-पीठ-कुम्भ-
तालध्वजा-तप-निवारक-भूषिताग्रे।
वर्धस्व नन्द जय पाठ-पदा-वलिभिः,
सिंहासने जिन भवन्त-महं श्रयामि।।

अतः ठोने पर स्वस्तिक बनाकर मुद्रापूर्वक आह्वानन, स्थापन एव सन्निधिकरण करना चाहिए।

स्वस्तिक बनाने का उद्देश्य एवं भावना

स्वस्तिक हमारी पूजा का सार्थक उद्देश्य है। यह हमारी अतरंग भावना का प्रतीक है। सर्वप्रथम हस्त प्रक्षालन कर मंत्रित जल से स्वयं की एवं स्थल की शुद्धि करें। तत्पश्चात् द्रव्य चढ़ाने वाली थाली में दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली से स्वस्तिक अंकित करते समय प्रथमतः खडी रेखा नीचे से ऊपर उसी तरह बनाना चाहिए जिस प्रकार हम अपने आत्मीय का तिलक नीचे से ऊपर की ओर करके उसकी उन्नति एव समृद्धि की कामना करते हैं। स्वस्तिक बनाने मे भी आराध्य प्रभु के सामने स्वय की उन्नति की कामना करते हैं।

हे भगवन्! इस त्रस नाली में निगोद से स्वर्गों की यात्रा करते हुए (क्र -1) अनादिकाल से चारों गतियों की 84 लाख योनियो में जन्म मरण कर रहा हूँ। (क्र.-2) खोटे कर्म करके कभी अधोगति नरक में गया हूँ। (क्र -3) हे प्रभु! शक्ति देना कि ऐसे कार्य नही करूँ जिससे नरक जाना पड़े (क्र.-4) कभी छल कपट करके तिर्यंच गति में गया (क्र -5) मैं तिर्यंच गति में न जाने का सकल्प करता हूँ। (क्र -6) कभी शुभ भावों से मरण कर देव भी हुआ (क्र -7) मै असयमी देव भी नहीं होना चाहता (क्र -8) कभी शुभ सकल्प व्रतादि धारण कर मानव पर्याय पाई (क्र -9) मैं इसमें उत्कृष्ट संयम पालन करने की भावना करता हूँ। (क्र -10) यह परिभ्रमण मूलतः अज्ञान, मिथ्यात्व, मोह एव विषय-कषाय के कारण से हो रहा है- यथा

1 कित निगोद कित नारकी कित..

2 चौदह राजु उत्तुंग नभ

3 भव विकट वन में कर्म बैरी ..

4. मोह महामद पियो अनादि

5 मैं भ्रमों अपन को विसर आप

अज्ञान मिटाने के लिए मैं संकल्प करता हूं कि प्रथमानुयोग (क्र.-11), करणानुयोग (क्र.-12), चरणानुयोग(क्र -13), एव द्रव्यानुयोग (क्र.-14), का स्वाध्याय करके मैं भी सम्यक्दर्शन(क्र -15), सम्यक्ज्ञान (क्र -16), एवं सम्यक्चारित्र (क्र.-17) को प्राप्त करूँगा तथा रत्नत्रय की पूर्णता करके सिद्ध शिला (क्र.-18), से ऊपर मानव पर्याय के परम लक्ष्य पचम गति सिद्ध पद को प्राप्त करूँगा (क्र.-19),

इस प्रकार शुभ एव पवित्र भावना से ठोना एव जल, चंदन के पात्रों पर भी स्वस्तिक अंकित करके पूजन आरंभ करें।

अभिषेक की थाली में 'श्री' अंकित करने का विधान आचार्य माघनंदी महाराज ने अभिषेक पाठ में किया है। 'ॐ' पंचपरमेष्ठी का बीजाक्षर है, उसे लिखकर मिटाना उचित नही है।

अभी तक किसी भी शास्त्र में पूजा की थाली में बीजाक्षर अंकित करने का विधान प्राप्त नहीं हुआ है।
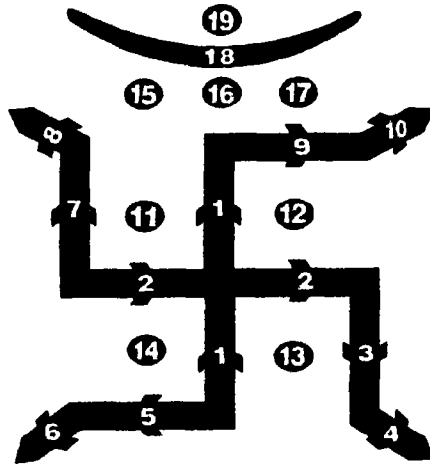
1. संसार रेखा (त्रसनाली-निगोद से मोक्ष की ओर)
2. जन्म मरण की रेखा ऊर्ध्वगमन

3. नरक गति (नीचे की ओर)
4 वज्र- नरक गति में न जाने का संकल्प
5 तिर्यंच गति
6 वज्र तिर्यंच गति मे न जाने का सकल्प
7 देव गति (ऊपर)
8 वज्र देवगतियो में न जाने का सकल्प
9. मनुष्यगति
10 वज्र मनुष्यगति में न रहने का सकल्प
11 प्रथमानुयोग
12 करणानुयोग
13 चरणानुयोग
14 द्रव्यानुयोग
15 सम्यक्दर्शन
16 सम्यक्ज्ञान
17 सम्यक्चारित्र
18 सिद्धशिला
19 सिद्ध भगवान

संदर्भग्रंथ-

तिलोयपण्णत्ती - आचार्य यतिवृषभ
त्रिलोकसार - आचार्य नेमिचंद सिद्धांतचक्रवर्ती
प्रतिष्ठापाठ - आचार्य जयसेन
प्रतिष्ठा सारोद्धार - प. आशाधरजी
तत्त्वार्थसूत्र - आचार्य उमास्वामी
अभिषेक पाठ - आचार्य माघनंदी
मूकमाटी - आचार्य विद्यासागर
धर्मचक्र - डॉ प्रकाश चन्द जैन
रविव्रत विधान - कल्याण शशि
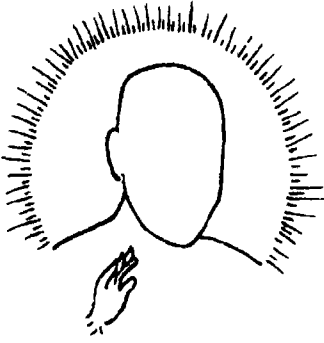
परम पूज्य
आचार्य
गुरुवर
का
मंगल आशीष
ही
हमारे कार्य का
संबल है
श्रद्धा का
आधार है
एवं सफलता
का रहस्य है।
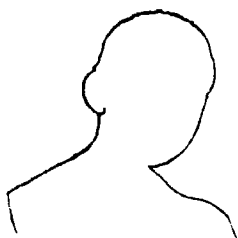
परमोपकारी

उपाध्यायश्री

का

वरदहस्त

एवं

मंगल प्रेरणा

हमारी प्रगति

का

सार्थक

सोपान

है।

आशीर्वाद

प्रथमानुयोग शब्द से ज्ञात हो जाता है कि प्रारम्भिक अनुकरण। आज के युग में इसकी परम आवश्यकता है। प पू. मुनिकुंजर, समाधि सम्राट, आचार्य परमेष्ठी, आदिसागर अकलीकर कहते हैं कि जिसका प्रारभ नही है उसका अंत नहीं हो सकता। नीव होती है तो मजिल बनती है।

ब्र जय 'निशात' प्रतिष्ठाचार्य ने परमार्थ भूत परपरा का निर्वाह कर एक आदर्श प्रस्तुत किया है। पैतृक ज्ञान को पिता प गुलाबचन्द्र 'पुष्प' प्रतिष्ठाचार्य के सान्निध्य मे समाज के मध्य लाने का प्रयास समाज के लिए बहुत बडी उपलब्धि है। परम्परागत ज्ञान नियम से कल्याणकारी होता है।

अत. उन्होने वृहद 'व्रत वैभव' नामक ग्रन्थ का कार्य जिनागमानुकूल व्रतो का सकलन तथा उनकी कथाएँ, व्रतो की विधि और उद्यापन आदि का सयोजन किया है। इस ग्रन्थ के ज्ञान से हर प्रकार का भव्य प्राणी अपने सासारिक दुखो को दूर करने मे समर्थ होगा।

उनके जनोपकल्याणी कार्य के माध्यम से भगवान महावीर की वाणी का प्रचार-प्रसार होगा। अत आदर्श व्यक्तित्व के धनी को मेरा मगलकारी आशीर्वाद है।

15 अगस्त 2004 -आचार्य सन्मति सागर

आशीर्वाद

मनुष्य जन्म दुर्लभ है, मनुष्य जन्म से भी महादुर्लभ जिनधर्म है, कम से कम जैन कुल में जन्म लेने के बाद-उस मनुष्य को अपनी अगली गति में सुधार के लिए नियम व्रत सयम करना जरूरी है।

"व्रत वैभव" में अनेक प्रकार के व्रत हैं, यह व्रतानुष्ठान का अनुपम ग्रन्थ है। उसका फल क्या है? किसने किया था? कबसे करने की विधि है और इनके उद्यापन में क्या किया है? व्रत और उद्यापन से महापाप कटता है और महापुण्य सपादन कर उच्चगति को प्राप्त होता है।

"व्रत-वैभव" पुस्तक के लिए निर्देशन वयोवृद्ध ज्ञानी प गुलाबचन्द्र 'पुष्प' ने किया है तथा सकलन एव सयोजन ब्र जयकुमार 'निशांत' ने किया है एव सपादक ब्र विनोद जैन पपौराजी एव प विनोद कुमार रजवास ने करके अच्छा प्रयास किया है।

हम आपको एव स्मृति ट्रस्ट को आशीर्वाद देते है, कि यह प्रकाशन कार्य अच्छी तरह से होता रहे।

-आचार्य बाहुबलि सागर

ऋषभ विहार, दिल्ली

शुभाशीर्वाद

'व्रत वैभव' ग्रन्थ आज के व्रतहीन मानवों के लिए मार्ग निर्देशक है। व्रत का अर्थ है ससार-शरीर भोगों से विरक्त होकर इंद्रिय और मन को जीतने के लिए नियमों का पालन करना। वास्तव में पण्डित जी ने श्रावकों की उन्नति की भावना से यह पुरुषार्थ किया है। आज पाप से बचने के लिए व्रत नियम पालन करना परमावश्यक है। व्रत की महिमा अपार है। सातिशय पुण्य के बिना सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्दर्शन के बिना भाव सयम नहीं और भाव सयम के बिना सवर पूर्वक निर्जरा और मोक्ष सभव नहीं है।

पंडित जी ने श्रावकों को मोह मार्ग से बचकर मोक्षमार्ग में लगाने हेतु जो परिश्रम किया है वह सराहनीय है। क्योंकि व्रत पालने वालों को व्रत में रुचि उत्पन्न होने में सदुपयोग परमावश्यक है। बिना ज्ञान के कर्म निर्जरा भी सभव नहीं। अतः इस 'व्रत वैभव' ग्रन्थ के माध्यम से प्रथम स्वार्गादि वैभव को प्राप्त कर तदनतर भव्यजन आत्म वैभव अनंत चतुष्टय को प्राप्त करें ऐसी शुभकामना से मुमुक्षुओं को हमारा सद्धर्मवृद्धि शुभाशीर्वाद है। जो ग्रन्थकर्ता हैं उन पूर्वाचार्यों को मेरा बारम्बार नमन है। इसके सकलनकर्ता प गुलाबचन्द्र 'पुष्प' जी एवं बा ब्र प जयकुमार 'निशात' जी को और उनके परिवार को मेरा सद्धर्मवृद्धि-ज्ञानवृद्धि-शुभाशीर्वाद है।

इत्यलम्।

–आचार्य संभव सागर
श्री भारतीय दिगम्बर जैन त्रियोग आश्रम
मधुवन (सम्मेदशिखर जी) जिला गिरीडीह (बिहार)

सार्थक श्रम को आशीर्वाद

माया-निदान-मिथ्यात्व-शल्याभाव-विशेषतः।
अहिंसादि-व्रतोपेतो-व्रतीति-व्यपदिश्यते।।

माया, मिथ्यात्व एव निदान शल्यों से रहित होकर जो अहिसादि व्रतों को निरतिचार पालन करता है वही व्रती कहलाता है।

व्रतो की परम्परा अनादि है, बिना व्रत के जीवन मे सयमाचरण नहीं आता है। श्रावक अपने कर्तव्यों का पालन करते हुये देव पूजादि षट्कर्मो का पालन कर नियम एव यम रूप व्रतों को अगीकार तो करता है पर सकल्प रूप स्वीकार नहीं कर पाता है। सामान्य से व्रतों का पालन करना अत्यत सरल है परन्तु मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व के साथ आत्मकल्याण की भावना से सकल्प पूर्वक व्रतो का आचरण ही कल्याणकारी होता है।

निरतिचार व्रतो का पालन ही श्रावक को प्रतिमा रूप व्रतो की ओर अनुसरण कराता है, जहाँ वह क्रमश ससार, शरीर एव भोगों से विरत होकर आत्म साधना का पथिक बनकर कल्याण भावना को दृढ करता है। यही भावना उसके महाव्रत की आधारशिला होती है। सराग सयम से वीतराग सयम की ओर अग्रसर होना ही मानव जीवन का लक्ष्य है।

"परं कर्म क्षयार्थं, यत्तप्यते तत्तपः स्मृतम्"।

कर्मों का क्षय करने के उद्देश्य से किया गया तप ही सम्यक् तप है, अत व्रत ग्रहण करते समय इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। व्रत के दिन दिनचर्या अधिक समरभ पूर्वक न करके स्वाध्याय, पाठ, जाप पूर्वक आत्म साधना करके करना चाहिए।

व्रतों से आत्म शक्ति उद्दीप्त होकर दृढ़ होती है तथा इच्छा शक्ति बढ़ने से शारीरिक भोगों पर नियत्रण करने की शक्ति बढ़ जाती है, प्रतिकूलता में भी सम्यक् चर्या करना सरल हो जाता है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल एव भाव के साथ-साथ मनुष्य का पुरुषार्थ सर्वोपरि होता है, विषम परिस्थतियों में भी अपने संयम एवं सकल्प का निरतिचार पालन करना साधक की परीक्षा के क्षण होते हैं। अनुकूलता में तो साधना सहज रूप में हो जाती है, परन्तु सासारिक व्यस्तता एव शारीरिक प्रतिकूलता में कभी-कभी व्रतों का सम्यक् रूपेण पालन नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में साधक किन्हीं मुनिराज से प्रायश्चित्त लेकर उस त्रुटि का परिमार्जन कर सकल्प पूर्ण करे। व्रतों के पालन में किया गया प्रमाद व्रतों की अवमानना का कारण बनता है। इससे व्रती श्रावक को सदैव सचेत रहना चाहिए।

अभी तक व्रतों की सम्पूर्ण जानकारी नहीं होने से व्रतीजन साधना को विभिन्न आयाम नहीं दे पाते थे, परन्तु वरिष्ठ प्रतिष्ठाचार्य निस्पृह विद्वान प गुलाबचन्द्र 'पुष्प' के निर्देशन से उनकी परम्परा को सम्यक् रूपेण गृहण करके व्रती ब्र. जयकुमार 'निशात' ने इस ग्रन्थ में जो श्रम किया है वह अनुकरणीय है।

साहित्य सृजन अत्यधिक श्रम साध्यकार्य है सामाजिक, धार्मिक अनुष्ठान के प्रति समर्पित होकर भी इस प्रकार का वृहद् "व्रत वैभव" ग्रन्थ का संकलन अत्यधिक दुरूह कार्य है। इस ग्रन्थ मे सार्थक श्रम करने वाले सुधी विद्वान माँ जिनवाणी की सेवा में सतत सलग्न रहें।

यह कृति श्रावक एव साधकों को साधना में पाथेय बने सभी इससे आत्म कल्याण पथ पर बढ़ें।

इत्यलम्

ग्वालियर, पयुर्षण 2004 —उपाध्याय ज्ञानसागर

गुलाब सी प्रतिभा को आशीर्वाद

सिद्धान्त शिरोमणि आचार्य श्री गृद्धपिच्छ की दिव्य देशना है-हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से विरत होना व्रत है।

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।

त सू. (7-1)

इसी बात की पंडित परम्परा के मूर्धन्य विद्वान, भद्र परिणामी श्री आशाधर जी कहते हैं-

संकल्पपूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभ-कर्मणः।
निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा, प्रवृत्तिः शुभकर्मणि।।

-सागारधर्मामृत 2-80

पञ्चेन्द्रिय जन्य विषयों को सकल्प पूर्वक त्याग करना और हिसादिक अशुभ कर्मों से विरक्त होना अथवा सुपात्रदानादि शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना व्रत है।

लक्षणाचार्य श्री पूज्यपाद जी कहते हैं-'व्रतमभिसन्धिकृतो नियमः, इद कर्त्तव्यमिद न कर्त्तव्यमिति वा अर्थात् प्रतिज्ञा पूर्वक जो नियम लिया जाता है वह व्रत है या यह करने योग्य है और यह करने योग्य नहीं है इस प्रकार नियम करना व्रत है।

वास्तव में अभिप्राय पूर्वक बुराइयों-पापों से बचना व्रत है इसीलिए श्रावक सगुण हो या निर्गुण। दोनों के कल्याणार्थ व्रतों को धारण कर जीवन को उज्ज्वल बना सकते हैं।

श्रावक के दैनंदिनी संविधान में सयम बड़ा महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है, दुर्घटनाओं से बचाता है। राष्ट्र, समाज और स्वयं के उत्थान में अग्रिम भूमिका अदा करता है।

मेरा मत है थोड़ा-थोड़ा नियम, संयम भी महाव्रतों की ओर ले जाता है।

आर्ष परम्परा के मनीषी पंडित प्रवर श्री गुलाबचन्द जी 'पुष्प' ने जैनागम का आलोडन-मन्थन कर 475 व्रतों का संकलन कर श्रावकों को अद्वितीय भेंट दी है। वस्तुतः अघ कार्यों से निर्वृत्ति और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति ही नर-जन्म की सफलता है।

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्बत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।।

-इष्टोपदेश-3

जिस प्रकार छाया में बैठकर अपने दूसरे साथी की राह जोहने वाले पुरुष को छाया/शान्ति प्राप्त होता है और धूप में बैठकर अपने साथी की राह जोहने वाले को कष्ट प्राप्त होता है, उसी प्रकार व्रतों के अनुष्ठान से स्वर्गादि सुखों के साथ मोक्ष प्राप्त होता है और अव्रतों से नरक दु ख भोगना पड़ता है। अतएव व्रतों का आचरण करना ही श्रेष्ठ है।

परमतार्किक आचार्य समन्तभद्र कहते हैं-कि मैं कर्मों का विनाश करने वाले उस श्रेष्ठ धर्म को कहता हूँ जो जीवों को संसार के दु.खों से निकालकर स्वर्ग-मोक्षादि उत्तम सुख में पहुँचा देता है। उसी प्रकार व्रती विद्वान श्री 'पुष्पजी' ने 475 व्रतों की विधि, व्रतारभ तिथि, व्रतावधि, मन्त्र, फल व कथाओं का सग्रह कर संसार मार्ग से मुक्ति पथ पर चलने वालों को ऋजुता का उपहार दिया है।

श्री गुलाबचन्द जी 'पुष्प' वय में वृद्ध होते हुए भी व्रतों में गहरा श्रद्धान रखते हैं, साथ ही सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा का अमल

भी करते हैं। इसीलिए अन्य विद्वानों में गुलाब सी खुशबू बिखेरते हैं। आपका व्रतो के प्रति उत्साह ससारी जनों को पाठ देता है कि व्रत शाश्वत लक्ष्य की कुजी है व मोक्षमार्ग की द्वितीय किन्तु अद्वितीय सीढी हैं।

बुन्देलखण्ड मे कहते है कि 'बाप से बेटा सवाई' होता है यह सूक्ति अक्षरश सत्य है, जिसके प्रमाण स्वय "पुष्प जी" है। जो अपने पिताजी से व्रत, सयम व ज्ञान में सवाई है और आपके पुत्र जयकुमार जी आपसे भी सवाई होगें। ऐसे ही लक्षणो से परिलक्षित मेधा का प्रतिफल है–व्रत वैभव, प्रतिष्ठा पराग, पुष्पाञ्जलि प्रभृति का सुन्दर सयोजन।

आडम्बर विहीन विशुद्धमार्गी धर्मरत्न पडित मन्नूलाल प्रतिष्ठाचार्य जी के सुपुत्र श्री 'पुष्प जी' कालजयी हस्ताक्षर है। हमे प्रसन्नता है आपके निर्देशन मे 'व्रत वैभव' प्रकाश मे आ रहा है इससे श्रावको को अपनी-अपनी इच्छानुसार व्रत ग्रहण करने मे बडी सहूलियत होगी। एतावता व्रत धारण करने वालों का छटवा भाग पुण्य आपके खाते मे जायेगा, क्योकि आप उसके लिए श्रेष्ठ निमित्त है।

अन्त मे प्रतिष्ठातिलक, सहितासूरि, वाणीभूषण, द्विशताधिक पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा व गजरथ के अनुभव सिद्ध, साहित्यरत्न पडित श्री गुलाबचन्द "पुष्प" व आपके उत्तराधिकारी बाल ब्रह्मचारी प्रतिष्ठासूरि श्री जयकुमार "निशात" को बहुत-बहुत आशीर्वाद। आप शतायु हो और श्रमण मार्ग पर प्रवृत्ति कर आत्म वैभव को बढाये।

–उपाध्याय गुप्तिसागर मुनि

गन्नौर, 25-01-2005

व्रत से अन्तरात्मा बनो

"व्रत करने वाला शल्य से रहित होता है"। मिथ्यात्व, माया एवं निदान ये तीनों शल्य हैं। ये तीनों आत्मा को काँटों की तरह अनादि काल से दुखी बना रहे हैं। इनके कारण बहिरात्मा भौतिक बस्तुओं में बाहर भटकता है। "व्रत" इनको दूर करने की वैज्ञानिक विधि है।

मानव मन मौसम की तरह अपना रंग-रूप बदलता है। उसको सुदर एवं सुव्यवस्थित करने के लिए प्रत्येक मौसम में अलग-अलग व्रत किये जाते है। जिससे आत्मा राग-रंग से हटकर अतरग में स्थिर हो सके। अर्थात् व्रत का अवलम्बन लेकर प्राणी बहिरात्मपने को छोड़कर अपने परिणामों को अतरात्मा रूप बना सके। इसी मगल भावना के साथ व्रतो का सकलन करके सुन्दर ग्रन्थ तैयार किया गया है।

इस मगलमय कार्य में वयोवृद्ध, ज्ञान वृद्ध एव अनुभवी प्रतिष्ठाचार्य धर्मानुरागी श्री गुलाबचन्द्र 'पुष्प' के सुपुत्र एव सुयोग्य उत्तराधिकारी युवा प्रतिष्ठाचार्य बाल ब्रह्मचारी पं जयकुमार जी 'निशात' ने अत्यत सुदर प्रयास किया है।

बहिरात्मा अव्रती को अंतरात्मा एव व्रती बनने की प्रेरणा इस ग्रथ से मिले। इस ग्रन्थ के लेखक संपादक तथा सकलनकर्ता सभी को मेरा मंगल आशीर्वाद है।

-उपाध्याय संत श्रुतसागर

पर्यूषण पर्व, बड़ौत, 14.09 04

आशीर्वाद

जैन परम्परा में व्रत और उपवास का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। गृहस्थ और साधु दोनों के लिए विभिन्न प्रकार के व्रतों के माध्यम से तपानुष्ठानों का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। महापुराण और हरिवशपुराण में अनेक व्रतों और उनकी विधियों का उल्लेख है। मूलतः व्रतों का उद्देश्य तप. साधना है। कालातर में उनके साथ अनेक ऐहिक फलों की कथाएँ भी जुड़ गई हैं। जो भी हो, व्रत उपवास हमारे लौकिक और लोकोत्तर दोनों हितों के सपादक हैं।

वर्षों से जैन व्रतों का स्वरूप, उनकी कथाओं और विधि के विषय में पर्याप्त और प्रामाणिक जानकारी प्रदान करने वाली कृति का अभाव महसूस किया जा रहा था। प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' एव ब्र जयकुमार 'निशांत' ने अपने दृढ अध्यवसाय से इस कमी को पूर्ण करने का श्लाघनीय कार्य किया है। कृति में 475 व्रतों के विवेचन के साथ महत्वपूर्ण जापों, पूजाओं, कथाओं और उद्यापन विधि का विवेचन हो जाने से व्रत उपवास के इच्छुक स्त्री-पुरुषों के लिए यह एक दीप स्तंभ का कार्य करेगा।

व्रतों की परम्परा, विभिन्न सप्रदायों के व्रतों में सामंजस्य, भारतीय सस्कृति में व्रतों की ऐतिहासिकता पर शोध कार्य अत्यंत आवश्यक हैं।

कृतिकार के इस श्रमसाध्य कार्य के लिए मेरे अनेकशः आशीर्वाद।

-मुनि प्रमाणसागर
सतना-वर्षायोग-2004

आशीर्वचन

सम्यग्दर्शन पूर्वक व्रत को धारण करना एक दुर्लभता है। व्रती वही हो सकता है जिसे किसी अशुभ आयु का बध नही हुआ है और व्रत के काल में यदि आयु कर्म का बंध होता है तो वह देव आयु का बध होता है।

व्रत का फल स्वर्ग मोक्ष कहा गया है। अभी पंचम काल में भव्य स्वर्गादिक सुख को प्राप्त कर परम्परा से मोक्ष पद पा सकते हैं। आज भी महाव्रती मुनि लौकांतिक पद पाकर एक भव के बाद निश्चित ही मुक्ति पद का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

व्रती को मिथ्या, माया और निदान इन तीनं शल्यों का त्याग करना चाहिए तथा व्रत को अतिचार रहित पालना, सरागी पूजा और एकाती प्रसंगों से दूर रहकर भावी भोगों की आकाक्षा नहीं रखना चाहिए। तभी व्रत पालन की सफलता मानी जायेगी।

अत में सल्लेखना को उत्साह पूर्वक धारण कर विधिवत् मरण करें तो निश्चित् रूप से उत्कृष्ट से एक दो भव तथा जघन्य से सात-आठ भवों में मोक्ष की प्राप्ति मुमुक्षुओं को अवश्य होती है।

पण्डित गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' ने सप्तम प्रतिमा लेकर व्रत उपवासों के साथ जिनबिम्ब प्रतिष्ठाएँ कराने की परम्परा भी चलाई है। हजारों मूर्तियों को भगवान बनाकर सम्यग्दर्शन की विशुद्धि में आप जो कारण बने यह सभी के लिए सौभाग्य का विषय है।

इस 'व्रत वैभव' पुस्तक के आगमानुसार संग्रह से लोगों को इन व्रतों के अभ्यास से मुक्ति प्रप्ति के लिए महाव्रतों को धारण करना सरल होगा और जिनधर्म की प्रभावना में अतिशय वृद्धि होगी और अधिक क्या कहा जाए इत्यलम्।

इस महान् कृति के प्रकाशन हेतु मेरा शुभाशीर्वाद है।

इंदौर **-मुनि श्री आर्जव सागर जी महाराज**
04.05.04 संघस्थ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

मंगल आशीष

भारतीय तत्त्व मनीषा में श्रमण सस्कृति आद्य संस्कृति है जिसका सिद्धात, अध्यात्म एव दर्शन पक्ष प्रौढ है। सम्पूर्ण जैन वागमय आचार-विचार एव पुण्य-पाप की प्रधानता से युक्त है। विचार पक्ष की निर्मलता आचार पक्ष से ही होती है, बिना व्रताचरण के स्वीकार किये स्वरूपाचरण सभव नहीं है। आत्म तत्त्व की सिद्धि वे ही भव्य मुमुक्षु कर सके है जिन्होंने सयमाचरण पूर्वक स्वात्मानुभूति का अनुभव किया है। जैनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिसमें चरणानुयोग चारित्र प्रधान है, जो कि श्रमणाचार, श्रावकाचार की दृष्टि से उभय भेद रूप है। श्रमणाचार मुनिचर्या की प्रधानता से युक्त होता है, श्रावकाचार श्रावक चर्या की प्रधानता से कथन करता है, उभयाचार में विशेष व्रतों का पालन किया जाता है। जो व्रत जीवन पर्यन्त के लिए धारण किये जाते है वे यम रूप होते हैं तथा जो काल की मर्यादा से धारण किये जाते हैं वे नियम कहलाते है। पर्व विशेषो पर जो व्रत धारण किये जाते हैं, वे कुछ यम रूप है, कुछ नियम रूप।

आगम ग्रन्थों में व्रतों का विस्तार से वर्णन किया है, परन्तु सभी व्रत एव उनकी विधि, पूजा तथा व्रतों की महिमा बतलाने वाली पौराणिक कथाओ का एक साथ सग्रह बहुत अल्प दृष्टिगोचर होता है। सुधी पाठकों एवं व्रत करने वालों को तद्विषयक सत्साहित्य की प्राप्ति में बहुत श्रम करना पडता है। आज प्रसन्नता है कि उक्त कमी को परम निर्ग्रन्थ मार्ग उपासक बाल ब्र युवा मनीषी प्रतिष्ठाचार्य विद्वान जयकुमार 'निशात' ने वरिष्ठ प्रतिष्ठाचार्य

व्रती विद्वान पं श्री गुलाबचन्द्र 'पुष्प' के निर्देशन में अथक श्रम एव लगन पूर्वक उसे पूर्ण किया है। उन्हें यही शुभाशीष है, इसी प्रकार वाग्वादिनी की सेवा में रत होकर अपने मार्ग को प्रशस्त करें।

इत्यलम्। शुभम् भूयात्।
ॐ नम सिद्धेभ्य

वर्षायोग-विदिशा -मुनि विशुद्ध सागर
23 अगस्त 2004

मंगलाशीष

हिंसानृतस्तेया-ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो-विरतिर्व्रतम्।

सकल्पात्मक हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह का त्याग ही व्रत है। गृहस्थ जीवन में प्रतिमा को स्वीकार किये बिना व्रती की उपमा नहीं प्राप्त हो सकती फिर भी आत्म कल्याणार्थ आत्मिक अथवा सासारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रतिमा रूप चारित्र से रहित आचारणात्मक सस्कारात्मक अनेक प्रकार के व्रतो के पालन करने से पाप प्रवृत्ति भी रुकती है, धर्म प्रभावना भी होती है मनोभिलाषा की पूर्ति भी होती है। सयम के प्रति रुझान भी होता और निर्मलता का भी जागरण होता है। ये व्रत समयानुसार, घटनानुसार, भावनानुसार बनाये गये हैं ताकि गृहस्थ णमोकार, भक्तामर, पार्श्वनाथ, रोहणी, समवशरण, कर्मदहन, चारित्र शुद्धि, रत्नत्रय, मुकुट सप्तमी आदि व्रतों को स्वीकार कर उपवास या एकाशन करते हुए प्रभु भक्ति तथा साधना मय जीवन को व्यतीत कर सकें यह व्रत प्राय स्त्रियाँ अधिक करती है पर पुरुष वर्ग भी

इन व्रतों को स्वीकार कर अपने जीवन को आचरणमय बना सकते हैं ताकि दाम्पत्य जीवन आनन्दमय एव धर्ममय व्यतीत हो सके।

युवाव्रती पंडित प्रतिष्ठाचार्य श्री जय कुमार जी 'निशात' ने समस्त व्रतों की विधि, भाव, कारण, कथा, तिथि का वृहद संकलन कर लोगों के मन में व्रत करने की पावन प्रेरणा विधि का विस्तार किया है जो परिश्रम साध्य कार्य है। इनका यह पुरुषार्थ भी एक व्रत से कम नहीं है अध्येता प्रस्तुत कृति का लाभ केवल अध्ययन कर ही नहीं, व्रतों को स्वीकार कर लेंगे ताकि इनका पुरुषार्थ सफल हो सके।

आपका जीवन मगलमय हो

इसी भावना के साथ

दिल्ली-16 10 2004 -मुनि सौरभसागर

संस्कारों की विरासत

अनवरत चलने वाली इस दुनिया में कई पिता पुत्र पैदा हुए होंगे, होते रहेंगे। लेकिन पिता पुत्रों का मूल्यांकन तभी होता है जब पिता अपने पुत्रों को आगमानुकूल कार्य करने की क्षमता पैदा कर देता है, दीपक बुझने के पूर्व दूसरे दीपक की व्यवस्था करा देता है। जिस दीपक ने वर्षों से रोशनी दी, जिससे रोशनी देने वालों को एवं रोशनी लेने वालों को आनद आया तथा दीपक की प्रशंसा भी जनमानस के बीच हो ऐसा विचार करते ही अब लोगों के बीच वैसा हुबहु दीपक जल उठा है जो आगमानुकूल सबको पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, वास्तुसार, विधान सबंधी कार्यों से रोशनी देगा। जब से मेरे गुरु आचार्य श्री विद्यासागर जी से इन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत लिया, तभी से मैं इन्हें जानती हूँ तभी से मेरे निकट भी आये। ब्र. जी से जब कभी भी पूजा प्रतिष्ठापाठ आदि को लेकर चर्चायें हुई मैंने अनुभव किया कि जय 'निशात' ने अपने पिता से विरासत में बहुत कुछ पाया है। कभी भी आगम विरुद्ध अपने चिन्तवन/चितन को आगम के अनुरूप नहीं बताया। कभी कभार शका का समाधान नहीं हो सका, तब यही कहा कि मैं पिताजी से पूछकर या आगम ग्रन्थ देखकर बताऊँगा। अपनी विद्वता दिखाने, जनता को गुमराह करने का कभी मन में विचार नही किया, ऐसा देखा सुना अनुभव किया, जनसमूह को इनसे हमेशा दिशाबोध मिला है। आज वर्तमान परिवेश में भौतिकी चकाचौंध में आदमी बड़े-बडे ग्रन्थों को पढ़कर अपनी जिज्ञासा का समाधान नहीं कर सकता, उसकी सिर्फ यही चाहत रहती है कि आगम की व्यवस्थित सामग्री ग्रन्थ या पुस्तक में लिखी मिल जाये। ऐसी पुस्तक/ग्रन्थ को पढ़कर वह बड़ा ही खुश

होना है। अपनी शकाओं/प्रश्नों का झट से समाधान पा लेता है। आपकी लिखित "पुष्पाञ्जलि" ग्रन्थ को पढकर लोगों ने अपनी विपरीत मान्यताओ को छोडकर आगमानुकूल अपनी पूजा/अर्चना, अभिषेक आदि को समीचीन बना लिया है। जनसमूह की भावना को देखकर जय 'निशात' ने जिनागम के अनुकूल व्रतों का सकलन व्रतो की पूजा, कथा, उद्यापन विधान को एक ग्रन्थ/पुस्तक में सकलन करके बडा ही सराहनीय कार्य किया है। अब भव्य मुमुक्षु जो व्रत, उपवास करने में आस्था रखते है, उनको विधि, तिथि आदि देखने में सरलता/सुगमता का अनुभव होगा। मै आपकी इस भावना की प्रशसा करती हूँ कि हमेशा समय की माग के अनुसार अपनी लेखनी चलाते रहे तथा आगमानुकूल ग्रन्थ/ पुस्त्क की ख्याति/कीर्ति दिग् दिग् दिगान्तरो में फैलती रहे।

वर्तमान युग मे कोई भी पिता, पण्डित/प्रतिष्ठाचार्य बनाना बिल्कुल भी पसद नही करता हर पिता डाक्टर, इन्जीनियर, टीचर, इन्सपेक्टर एस०पी०, क्लैक्टर आदि अपने जैसा बनाना पसद करते है लेकिन . । आज दिगम्बर आम्नाय मे कितने विद्वत् वर्ग है एव हो चुके और समाधिस्थ भी हो गये है, परन्तु उनके बेटो ने उनका अनुकरण नहीं किया। या तो पिता की कमी रही या फिर बेटों की लेकिन "जय निशात" इस कसौटी मे खरे उतरे 'बेटा बाप से सवाई', इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर प्रतिष्ठाचार्य पद का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। मेरा आपके लिए विशुद्ध हृदय से नि सृत आशीर्वाद है।

-आर्यिका : प्रशान्तमती

सघस्थ · आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज

व्रतों का उद्घाटन

भौतिकता के बढ़ने से तृष्णा भी बढ़ती जाती है। जिसकी पूर्ति करने में व्यक्ति धर्माचरण से हटने लगता है। उसका मन सकल्प विकल्पों में उलझा रहता है वह कभी स्थिर नहीं रह पाता है। विचलित मन को एकाग्र करने का एक मात्र उपाय व्रत एव मत्र साधना है। व्यक्ति अपनी शक्त्यनुसार व्रत अगीकार करके मन को स्थिर कर आत्म सबल प्राप्त करता है, जिससे उसकी आशक्ति कम होती है और धर्माचरण होने लगता है।

परिवार जनों के व्रताचरण से बच्चों में भी धर्म के सस्कार स्वयमेव आ जाते हैं, यही कारण है कि व्रती जनों के परिवारो में आहार चर्या, पूजा, स्वाध्याय, व्रत आदि सहज रूप में होते रहते है।

व्रतो की सम्यक एव सम्पूर्ण विधि के साथ उपलब्ध न होने का अभाव बना रहता था। पडित प्रवर सहितासूरि गुलाब चन्द्र "पुष्प" एव बा.ब्र जय "निशान्त" टीकमगढ़ ने इन व्रतों की सम्पूर्ण जानकारी एक साथ प्रकाशित कर श्रावकों को व्रत रूपी वैभव का उद्घाटन कर गृहस्थ श्रावकों का उपकार किया है। इन व्रतों को ग्रहण कर व्यक्ति अपना कल्याण मार्ग प्रशस्त करेंगे। लेखक/सयोजन का श्रम साध्य कार्य प्रशसनीय है।

-ऐ0 सिद्धांत सागर
गाधी नगर, अहमदाबाद
सघस्थ आचार्य विद्यासागर जी महाराज

प्रशंसनीय सृजन

जैन दर्शन में सयम और व्रत की मुख्यता है यदि व्रत सयम न होता तो जैन दर्शन आदर्शता को प्राप्त नहीं हो पाता। जैसे शरीर में रीड की हड्डी जीवन को प्राणदायिनी मानी जाती है उसी प्रकार व्रत-सयम जैनदर्शन की रीड है। वयोवृद्ध विद्वान प्रतिष्ठाचार्य प गुलाबचन्द्र 'पुष्प' एव ब्र० जय निशात ने उन सभी व्रतों का सकलन किया है जो जन समान्य के ज्ञान मे नही थे। उनका श्रम प्रशंमनीय है। सभी जनमानस लाभ लेकर कर्म निर्जरा करें।

इत्यलम्

-डॉ० प्रमिला जैन

सघस्थ आर्यिका सुपार्श्वमति माता जी

अद्‌भुत कृति-व्रत वैभव

व्रत वैभव ग्रन्थराज अद्‌भुत व अलौकिक तथा प्रथम बार ही प्रकाशन में आ रहा है। 475 व्रतो का सागोपाग वर्णन एक ही साथ अवलोकन में आने के साथ व्रत करने की शक्ति अनुसार भावों का भी आविर्भाव होता है। इस ग्रन्थ का अधिकाधिक सदुपयोग हो जिससे सकलन कर्ता सातिशय पुण्य के भागी होकर निर्वाण को शीघ्राति-शीघ्र प्राप्त हों। प्रत्येक विद्वान बन्धु को इसका अधिकाधिक रूप में प्रचार व प्रसार करने का सौभाग्य अवश्य ही प्राप्त करना चाहिए।

मेरी बहुत-बहुत मगल भावना है कि कोई न कोई व्रत एव नियम पालन करके आपनी आत्मा को परमात्म पद में प्रतिष्ठित कर सकूँ।

अलमिति विस्तारेण।

इन्दौर

मोक्षाभिलाषी

-रतनलाल जैन

सार्थक प्रयास

श्रावक के दैनिक आवश्यक कार्यों में संयम की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक श्रावक अपने जीवन को उच्च शिखर पर ले जाने के लिये व्रतों को अवश्य स्वीकार करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि परस्पर में एक दूसरे को देख कर व्रतों को करने लगते हैं परन्तु कई भव्य जीवों को यही परिज्ञान नहीं रहता है कि अष्टमी चतुर्दशी आदि विशिष्ट तिथियों में व्रत क्यों किये जाते हैं ? इन तिथियों में व्रत करने का प्रयोजन क्या है ? उपवास प्रोषधोपवास आदि में अंतर क्या है ? ऐसे विषयों में भी तमाम भ्रान्ति समाज में हैं। इसी प्रकार व्रतों के विषय में कथा-कहानियों का मूल्याकन भी अपेक्षित था। चरणानुयोग में इस महत्वपूर्ण विषय पर व्यवस्थित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था इसकी सम्पूर्ति इस विषय के अधिकारी एव सुयोग्य विद्वान ब्र. जय 'निशात' जी ने अत्यधिक परिश्रम के साथ प्रामाणिक ग्रन्थ तैयार किया है। आशा है समाज को यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

सकायाध्यक्ष -डॉ0 शीतलचंद जैन
राजस्थान संस्कृत वि वि. जयपुर

सम्यगदिग्दर्शन

श्रीमान् प. गुलाबचन्द्र जैन 'पुष्प' प्रतिष्ठाचार्य एवं ब्र. श्री जय 'निशात' जैन प्रतिष्ठाचार्य टीकमगढ़ द्वारा सकलित "व्रत वैभव" ग्रन्थ का आद्यन्त सिहावलोकन करने का अवसर मिला। ग्रन्थ देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

इस ग्रन्थ में आदरणीय पुष्प जी एवं उनके सुयोग सुपुत्र निशांत जी ने 475 व्रतों का दिग्दर्शन कराया है। यह दिग्दर्शन

व्रतियों, आराधकों एवं जिज्ञासुओं के लिए अत्यंत उपयोगी है। ग्रन्थ में अत्यंत परिश्रम किया गया है। मैं विद्वान लेखक द्वय के इस कार्य की भूरिशः श्लाघा करता हूँ। आशा है, भविष्य में भी उनकी लेखनी से ऐसे ही समाजोपयोगी ग्रन्थ प्रासूत होंगे।

मत्री अ.भा.दि.जैन विद्वत् परिषद् —**डॉ. जयकुमार जैन**

अभिनन्दनीय संकलन

प्रतिष्ठाचार्य शिरोमणि श्रद्धेय पं गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' एव ब्र जयकुमार 'निशात' द्वारा संयोजित "व्रत वैभव" ग्रन्थरत्न का पर्यालोचन कर अतीव प्रसन्नता हुई। इसमें अब तक उपलब्ध तथा अनेक दुर्लभ व्रत सांगोपांग विवेचन एव विधि विधान सहित पहली बार प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें जहाँ अनेक महत्त्वपूर्ण विधान विलुप्त होने से बच जायेंगे वहीं उनके अनुष्ठान की परपरा में लोकप्रिय होगीं। अनेकानेक श्रावक श्राविकायें इनसे लाभान्वित होंगे। इस ग्रन्थ को सागोपांग तैयार करने में कितनी श्रम साधना हुई होगी, यह इसे देखकर ही समझा जा सकता है।

इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करने हेतु मैं दोनों विद्वानों का अभिनदन करता हूँ। आशा है कि इसका सर्वत्र स्वागत होगा।

अध्यक्ष अ भा दि.जैन विद्वत् परिषद् —**डॉ० फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'**

संपूर्ण कृति

आज मुझे श्री ब्र. जय 'निशांत' द्वारा सकलित/सयोजित "व्रत वैभव" ग्रन्थ की पाण्डुलिपि देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह ग्रन्थ एक परम आवश्यकता की पूर्ति करने जा रहा है।

आज जैन समाज में चद व्रतों के विषय से ही लोग परिचित हैं और उसकी पूर्ण विधि से भी अनभिज्ञ हैं। उसी कमी को पूर्ण

करने हेतु यह "व्रत वैभव" ग्रन्थ जिसमें 475 व्रतों का विवरण व्रत का प्रारभ, विधि, उद्यापन, आदि प्रमुख कर एक महान कार्य किया है।

इन व्रतों का हम मात्र अंधानुकरण न करें अपितु उसकी उपयोगिता, वैज्ञानिकता को समझें, इस हेतु समस्त व्रतों की वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता को ग्रन्थ में शिलालेखों, एव पाण्डुलिपियों के आधार पर प्रस्तुत किया है यह इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता है।

व्रत जीवन को पवित्र, सयमी बनाते हैं। साधना पथ में व्रत सर्वाधिक प्रभावपूर्ण तप की ओर ले जाते हैं। वास्तव में इंद्रियों पर लगाम इन्हीं व्रतों से लगाई जा सकती है। इन व्रतों के पालन से देह शुद्धि, यम शुद्धि होने से आत्मा कषायों से मुक्त होती है। साधक मुक्ति पथ की ओर अग्रसर होता है। बस आवश्यकता है कि साधक या व्रती व्रत को पूर्णरूपेण समझ कर प्रसन्नता एव निष्ठा के साथ उनका पालन करे।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक परम उपयोगी सिद्ध होगी।

अध्यक्ष, भ.ऋषभदेव जैन विद्या परासघ **-डॉ० शेखरचन्द्र जैन**

एक अनूठी पहल........।

भारतीय सस्कृति में व्रतों का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। व्रत हमें आंतरिक शुचिता की ओर अग्रसर करते हैं। इनके द्वारा हम अपने आचरण के सोपानों में उत्तरोत्तर विकास करते हुए आत्मवास की ओर उन्मुख होते हैं। ब्र. जय निशात जी ने अपने तीन वर्षों के अथक प्रयास और परिश्रम के द्वारा जो व्रतों के सम्बन्ध में 'व्रत वैभव' ग्रथ तैयार किया है वह जैन समाज के लिए अन्यतम् उपहार है। उनके इस नैष्ठिक प्रयास में ख्यातिलब्ध विद्वान प गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' का निर्देशन, आचार्यों, उपाध्यायों, मुनियों

और आर्यिकाओं का आशीष, लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के सारगर्भित लेख इस बात की ओर इंगित करते हैं कि ग्रथ अत्यत उपयोगी और लाभकारी होगा। एक ही ग्रंथ में व्रतों की विधि, उद्यापन, मत्र, जाप आदि का समावेश निश्चित रूप से व्रतो का पालन करने वालों को मगलकारी और शांतिदायी होगा।

मैं ब्र. जय निशात जी को उनकी इस मौलिक पहल के लिए साधुवाद देता हूँ।

प्रोफेसर/अध्यक्ष, हिंदी विभाग —डॉ के. एल. जैन
सलाहकार सदस्य-रक्षामत्रालय, भारत सरकार

संग्रहणीय ग्रन्थ

वयोवृद्ध विद्वान प गुलाबचन्द्र 'पुष्प' एव युवा प्रतिष्ठाचार्य ब्र० जय 'निशात' जी ने अत्यत श्रम पूर्वक "व्रत वैभव" ग्रन्थ का सृजन किया है। 4 खण्डों में प्रकाश्य इस कृति में जैन परम्परा में उपलब्ध समस्त व्रतों, उनकी तिथियों, व्रतों का महत्व, उनकी विधियो, उद्यापन विधि, आदि का विस्तृत विवरण दिया है। व्रतो के वैज्ञानिक महत्व आदि पर सामयिक आलेख प्रस्तावना में सम्मिलित कर दिये जाने से पुस्तक का महत्व बढा है।

लेखक ने विभिन्न स्रोतों से व्रतों के विवरण सकलित किये हैं। इनका सकलन अत्यत श्रम एव व्यय साध्य कार्य है। इस कार्य को सक्षमता के साथ संपादित करने हेतु लेखक द्वय बधाई के पात्र हैं। ग्रन्थ पठनीय एव सग्रहणीय है।

कुन्द कुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर —डॉ० अनुपम जैन

अभिषेक और पूजा

-मुनि क्षमासागर

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्वर्ट आइंस्टीन के अनुसार "विज्ञान धर्म के बिना पगु है और धर्म विज्ञान के बिना अधा है।" सौभाग्य से जैन धर्म के अनेक सिद्धात भी विज्ञान की कसौटी पर कसे गये हैं और सदैव खरे उतरे हैं।

आज का युवा जो विज्ञान एवं विलासिता के भौतिक वातावरण में बड़ा हुआ है, अन्धानुकरण न करके यथार्थ को जानने-मानने के लिए उत्सुक है। हर बात में वह प्रश्न एवं तर्क करता है। यहाँ युवा से मेरा अभिप्राय उस वर्ग से है जो स्वय को नई पीढी कहता है। इस समूह ने समय-समय पर कई सार्थक प्रश्न उठाए हैं, जैसे पूजा क्यों? अभिषेक क्यों? पूजा मदिर में ही क्यों? घर में क्यों नहीं? मदिरों के इतने विशाल होने पर भी मूल गभारे गर्भगृह इतने छोटे क्यों? मूल गभारे में अधेरा क्यों बनाये रखा जाता है?

इन प्रश्नों का वैज्ञानिक ढग से उत्तर देने का प्रयास किया है श्री पराशक्ति महिला महाविद्यालय, कूरटालम, तमिलनाडु की शोध छात्राओं ने। इन दिनों मद्रास में आयोजित एक प्रदर्शनी में वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है धर्म में भी विज्ञान उतना ही सक्रिय है जितना किसी और क्षेत्र में। इन छात्राओं ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि मदिर की सारी क्रियाओं के पीछे वैज्ञानिक तथ्य हैं। हर क्रिया का तन, मन और वचन पर स्पष्ट और सीधा असर होता है। अपनी खोज से उन्होंने यह तय किया है कि हमारे मंदिर शिक्षा, विज्ञान, कला, स्थापत्य एवं आकार-अभियांत्रिकी के केन्द्र हैं, परम शान्ति एवं चरम आनन्द के अचूक स्रोत हैं।

आगम में गर्भगृह के निर्माण एवं आकार के विविध और अनेक परिणाम तथा शैलियाँ बतायी हैं। गर्भगृह में विराजित जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा एवं गर्भगृह के आकार एवं परिमाण में गहरा संबध है। मूल गभारे गर्भगृह एवं मूल प्रतिमा के आकार अनुपात के विशेष सबध से मूल गंभारे की हवा का एक-एक अणु अधिकतम घूर्ण या आवर्तिता से कपित होता है। जैसे ही गभारे के बाहर मन्त्रोच्चार किया जाता है, गंभारे के वायुकण (एयर मोलीक्यूल) अधिकतम आवर्तिता (मेक्जीमम् एम्प्लीट्यूड) से कंपित हो उठते हैं, जिससे इटेंस साउंड (तीव्र नाद) पैदा होता है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए मूल गभारे के बाहर रबर के एक टुकड़े पर चोट खाये कापते ट्यूनिग फोर्क को रखने पर स्वतः ही गभारे से ॐ शब्द का सुमधुर नाद गहनता से उत्पन्न होता है।

यह सिद्ध करने के लिए कि मूल गभारे में ऋण आयनों की अधिकता होती है, आसवन विधि (कडेन्सर मेथड) प्रयोग में लाई जाती है। इस विधि के द्वारा शोध-छात्राओं नें यह सिद्ध किया कि मूल गभारा ऊर्जा का अनवरत स्रोत होता है। इन शोध छात्राओं ने एक मूर्ति के अभिषेक से पहले एव अभिषेक के बाद विद्युत प्रतिरोधकता (रेजिस्टेंस) एव विद्युत चालक क्षमता (कडेसिटी) मापी। उन्हें लगा कि अभिषेक के पहले प्रतिरोध अधिक होता है और अभिषेक के बाद प्रतिरोध कम हो जाता है एव सम्पूर्ण गभारा ऊर्जा से भर जाता है।

अभिषेक पूजा या मन्त्रोच्चार से ऋण आयन (निगेटिव आयन) में वृद्धि होती है। 'निगेटिव आयन' का आवेश प्राणदायक वायु ऑक्सीजन को हीमोग्लोबिन के मिलाने में सहायक होता है। हीमोग्लोबिन मानव रुधिर का वह तत्त्व है जिसमें ऑक्सीजन घुल

कर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचती है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि जहाँ 'ऋण आयन' नहीं होते है वहाँ मृत्यु तक हो सकती है। ऋण आयनों वाले ये स्थान स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। ऋण आयनों की अधिकता समुद्री किनारों, झरनों के पास या पहाड़ी स्थानों पर पायी जाती है। हमारे मंदिर इसीलिए ऐसे रमणीय और सार्थक स्थानों पर स्थित हैं। आज के वातावरण में जबकि हर जगह विद्युत प्रदूषण (इलेक्ट्रिक पोल्यूशन) ज्यादा है इन ऋण आयनों की कमी हरदम महसूस की जाती है। ये ही मूल्यवान ऋण आयन मूल गभारे में विशेष प्रकार के पदार्थों द्वारा मूर्ति का अभिषेक करने पर उत्पन्न होते हैं। चन्दन आदि वातावरण में नमी बनाए रखने में सहायता करते है।

जैसे ही मूल गभारे के बाहर मन्त्रोच्चार किया जाता है, मूल गभारे में उपस्थित हवा मे अधिकतम ऊर्जा के साथ कम्पन शुरू हो जाता है। मन्त्रोच्चार के पश्चात् आरती, चॅवर इत्यादि का प्रयोग होता है। आरती चॅवर इत्यादि से गर्भगृह की हवा, जो ऊर्जा से आवेशित होती है, प्रार्थना करने वालों की तरफ आती है, जिससे श्वास लेने से ऑक्सीजन को हीमोग्लोबिन में प्रविष्ट होने में मदद मिलती है। इस प्रकार इन शोध छात्राओं ने निष्कर्ष निकाले हैं कि-

1 गर्भगृह आयतन-अनुनादक (वॉल्यूम रीजेनेरेटर) है। अत. ॐ नाद की उपत्ति मे सहायक है।
2 मूर्ति ऊर्जा भडार (एनर्जी रिजर्वायर) का कार्य करती है।
3 गर्भगृह की हवा, ऊर्जा के स्थानातरण (ट्रान्सफर ऑफ एनर्जी) में माध्यम का कार्य करती है।

यही कारण है कि मदिर में पूजा, अर्चना, भक्ति इत्यादि महत्वपूर्ण कार्य माने गए हैं क्योंकि मंदिर में उत्पन्न ऊर्जा मनुष्य

को सुखशाति एव आत्मोन्नति की ओर बढाती है। विशेष प्रकार से बनाये गये गर्भगृह मे पूजा एवं अर्चना से आध्यात्मिक शक्ति की उत्प्रेरणा होती है। इन्हीं कारणों से गभारे में खिडकी नहीं रखी जाती ताकि ऊर्जा सिर्फ मूल गभारे के मुख्य दरवाजे से प्रार्थी पर सीधा प्रहार कर सके एव गर्भगृह में बिजली के बल्ब इत्यादि द्वारा रोशनी नहीं की जाती, क्योंकि उससे "ऋण आयन" समाप्त हो जाते हैं। इसी कारण मदिर में एव मूल गभारे में सिर्फ घी के दीपकों का प्रकाश ही किया जाता है।

इस तरह यह सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजो द्वारा निरूपित/निर्धारित विधि-विधान बहुत गहरा अर्थ रखते है। हमारी सस्कृति न केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तो की जन्मदात्री है, बल्कि आत्मोन्नति की अपूर्व सीढी भी है। रूसी वैज्ञानिक कामेनिएव एव अमरीकी वैज्ञानिक डॉ रूडाल्फ किर ने बहुत से प्रयोग करके यह सिद्ध किया है मत्र मे अपूर्व शक्ति है। एक रूसी वैज्ञानिक सेम्योनोव-डी-किरलियान ने ऐसी हाई फ्रिक्वेन्सी फोटोग्राफी विकसित की है जिससे यह सिद्ध होता है कि मदिर की माला और घर की माला में अत्यधिक फर्क होता है। "किरलियान फोटोग्राफी" जो इन दिनों शोध कार्य में सर्वत्र प्रयुक्त है, "किरलियान इफेक्ट" बताने में सहायक सिद्ध हो रही है। यदि किसी के हाथ का चित्र किरलियान फोटोग्राफी से लिया जाये तो न सिर्फ हाथ का फोटो ही आयेगा, साथ ही साथ हाथ के आस-पास जो किरणें हैं उनका भी चित्र आयेगा। किरलियान का कहना है कि बीमारी के आने के 6 महीने पूर्व ही बता दिया जा सकता है कि आदमी बीमार होने वाला है। इस प्रकार मन्त्र, पूजा, आराधना हृदय परिवर्तन की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है।

भारतीय संस्कृति आज के विश्व में शाति प्रदान करने वाली संस्कृति है और इसीलिए महर्षि अरविन्द को कहना पड़ा कि "भारत भूमि केवल जमीन का टुकड़ा नहीं है बल्कि वह एक अपूर्व आध्यात्मिक शक्ति है।

मंदिर, पूजा, मन्त्रोच्चार सभी आध्यात्मिक शान्ति एवं आत्मोत्थान के अपूर्व स्रोत हैं। अन्धानुकरण न कर यदि हम इन साधनों के गूढ रहस्यों को समझने की कोशिश करें तो शायद प्रभु परमेश्वर के इस विराट प्रेम-भरे जगत् से बहुत कुछ पाया जा सकता है एव जीवन को अलौकिक बनाया जा सकता है।

प्रस्तुति-बी टी. बजावत, तीर्थंकर से साभार

जिन पूजा

-मुनि कलासागर

अभिषेक और जिनपूजा जिनत्व के अत्यत समीप आने का उपक्रम है। जिनालय मानो एक आध्यात्मिक प्रयोगशाला है। जहाँ जिनबिब के सम्मुख जाकर हम अभिषेक और पूजन के द्वारा स्वय को निर्मल बनाने का प्रयोग करते हैं। अभिषेक को पूजा का एक अग माना गया है। अभिषेक पूर्वक ही पूजा सपन्न होती है। प्रासुक जल की धारा जिनबिंब के ऊपर इस तरह प्रवाहित करना जिससे कि जिनबिब पूरी तरह अभिसिचित हो सके-यह अभिषेक कहलाता है।

जैनाचार्यों ने चार तरह के अभिषेक का उल्लेख किया है-जन्माभिषेक, राज्याभिषेक, दीक्षाभिषेक, चतुर्थाभिषेक। तीर्थंकर बालक को सुमेरुपर्वत पर स्थित पाण्डुक शिला पर ले जाकर जो क्षीरसागर के जल से अभिसिचित किया जाता है वह जन्माभिषेक कहलाता है। तीर्थंकर कुमार का राजतिलक के अवसर पर जो

अभिषेक किया जाता है वह राज्याभिषेक कहलाता है। तीर्थंकर का जिन दीक्षा लेने से पूर्व जो अभिषेक किया जाता है वह दीक्षाभिषेक कहलाता है। विधि-विधान पूर्वक प्रतिष्ठित किए गए जिनबिंब पर जो अभिषेक किया जाता है वह चतुर्थाभिषेक या प्रतिमाभिषेक कहलाता है। अतः नित्य पूजन से पूर्व जो जिनबिंब का अभिषेक होता है वह चतुर्थाभिषेक या प्रतिमाभिषेक है।

अभिषेक की परपरा अनादि-निधन है। चतुर्निकाय के देव आष्टाह्निक पर्व में नन्दीश्वर द्वीप में जाकर चारों दिशाओं के अकृत्रिम चैत्यालयों में क्रमशः दो-दो प्रहर करके चौबीसों घटे भगवान का अभिषेक करते हैं। यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि सौधर्म आदि इन्द्र और सभी देवगण विदेह क्षेत्र में सदा विद्यमान रहने वाले तीर्थंकरों के कल्याणक एव साक्षात् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होने पर भी अकृत्रिम चैत्यालयों मे भक्तिभाव से अभिषेक करने जाते हैं और स्वय को धन्य मानते हैं।

असल में, अभिषेक के दौरान जिनबिंब के अत्यत निकट आने और भाव विभोर होकर भगवान का स्पर्श करने का सुखद अवसर प्राप्त होता है जिससे भावों में बडी निर्मलता आती है। मन गद्गद हो जाता है और जीवन की सार्थकता मालूम पडती है। अभिषेक का उद्देश्य बताते हुऐ लिखा गया है कि हे भगवन्! आप सहज ही परम पवित्र हैं। आपकी पवित्रता के लिए मैंने अभिषेक नहीं किया। मैने तो स्वयं को रागद्वेष रूप मलिनता से मुक्त करने के लिए आपके पवित्र बिंब पर जलधारा प्रवाहित की है और क्षण भर को समस्त पापाचरण छोड़ करके मानों आपका साक्षात् स्पर्श करने का पुण्य अर्जित किया है। इस तरह अभिषेक आत्म-निर्मलता के लिए किया गया एक अत्यत महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। अभिषेक के दौरान उच्चरित मत्रों से भावित और जिनबिंब के स्पर्श से पवित्र हुआ सुगंधित जल गंधोदक कहलाता है। जिसे अपने संचित

पापों का क्षय करने की उत्तम भावना से नेत्र और ललाट पर धारण किया जाता है।

जिनपूजा, गहन आत्मीयता से भरकर अपने श्रद्धेय के प्रति आदर-सम्मान प्रकट करने का एक सुखद अवसर है। वह काम, क्रोध, लोभ आदि विकारी भावों से चेतना को मुक्त करने की एक प्रक्रिया है। वह त्याग और सयम के सूप द्वारा व्यर्थ पदार्थों को फटकार कर अलग करने और सारभूत तत्व को ग्रहण करने का कीमिया है। पूजा हमारी आतरिक पवित्रता को उद्घाटित करने का अनुष्ठान है।

पूजा की प्रक्रिया दो तरह से सम्पन्न होती है। द्रव्य और भाव रूप से। जल, चदन आदि पवित्र अष्ट द्रव्य द्वारा जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करना द्रव्यपूजा कहलाती है और मन की अशुद्ध प्रवृत्ति को रोककर जिनेन्द्र भगवान का गुणगान करना भावपूजा है। पूजा करते समय ही नही बल्कि पूजा के उपरात भी दिनभर मन, वाणी और कर्म में पवित्रता बनी रहे यही पूजा का उद्देश्य है। पूजा को वैयावृत्य या सेवा भी कहा गया है। भगवान के समान गुणों को प्राप्त करने की भावना रखना ही भगवान की सच्ची सेवा है। अत पूजा के दौरान भगवान के समान बनने की भावना रखनी चाहिए। श्रावक स्वय भोजन करने से पूर्व पूजा के योग्य सामग्री तैयार करके जिनबिब के सम्मुख अर्पित करता है, इसलिए पूजा को श्रावक के 'अतिथि सविभाग' नामक व्रत के अतर्गत रखा गया है।

पूजा करते समय हम पाँच-पापों से मुक्त होकर पंचपरमेष्ठी के गुणगान में लीन हो जाते हैं। इसलिए पूजा को श्रावक के 'सामायिक' नामक शिक्षा व्रत में भी शामिल किया गया है। पूजा करते समय हम एकाग्र होकर पंचपरमेष्ठी वाचक विभिन्न पदों

(मत्रों) के माध्यम से भगवान जिनेन्द्र के स्वरूप का स्मरण करते है इसलिए पूजा एक तरह के स्वरूप का चिंतवन और अपना आत्मावलोकन दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं। अतः पूजा को स्वाध्याय भी कहा गया है। इस तरह पूजा आत्मविकास में सहयोगी अनेक गुणों का समन्वित रूप है। अधिक समय तक एकाग्र होकर मत्र का जाप करना कठिन है लेकिन भाव-भक्ति से तन्मय होकर जिनबिम्ब के सम्मुख दीर्घ-काल तक पूजा करना आसान है इसलिए सद्गृहस्थ को अशुभ कार्यों से बचाकर अधिक समय तक धर्मध्यान मे लगाए रखने में जिनपूजा अत्यत उपकारी है।

पूजा के दौरान जिनबिब के सम्मुख अष्ट-द्रव्य समर्पित किए जाते हैं। सर्वप्रथम भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभदेव की पूजा अष्ट-द्रव्य सजगतापूर्वक क्रम-क्रम से एक-एक द्रव्य समर्पित करने से मन, वाणी और शरीर तीनों को शुभ कार्य में व्यस्त रखना आसान हो जाता है। अत अष्ट द्रव्य का महत्त्व स्वत सिद्ध है। अष्ट कर्म से मुक्त होने की पवित्र भावना से अष्ट द्रव्य अर्पित किए जाते है।

सर्वप्रथम हम भगवान के श्री चरणों में जल अर्पित करते है। जल को ज्ञान का प्रतीक माना गया है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में जीव ससार मे जन्म-मरण की पीडा पाता है। अत· जल अर्पित करना सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति और जन्म-मरण की पीडा से मुक्त होने की भावना का सूचक है। जल से एक व्यवहारिक सदेश यह भी मिलता है कि हम सभी जीवों के साथ मिलजुल कर रहना सीखें। जल की तरह तरल, निर्मल और गतिशील बनें।

जल के उपरात चन्दन अर्पित करने का अवसर आता है। चदन शीतलता का प्रतीक है। शीतलनाथ भगवान की स्तुति करते हुए आचार्य समतभद्र स्वामी कहते हैं कि हे भगवन्! ससार में चदन, चाँदनी, गगा का शीतल जल, मणिमय हार आदि शीतलता

प्रदान करने वाले माने गये हैं पर वास्तव में आपके निर्दोष पाप रहित वचन ही शीतल हैं जो जीव को संसार के सताप से सदा के लिए मुक्त करने वाले हैं। अत. चंदन अर्पित करने का पवित्र उद्‌देश्य जिससे हमारी श्रद्धा की आंख खुले, हमें आत्मदर्शन (स्वसंवेदन) हो और हम दर्शनावरणीय-कर्म को नष्ट करके ससार परिभ्रमण के सताप को शान्त कर सकें। चंदन चढ़ाने से एक व्यवहारिक सदेश यह भी मिलता है कि हम शोक-सतप्त सभी जीवों को अपने तन-मन और वाणी के द्वारा शीतलता पहुँचाने का प्रयत्न करें। सभी के प्रति हार्दिक और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार बनाए रखें।

अब क्रम आता है अक्षत चढाने का। अक्षत को अखडता का प्रतीक माना गया है। हम अक्षत अर्पित करके अखड या अव्याबाध सुख पाने की भावना व्यक्त करते हैं। यह अव्याबाध-सुख हमें वेदनीय कर्म के अभाव मे प्राप्त हो सकता है। इसलिए अक्षत अर्पित करने का मगल उद्‌देश्य वेदनीय कर्म जनित सासारिक सुख-दु ख में समता रखते हुए जीवन जीना भी है। सामान्यत· धुले हुए स्वच्छ और अखड चावलो में अक्षत की कल्पना करके हम उन्हें भगवान के सम्मुख चढाते हैं। अतः चावल की स्वच्छता या उज्ज्वलता भी हमे एक व्यवहारिक सदेश देती है कि हम अपने जीवन को साफ-सुथरा और उज्ज्वल बनाएँ। सुख-दुःख के अवसर आने पर मन को अहकार और सक्लेश से मलिन न होने दें।

अक्षत के उपरात पुष्प अर्पित किए जाते हैं। पुष्प को काम-वासना का प्रतीक माना गया है। काम-वासना मोहजनित है। अतः पुष्प समर्पित करके हम मोहजनित काम-वासना को शात करने और अपने शील या स्वभाव को पाने की भावना व्यक्त करते हैं। पुष्प अर्पित करते समय एक व्यावहारिक सदेश यह भी ले सकते हैं कि हमारा जीवन फूलों की तरह कोमल, सुंदर और

सुगंधित बने। फूलों का जीवन अत्यंत अल्प होता है फिर उन्हें मुरझाना और टूट कर गिर जाना होता है। इसी तरह हमारा जीवन भी थोड़ा है यदि इसका सदुपयोग नहीं कर पायेंगे तो एक दिन यह समाप्त हो जायेगा। जीवन की सार्थकता यही है कि हम अपने जीवन को आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के कार्य में लगाएँ।

अब नैवेद्य अर्पित करने का क्रम आता है। निर्दोष भोज्य-सामग्री को नैवेद्य कहते हैं। इसे चरु भी कहते है। भूख-प्यास की वेदना को शांत करने और आयु-प्राण को सबल देने मे भोज्य सामग्री मदद देती है। जीव जब तक किसी भी भव की आयु धारण करता रहेगा तब तक भूख प्यास आदि की वेदना से मुक्त नहीं हो सकेगा। अत हम नैवेद्य अर्पित करते समय आयु-कर्म से मुक्त होने और भूख (क्षुधा) की वेदना को मिटाने की भावना व्यक्त करते हैं। नैवेद्य अर्पित करते समय एक व्यावहारिक सदेश यह भी लेना चाहिए कि यथाशक्ति आहार-दान देकर आहार-सामग्री के प्रति अपनी आशक्ति घटाने, सभी जीवो का उपकार करने और आत्मतृप्ति पाने का अवगाहनत्व गुण प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार आहार-दान के निमित्त से प्राणिमात्र को अपने हृदय में स्थान देते हुये सभी के हृदय मे अपने लिए स्थान प्राप्त किया जा सकता है।

अव दीप अर्पित करने का अवसर आता है। दीपक की ज्योति अधकार को नष्ट करने वाली और सभी पदार्थों को प्रकाशित करने वाली है। इस ज्योति से भी सूक्ष्म केवलज्ञान रूपी परम ज्योति है जो सभी आत्माओं में व्याप्त अज्ञान के सघन अधकार को हटाने वाली है शरीरातीत शुद्ध आत्मस्वरूप का दर्शन कराने वाली है। अतः दीप समर्पित करते हुए हम नामकर्म के अभाव में प्रकट होने वाली शरीरातीत विशुद्ध परमात्म ज्योति को प्राप्त करने की मंगल-भावना व्यक्त करें। दीपक से एक व्यावहारिक

सदेश यह भी लिया जा सकता है कि हम जहाँ भी रहें वहाँ अपने आसपास के परिवेश को सदाचार और सद्ज्ञान से आलोकित करते रहें। हमारे शरीर रूपी दीपक में सभी जीवों के प्रति स्नेह (तेल) सदा बना रहे और श्रद्धा-भक्ति व विवेक की बाती निरतर जलती रहे।

अब धूप अर्पित करने का क्रम आता है। धूप की यह विशेषता है कि वह स्वयं जलती जाती है लेकिन आसपास के समूचे वातावरण में फैलकर उसे सुगंधित बना देती है। धूप की खुशबू गरीब-अमीर, छोटे-बडे आदि का भेदभाव नहीं करती और समान भाव से सभी को लाभान्वित करती है। अत· धूप अर्पित करते हुए हम गोत्र कर्म के अभाव में प्रकट होने वाले आत्मा के स्वाभाविक अगुरुलघुत्व गुण को प्राप्त करने की भावना व्यक्त करें। धूप से एक व्यवहारिक सदेश यह भी लेने का प्रयत्न करें कि अपने जीवन मे किसी के प्रति भेदभाव नहीं रखेंगे और सभी से मैत्रीपूर्ण व्यवहार करेंगे।

अब फल अर्पित करने का क्रम आता है। हम ससार मे जो भी भला-बुरा कार्य करते हैं तो उसका भला-बुरा फल भी हम पाते हैं। फल की प्राप्ति में हमारे सचित कर्म या सस्कार बाधक भी बनते है। ऐसी स्थिति में हम फल समर्पित करते हुए यह भावना रखें कि हमारे बाधक कर्मो (अतराय कर्म) का अभाव हो ताकि हम अपनी अनत सामर्थ्य या अनत बल को प्रकट करके मनुष्य जीवन का श्रेष्ठतम फल मोक्षपद पा सके। फल चढाते समय यह व्यावहारिक सदेश भी मिलता है कि हम जो भी करें अच्छा करें और अच्छी भावना से करें। शुभ-अशुभ कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त होने वाले सुख-दु·ख, लाभ-हानि, जय-पराजय में साम्य-भाव रखें।

अत मे अर्घ समर्पित करने का अवसर आता है। अर्घ

वास्तव में अष्ट-द्रव्य से प्रथक् नहीं है। वह अष्ट द्रव्यों का समन्वित रूप है। अर्घ्य के मायने है मूल्यवान। अष्ट द्रव्यों को जब हम शुभ-भावों के रस में मिलाकर अर्घ्य बनाते हैं तब वह सचमुच मूल्यवान हो जाता है। अर्घ्य समर्पित करते हुए हम यह भावना व्यक्त करते हैं कि हमें आत्मा की परम विशुद्ध और अमूल्य परमात्म-अवस्था प्राप्त हो। अर्घ्य चढ़ाते समय एक व्यावहारिक सदेश यह भी ले सकते हैं कि मनुष्य जीवन सबसे मूल्यवान है हमें इसका सदुपयोग करना चाहिए। स्वय आत्म-निर्भर रहकर सबकी मदद के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

इस तरह पूजा के प्रत्येक द्रव्य से मिलने वाला सदेश हमारे जीवन को श्रेष्ठ और परिपूर्ण बनाने में सक्षम है। पूजा की समाप्ति पर अपनी कमियों या गल्तियों के लिए अत्यत विनम्रभाव से जो क्षमायाचना पूर्वक भगवान के प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति प्रगट की जाती है उसे विसर्जन, क्षमायाचना या समापन कहते है। समापन की क्रिया हमें अत्यत सहज, सरल और शातभाव से करना चाहिए। समापन की प्रक्रिया से हमें यह सदेश मिलता है कि हम अपने सभी कार्य विनयभाव से करे। कर्त्तव्यपने व अहकार के भाव से बचें और सदा अपनी कमियों व भूलों के प्रति सजग रहकर उन्हें सुधारनें का प्रयत्न करे।

वर्तमान समय में पूजा की प्रक्रिया, पूजा के दौरान समर्पित की जाने वाली सचित्त-अचित्त पूजन सामग्री, अभिषेक या प्रक्षाल की क्रिया, आह्वान, स्थापन, विसर्जन या समापन आदि क्रियाओं में विविधता देखने में आती है। इस विविधता को देखकर हम विचलित न हों। अहिसा और वीतरागता को प्रमुखता देते हुए कषायों की मदता, कर्मों की निर्जरा और रत्नत्रय की प्राप्ति की भावना से प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अभिषेक और पूजा करने का सम्यक्-पुरुषार्थ करें और अपना जीवन सफल बनाएँ।

व्रत कैसे एवं कौन करे ?

मुनि पुगव 108 सुधासागर जी महाराज से साक्षात्कार

सूरत (गुजरात) 17 अक्टूबर 2004

जिज्ञासु- ब्र. जय कुमार 'निशात' टीकमगढ

निशात - महाराज श्री श्रावक के व्रतों का उल्लेख पुराणग्रन्थों, शिलालेखों, हस्तलिखित पाडुलिपियों में उपलब्ध होता है। कृपया इस संदर्भ में व्रतों की ऐतिहासिकता क्या है ? बताने का कष्ट करें।

मुनिश्री- तीर्थंकर की दिव्यध्वनि में दो प्रकार के धर्म अर्थात् मुनिधर्म और श्रावक धर्म का उपदेश दिया गया है। इन धर्मों के कथन में व्रतों का प्रमुखता से वर्णन किया गया है। व्रताचरण की हीनाधिकता के अनुसार ही व्रतों के दो भेद किये गये हैं। इसी परम्परानुसार श्रावक क्रमश व्रतों का पालन कर महाव्रत धारण करके सिद्धत्व को प्राप्त करते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के साथ अन्य आचार्यों ने भी इसका विवेचन वृहद् रूप से किया है।

निशात - व्रत क्यों करना चाहिए एव इनकी सार्थकता क्या है ?

मुनिश्री- रागद्वेष की निवृत्ति के लिए हिंसादिक पाँच पापों से निवृत्ति और अहिसादि व्रतों में प्रवृत्ति ही व्रतों का मुख्य लक्ष्य है। इससे मानव साधना के पवित्र सोपानों पर अग्रसर होता हुआ मानव पर्याय के लक्ष्य को प्राप्त करता है, यही व्रतों की सार्थकता है।

निशात - सामान्य रूप से कुछ श्रावक सकल्प पूर्वक व्रतों का पालन नही करते किंतु एकाशन एव उपवास करते हैं, इनको इससे कितना लाभ होता है?

मुनिश्री- त्याग से रागादि की निवृत्ति होती है। भले ही कोई श्रावक सामान्य रूप से व्रत करे या सकल्प पूर्वक। यदि वह सामान्य रूप से एकाशन या उपवास करता है तो भी रागादि निवृत्ति आशिक रूप से अवश्य होती है। इसी क्रम को वह लगातार करते हुए सकल्प रूप व्रतों को भी ग्रहण कर लेता है।

निशात - इससे तो महाराज यदि व्यसनी व्यक्ति भी व्रत करता है तो क्या वह सार्थक है?

मुनिश्री- भैया आगम मे तो ऐसा उल्लेख है कि सामान्य रूप से श्रावक को व्यसन मुक्त होना चाहिए, किंतु यदि कोई तीव्र कषाय सहित प्राणी है और पूर्णत व्यसन मुक्त नहीं है तो उसे शक्ति अनुसार यथायोग्य व्रतो मे प्रवृत्ति करना चाहिए। परन्तु उसे व्रती नहीं कहेगे। व्रत नैमित्तिक होते है इनसे परिणामों मे विशेष विशुद्धि हो यह जरूरी नहीं है पर इनके करने से पुण्यास्रव अवश्य होता है, इसमे कोई सदेह नहीं।

निशात - क्या व्रतों से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं?

मुनिश्री- मनोकामना को पूर्ण करने के लिए व्रत नहीं करना चाहिए लेकिन यह निश्चित समझना चाहिए कि व्रत करने वाले को पुण्य बध होता है और पुण्य के फलस्वरूप मनोकामनाएँ स्वत. ही पूर्ण होती रहती हैं। इसको इस प्रकार समझना चाहिए जिस प्रकार

धानार्थि-धान की खेती करने पर धान तो उपलब्ध होता ही है इसके साथ-साथ भूसे की प्राप्ति भी होती है अर्थात् व्रत आत्मकल्याण की भावना के साथ करना चाहिए भौतिक सुख तो स्वमेव ही प्राप्त होते रहते हैं।

निशात - महाराज वर्तमान में बहुत से नवीन व्रतों का प्रचलन हो रहा है यथा चौंसठ ऋद्धि, भक्तामर, कल्याणमंदिर आदि इस विषय में आपका क्या विचार है?

मुनिश्री- जैन ग्रन्थों में बहुत से व्रतों का उल्लेख परपरा से प्राप्त होता है। इसलिए सर्वप्रथम तो आचार्यों द्वारा प्रतिपादित व्रतों को ही धारण करना चाहिए जिससे कि प्राचीन परम्परा का लोप न हो तथापि नवीन व्रत भी यदि साधना की दृष्टि कोई करना चाहता है तो उसे विधि पूर्वक सम्पादित किया जा सकता है।

निशात - कुछ लोगों की भावना होते हुये भी अस्वस्थ्यता की प्रतिकूलता के कारण ग्रहण किये हुये व्रत पूर्ण नहीं कर पाते हैं ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिए?

मुनिश्री- यदि व्रत प्रारभ में ही छूट जाता है तो उसे पुन· प्रारभ करना चाहिए और मध्य अथवा अत में एकाध व्रत छूटने पर उसका प्रायश्चित्त ग्रहण कर व्रत की पूर्णता करना चाहिए। व्रतों में अतिचार तो निवारित किए जा सकते हैं कितु अनाचार नहीं अर्थात् परिस्थिति वश छूटे व्रत पूर्ण कर सकते हैं लेकिन प्रमादवश छूटे व्रत पूर्ण नहीं माने जाते हैं।

निशात - सूतक-पातक या अशुद्धि काल में व्रत किया जावे या नहीं?

मुनिश्री- सूतक-पातक एव अशुद्धि काल में पड़ने वाले दिनों में श्रावक को व्रत के दिन दिनचर्या व्रतानुसार ही करना चाहिए किंतु व्रतों की गणना में इस काल के व्रतों की गणना नहीं की जावेगी इसलिए व्रतों के काल में उतने व्रत अतिरिक्त किये जावें।

निशांत - क्या व्रत करने के पश्चात् उद्यापन करना जरूरी है ?

मुनिश्री- व्रत अनुष्ठान तो व्रती व्यक्ति तक ही सीमित रहता है लेकिन उद्यापन क्रिया अन्य लोगों को भी लाभान्वित करती है उससे धर्म की प्रभावना और समाज में धार्मिक वातावरण निर्मित होता है इसीलिए व्रतों के साथ में उद्यापन अनिवार्य रूप से करने का विधान आचार्यों ने किया है। इसलिए व्रती श्रावक को अभिषेक, बृहद शांतिधारा (प्रतिमा पर) एव पूजा विधान पूर्वक उद्यापन अपनी शक्त्यनुसार अवश्य करना चाहिए। व्रत का उद्यापन व्रत का समापन नहीं है बल्कि उद्योतन है जिसका संबल जीवन भर मिलता रहता है जो समाधि में सहयोगी होता है। इस प्रकार व्रत पूर्ण होने के पश्चात् भी शक्त्यनुसार व्रतों को करते रहना चाहिए। शारीरिक क्षीणता होने पर भी व्रत के दिनों में पूजन एव जाप करते रहना चाहिए।

पर्व/व्रत- जिज्ञासा समाधान

मुनि श्री आर्जव सागर जी महाराज
संघस्थ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

प्रश्न- व्रत की परिभाषा क्या है ?

उत्तर- व्रत की परिभाषा बतलाते हुये जैन शास्त्रों में कहा है कि-

संकल्पपूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभ कर्मणः।
निवृत्तिर्वाव्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभ कर्मणि।।

अर्थ- सेवन करने योग्य विषयों में सकल्प पूर्वक नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मों से संकल्पूर्वक विरक्त होना अथवा पात्र दानादिक शुभ कार्यों में संकल्पपूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।

प्रश्न- व्रत धारण की आवश्यकता क्यों है ?

उत्तर- क्योंकि-

व्रतेन यो विना प्राणी, पशुरेव न संशयः।
योग्यायोग्यं जानाति, भेदस्तत्र कुतो भवेत्।।

अर्थ- व्रत रहित प्राणी नि·सदेह पशु के समान है। जिसे उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं है, ऐसे मनुष्य और पशु में क्या भेद है ?

फलमेयस्से मोत्तूण देव-मणुएसु इंदिय सुक्खं।
मच्छा पावइ मोक्खं थुणिज्जमागे सुरिं देहिं।।

अर्थ- व्रतों के पालन करने के फल से यह जीव देव और मनुष्यों में इद्रिय जनित सुख भोगकर, पश्चात् देवेन्द्रों से स्तुति किया जाता हुआ मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।

प्रश्न- व्रत ग्रहण और निष्ठापन किसकी साक्षी पूर्वक करना चाहिए ?

उत्तर- व्रत का ग्रहण और निष्ठापन या उद्यापन निर्ग्रन्थ मुनिवर की साक्षी पूर्वक करना चाहिए तथा सपूर्ण किये गये व्रत में जो अतिचारआदिक दोष लगे हों उनकी शुद्धिकरण हेतु क्षमा भावना पूर्वक प्रायश्चित्त को अगीकार करना चाहिए।

प्रश्न- नैमित्तिक व्रतों के ग्रहण करने की विधि क्या है और ऐसे व्रतों को ग्रहण करते समय क्या भावना करना चाहिए?

उत्तर- व्रत ग्रहण करते समय श्रावकों को सर्व प्रथम जिनालय में जिनेन्द्र भगवान का दर्शन, पूजन कर, निर्ग्रन्थ मुनिवर के सामने या ऐसे गुरु के अभाव में जिनेन्द्र भगवान के सामने कोई उत्तम प्रासुक (अचित्त) श्रीफल, सुपाडी, बादाम आदि फल लेकर अत्यत विशुद्धि के साथ जाकर समर्पित करते हुये अपने व्रत ग्रहण की याचना करना चाहिए और गुरु से अनुमति मिलने के पश्चात् गुरु के मगल आशीर्वाद प्राप्ति की भावना पूर्वक निम्नलिखित प्रतिज्ञा बोलना चाहिए।

''अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व साधु साक्षिकं सम्यक्त्व पूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं मे भवतु मे भवतु मे भवतु'' नमोस्तु-नमोस्तु- नमोस्तु इस प्रकार बोलते हुये गुरु से आशीर्वाद प्राप्त कर नौ बार णमोकार मंत्र का जप करना चाहिए।

व्रत ग्रहणकर्ता को ऐसे उत्तम समय पर यह मगल भावना करना चाहिए कि हे प्रभु! मेरा यह व्रत निश्चित सीमा तक निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हो। इसके बाद बोलना चाहिए कि-

'' दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगई गमणं समाहि मरणं जिण गुण सम्पत्ति होउ मज्झं''।

अर्थात- मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो सुगति गमन हो, समाधि मरण हो और जिनेन्द्र भगवान के उत्तम गुणों की प्राप्ति हो।

प्रश्न- ऊपर कहे गये प्रतिज्ञा वाक्य में "सम्यक्त्व पूर्वकं" का अर्थ क्या है एवं उसे रखने या बोलने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर- ऊपर कहे गये अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय... ..... इत्यादि प्रतिज्ञा वाक्य में सम्यक्त्व पूर्वक का अर्थ सरागी देवी-देवता, कुगुरु आदिक की उपासना छोड़कर, सम्यग्दर्शन के पच्चीस मल दोषों से रहित, वीतराग देव-शास्त्र-गुरु की उपासना श्रद्धा रूप सम्यक्त्व को धारण करते हुये व्रत का सकल्प करना चाहिए। क्योंकि "निःशल्यो व्रती" ऐसा तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में कहा गया है जिसका अर्थ है व्रती को शल्य से रहित होना चाहिए। शल्य के तीन भेद हैं माया शल्य, मिथ्यात्व शल्य, और निदान शल्य। शल्य वह है जो सुई के समान आत्मा को कष्ट पहुँचाती है जिसके साथ व्रती, सुखी, निर्विकल्पी नहीं रह सकता है। अत सम्यक्त्व धारण कर माया, मिथ्यात्व आदि शल्यों का त्याग करना चाहिए। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चरित्र में समीचीनता नहीं आती, चाहे वह ज्ञान ग्यारह अग का क्यो न हो एव चारित्र मुनि सदृश्य भी क्यों न हो अतः ज्ञान और अपने व्रतों की समीचीनता (सम्यक्ता) बनाने के लिए अथवा ज्ञान और चारित्र का मिथ्यापन दूर करने के लिए सम्यक्त्व अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न- व्रत का पालन करते समय व्रती का आचरण कैसा होना चाहिए?

उत्तर- व्रत के साथ व्रती को निम्न लिखित क्रियाओं पर ध्यान देना अति आवश्यक है क्योंकि इनके बिना व्रत में निर्दोषपना नहीं आ सकता।

1. उपवास दिन के पूर्व दिन ही मध्याह्न में या सायंकाल में भोजन के पश्चात् अच्छे ढंग से मुख शुद्धि कर सूर्यास्त के पूर्व ही गुरु/भगवान के चरणों में व्रत ग्रहण कर लेना चाहिए।
2. जो व्रत, उपवास पूर्वक किया जाता है उसमें, धारणा अर्थात् उपवास के पूर्व दिन, उपवास के दिन और पारणा अर्थात् उपवास के दूसरे दिन ऐसे तीन दिन-रात, तथा जो व्रत एकाशन पूर्वक किया जाता है उसमें एकाशन के पूर्व दिन एव एकाशन के दिन ऐसे दो दिन रात अवश्य रूप से (स्वास्थ्य लाभ एव मन उज्ज्वलता की दृष्टि से) ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।
3 उपवास पूर्वक अगर व्रत हो तो धारणा के दिन सायंकाल में उपवास के दिन प्रात काल में, मध्याह्न काल में और सायंकाल में तथा पारणा के दिन प्रात काल में एव इसी तरह अगर व्रत के दिन एकाशन हो तो एकाशन दिन के प्रात. काल में, मध्याह्न काल में, सायकाल में और दूसरे दिन प्रातः काल में आत्मिक विशुद्धि हेतु सामायिक पाठ से सहित पच णमोकार मत्र की शक्त्यनुसार 3 या 5 माला फेरते हुये सामायिक करना चाहिए।
4 उपवास से सहित किये जाने वाले व्रत में निर्जल रहना चाहिए अर्थात् पानी भी नहीं पीना चाहिए और न कुल्ला करना चाहिए।
5 व्रत के दिन श्रावकों को भगवान की पूजा और आहार दान आदि के निमित्त प्रथम कुए, झरने या नदी से लाये गये छने प्रासुक किये गये उत्तम जल से शरीर आदिक को शुद्ध करना चहिए।।

6. आहारादिक के निमित्त नल के पानी का उपयोग न करें, क्योंकि उसमें जीव गालन की क्रिया का पालन नहीं होता अर्थात् योग्य मोटे छन्ने से छाने गये पानी के छन्ने में स्थित जीवानी (जीवों) को पुनः उसी स्थान पर पहुँचाना नहीं होता, जिस कारण अहिंसा रूपी मूल या प्रधान धर्म का पालन नहीं होता। इसके अलावा तालाब का पानी जो एक ही जगह भरा रहता है और सभी लोग जिसमें स्नान, वस्त्र शुद्धि आदि कार्य करते हैं अतः अशुद्धता को प्राप्त अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण स्वरूप वह तालाब का जल जैनियों या विवेकियों को उपयोग करने योग्य नहीं।

7 व्रत ग्रहणकर्ता को पाउडर, क्रीम, नेलपॉलिस, लिपस्टिक, रेशम वस्त्र एव चमड़ा आदि हिंसक वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए।

8. व्रत के दिनों में श्रावकों को शारीरिक सुन्दरता रूप सस्कार की वृद्धि न करते हुये तथा अहिंसा की रक्षा हेतु दाड़ी और सिरादिक के बालों को नहीं कटवाना चाहिए।

9 व्रत के दिन उस व्रत के साथ फूल या फूलमालाओं का त्याग करना चाहिए क्योंकि पुष्पों में त्रसजीवों की बाहुल्यता रहती है।

10. व्रत के दिन उस व्रत की या ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा हेतु भावों की निर्मलता हेतु टी.व्ही. आदि चित्रों को नहीं देखना चाहिए।

11. व्रत भावना में उत्कृष्ट विशुद्धि बढ़ाने हेतु श्रावकों को भारी श्रृंगार एवं भड़कीले वस्त्रों को छोड़ना चाहिए। हो सके तो सफेद या पीले रंग के वस्त्रों का उपयोग कर सकते हैं।

12. व्रत के दिन लौकिक कथा या विकथा कहना, न पढ़ना और न सुनना चाहिए।
13. व्रत के दिन श्रावकों को विधिवत् जिनेन्द्र भगवान का गन्धोदक ग्रहण करके प्रासुक (अचित्त) द्रव्यों से कम से कम तीन पूजन (देव-शास्त्र-गुरु, मूल नायक भगवान और व्रत सबधी) करना चाहिए तथा अत में शान्ति पाठ आदिक बोलना चाहिए।
14 अपने व्रत में, परिणामों की विशुद्धि हेतु व्रत मे निश्चित किये मत्र की जाप करना चाहिए। (अपनी शक्त्यनुसार 1, 2, 5, 11, 21 इत्यादि)
15 व्रत के दिन ज्यादा से ज्यादा समय आरभ, परिग्रह, व्यापार एव श्रृगारादिक से दूर होकर, स्वाध्याय, ध्यान, जप, स्तोत्र पठन आदि उत्तम कार्य करते हुये शात स्थान या जिनालय आदि प्रशस्त स्थान में बिताना चाहिए।
16 एकाशन के दिन एक ही बार मर्यादा सहित शुद्ध खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, और पेय आहारों में से योग्य आहार ग्रहण करे। एक बार के अलावा दूसरी बार सुबह या सायकाल में कोई भी पानी-दूध आदिक पदार्थ ग्रहण न करें, अगर ग्रहण करते हैं तो वह एक भुक्ति नहीं रहती, एकाशन नियम खण्डित हो जाता है। हाँ अगर शक्ति नहीं है तो अपनी योग्यतानुसार ही गुरु के समक्ष व्रत ग्रहण की प्रतिज्ञा करें।
17 बाजार में तैयार किया गया या अजैनो के द्वारा तैयार किया गया आहार, ग्रहण नहीं करना चाहिए। क्योंकि जहाँ पैसों का लोभ एव शुद्धाहार की विधि की अनभिज्ञता है वहाँ मर्यादा सहित व्रती के योग्य आहार की उपलब्धि नहीं हो सकती।

18. उपवास के दिन औषधि आदिक का भी सेवन नहीं करना चाहिए। अगर एकाशन के दिन अचानक कोई व्याधि उत्पन्न हो जाय तो एक भुक्ति के समय ही देशी शुद्ध दवा का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन त्रस जीवों की हिसा से उत्पन्न दवाइयों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

19 कम से कम एकाशन व्रत के दिन तो अवश्य रूप से आहार सेवन के समय मौन व्रत का पालन करना चाहिए।

21. इसी तरह आहार के प्रारभ एव अत के समय पच णमोकार मत्र का जाप करना चाहिए।

22 व्रत के दिन प्रमाद से दूर होने के लिए, ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु और परिणामों की विशुद्धि के लिए लकडी का पाटा या चटाई का उपयोग करना चाहिए। बिस्तर, गद्दी आदिक का त्याग करना चाहिए।

23 लोक में अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, पचमी और ग्यारस ये पच पर्व तिथियाँ मानी गयीं है अत जिन व्रतों के लिए कोई तिथिया निश्चित नहीं है उन व्रतों को ऐसी पच पर्व रूपी उत्तम तिथियों में किया जा सकता है।

24 व्रत निष्ठापन के समय अपनी शक्त्यनुसार तीर्थ क्षेत्र या जैन अतिशय क्षेत्रों की वन्दना (यात्रा) अथवा विधान एव सत् पात्रों को उपकरण दान आदि कार्य भी उत्साह पूर्वक करना चाहिए।

25. व्रत निष्ठापन (सपूर्णता) के समय या उद्यापन (समापन) के शुभ अवसर पर धर्म प्रभावना हेतु मण्डल विधान पूजा एव जिनेन्द्र देव का रथोत्सव या विमानोत्सव भी उत्साह पूर्वक करना चाहिए।

प्रश्न- प्रमाद से दूर होने के लिए एवं व्रतों में विशुद्धि बढ़ाने के लिए व्रत के दिन, व्रती की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए?

उत्तर- व्रती की दिनचर्या निम्न प्रकार होनी चाहिए-सुबह 4 से 5 30 बजे तक- सुप्रभात स्तोत्र, पच णमोकार मंत्र जाप, और सामायिक पाठ-पठन इत्यादि। (अगर प्रतिमाधारी हैं तो उन्हें रात्रिक प्रतिक्रमण भी करना चाहिए अगर प्रतिमाधारी नहीं हों तो अपनी भावना अनुसार, शक्ति अनुसार प्रतिक्रमण कर सकते हैं।)

प्रातःकाल- 6 से 7 30 बजे तक वीतराग भगवान की पूजन, भक्ति करना चाहिए।

7 30 बजे से 8.30 तक सम्यक् शास्त्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

9 से 11.30 बजे तक आहार दान एव शुद्ध आहार ग्रहण कर सकते हैं।

मध्याह्न- 12 से 1 बजे तक जप, सामायिक पाठ-पठन आदि।

1 से 3 बजे तक भक्तामर स्तोत्र आदि का पठन स्वाध्यायआदि।

3 से 4 30 बजे तक गुरु प्रवचन, तत्त्व चर्चा आदि।

सायकाल- 6 से 7 30 बजे तक जप सामायिक पाठ पठन (प्रतिमाधारी को दैवसिक प्रतिक्रमण भी करना चाहिए।)

7 30 से 10 बजे तक स्वाध्याय, वीतराग भक्ति पाठ आदि।

प्रश्न- हमारे आगम ग्रन्थों में सभी व्रतों के साथ जिस ब्रह्मचर्य का पालन करना अति आवश्यक बताया गया है उस ब्रह्मचर्य व्रत के निर्दोष परिपालन हेतु उसके कौन कौन से सहयोगी नियमों का अवश्य रूप से पालन करना चाहिए?

उत्तर- ब्रह्मचर्य के सहयोगी नियम-

1. जुआ, चोरी, शिकार, माँस, शराब, परस्त्री सेवन और वेश्यागमन इन सप्त व्यसनों का त्याग रूप नियम होना चाहिए।
2. रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिए।
3. कम से कम घर में छना जल पीने का नियम होना चाहिए।
4 कन्द-मूल (आलू, प्याज, लहसुन, मूली, गाजर, शकरकद आदि) एव गोभी, बैंगन का त्याग करना चाहिए। क्योंकि इन कंद मूल वनस्पतियों में अनत जीवों का घात होने से तथा तामसिक होने से ये त्याज्य हैं।
5. नित्य वीतराग जिनेन्द्र देव का दर्शन करना चाहिए।
6 ब्रह्मचर्य व्रत वालों को मिथ्यात्व अर्थात् सरागी देव-देवी, यक्ष-यक्षणी की पूजा आरती का त्याग करना चाहिए। क्योंकि यक्ष यक्षणी आदि देवी-देवता आगम में काय प्रवीचार से सहित माने गये है।
7. व्रत ग्रहणकर्ता को पाउडर, क्रीम, नेलपॉलिस, लिपस्टिक, रेशम वस्त्र एवं चमडा आदि हिसक वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए।
8 व्रत के दिन उस व्रत की या ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा हेतु भावों की निर्मलता हेतु टी.व्ही आदि चित्रों को नहीं देखना चाहिए।
9. स्त्रियों से पुरुषों को एव पुरुषों से स्त्रियों को दूर-दूर शयन करना चाहिए।
10. स्त्रियों को पुरुषों से या पुरुषों को स्त्रियों से ज्यादा वार्तालाप एव हसी मजाक करने के त्याग रूप नियम होना चाहिए।
11 दूसरे परिवारों के विवाह के सबध जुटाने का त्याग रूप नियम करना चाहिए। (अपने परिवार के सदस्यों के विवाह का यहाँ निषेध नहीं समझना चाहिए और दूसरे परिवार में विवाह के

अवसर पर वहाँ जाकर भोजन करने का निषेध भी नहीं समझना चाहिए दूसरे परिवारों के बच्चों का विवाह यहाँ करो वहाँ करो ऐसा कहना ब्रह्मचर्य व्रत के क्षेत्र में उपयुक्त नहीं।)

प्रश्न- व्रत के दिन तिथि सम्बन्धी कौन से विशेष नियम का ध्यान रखना चाहिए।?

उत्तर- किसी निश्चित तिथि के अनुसार किये जाने वाले व्रतों को जिस दिन सूर्योदय से कम से कम 6 घटिका प्रमाण तिथि हो उसी तिथि के दिन व्रत करना चाहिए।

प्रश्न- व्रतादिक मांगलिक कार्यों के लिए कौन-कौन सी तिथियाँ प्रशस्त मानी गयीं हैं?

उत्तर- द्वितीया, तृतीया, पचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी औन पूर्णिमा तिथियॉ सभी व्रतादिक मागलिक कार्यों के लिए प्रशस्त मानी गयी हैं।

दूसरी मान्यतानुसार चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, और चतुर्दशी इन तिथियों की पक्षरन्ध्र सज्ञा है। इन तिथियों में प्रतिष्ठादिक मांगलिक कार्य करना शुभ नहीं बताया। यदि इन तिथियों में कार्य करने की अत्यत आवश्यकता हो तो इन तिथियों की प्रारम्भिक पाँच घटिकाये अर्थात् सूर्योदय से दो घण्टे छोड़कर मागलिक कार्य कर सकते हैं।

साभार-जैनागम संस्कार

व्रतों की उपादेयता एवं ऐतिहासिकता

-ब0 विनोद जैन

भारत भूमि में समय-समय पर विभिन्न सम्प्रदायों का उद्भव एवं विकास होता रहा है जिसमें जैनधर्म का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन परम्परा के अपने मौलिक सिद्धान्त हैं जिनके फलस्वरूप आज भी धर्म की पताका विश्व क्षितिज में फहरा रही है। उन्हीं सिद्धान्तों में व्रतों का प्रचलन भी एक है। श्रावकों को व्रतों के वास्तविक स्वरूप एवं व्रतों की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के विषय में अवश्य जानना चाहिए जिससे कि उसकी जिज्ञासाएँ शान्त ही नहीं हों भी किन्तु उस अज्ञान का भी विलय होगा जिसके कारण अनादिगत दुख हैं।

व्रत की व्युत्पत्ति के विषय मे प्रसिद्ध कोश सेंट "पीटर्सवर्ग" मे 'वृ' धातु से मानी गयी है जिसका अर्थ है रक्षण करना साथ ही जो विशेष अर्थ कोश मे दिए गये है उनमे कुछ विशिष्ट तथा सन्दर्भित अर्थ इस प्रकार है।

1 सकल्प विधि, 2 शुभ प्रवृत्ति में संलग्नता, 3 धार्मिक कार्य उपासना कर्तव्यपरायणता, 4 अनुष्ठान तपस्या सम्बन्धी कर्म, पुनीत कर्म इत्यादि

इन अर्थों के मनन से यह स्पष्ट होता है कि व्रत एक पवित्र कर्म अथवा अनुष्ठान है जो साधक की आंतरिक मनोदशा को परिवर्तित करने में सक्षम होता है। यही कारण है कि जैन आचार्यों ने जो व्रत की परिभाषा दी है वह भी इस प्रकार है पापों से विरति अर्थात् निवृत्ति व्रत है।

इसी परिभाषा का स्पष्टीकरण मोक्षशास्त्र के अध्याय 7 सूत्र 1 में इस प्रकार आया है " हिसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्योविरतिर्व्रतम्" इस

परिभाषा में यही स्पष्ट किया गया है हिसा, झूठ, चोरी, कुशील एव परिग्रह की जो प्रकृतियाँ मानव जीवन में इन्द्रिय विषयों की लम्पटता एव स्वार्थ परायणता के कारण व्याप्त हो जाती हैं, वे प्रवृत्तियाँ दु ख जनक हैं और दुःख की परम्परा सिर्फ इस लोक तक सीमित नहीं रहती बल्कि परलोक तक व्याप्त रहती हैं। आचार्यों ने इस लोक और परलोक का हित हो इसलिए अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह रूप प्रवृत्ति करने का विधान किया। यह विधान किसी एक प्रवृत्ति के द्वारा ही इगित नहीं किया गया। बल्कि बहुत सी प्रवृत्तियों को ग्रहण किया गया जिन प्रवृत्तियों के द्वारा सामान्य आत्मबल को धारण करने वाले से लेकर विशेष आत्मबल वाला भी उन प्रवृत्तियों में शामिल हो सके। मूलत तो प्रवृत्तियॉ द्विधा महाव्रत और अणुव्रत के रूप में विभक्त रही, किन्तु इन दो प्रवृत्तियों का स्वरूप इतना क्लिष्ट था कि सामान्य आत्मबल वाला अपने को इनके अयोग्य समझता था। परन्तु पुष्पाञ्जलि, रत्नत्रय, रविव्रत इत्यादि व्रतो में जिस प्रवृत्ति का आचरण करने के लिए विधान किया गया है वे प्रवृत्तियॉ एक सामान्य गृहस्थ भी सामान्य सकल्प शक्ति से आचरित कर सकता है। व्रत केवल पुण्य का ही नही है, यह सबर एव निर्जरा के साथ-साथ परम्परा से मोक्ष का कारण होते है। इन व्रतों में यह और विशेषता है कि जिन्होंने महाव्रत का आचरण भली प्रकार से कर लिया है और अपने आप को आत्मबल की कसौटी पर निखारना चाहते हैं तो उनके लिए भी सिह निष्क्रीडित, कवल चन्द्रायण आदि व्रतों का उल्लेख आचार्यो ने किया है। इन्हीं व्रतों की पूर्णता के पश्चात् साधक यदि और तप के मार्ग में अग्रसर होना चाहता है तो उसे महोग्रतप, उग्रतप, दीप्तितप आदि ऋद्धि परम्परा से जोड़ते हुए परम अवस्था की उपलब्धि तक पहुँचाया गया है।

आचार्यों का हृदय विशाल होता है उनका दृष्टिकोण सृष्टि के किसी एक व्यक्ति का हित करना नहीं बल्कि जीव मात्र के कल्याण की भावना उनके हृदय मे उद्वेलित होती रहती है। यही कारण है कि उनके द्वारा व्रतों का अनुष्ठान मात्र शक्तिशाली और विशेष व्यक्तियों के लिए ही उल्लिखित नहीं किया गया बल्कि उन्होंने दयार्द्र होकर निर्बल, दीन, दुखी, तिरस्कृत जन-सामान्य को भी व्रतो के अनुष्ठान योग्य बतलाया। व्रतों की ऐसी सार्वभौमिकता जो कि प्राणी मात्र को संतुष्ट करती हो सर्व कल्याणकारी सिद्ध होती है। यह सत्य है कि समर्थ पुरुष तो कुछ भी कर सकता है किन्तु दुर्भाग्य युक्त एव असमर्थ जो कि आत्म ग्लानि की भावना से भरा रहता है उसके जीवन को पवित्र करने का मार्ग अत्यधिक कठिन है। लेकिन व्रत ऐसे व्यक्ति को भी पवित्र करने की पूर्ण उद्घोषणा करते है। व्रत का अनुष्ठान वर्तमान जीवन को ही नहीं बल्कि पारलौकिक जीवन को भी पवित्र करता है। यही कारण है कि आचार्यों ने एक दुर्गन्धा स्त्री को सुगन्ध दशमी व्रत का अनुष्ठान कराकर जीवन को सुगन्धित करने की प्रक्रिया बतायी है।

इस प्रकार हम देखते हैं व्रत योग्यता एवं पात्रतानुसार सामान्य जन जीवन से लेकर तपस्वी महापुरुषों के जीवन मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है और क्रमश· उन्हें कैवल्य अवस्था तक की प्राप्ति में पथ्य स्वरूप सहयोग प्रदान करते हैं।

इस प्रकार व्रतो को शाश्वत एवं अनादि कहा गया है, क्योकि इन व्रतों को धारण करने वाले पचपरमेष्ठी भी अनादि हैं। इन व्रतों के महत्त्व एवं उद्यापन(पूर्णता) पर श्रावकों द्वारा किये गए महानुष्ठान इतिहास में वर्णित हैं, जिसका स्वरूप श्रावक की क्षमता/योग्यतानुसार होता था।

शिलालेखों में व्रतों के सन्दर्भ

वर्तमान में व्रतों की प्राचीनता शिलालेखों एव पाण्डुलिपियों के रूप में उपलब्ध है। इतिहास के परिवेश मे यदि हम व्रतों की प्राचीनता के सन्दर्भ में विचार करते है तो यह परम्परा सनातन रही है। यही कारण है कि आदिपुराण, हरिवंशपुराण, क्रियाकोष आदि ग्रन्थों मे इन व्रतों का विस्तार पूर्वक विधान उपलब्ध होता है। ग्रन्थों तक ही नही यदि हम पुरातत्व की सामग्री मूर्ति, शिलालेख इत्यादि का अन्वेषण करते है तो वहॉ पर भी जगह जगह व्रतों का नामोल्लेख प्राप्त होता है। इस सन्दर्भ में जैन शिलालेख सग्रह भाग-4 और 5 के सन्दर्भ विशेष रूप से दृष्टव्य है।

1. शिलालेख न 527 नरसिहराजपुर(मैसूर) वियग वरमैय को पुत्र नागप्प काम्बोदि वैश्य था। रविवार व्रत की समाप्ति पर मूर्ति का पादपीठ अर्पित करने का उल्लेख है।भाग 4-पृष्ठ 349
2. शिलालेख 530 स्थान मैसूर राजा देवराज पत्नी केंपम्मण्णि ने अनन्त व्रत की पूर्णता पर भगवान अनन्तनाथ की मूर्ति स्थापित की। भाग 4--पृष्ठ 351
3. शिलालेख न 546 स्थान गोणिवीड(मैसूर) मनुनन्तन ने अनन्तव्रत के उद्यापन के समय चौबीस तीर्थंकर मूर्ति की स्थापना की। भाग 4--पृष्ठ 359
4. शिलालेख न 118 अक्किगुद (सॉंगली) महाराष्ट्र जयकीर्ति भट्टारक के शिष्य पदुमि गौडि जो हरति के निवासी थे उनने अनन्त तथा चन्दन षष्ठी व्रत के उद्यापन के समय चौबीस तीर्थंकर की मूर्ति स्थापित की। भाग 5-पृष्ठ 54

उपर्युक्त शिलालेखो के अन्वेषण से यह स्पष्ट होता है कि श्रावक जीवन में इन व्रतों का एक विशेष ही महत्त्व था। इन शिलालेखों की

भाषालिपि से यह स्पष्ट होता है कि शिलालेख न 4 जो कि सांगली महाराष्ट्र का है उसकी लिपि बारहवीं शताब्दी की कन्नड़ भाषा है इस सन्दर्भ में यदि कोई अन्वेषक विशेष अनुसन्धान कार्य करे तो सम्भव है कि और भी प्राचीन सामग्री हमें उपलब्ध हो सकती है।

पुराणों में व्रत

पुराण ग्रन्थों में यदि हम व्रत सम्बन्धी उल्लेखों का अनुसन्धान करते है तो वसुनन्दी श्रावकाचार में आगत निम्न प्राकृत कारिकाएँ दृष्टव्य हैं।

आसाढ़ कत्तिए फग्गुणे य सियपञ्चमीए गुरुमूले।
गहिऊण विहिं विहिणा पुव्वं काऊण जिणपूजा।।353।।
पडिमासमेक्कखमणेण जाव वासाणि पचमासा य।
अविच्छिण्णा कायव्वा मत्तिसुहं जायमाणेण।।354।।

आषाढ, कार्तिक या फाल्गुन मास में शुक्ल पञ्चमी के दिन पहले जिनपूजन करके पुन गुरु के पादमूल में विधि पूर्वक व्रत को ग्रहण करके अर्थात् उपवास का नियम लेकर प्रतिमास एक क्षमण के द्वारा अर्थात् एक उपवास करके पाँच वर्ष और पाँच मास तक मुक्ति-सुख को चाहने वाले श्रावकों को अविच्छिन्न अर्थात् बिना किसी नागा के यह पञ्चमी व्रत करना चाहिए। 353-54।

अवसाणो पञ्च घड़ाविऊण पडिमाओ जिणवरिंदाणं।
तह पञ्च पोत्थयाणि य लिहाविऊणं ससत्तीए।।355।।
तेसिं पइट्ठयाले जं किं पि पइट्ठ जोग्गमुवयरणं।
तं सव्वं कायव्वं पत्तेयं पञ्च पञ्च संखाए ।।356।।

व्रत पूर्ण हो जाने पर जिनेन्द्र भगवान की पाँच प्रतिमाएँ बनवाकर, तथा पाँच पोथियों (शास्त्रों) को लिखाकर अपनी शक्ति के अनुसार उनकी प्रतिष्ठा के लिए जो कुछ भी प्रतिष्ठा के योग्य

उपकरण आवश्यक हो, वे सब प्रत्येक पाँच-पाँच की सख्या में बनवाना चाहिए।।355-56।।

पाण्डुलिपियों में व्रतकथाएँ- जैन साहित्य विभिन्न विधाओं में उपलब्ध है, जिसमें हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ भी एक है। इन पाण्डुलिपियों में वही समस्त सामग्री उपलब्ध है जो जैनाचार्यों ने श्रुत परपरा की रक्षा के लिए सयोजित की थी। कथा साहित्य की ओर यदि हम अपनी दृष्टि डालते हैं तो विविध हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों मे निम्न ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, वे इस प्रकार हैं-

1	कथाकोश	ब्र. नेमीचन्द्र	सस्कृत	पद्य
2	व्रत कथा कोश	देवेन्द्र कीर्ति	सस्कृत	पद्य
3	व्रत कथा	श्रुत सागर	सस्कृत	पद्य
4	व्रत कथा कोश	मुमुक्षु रामचन्द्र	सस्कृत	पद्य
5	वृहद कथा कोश	भट्टा जशकीर्ति	सस्कृत	पद्य
6	कथा कोश	बुलाकी दास	हिन्दी	पद्य
7	कथा कोश	ब्र जिनदास	हिन्दी	पद्य
8.	कथाकोश	प टेकचन्द्र	हिन्दी	पद्य
9	व्रत कथा कोश	खुशालचन्द्र	हिन्दी	पद्य

ये समस्त हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ मुझे अनेकात ज्ञान मदिर बीना सस्थापक ब्र. सदीप जी के विशाल ग्रन्थ भण्डार में अवलोकन करने को प्राप्त हुई। यह समस्त कथा सामग्री एक अनुसधानकर्ता के लिए शोध का विषय है। शोधार्थी विविध लेखकों के द्वारा विविध समय में लिखी गई हिन्दी/सस्कृत की गद्य-पद्य मयी रचनाएँ कहाँ और किस रूप में विविधता को उपलब्ध होती हैं तथा कथा वस्तु में कहाँ-कहाँ समानता है यह समस्त विषय शोधार्थी के लिए नए आयामों को प्रस्तुत करने में सक्षम होगा।

कई आचार्यों ने विभिन्न ग्रन्थों में व्रतों का विशद् विवेचन किया है। उपलब्ध ग्रन्थों का सदर्भ प्रस्तावना में दिया गया है। जैन सिद्धांत भास्कर के भाग 11 किरण 1 में श्री अगरचन्द्र जी नाहटा, बीकानेर के आलेख "दिगम्बर जैन व्रत कथाएँ" से व्रतो की सूची साभार दी जा रही है जिससे व्रतों की एतिहासिकता स्वयं प्रमाणित होती है।

दिगम्बर संस्कृत व्रत-कथायें

1 **व्रतकथा कोष**- अमृत पडित, दामोदर, देवेन्द्रकीर्ति, नरेन्द्रसेन, यशोनदि, श्रुतसागर, ललितकीर्ति।

2 **षोडशकारण**- केशवसेन, ज्ञानसागर, शुभचद्र, सकलकीर्ति, सुमतिसागर।

3. **रोहिणी**- केशवसेन, प्रभाचद्र, भुवनकीर्ति, सुरेद्रभूषण।

4 **मुक्तावलि**- खुशाल, रत्नकीर्ति।

5 **कांजीद्वादशी**- खुशाल।

6 **सुगंधदशमी**- गगदास, पद्मनन्दि।

7 **पुष्पांजलि**- गगदास, छत्रसेन, देवेन्द्रकीर्ति।

8 **त्रैकालिक चतुर्विंशति**- गुणनन्दि, विद्याभूषण।

9. **ऋषिमंडल विधान**- गुणनन्दि।

10 **रोटतीज**- गुणनन्दि।

11 **अनन्तव्रत**- गुणचद्र, गुणभद्र,जिनदास, ताराचद्र, धर्मचद्र, पद्मनन्दि, रत्नचद्र।

12 **एकीभाव**- जगतकीर्ति।

13. **रात्रि भोजन**- जिनदास, दशरथ।

14. **चतुर्विंशति**- जिनदास रचित चतुस्त्रिंशदुत्तर द्वादशव्रतोद्यापन भी है।

15. **दशलक्षण**- ज्ञानभूषण, धर्मचद्र. रत्नकीर्ति, विश्वभूषण।

16. **चंदनषष्टि**- देवसेन, श्रुतसागर।

17. **बुद्धादशमी**- देवेन्द्रकीर्ति।

18 **नंदीश्वर**- देवेन्द्रकीर्ति, श्रुतसागर।

19 **कवलचन्द्रायण**- देवेन्द्रकीर्ति।

20 **पल्यव्रत**- देवेन्द्रकीर्ति।

21. **कल्याण मंदिर**- देवेन्द्रकीर्ति, सुरेन्द्रभूषण।

22 **विषापहार**- देवेन्द्रकीर्ति।

23 **रैदव्रत**- देवेन्द्रकीर्ति।

24. **त्रिपंचाशक्रिया**- देवेन्द्रकीर्ति।

25 **अष्टान्हिका**- धर्मकीर्ति, श्रुतसागर।

26 **रत्नत्रय**- धर्मभूषण, पद्‌मनन्दि।

27 **श्रुतस्कंध**- नक्षत्र देव, श्रुतपचमी- श्रीधरसेन, सोमसेन, रामदेव।

28 **माघ मालिनी**- प्रभाचद्र।

29 **रक्षाबंधन**- सकलकीर्ति।

30 **लब्धिविधान**- विद्याधर, सकलकीर्ति।

31 **भक्तामर**- सोमसेन, सुरेन्द्रभूषण।

32 **आकाश पंचमी**- श्रुतसागर।

33 **कलिकुण्ड पार्श्वविधान**- पद्‌मनन्दि।

34 **कर्मचूर**- लक्ष्मीसेन।

35. **जिनगुणसम्पत्ति**- सुरेन्द्रभूषण।

36 **द्वादशव्रत**- शातिदास, श्रीभूषण।

37. **श्रेयस्करणी**- सुरेन्द्रभूषण।

38. **पुरन्दर**- श्रुतसागर।

हिन्दी दिगम्बर व्रत-कथा सूची

1. **रत्नत्रय-** ब्रह्म ज्ञानसागर, भट्टा० सकलकीर्ति, हरिकृष्णा पाडे, नाथूलाल दोशी, गुणभद्र।
2 **पुष्पांजलि-** खुशालचन्द्र, गुणभद्र(अपभ्रंश), ललितकीर्ति।
3 **रविव्रत-** खुशालचन्द्र, नेमिदत्त भाऊ, भानुकीर्ति, रत्नभूषण, जसकीर्ति (अपभ्रश), ज्ञानसागर, सकलकीर्ति, अचल कीर्ति।
4 **रोहिणी-** विशालकीर्ति, प ज्ञानसागर, हेमराज, भगवान् सागर, लक्ष्मीसेन।
5 **पुरंदर-** अपभ्रश का भी है।
6 **ऋषि पंचमी-** प्र०
7 **दशलक्षण-** रइधु, अभयचन्द्र, गुणभद्र, भावशर्म, भैरौंदास, ज्ञानसागर, हरिकृष्ण।
8 **अणथमी कथा-** हरिश्चन्द्र अग्रवाल, रइधु।
9 **अनंतचतुर्दशी-** महेश, पद्मनंदि, गुणभद्र, ज्ञानसागर, भैरौंदास, हरिकृष्ण, ज्ञानचद्र।
10 **आकाश पंचमी-** गुणभद्र(अपभ्रश), खुशालचद्र, घासीदास, हरिकृष्ण।
11 **षोड़शकारण-** रइधु, भैरौंदास, ब्रह्म ज्ञानसागर, सकल कीर्ति, नाथूलाल, गुणभद्र।
12. **चंदन षष्टि-** गुणभद्र(अपभ्रश), खुशालचद्र।
13 **चंद्रायण-** प. लाखू(प्रा०), गुणभद्र।
14. **जिनरात्रि कथा-** यशकीर्ति, ज्ञानसागर।
15 **ज्येष्ट-जिनवर-व्रत-** श्रीभूषण।

16 **अष्टान्हिका-** नाथूलाल दोसी, विश्वभूषण, ज्ञानसागर।

17. **श्रुतपंचमी-** बनवारी लाल, सुरेन्द्रनाथ(भूषण ?), पृथ्वीपाल, विष्णु।

18 **लब्धिविधान-** ज्ञानसागर, दामोदर।

19 **मौनएकादशी(मौनव्रत)-** गुणचन्द्रसूरि।

20. **मुकुट सप्तमी-** प ब्रह्मराय, खुशालचद्र, गुणभद्र।

21. **रक्षाबंधन-** ज्ञानसागर, दामोदर।

22 **श्रावण द्वादशी-** ज्ञानसागर।

23 **रोहिणी-** जिनचन्द्र, गुणभद्र, हेमराज।

24 **कर्मचूर-** शिवप्रसाद।

25. **सुखसम्पत्ति-**विमलकीर्ति।

26 **सुगंधदशमी-** खुशालचद्र, ब्रह्मज्ञानसागर, मकरद, पद्मावतीपुरवाल, भैरौंदास, प सुखसागर, गुणभद्र।

27 **व्रतकथाकोष-** पृथ्वीपाल, बख्तावरमल, रतनलाल, खुशाल चन्द्र (काला)

28 **दर्शन, दान, शील, रात्रिभोजन-** भारमल खरौआ।

29 **दुधारसी-** श्रीधर्म, विनयचन्द्र, गुणभद्र(अपभ्रश), ज्ञानसागर।

30 **निर्जर पंचमी-** विनयचद्र(अपभ्रश)।

31 **निर्दुषी सप्तमी-** गुणभद्र, रायमल, ज्ञानसागर।

32 **पराल्य व्रत-** शुभचन्द्र।

33 **पाखवइ-** गुणभद्र।

34 **श्रावण द्वादशी-** गुणभद्र, आभू।

35 **अष्टमी-** गुलालकीर्ति, गैबीदास, जोगीदास।

36 **जिनगुण सम्पत्ति-** ललितकीर्ति।

37 **निशि भोजन**-किसन सिह।

38 **निशल्य**-ज्ञानसागर।

व्रतों में श्रावक उत्तरोत्तर सयम, तप एव त्याग को वृद्धिगत करके श्रमण परम्परा को अंगीकार कर मानव पर्याय के लक्ष्य सिद्धत्त्व को प्राप्त करता है। वर्तमान में हीन सहनन एव भौतिकता की प्रचुरता से श्रावक व्रतों को धारण करने से भयभीत होने लगा है, जो उचित नहीं है। बिना व्रत धारण किए कर्म निर्जरा सम्भव नहीं है। अत शक्तिशः व्रतों को धारण कर आत्मशक्ति बढ़ाना चाहिए।

इस पुरासामग्री से यह तो स्पष्ट होता ही है कि व्रतों की परम्परा अति प्राचीन है और विशेष रूप से श्रावक को अनुकरणीय रही है। इस प्रकार इसके महत्त्व का आंकलन करते हुए हमें उस परम्परा का अनुकरण अवश्य करना चाहिए।

-श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा, टीकमगढ

व्रत, संयम, तप एवं त्याग में समन्वय

-पं. विनोद कुमार जैन

इस प्रकार आचार्यों ने श्रावक को व्रत, सयम, त्याग एव तप के द्वारा चर्या करने का निर्देश दिया है बिना श्रद्धा एव समीचीन ज्ञान के अभाव में किया गया क्रियाकाण्ड चारित्र की श्रेणी मे नही आता है। आचार्य कुदकुंद ने "चारित्र खलु धम्मो" अर्थात् चारित्र ही निश्चय से धर्म कहा है। श्रद्धा और ज्ञान का महल चारित्र के बिना सुशोभित नहीं हो पाता है अर्थात् केवल श्रद्धा और ज्ञान से भी धर्म नही हो पाता है, यही कारण है कि चारित्रिक अनुष्ठानों का विशेष उल्लेख जैनागम ग्रन्थों में विस्तार से उपलब्ध है। इस सम्यक्चारित्र को आत्मसात् करने के लिए जैनाचार्यों ने विविध साधना पद्धतियों का उल्लेख किया है। व्रत, सयम, त्याग और तप विशिष्ट रूप से ऊपर उल्लेखित किये गये है। हिसादिक कार्यों से विरति भाव को व्रत कहते हैं, विरति होने के उपरात जीवन को किस प्रकार सुशोभित करना चाहिए अथवा जीवन शैली कैसी होनी चाहिए इसका ज्ञान कराता है व्रत। व्रत मे मुख्यत से जीवन के विषय कषाय परक भावो का निषेध किया जाता है, यही कारण है कि सयम धारण से व्रतों का अन्तर्भाव सहज ही हो जाता है। सयम साधना की ओर बढ़ता हुआ साधक अपने जीवन मे और विशिष्टता की उपलब्धि करें इसलिए उसे त्याग की तरफ विशेष रूप से प्रेरित किया जाता है। सयम भाव की प्राप्ति होने पर भी जैसे-जैसे वह आन्तरिक एव बाह्य उपाधि अथवा परिग्रह का विमोचन करता जाता है वैसे ही वैसे उसके जीवन मे सयम की दृढ़ता और सयम के प्रति अगाध श्रद्धान पुष्ट होता चला जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि त्याग, सयम में विशिष्टता उत्पन्न करने वाली एक पद्धति है।

त्याग भी करने के उपरान्त जीवन को और अधिक विशुद्ध बनाने के लिए तपश्चरण का उल्लेख किया गया है इसीलिए कहा है कि सम्यक् प्रकार से इच्छाओं का निरोध करना तप है। यो तो संयम त्याग इत्यादि मे लौकिक परिकामनाओं का परित्याग कर साधक आशिक रूप से अलौकिक कामनाओं से जुड जाता है किन्तु अलौकिक कामनाओं का परित्याग करने के लिए आचार्यों ने तप का विशेष उल्लेख किया है यही कारण है कि आराधना ग्रन्थों में सम्यक् दर्शन, ज्ञान एव चारित्र की आराधना के पश्चात् तप की आराधना का उल्लेख किया गया है।

इन तपों में बाह्य तप एव अन्तरग तप दो रूप से विभक्त है। बाह्य तप का अनुष्ठान अभ्यन्तर तप की वृद्धि के लिए है और अभ्यन्तर तप का सम्बन्ध आत्मशुद्धि से है। तप जीवन शोधन की अन्तिम प्रक्रिया है जिस प्रकार अशुद्ध सुवर्ण को बहुत सी प्रक्रियाओं से गुजरने के उपरान्त 16वर्णीय बनाया जाता है, उसी प्रकार तपानुष्ठान के अन्तर्गत आचार्यों ने विविध व्रतों का उल्लेख भी किया है। अत सिहनिष्क्रीडित व्रत, कनकावली व्रत इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते है कि व्रत, सयम, त्याग और तप एक प्रकार से साधक को उत्तरोत्तर उसके आदर्श तक पहुॅचने मे सहायक होते है तथा इन सभी में पारस्परिक कथञ्चित अभिन्नता भी प्रतीत होती है यदि सामान्य की दृष्टि से देखा जाये तो सब चारित्र के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं किन्तु विशेषता की अपेक्षा परस्पर में उपरोक्त भेद भी प्रतीत होता है। अन्त में यही समझना चाहिए कि ये सभी जीवन पवित्र करने के लिए अथवा मोक्ष रूपी महल तक पहुँचने के लिए पाथेय तुल्य हैं। इनका सेवन पथिक के लिए कल्याणकारी सिद्ध होता है।

-रजवाँस सागर, म०प्र०

अनुष्ठान एवं ध्यान योग की वैज्ञानिकता

-ब्र. जय 'निशांत'

वर्तमान में दूसरों की देखा-देखी अनुष्ठान एव व्रतोपवास करने का रिवाज सा चल पड़ा है। व्रतविधि का ज्ञान नही होने से उतना लाभ नहीं होता है जितना होना चाहिए। व्रतों का काल, कारण, जापमन्त्र, व्रतों में पूजा, विधि, उद्यापन आदि की पूर्णरूपेण जानकारी से जहाँ हमारी श्रद्धा दृढ होती है, वहीं हमारी मानसिकता में भी बदलाव आता है, इच्छाओ का निरोध होने से समता आती है, मन्त्रसाधना से परिणाम भी शुद्ध होते है जिससे सवर व निर्जरा होती है। इसके अभाव में व्रतो में बाहर का आहार तो त्याग दिया जाता है किन्तु आन्तरिक ऊर्जा का स्रोत जागृत नही होता है। यही कारण है कि शारीरिक कमजोरी बढने से मानसिक चिडचिडापन बढ जाता है। अर्थात् व्रतों से सयम एव त्याग करने का उत्साह बढने की अपेक्षा क्रोध एव क्षोभ बढने लगता है। अत इनको जानना अनिवार्य है।

अनुष्ठान- अनुष्ठानम्(अनु+स्था+ल्युट्) 1 धर्मकृत्य कराना, कार्य निस्पादन, आज्ञापालन, धर्माराधन तपश्चर्याओ का प्रयोग, 2 धार्मिक कार्यों मे व्यस्तता, 3 सयमाचरण, शुभ कार्य पद्धति, 4 धार्मिक सस्कारों या कृत्यों का प्रयोग।

अर्थात् मन वचन काय से अशुभ कार्यो से निर्वृत्ति एव शुभकार्यो में प्रवृत्ति अर्थात् पापाचरण से हटकर सयम धारण करना, इच्छाओं का निरोध करते हुए धार्मिक कार्यों में सलग्न होना।

अनुष्ठान के सामान्यत. दो भेद हैं-1.नित्यअनुष्ठान 2 नैमित्तिक अनुष्ठान

नित्य अनुष्ठान- गृहस्थ अवस्था में परिवार के भरणपोषण एवं आजीविका चलाने के लिए कर्तव्य करते हुए विवेक पूर्वक धर्माचरण, धार्मिक क्रियाओं को निष्पादित करना यथा-

"दाणं पूया सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावय धम्मो"

कषाय पाहुड -आचार्य गुणधर

दान, पूजा, शील एव उपवास पूर्वक चर्या करना अर्थात् जीवन को अर्हन्त भगवान से जोड़ने का उपक्रम, इसके अन्तर्गत नित्य की सामायिक, मन्त्राराधन, पूजा, स्वाध्याय, दान एव व्रतोपवास आदि क्रियाऍ आती है जो अशुभ से हटाकर शुभ में लगाती है, नित्य अनुष्ठान है।

नित्य अनुष्ठान द्वारा नित्य होने वाले पापाचरण का प्रायश्चित्त करके मन को पावन पवित्र करना, सयमाचरण एव इन्द्रिय निरोध द्वारा आत्मा के परिणामो को विशुद्ध करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इसे यम एव नियम रूप में पालन किया जाता है।

श्रमणचर्या का पालन करते हुए सकल सयम हेतु षट् आवश्यकों का पालन करना (सामायिक, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग एव स्वाध्याय) साधु का नित्य अनुष्ठान है।

नैमित्तिक अनुष्ठान- विशेष आयोजन एव प्रभावना पूर्वक सकल्प के साथ किए जाने वाले अनुष्ठान जिनमे कल्पद्रुम, अष्टाह्निक, इन्द्रध्वज, सर्वतोभद्र, आदि विधान, पञ्चकल्याणक, णमोकार, भक्तामर, सोलहकारण,दशलक्षण, रत्नत्रय, जिनगुण सम्पत्ति, सिह निष्क्रीडित, कवल चन्द्रायण आदि व्रत समय की सीमा में करके आत्मा को विशुद्ध किया जाता है तथा सम्यक्त्व को पुष्ट किया जाता है।

अनुष्ठान में होने वाले संस्कार-

1.सकलीकरण (अगन्यास) सस्कारारोपण, 2.इन्द्रप्रतिष्ठा, 3 नान्दी विधान, 4.मन्त्राराधन 5 जापानुष्ठान 6.भक्तियाँ, 7 विशेष पूजन, 8.हवन आदि क्रियाएँ जिनमें सकलीकरण में मन्त्रों द्वारा मन

वचन एव काय को धार्मिक अनुष्ठान के लिए संकल्पित करना अनिवार्य है। त्रियोगों को सकल्प एव मन्त्रों द्वारा अनुष्ठान के योग्य बनाकर श्रद्धा, समर्पण एव भावनात्मक पात्रता को प्राप्त करना है यदि आराध्य के प्रति श्रद्धा एव समर्पण नहीं होगा तो मात्र औपचारिकता होगी, उपलब्धि नहीं मिलेगी। ध्यान आध्यात्मिक ऊर्जा को सधारित करने का कार्य करता है। इसलिए सकलीकरण, इन्द्र प्रतिष्ठा, नान्दी विधान, जापमन्त्र का सकल्प, मन्त्राराधन, दिग्बन्धन उतने ही अनिवार्य एव प्रभावशाली होते है। साधक को इन मन्त्रों की शक्ति विधि एव मुद्राओ का ज्ञान होना चाहिए अन्यथा वह इन पर श्रद्धा न करके क्रियाकाण्ड मानकर उपेक्षाभाव रखेगा और लाभ से वञ्चित रहेगा।

मन्त्रो का शुद्ध उच्चारण, अन्तर्मन की भावना एव योग मुद्राओ का अतिशयकारी प्रभाव आज भी दृष्टिगत होता है। यह मन्त्र सस्कार पुष्पो द्वारा, रक्षासूत्र द्वारा, यज्ञोपवीत द्वारा, शरीर के आगोपाग के स्पर्श के द्वारा आरोपित किए जाते है। इनके द्वारा ध्यान-साधना की पात्रता एव आन्तरिक ऊर्जा को प्राप्त करने एव धारण करने की क्षमता मे वृद्धि होती है।

जप सकल्प मे मन्त्र का शुद्धोच्चारण, मन्त्र का अर्थ, मन्त्र के आराध्य की विशेषता, मन्त्र शक्ति का ज्ञान, मन्त्राराधन की मुद्रा, आसन, दिशा एव काल आदि का ज्ञान होने पर सम्यक् श्रद्धा से उसका प्रभाव कई गुना हो जाता है।

अभिषेक, पूजन, नित्य अनुष्ठान का मुख्य अग है। इनमें भी मुद्राओं का उतना ही महत्त्व है,

कायोत्सर्गमुद्रा, विनयमुद्रा ज्ञानमुद्रा, आह्वानमुद्रा, स्थापनमुद्रा, सन्निधिकरणमुद्रा, प्रत्येक पूजा द्रव्य के समर्पण की मुद्रायें शास्त्रों मे वर्णित हैं। प्रत्येक क्रिया मन्त्र के साथ योग्य विधि से सम्पादित करने पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है।

व्रत-अनुष्ठान का मुख्य उद्देश्य होता है समता एव शमता (कषाय की मंदता) की प्राप्ति, परिणामों की निर्मलता, आराध्य के प्रति श्रद्धाभाव की दृढ़ता। यह वैज्ञानिक सत्य है साधक के जैसे भाव होंगे अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ वैसे ही रस का स्राव करती हैं तथा शरीर भी ब्रह्माण्ड से वैसी ही ऊर्जा प्राप्त करता है। **क्रोध** के भाव आते ही शरीर को उत्तेजित करने वाले रसों के स्राव से आँखें लाल होना, हाथ-पाँव अकड़ना, श्वास तेज होना, आवेगशक्ति आना, विवेक शून्य होना आदि। **शोक** के भाव आते ही रसों के स्राव से शरीर शिथिल होना, अश्रुपात होना, दीनता विलाप आदि होना। **भय** के भाव आते ही रस के स्राव से शरीर पीला पड़ना, श्वांस रुकना, ऑखें फैलना, आवाज न निकलना, कॅपकँपी आना आदि। **हर्ष एवं उत्साह** के भाव से रस के स्राव से शरीर में प्रफुल्लता, रोम-रोम पुलकित होना, चेहरे पर सौम्यता होना, क्रियाशीलता बढ़ना आदि। **श्रद्धा** के भाव आते ही रसस्राव से विनय, शालीनता, समर्पण, वाणी में मृदुता आदि क्रियाएँ स्वाभाविक रूप से होने लगती हैं।

जिस प्रकार मन प्रशस्त होने पर काटना, नोंचना आदि बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ मन को प्रसन्न करतीं हैं, परन्तु खिन्नता होने पर इन्हीं क्रियाओं से क्रोध एव चिडचिड़ापन होने लगता है उसी प्रकार अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाला रस प्रसन्नता में शक्तिवर्धक (Excitatory) एव तनाव में शक्तिक्षीण (Inhibitory) करने वाला दोनों प्रकार का होता है। एड्रीनेलिन, एण्डोर्फिन आदि जहाँ शक्तिवर्धक (Excitatory) हैं, नार एड्रीनेलिन, गावा-सिरोटिन आदि शक्तिक्षीण (Inhibitory) होने के कारण शारीरिक दुर्बलता को बढ़ाते हैं। जिससे मानसिक उत्तेजना, क्रोध, क्षोभ, हीनता आदि बढ़ती है।

मंत्र साधना एव योग मुद्राओं का प्रभाव आज भी देखने में आता है। आत्म एकाग्रता से हमारी भक्ति ऊर्जा से कर्मों का क्षय अर्थात् निर्जरा होने लगती है। जैसे सूर्य की तीव्र किरणें किसी पदार्थ को जला नहीं पाती, किन्तु एक उत्तल लैस द्वारा उन किरणों को केन्द्रित कर दिया जावे तो वह तुरन्त जलने लगता है। उसी प्रकार ध्यान/भक्ति ऊर्जा के लिए मन लैंस का कार्य करता है। अतः मन को ध्यान में प्रमुखता दी गई है।

ध्यान वह माध्यम है जिससे ब्रह्माण्ड की ऊर्जा को आकर्षित किया जाता है। ध्यान की विभिन्न मुद्राओ से आन्तरिक शक्ति को जागृत करके हम मनोवाञ्छित कार्य की सिद्धि कर सकते हैं। जिस प्रकार टी०व्ही० में विभिन्न चैनल का प्रयोग करके मनचाहा कार्यक्रम देख सकते हैं अर्थात् ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित चैनल की ऊर्जा प्राप्त करते है। उसी प्रकार मन वचन काय की एकाग्रता से मन्त्रों द्वारा ब्रह्माण्ड से उसी प्रकार की ऊर्जा प्राप्त कर सकते है। यह साधक की एकाग्रता एव समर्पण पर निर्भर करता है। इससे अतिशय कारी काय भी सभव है। भक्त कवि धनञ्जय, पूज्य वादिराज मुनिराज, आचार्य मानतुग, आचार्य समन्तभद्र के उदाहरण हमारे सामने हैं।

इस प्रकार आराध्य के प्रति समर्पित होकर कर्मक्षय करना ध्यान से ही सभव है इसीलिए श्रमणों के लिए आचार्य नेमिचन्द्र जी ने वृहद् द्रव्य-सग्रह में ध्यान का उल्लेख किया है।

दुविहं पि मुक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तह्मा पयत्त चित्ता जूयं झाणं समब्भसह ।।47।।

मुनि नियम से ध्यान द्वारा दोनों प्रकार के मोक्ष कारणो को प्राप्त करते हैं। व्यवहार मोक्षमार्ग एव निश्चय मोक्ष मार्ग। इसी कारण एकाग्रचित्त होकर हे भव्य जीवो तुम भले प्रकार से ध्यान अभ्यास करो। व्यवहार मोक्षमार्ग साधन है और निश्चय मोक्षमार्ग साध्य है। व्यवहार मोक्षमार्ग से ही निश्चय मोक्षमार्ग प्राप्त होता है। अत व्यवहार पूर्वक ही निश्चय की भूमिका बनेगी।

अगली गाथा में कहते हैं, तुम ध्यान की सिद्धि के लिए चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों में रागद्वेष और मोह को मत करो।

ध्यान- रागद्वेष की निर्वृत्ति के साथ मन, वचन, काय की एकाग्रता होना ध्यान है। सासारिक विषय वासनाओं से चित्त का निरोध करते हुए आत्मा का उत्थान करने के लिए मन, वचन, काय की एकाग्रता से की जाने वाली क्रिया ध्यान है।

पापाचरण एवं रागद्वेष की निर्वृत्ति और एकाग्रता के साथ-साथ सकल्प, सयम एव त्याग की अनिवार्यता मुख्य है।

" जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन, जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी"

अभक्ष्य भक्षण या तामसिक भोजन करने वाले साधक कल्याणकारी मन्त्र साधना में एकाग्र नहीं हो पाते क्योंकि उनकी मानसिक वृत्ति तामसिक होगी। राजसिक अर्थात् गरिष्ट भोजन करने वाला साधक प्रमाद एव आलस्य के कारण ध्यान की सूक्ष्मता में न जाकर तन्द्रा में पहुॅच जाता है। तन्द्रा एव ध्यान दोनों विपरीत कारण हैं, ध्यान जहॉ ज्ञान वैराग्य की सतर्कता को बढ़ाता है वहीं तन्द्रा प्रमाद आलस्य का कारण होती है। यही कारण है साधक को सात्त्विक, शुद्ध, पाचक आहार करने का सकल्प दिया जाता है। जिससे शरीर की ऊर्जा भोजन के पाचन में नष्ट न हो। सम्यक् एव ऊर्जावर्धक रसो का निर्माण होने से शरीर स्वस्थ्य, सक्रिय होता है। कामवासना, आलस्य एव कुविचारों से मुक्त साधक मन्त्र साधना में ज्यादा एकाग्र होकर शीघ्र सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

जीवन को परमात्मा की राह पर चलाने के लिए धार्मिक अनुष्ठानों का अतिशय सम्बल एव सहयोग मिला है। अशुभ से शुभ की ओर आने का, अपने पापों का परिमार्जन करने का तथा आर्तध्यान एव रौद्रध्यान से हटकर धर्मध्यान में आने का सौभाग्य धार्मिक अनुष्ठान से ही प्राप्त होता है। परन्तु आवश्यकता है उसे

मूलभूत रूप में जानने की, मानने की एव आचरित करने की। जिस प्रकार कुपथ्य के साथ औषधि का प्रभाव सम्यक् नहीं होता उसी प्रकार ज्ञान, मुद्रा, ध्यान एवं विधि के अभाव में अनुष्ठान का भी सम्यक् लाभ हमें प्राप्त नहीं हो पाता है।

वर्तमान में प्रदर्शन की अधिकता होने से हमारी मानसिकता एवं भावना आराध्य के प्रति समर्पित न होकर मनोरजन एवं ख्याति की ओर आकर्षित होती है। समयाभाव में जाप मन्त्र, भक्तियाँ एवं क्रिया विधि को गौण कर दिया जाता है जबकि अनुष्ठान में मन्त्र जाप स्वय पात्रों को करना चाहिए अन्य के द्वारा किए जाने पर मन्त्र साधना का फल उसी को मिलेगा अनुष्ठान कर्ता को नहीं। अतः इस ओर ध्यान देना अनिवार्य है, कहीं ऐसा न हो कि इतनी प्रभावना करके भी हम आन्तरिक रूप से "रीते के रीते" ही रहें और आयोजन पूर्ण हो जावे।

व्रतोपवास में ध्यान की ऊर्जा प्राप्त होने से बाहरी भोजन की आवश्यकता नहीं होती। आत्मशक्ति का विकास होने से शारीरिक क्षमता का अभाव नहीं होता। श्रद्धा एव समर्पण से किया गया ध्यान अत्यन्त प्रभावकारी होता है जिससे जीवन में सयम, साधना, त्याग एव धार्मिक आचरण में वृद्धि होने से पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का क्षय धार्मिक अनुष्ठानों से होने लगता है।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि कोई भी धार्मिक अनुष्ठान संकल्प, सस्कारारोपण, मन्त्र साधना, ध्यान, योग एव सयम के बिना पूर्ण नहीं हो सकता है। ध्यान-योग एव मन्त्राराधन अनुष्ठान के प्राण हैं। इनके बिना अनुष्ठान मात्र कलेवर के समान है।

अनुष्ठान द्वारा सम्यक्त्व की प्राप्ति ही मूल लक्ष्य होना चाहिए। जो शास्त्रोक्त विधि विधान से ही प्राप्त हो सकता है।

पुष्प भवन, टीकमगढ (म०प्र०)

व्रत-उपवास वैज्ञानिक अनुचिंतन

-डॉ. अनिल जैन

जैनधर्म में पर्व, व्रत और उपवास-

प्रत्येक वर्ष अनेकों पर्व आते हैं। ये पर्व प्रायः सामाजिक एवं धार्मिक होते हैं, लेकिन कुछ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के होते हैं। ये पर्व हमें रोजमर्रा की आम जिन्दगी से हटकर कुछ विशेष सोचने, चिन्तन-मनन की प्रेरणा देते हैं। पर्व का शाब्दिक अर्थ होता है उत्सव, त्यौहार, धार्मिक कृत्य करने का दिन, विशिष्ट अंश या भाग, संधि स्थान, जोड़ गाँठ। धार्मिक कार्य करने का दिन, त्यौहार, उत्सव जिस दिन हम भक्ति साधना करके प्रतिदिन से अलग दिनचर्या करते हैं।

धार्मिक पर्वों को कुछ विशेष रूप से मनाया जाता है। इन दिनों प्रायः व्रत और उपवास रखा जाता है। व्रत का सामान्य अर्थ होता है भक्ति या साधना का धार्मिक कृत्य, धार्मिक संकल्प, नियम या प्रतिज्ञा का पालन। उपवास का सामान्य अर्थ होता है भोजन का त्याग। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्रत के दिनों में यानि कि धार्मिक पर्व के दिनों में नियम पूर्वक या संकल्प पूर्वक भोजन का त्याग किया जाता है। भारत वर्ष में यदि अकेले जैनधर्म में इन पर्वों को देखा जाय तो प्रतिदिन अनेक पर्व आते हैं। अकेले जैनधर्म में इन पर्वों और व्रतों की संख्या प्रतिवर्ष 450 से अधिक ही होती है। चौबीस तीर्थंकरों के पाँच-पाँच कल्याणक के हिसाब से 120 पर्व (कुछ पर्व एक दिन में दो भी हो जाते हैं) अष्टमी, चतुर्दशी व्रत, अष्टाह्निका एवं दशलक्षण पर्व, सोलहकारण, रत्नत्रय व्रत आदि सभी इनमें सम्मिलित हैं।

हाँलाकि प्रत्येक धर्म में पर्व के दिनों में व्रत और उपवास के महत्त्व को स्वीकार किया गया है, लेकिन जैनधर्म में इन्हें जितना

महत्व दिया गया है, उतना अन्य धर्मों में नहीं दिया गया है। प्राय· सभी जैनेतर धर्मों में व्रत और उपवास का महत्व देवी-देवताओं को प्रसन्न करके भौतिक सुख प्राप्त करने तक ही सीमित समझा गया है, जब कि जैन धर्मानुसार ये व्रत-उपवास मात्र भौतिक सुख ही नहीं बल्कि मोक्ष रूपी अनन्त सुख को प्रदान करने वाले माने गये हैं। बशर्ते कि इन्हें ठीक प्रकार से समझा जाये तथा उनका सम्यक् प्रकार से पालन किया जाये।

जैन धर्मानुसार पर्व के दिनों में काषायिक परिणति से रहित चारों प्रकार के आहार का त्याग करके धर्म-ध्यान पूर्वक दिन व्यतीत करना प्रोषधोपवास कहलाता है[1], उस दिन हिसादि आरम्भ करने का भी त्याग होता है। एकबार भोजन करना प्रोषध कहलाता है तथा सर्वथा भोजन का त्याग करना उपवास कहलाता है। दो प्रोषधों के बीच एक उपवास करना प्रोषधोपवास है। इसे श्रावको के चार शिक्षाव्रतों में से एक व्रत के रूप मे स्वीकार किया गया है। व्रत प्रतिमा में प्रोष-धोपवास सातिचार होता है और प्रोषधोपवास प्रतिमा में निरतिचार[1]। यदि सामान्य गृहस्थ प्रोषधोपवास न कर सकता हो तो वह अपनी शक्ति के अनुसार उपवास. एकाशन या ऊनोदर आदि भी कर सकता है।

उपवास मे प्रात काल एव सायकाल मे सामायिक दिन में व्रत सबधी पूजा, जाप एव स्वाध्याय करना चाहिए और ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए, रात्रि में अल्पनिन्द्रा लेकर कायोत्सर्ग पूर्वक रात्रि बिताना चाहिए[2]। हिंसादि आरम्भ से बचकर दिनभर धर्मध्यान में ही अपने को लगाये रखना चाहिए[3]। जैनधर्म में व्रत और उपवास की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह

से विरक्त होना व्रत है या प्रतिज्ञा करके जो नियम लिया जाता है उसे व्रत कहते हैं और विषय-कषायों को छोड़कर आत्मा में लीन रहना या आत्मा के निकट रहना उपवास है[4]। अतः विषय, कषाय और आरम्भ का सकल्प पूर्वक त्याग करना उपवास है, मात्र भोजन का त्याग करना और दिनभर विषय, कषाय और आरम्भ आदि में प्रवर्त होना तो मात्र लघन है, उपवास नहीं।

जैनधर्म में कहा गया है कि व्रत-उपवास अतिशय पुण्य के कारण हैं, स्वर्ग के कारण हैं, ससार के समस्त पापों का नाश करने वाले हैं। जो व्यक्ति सर्व सुख उत्पादक श्रेष्ठ व्रत धारण करते हैं, वे सोलहवें स्वर्ग के सुखों को प्राप्त कर अनुक्रम के अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करते है[5]।

वैज्ञानिक अनुचिंतन-

इस प्रकार हम देखते है कि जैनधर्म में व्रत और उपवास का बहुत महत्त्व बताया गया है लेकिन व्रत-उपवास में भोजन के त्याग के साथ-साथ हिसादि आरम्भ का त्याग, सामायिक, पूजा, जाप, दान, स्वाध्याय और धर्मध्यान को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। अनेक चितकों ने व्रत-उपवास के महत्त्व को विभिन्न दृष्टि-कोणों से समझने का प्रयास किया गया है। कुछ इन्हें ध्यान और योग के लिए आवश्यक बताते हैं तो कुछ स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। कुछ ने इनका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अध्ययन किया है। हम इनकी चर्चा क्रमश. आगे करेंगे।

योग दर्शन और व्रत-उपवास-

ध्यान और योग का प्रचलन कुछ समय से अधिक हो गया है लेकिन इसका उपयोग बहुत सीमित कर रखा है। वस्तुतः योग एक

प्राचीन साधना पद्धति है। जैनाचार्य शुभचन्द्र स्वामी एवं वैदिक संत पातंजलि[6] ने योग की विस्तृत व्याख्या की है। योग साधना के आठ अंग हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम का अर्थ है निग्रह अर्थात् छोड़ना। पातंजलि ने यम को योग की आधार शिला माना है। यम पाँच हैं- हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन तथा परिग्रह का त्याग। जीवन की वे प्रवृत्तियाँ जो योग के लिए अनिवार्य हैं तथा जो यम के पालन में सहायक है, वे नियम कहलाती हैं। ये नियम भी मुख्यतः पाँच हैं- शौच (अर्थात मन, वचन व काय की शुद्धता), सतोष, तप (बाह्य एव अतरंग), स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान (अर्थात मन, वचन व काय की वे प्रवृत्तियाँ जिससे आत्मा परमात्मा बन जाय।)

आसन शरीर की वह स्थिति है जिससे शरीर बिना किसी आकुलता के स्थिर रह सके और मन को सुख की प्राप्ति हो। प्राणायाम श्वास को नियंत्रित रखने की प्रक्रिया है । बाह्य विषयों से मुक्त होकर अन्तर्मुखी होना प्रत्याहार कहलाता है। शात चित्त को शरीर के किसी स्थान पर एकाग्र करने को धारणा कहते हैं और चित्त वृत्ति से उसी विषय में निरन्तर लगाए रखने को ध्यान कहते हैं। जब केवल ध्येय स्वरूप का ही भान रहे, ध्यान की उस अवस्था को समाधि कहते हैं।

लेकिन आजकल विश्वभर में प्रचलित योगाभ्यास प्रायः आसन और प्राणायाम करने तक ही सीमित हैं। ध्यान के अन्य अंगों का प्राय· पालन नहीं किया जाता है। हाँ इतना अवश्य है कि आज भी योगाभ्यासी को सात्विक एवं सादा भोजन करने की सलाह दी जाती है। पातंजलि ने यम, नियम आदि की जो व्याख्या की है तथा आसन और ध्यान की बात कही है वह वस्तुतः जैन धर्म के ज्ञानार्णव ग्रन्थ

में वर्णित पाँच पापों से विरक्ति(व्रत), कषायादि से बचने, आसन पूर्वक सामायिक, धर्मध्यान और कायोत्सर्ग के प्रतिरूप ही हैं। अतः व्रत और उपवास वस्तुतः समाधि प्राप्त करने की दिशा में जाने का प्रयास ही है।

अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ और उपवास-

हमारे शरीर में आठ प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ पायी जाती हैं। ये हैं- पीयूष, पिनियल, थायराइड़, पेरा-थायराइड़, थायमस, एड्रिनल, पैंक्रियाज, और प्रजनन। ये ग्रंथियाँ निरन्तर रस स्राव करती रहती हैं। इन ग्रंथियों से होने वाला रस स्राव जब तक संतुलित रहता है, मनुष्य स्वस्थ्य बना रहता है और जब इन स्रावों में असन्तुलन होने लगता है, रोग प्रकट होने लगते हैं। हमारी वृत्तियों और कामनाओं का उद्‌गम इनके द्वारा ही होता है। हमारा रहन-सहन चिंतन-मनन, खान-पान तथा आचार-विचार अन्तःस्रावी ग्रंथियों पर बहुत प्रभाव डालते हैं। व्रत-उपवास द्वारा इन ग्रंथियों को नियंत्रण में रखकर इनसे होने वाले रस स्रावों में सन्तुलन किया जा सकता है। व्रत-उपवास में भोजन, विचार और मन पर हमारा नियन्त्रण होने लगता है, फलतः शरीर भी स्वस्थ्य रहता है।

उपवास द्वारा चिकित्सा-

मनुष्य को छोडकर जितने भी प्राणी इस संसार में हैं, उनमें प्रायः एक विशिष्ट बात देखने में आती है। यदि उन्हें कुछ बीमारी हो जाय या कहीं उन्हें चोट लग जाय तो सबसे पहला उनका कदम होता है कि वे भोजन का त्याग कर देते हैं। जब तक वे थोड़े स्वस्थ्य होना प्रारम्भ न कर दें, वे आहार ग्रहण नहीं करते हैं और प्रायः यह देखा गया है कि वे शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं। लेकिन यदि मनुष्य

को कुछ बीमारी हो जाय तो वह दवा के लिए भागता है। वह अपने शरीर को प्राकृतिक रूप से ठीक होने नही देता है। यदि वह वैसा ही करे जैसा बीमारी के समय अन्य पशु-पक्षी करते हैं तो उसे भी निःसन्देह लाभ तो होता ही है और यदि साथ में आत्म-चिन्तन भी करे तो यह लाभ कई गुना हो जाता है।

एक बात नवजात छोटे बच्चो में देखी गई है कि यदि उन्हें शरीर में कुछ परेशानी होती है तो वे प्राय दूध आदि ग्रहण करना नही चाहते हैं। यदि कोई उन्हे चम्मच आदि से दूध देने का प्रयत्न करता है तो वे अपना मुँह बन्द कर लेते हैं। लगता है कि वे भी पशु-पक्षियों की तरह शारीरिक परेशानी के समय भोजन ग्रहण नही करना चाहते हैं। लेकिन हम बडी उम्र के लोग बच्चों को जबरदस्ती आहार कराना चाहते है।

वस्तुत· मनुष्य का शरीर एक अद्भुत और सम्पूर्ण यत्र है। जब वह बिगड जाता है तो बिना किसी दवा के अपने आप को सुधार लेता है, बशर्ते उसे ऐसा करने का मौका दिया जाय। अगर हम अपनी भोजन की आदतो में सयम का पालन नहीं करते है, या हमारा मन, आवेश, भावना या चिन्ता से क्षुब्ध हो जाता है, तो हमारे शरीर में गदगी इकठ्ठी होने लगती है जो जहर का काम करती है तथा रोगों को पैदा करती है। इस गदगी को दूर करने मे उपवास से हमें बहुत मदद मिलती है जिससे मनुष्य स्वस्थ्य हो जाता है।

अष्टमी चतुर्दशी व्रतों का महत्त्व-

जब से प्राकृतिक चिकित्सा की ओर लोगों का रुझान बढ़ने लगा है, तब से अष्टमी-चतुर्दशी के व्रतों का महत्व और अधिक

महसूस होने लगा है। इन व्रतों के महत्व को समझने से पहले हम रोग के बारे में प्राकृतिक चिकित्सकों के विचारों की चर्चा करेंगें।

इन चिकित्सकों का मत है कि बुखार, खाँसी, उल्टी, दस्त आदि किसी रोगी को होते हैं तो वस्तुत· ये रोग नहीं हैं, रोग के लक्षण हैं। रोग के लक्षण कुछ भी हों बीमारी की जड एक ही होती है और वह है हमारे शरीर में विष द्रव्यों(जहर) का इकट्ठा होना । अब प्रश्न यह है कि आखिर शरीर में जहर आता कहाँ से है? इसके उत्तर मे उनका कहना है कि हम जो कुछ भी आहार ग्रहण करते हैं वह एक प्रकार का विष द्रव्य(जहर) भी बनाता है, जिसे अग्रेजी मे टॉक्सिन कहते हैं। यह टॉक्सिन रक्त में मिल जाता है तथा शरीर में प्राकृतिक रूप से निर्मित नौ मल द्वारों द्वारा बाहर फेक दिया जाता है। विष द्रव्यों का बनना और उन्हें स्वाभाविक रूप से रक्त द्वारा बाहर फेंक देना यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। यदि शरीर के अन्दर विष-द्रव्य इतने अधिक मात्रा में जमा हो जायें कि रक्त उन्हें पूरी तरह बाहर न फेक पाये तो वे शरीर के अन्दर ही इकट्ठे होने लगते है और विभिन्न रोगों के रूप में परिलक्षित होते हैं[7] । विष द्रव्यों के जमाव को Toxemia कहते हैं।

आज के औद्योगिक युग में हम विष द्रव्यों का कई अन्य रूपों में भी सीधा सेवन करने लगे हैं। अशुद्ध हवा, अशुद्ध पानी, खेती में प्रयोग आने वाली विभिन्न रासायनिक खादें, अंग्रेजी दवाएँ आदि। ये सब हमारे शरीर में विष द्रव्य की मात्रा को सामान्य से अधिक कर देते हैं और जो लोग अडा, माँस आदि का सेवन करते हैं उनके शरीर में इन विषद्रव्यों की मात्रा और अधिक हो जाती है। अनियमित और अधिक भोजन तो इन्हें बढाता ही है।

आधुनिक चिकित्सक जिन बीमारियों का कारण बैक्टीरिया और वायरस बताते हैं, वस्तुतः उनका मूल भी शरीर के अन्दर होने वाले विष द्रव्यों का जमाव (Toxemia) ही है। यूं तो वातावरण में अनगिनत बैक्टीरिया और वायरस भरे पड़े है। इन्हें हम श्वांस द्वारा, पानी और भोजन द्वारा ग्रहण भी करते रहते हैं। लेकिन ये बैक्टेरिया और वायरस उन्हें ही असर करते हैं जिनके शरीर में विष द्रव्यों का जमाव हो। वस्तुतः ये विष द्रव्य ही उन्हें शरीर के अन्दर फैलने, फूलने और अपनी वश वृद्धि करने का पूरा मौका देते हैं। यदि इन विषद्रव्यों के जमाव को हटा दिया जाये तो बीमारी ठीक हो जाती है।

इन विष द्रव्यों को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय है उपवास करना। उपवास में हम भोजन तो करते नहीं हैं। अत· नया विष द्रव्य तो हम शरीर में बनने नहीं देते हैं तथा जो पुराना अतिरिक्त विषद्रव्य बाकी रह गया होता है उसे बाहर निकलने का मौका मिल जाता है।

आयुर्वेद में भी उपवास के महत्त्व को स्वीकारा गया है[8]। उपवास में आहार का त्याग करने से आमाशय खाली हो जाता है तथा जठराग्नि के रूप में जो ऊर्जा आहार को पचाने का कार्य करती है, उसका उपयोग पाचन तन्त्र की सफाई में लग जाता है। जो अतिरिक्त विषद्रव्य शेष रह जाता है, उसे जठराग्नि समाप्त कर देती है, जिससे रक्त भी शुद्ध होने लगता है तथा शरीर में प्रतिरोध क्षमता बढने लगती है। उपवास शरीर को आरोग्य और शुद्धि प्रदान करता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि जठराग्नि का मुख्य कार्य तो भोजन पचाना है, लेकिन यदि उसे भोजन न मिले तो वह अपनी शक्ति का उपयोग विषद्रव्य को नष्ट करने में लगा देती है। उसके नष्ट हो जाने के पश्चात् भोजन ठीक से पचने लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपवास हमारे शरीर को आरोग्य और शुद्धि प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आज कल की भाग दौड़ की जिन्दगी में तथा फास्ट फूड के जमाने में हम विषद्रव्यों को पहले से अधिक इकट्ठा करते हैं। प्रदूषित वातावरण तथा ऊपर से अग्रेजी दवाएँ (जो स्वय विष होती हैं तथा उनके ऊपर कई बार लिखा भी होता है कि ये विष हैं, इन्हें बच्चों से दूर रखो) इन्हें और अधिक बढाते हैं। ऐसी स्थिति में सप्ताह में एक दिन का उपवास करना आरोग्य की दृष्टि से हितकर ही है। हमारे आचार्यों ने अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास रखने का निर्देश दिया है। सभवत उनकी भी मूल भावना यही रही होगी कि विषद्रव्यों का जमाव शरीर में न हो पाए। यदि शरीर निरोगी होगा तो ध्यान अच्छी तरह से लगाया जा सकता है तथा अन्तर्मुखी हुआ जा सकता है।

कुछ लोग प्राय यह शंका करते हैं कि यदि उपवास ही रखना है तो अष्टमी और चतुर्दशी को ही क्यों किसी और दिन क्यों नहीं? इस पर कुछ विचारकों ने अपना चिन्तन व्यक्त किया है कि इन दिनों चन्द्र की स्थिति कुछ ऐसी होती है जो हमारी भावनाओं को उत्तेजित या शिथिल करती है, चन्द्रमा से जिस प्रकार समुद्र में ज्वार-भाटा आते हैं उसी प्रकार शारीरिक स्थिति भी प्रभावित होती है। व्रत करने से शरीर में जल की मात्रा कम होने से यह प्रभाव कम हो जाता है। अतः परिणाम शांत रहते हैं।

उपवास पर गाँधी जी के विचार-

गाँधी जी ने आत्मा और शरीर दोनों को निरोगी रखने के लिए उपवास को बहुत महत्वपूर्ण माना है[9]। उन्होंने उपवास में भोजन त्याग करने के साथ-साथ रामनाम का जाप करने की सलाह भी दी है। यहाँ रामनाम से तात्पर्य कुछ भी हो सकता है- ईश्वर, अल्लाह, गॉड या फिर कुछ भी जिस पर आप श्रद्धा रखते हो। प्राकृतिक उपचार के दौरान भी भोजन त्याग के साथ-साथ रामनाम जपने से स्वास्थ्य जल्दी से अच्छा हो जाता है। उनका यह विश्वास था कि स्वास्थ्य के बारे में सादे नियमों को पालन करके मानव-शरीर, मन और आत्मा को पूर्ण स्वस्थ्य स्थिति में रखा जा सकता है।

उपवास के दौरान अहकार आदि के अभाव की बात भी उन्होने कही है। यदि इन कषायो का त्याग हो, रामनाम का जाप करता हो और भोजन का त्याग कर दिया हो तो निरोगी बनने मे बहुत मदद मिलती है। वे लिखते है -" मैं मानता हूँ कि निरोग आत्मा का शरीर निरोग होता है। अर्थात् ज्यो-ज्यो आत्मा निरोगी-निर्विकार होती जाती है, त्यों-त्यो शरीर भी निरोग होता जाता है। लेकिन यहाँ निरोग शरीर के मायने बलवान शरीर नहीं है। बलवान आत्मा क्षीण शरीर मे भी वास करती है। ज्यों-ज्यो आत्म बल बढता है, त्यों-त्यों शरीर की क्षीणता बढ़ती है। पूर्ण निरोग शरीर क्षीण भी हो सकता है।"

यह सर्व विदित है कि गॉधीजी ने स्वय कई-कई दिनों के उपवास किये थे। इन उपवासो के दौरान उन्हें जो अनुभव हुए उन्हें लोगो के सम्मुख रखा। उन्होंने अपने आत्म चरित 'सत्य के प्रयोग' नामक पुस्तक मे भी इनकी चर्चा की है।

क्या अधिक उपवासों से जीवन को खतरा है ?-

यह एक दिलचस्प प्रश्न है कि क्या लगातार बिना भोजन के जीवित रहा जा सकता है ? अधिकतर लोगों का विचार यह रहा है कि बिना भोजन के जीवन सभव नहीं है। लेकिन इस मान्यता को गलत सिद्ध कर दिया है- कालीकट (केरल) के रिटायर्ड मैकेनिकल इन्जीनियर श्री हीरा रतन माणक ने[8]। जब उन्होंने भगवान महावीर का जीवन चरित्र पढ़ा तो सौर ऊर्जा शोध के प्रति उनकी जिज्ञासाएँ प्रबल होने लगीं। भगवान् महावीर आतापना (सूर्य की रोशनी में साधना करना) क्यों लेते थे ? उनके साढ़े बारह साल के कठोर साधना काल में उनको कमजोरी, थकावट एवं प्रमाद अनुभव क्यों नहीं हुआ ? उन्हें भूख क्यो नही लगती थी ? उन्होंने अपने साधकों को धूप मे ही भिक्षा लाने एव विहार करने का निर्देश क्यों दिया ? ऐसे अनेक प्रश्नों पर उनका गहन चिन्तन चलने लगा।

श्री माणक ने कुछ मौलिक प्रयोग अपने ऊपर करने प्रारम्भ किये। उन्होंने प्रतिदिन 10-12 कि मी घूमना प्रारम्भ किया। उन्होंने पाया कि ऐसा करने से उनकी भूख की इच्छा में कमी आई। फिर उन्होंने शनै· शनै· सूर्य से सीधे ऊर्जा ग्रहण करने की मौलिक पद्धति विकसित की और फिर प्रात काल सूर्य को 10-12 मिनिट तक देखना प्रारम्भ किया। अब तो उनकी भूख और भी कम होने लगी। उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगे। फिर उन्होंने उपवास करने प्रारम्भ कर दिये। 18 जून 1995 से 16 जनवरी 1996 तक उन्होंने गर्म पानी और सूर्य ऊर्जा के सेवन मात्र से सारे कार्यक्रम नियमित रूप से करते हुए उपवास किए। उपवास के बावजूद उनका स्वास्थ्य सतोषप्रद रहा।

अपने इस सफल प्रयोग से प्रेरित होकर चिकित्सकों की निगरानी में उन्होंने पुनः 1 जनवरी 2000 से 15 फरवरी 2001 तक 411 दिनों का उपवास किया। उपवास के दौरान चिकित्सकों ने उनके स्वास्थ्य को पूर्णत सन्तोष- जनक और तनाव एवं रोगों से मुक्त पाया। उन्हें कोई रोग नहीं हुआ तथा उनके सारे अंग ठीक प्रकार से कार्य कर रहे थे। 65 वर्ष की अवस्था में भी उनके शरीर में न्यूरोन का निर्माण होना पाया गया। इन उपवासों के दौरान ही उन्होंने पालीताना तीर्थ की लगभग 3500 सीढ़ियों को आसानी से चढकर चिकित्सकों को विस्मय मे डाल दिया। इस सदर्भ में उनका पूरा विवरण गुजरात मेडिकल के मार्च 2001 के जनरल में प्रकाशित हुआ है। आज भी वे लगभग न के बराबर तरल पदार्थ ग्रहण करते हैं। अमेरिका स्थित सगठन नासा के निमन्त्रण पर वे वहाँ गये हुए हैं। वहाँ वैज्ञानिक यह जानना चाहते है कि आखिर मनुष्य बिना खाये-पीये कैसे जीवित रह सकता है ?

श्री माणक ने अपने इन प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि अधिक उपवास करने से मनुष्य की मृत्यु नहीं होती है। यदि कुछ सूर्य ऊर्जा को सीधा ग्रहण कर लिया जाए तो भूख पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है। विधिवत उपवास करने से शरीर को निरोगी बनाया जा सकता है तथा इच्छा शक्ति को भी दृढ़ बनाया जा सकता है। अभी लोगों में यह विचार भी पल्लवित होने लगा है कि भूख से कम लोग मरते हैं जबकि ज्यादा खाने से अधिक लोग मरते हैं।

उपवास आत्मशुद्धि की विशेष प्रक्रिया-

अनेक चिकित्सकों ने लम्बे समय तक उपवास करने के दौरान होने वाली प्रक्रियाओं का गहन अध्ययन किया[7] । उन्होंने जो अनुभव

प्राप्त किये उन्हें सक्षेप में निम्न प्रकार से कहा जा सकता है-

(1) भोजन न लेने से पाचन तंत्र को पाचन क्रिया से मुक्ति मिलती है जिससे सम्पूर्ण पाचन तन्त्र में शुद्धि का कार्य प्रारम्भ हो जाता है।

(2) सम्पूर्ण शरीर में अब पोषक तत्त्व(आहार) न मिलने से रचना कार्य रुक जाते हैं और पूरे शरीर में स्व-शुद्धिकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। डा० लिण्डनार के शब्दों में कहें तो पचे हुए आहार का पेशियों में आत्मसात् होना रुक जाता है। जठर और आँतों की अन्तर्त्वचा, जो हमेशा पचे हुए आहार को चूसती है, वह अब जहर को बाहर फेंकने की शुरूआत कर देती है।

(3) शरीर में किसी जगह गाँठ या विषद्रव्यों का जमाव हुआ हो तो उपवास के दौरान ऑटोलिसिस की प्रक्रिया द्वारा वह विसर्जित होने लगता है। उसमें रहने वाला उपयोगी भाग शरीर के महत्त्वपूर्ण अगों(हृदय, मस्तिष्क आदि) को पोषण प्रदान करने के काम आता है, जबकि जहर शरीर से बाहर फिकने लगता है। गॉठों आदि का विसर्जन होने के बाद कम उपयोगी पेशियाँ विसर्जित होकर महत्त्व के अगों के पोषण कार्य में उपयोगी होने लगती है। चिकित्सकों का यह भी कहना है कि 10 दिनों का उपवास कराने के बाद रोगी को रोग मुक्त करने के कई उदाहरण मिलते हैं[10]।

उपवास के दौरान शरीर में कई रासायनिक परिवर्तन होते हैं तथा अगों में भी परिवर्तन होते हैं[11]। उदाहरण के तौर पर 20 जून 1907 को डा० इल्स के उपवास के प्रथम दिन रक्त का परीक्षण करने पर देखा गया कि श्वेतकण 5300 प्रतिघन मिलीलीटर, लालकण 4900000 प्रतिघन मिलीलीटर और हीमोग्लोबिन 90

प्रतिशत था। दिनाक 2 अगस्त 1907 को उपवास के 44वें दिन तीसरी बार उनके रक्त की परीक्षा की गई तो श्वेतकण 7328 प्रतिघन मिलीलीटर, लालकण 5870000 प्रतिघन मिलीलीटर और हीमोग्लोबिन 90 प्रतिशत था। इससे स्पष्ट होता है कि 44 दिनों के उपवास के बाद रक्त में महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ।

उपवास से रोग मुक्ति-

रोग दो प्रकार के होते हैं- तीव्र रोग तथा हठीले रोग। तीव्ररोग अपना असर तुरन्त दिखाते हैं एव अधिक तीव्रता के साथ प्रकट होते हैं। जबकि हठीले रोग सालों-साल चलते हैं। दोनों प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिए उपवास लाभदायक होते हैं। अलग-अलग तरह के बुखार, दस्त, सर्दी, जुकाम जैसे रोग तीव्र होते हैं, इन रोगों की स्थिति में उपवास से लाभ होना देखा गया है। यह कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनका वैज्ञानिकों/चिकित्सकों ने स्वय निरीक्षण किया है-

(1) क्षय रोग मे उपवास से फेफडों के रोगो में थोडे दिन का उपवास बहुत लाभकारी होता है।[12]

(2) उपवास से हृदय को खूब शक्ति मिलती है तथा हृदय मजबूत होता है।[13]

(3) उपवास से हृदय का बोझ हल्का हो जाता है तथा उक्त रक्तचाप निश्चित ही कम हो जाता है।[13]

(4) उपवास से जठर को खूब आराम मिलता है और स्वयं ठीक होने लगता है। इससे पाचन सुधरता है, फैला हुआ जठर सकुचित होकर स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है, अल्सर मिट जाता है, सूजन और जलन दूर हो जाती है[14]।

(5) कैंसर जैसे रोगों को भी उपवास द्वारा ठीक करने के कई उदाहरण मिलते हैं।[13]

(6) दमा, सन्धिवात, आधाशीशी, अतिसार, दाद, खाज, पौरुष ग्रंथि की वृद्धि, जननेन्द्रिय के रोग, लकवा, मूत्रपिण्ड के रोग, पित्ताशय की पथरी, छाती की गाँठ, बाँझपन आदि को भी उपवास द्वारा ठीक करने के कई उदाहरणों को डॉ० एच.एम. शेल्टन ने अपनी पुस्तक "Fastıng can save your lıfe" में लिखा है।[14]

(7) श्री गिदवाणी ने अपने अनुभवों के आधार पर लिखा है कि अपने आहार को नियन्त्रित अथवा कम करने से घुटने के दर्द तथा आँख की खुजली को ठीक किया जा सकता है[7]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न रोगों के उपचार में उपवास का बहुत महत्त्व है। रोग होने पर उपचार करना एक बात है। एक कहावत है-"Precautıon ıs better than cure" (इलाज से अच्छी सावधानी है।) अत अपने शरीर को निरोगी बनाये रखने के लिए समय-समय पर उपवास करते रहना चाहिए।

उपवास के पश्चात् हमें एक विशेष बात का ध्यान रखना चाहिए। उपवास तोड़ने पर हमें तुरन्त खाने पर टूट नहीं पड़ना चाहिए। बल्कि बहुत ही हल्के भोजन के साथ ही उपवास तोड़ना चाहिए। यदि उपवास अधिक दिनों का है तो पहले हल्के पेय पदार्थ जैसे-फलों के रस आदि, फिर दाल या दलिया का सूप या खिचड़ी आदि लेना चाहिए। फिर क्रमशः हल्के और कम भोजन से प्रारम्भ करके सामान्य भोजन पर आना चाहिए। यदि कोई आधिक दिनों के उपवास के पश्चात् सीधे सामान्य भोजन पर उतर आता है तो उसे लाभ होने के बजाय हानि होने की पूरी संभावना होती है।

व्रत-उपवासों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव-

कुछ समाज शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने व्रत उपवास का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया है। उनका मानना है कि पर्व, व्रत और उपवास मनुष्य के मन पर एक सकारात्मक प्रभाव डालते हैं[15]। ये मानव की मनोवृत्तियों एव विचारधाराओं में परिवर्तन लाते हैं। ये मन को शुद्ध करने के सशक्त साधन हैं।

कई व्रतों से सम्बन्धित कुछ प्रेरणादायक कथाएँ जुड़ी रहती हैं। जब हम इन कथाओ को पढ़ते हैं तो हमारे भाव भी शुभ कार्यों की ओर प्रवर्त होने लगते हैं। कुछ व्रत-कथाओं में वर्णन आता है कि व्रतों का ठीक प्रकार से पालन किया जाय तो वे स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं। इस प्रकार इन कथाओं से इच्छित फल प्राप्ति के लिए व्रत-उपवास करने की प्रेरणा मिलती है।

इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि आरोग्य एव रोगमुक्ति के लिए भी व्रत और उपवास का बहुत महत्त्व है। साथ ही पारलौकिक सुख, शांति एव मोक्ष की प्राप्ति में भी ये बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। यदि कोई इनके बारे में अधिक खोजबीन करे बगैर मात्र श्रद्धावश सम्यक् प्रकार से व्रत उपवास करता है तो भी उसका शरीर तो निरोगी बनेगा ही, साथ में वह स्वय अनन्त सुख प्राप्त करने का अधिकारी भी बनता है।

संदर्भ

1 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' भाग-3, -क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी

2 'वसुनन्दी श्रावकाचार' गाथा स 286

3 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' श्लोक स 154

4 'जैन दर्शन पारिभाषिक कोश' -मुनि क्षमासागर

5 'व्रत विधान सग्रह' पृष्ठ 25

6. 'पातंजलि योग दर्शन'
7. 'प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग मुक्ति' -वी पी. गिदवानी
8. 'आरोग्य आपका' -डा० चचलमल चोरडिया
9 'कुदरती उपचार' -गाँधी जी
10 "The hygienic system" vol III Fasting & Sumbathing by Dr H M Shelton (4th Revrised Edition 1963), Publication Dr Shelton's Health school, san Antonio, Texas [page 79]
11 वही, [page 133]
12 वही, [page 139]
13. वही, [page 141]
14 Fasting can save your Life by Dr H M Shelton
15 'सर्वोदयी जैन तंत्र' ? -डा० नन्दलाल जैन

बी-26, सूर्यनारायण सोसायटी, विसत पेट्रोल पम्प के सामने
साबरमती, अहमदाबाद (गुजरात)

व्रत कैसे करें ?

-मनीष जैन 'संजू'

विरतिर्व्रतम्-विषय कषाय से विरक्ति ही व्रत है शक्त्यनुसार व्रत करना अनिवार्य है। बिना व्रत-अनुष्ठान के संवर एवं निर्जरा सभव नहीं है। व्रत लेने से पूर्व व्रत की सम्पूर्ण जानकारी होना चाहिए-यथा व्रत की तिथि, विधि, अवधि, जाप मन्त्र, पूजा एवं उद्यापन आदि। व्रत बिना विचारे एव एक दूसरे की देखा-देखी नहीं लेना चाहिए। स्वय की शक्ति एव तात्कालिक परिस्थितियाँ ध्यान में रखते हुए ही व्रत का सकल्प करना चाहिए।

मुख्यत· कन्याओं एव नव विवाहिताओं में व्रत लेने की होड़ लगी रहती है, प्रदर्शन एव परम्परा के निर्वहन की भावना अत्यधिक प्रबल रहती है। व्रत का उद्देश्य ख्याति लाभ न होकर इन्द्रिय विषयों पर अकुश लगाकर भोगों से विरक्त होना है। व्रत के दिनों में पूर्ण संयमित चर्या होना चाहिए यथाः-

(1) व्रत के दिन अभक्ष्य कैम्पा, आइस्क्रीम, चाय, कॉफी, पानमसाला, पान, सिगरेट, टाफी, बिस्कुट, केक, फास्टफूड (चाऊमीन, न्यूड्ल्स) आदि के त्याग के साथ बाजार की बनी समस्त भोज्य सामग्री तथा बाजार के अमर्यादित आटा, बेसन, बूरा, तेल, घी, नमक एवं मसालों का प्रयोग न करें।

(2) सौन्दर्य प्रसाधन, क्रीम, पावडर, शैम्पू, चर्बी वाले साबुन, लिपिस्टिक, नैलपॉलिस, आफ्टर शैव लोशन, इन्टीमेट, स्प्रे, चमड़े की सामग्री, कोशा के कपड़ों का निषेध करें।

(3) अश्लील साहित्य, टी०व्ही०, सिनेमा, हिसक व्यापार, पर निदा, झूठ, चोरी, कुशील एवं अधिक परिग्रह सग्रहण से बचें।

(4) पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए अत्यधिक श्रृगार, आभूषण, रंगीन वस्त्र, सामाजिक भोज, पार्टियों, पिकनिक एव शादी आदि समारोहों में व्रत के दिन नहीं जायें।

(5) शयन के लिए पुराने गद्दे, रजाई, डबल बैड का उपयोग न करके शुद्ध कपड़ों का उपयोग करे।

(6) अति सरम्भ (राग के कार्यों की योजना), समारम्भ (राग के कार्य हेतु सामान खरीदी) एव आरम्भ (विशेष सफाई, कपड़े धोना, गेहूँ आदि साफ करना, दुकान के कार्य करना) न करें।

(7) व्रत के दिन मजन, सेविग, हेयर कटिग, एवं ब्यूटी पार्लर आदि का उपयोग न करें।

(8) नव विवाहिता स्त्रियों को दीर्घ अवधि वाले व्रत नहीं लेना चाहिए क्योंकि प्रसूति काल में व्रत सकल्प का पालन करना अत्यत दुरूह हो जाता है।

(9) अविवाहित वरिष्ठ कन्याओं को इस प्रकार के व्रतों का सकल्प करना चाहिए जिनका निर्वाह विवाह के पश्चात् भी सरलता से हो सके।

(10) वृद्धों को शारीरिक क्षमता एव स्वास्थ्य की अनुकूलता के अनुरूप ही व्रत लेना चाहिए क्योंकि व्रत का मूल उद्देश्य कषाय को कृश करने का होता है काय क्लेश का नहीं।

(11) व्रत ग्रहण करने के पूर्व गुरु के समक्ष सभी परिस्थितियों का विचार करके ही प्रोषध/उपवास/एकाशन पूर्वक व्रत का संकल्प करना चाहिए।

(12) रसी पूर्वक भोजन का निर्देश होने पर इसका कडाई से पालन करें।

(13) व्रत के दिन यात्रा न करें, यदि लम्बी यात्रा के बीच कोई व्रत पड़े और देवदर्शन की स्थिति न बने तो यात्रा के दौरान भी जाप, भावपूजा, स्वाध्याय करके उपवास करें।

व्रत के दिन प्रात. सामायिक, जाप करके, छने जल से शौच स्नानादिक से निवृत होकर शुद्ध धोती दुपट्टा या साड़ी पहिनकर जिनदर्शन एव पूजा को ईर्या समिति पूर्वक जायें। सलवार कुर्ता, पायजामा आदि खण्ड वस्त्र हैं जबकि पूजा अखण्ड वस्त्र में ही करने का विधान है। धुली अष्टद्रव्य से धार्मिक भावना एव उत्साह के साथ दैनिक एव व्रत की पूजा बहुमान पूर्वक सम्पन्न करें। **व्रत के मन्त्र की कम से कम तीन जाप करें।** समयानुसार भक्तामर, तत्त्वार्थसूत्र आदि का पाठ करें। नगर में साधु सान्निध्य हो तो आहार दान का सौभाग्य प्राप्त करें। दोपहर में स्वाध्याय कर सायकाल जिनदर्शन सामायिक जाप एव व्रत की जाप करें। व्रत में इतना बहुमान एवं उत्साह जागृत करें जिससे भूख का अहसास ही न हो। हमारा चित्त काषायिक एव विपरीत परिस्थितियों में भी स्थिर रहें तभी व्रत की सार्थकता है। सामूहिक रूप से व्रत की पूजन, कथावाचन, स्तोत्रपाठ, स्वाध्याय, जाप, ध्यान, प्रतिक्रमण करने का प्रयास करें जिससे एक दूसरे का मनोबल बढ़ता रहे, पाठोच्चार-शुद्धि, व्रत-चर्या में दृढ़ता, व्रत के प्रति बहुमान, प्रेरणा एव उत्साह बना रहे।

रसी के दिन एक रस का त्याग करके अन्य रस का अधिक उपयोग न करें। रसी का तात्पर्य इंद्रिय संयम से है। रस त्याग का उद्देश्य उस रस के प्रति आशक्ति का कम करना है। अत. मीठे के त्याग के दिन बूरे को छोड़ कर किसमिस आदि एव खटाई त्याग के दिन नीबू आदि को छोड़कर दही आदि का सेवन करना उचित नहीं है।

रसी इस प्रकार हैं-

रविवार-नमक, सोमवार-हरी, मंगलवार-मीठा,
बुधवार-घी, गुरुवार-दूध, शुक्रवार-दही,
शनिवार-तेल

व्रत की तिथियों में मासिक अशुद्धि या सूतक-पातक का काल आने पर भी चर्या व्रतानुसार ही होगी अर्थात् घर में ही स्मरणपूर्वक जाप पूजा (बिना आसन एवं बिना उँगली चलाये) तथा उपवास एकाशनादि करना चाहिए। ऐसा करने से व्रत का क्रम भग नहीं होगा परन्तु अशुद्धिकाल में पडने वाले व्रतों की गणना नहीं की जावेगी। यदि अशुद्धि काल में अंतिम व्रत पड़ता हो तो अशुद्धि काल के पश्चात् अगली तिथि में व्रत करके अगले दिन उद्यापन करें। व्रत काल में अत्यधिक अस्वस्थ्यता या दुर्घटना आदि घट जाने पर यदि संभव हो तो हॉस्पिटल मे व्रतानुरूप चर्या करें यदि संभव हो तो स्वस्थ्य होने पर व्रत को पूर्ववत् ही करें तथा मुनिराज से प्रायश्चित्त लेकर छूटे व्रतों की पूर्ति करें।

एक ही तिथि में दो या तीन व्रत होने पर सभी व्रतों की जाप एव पूजा अनिवार्य है। एक ही तिथि में पड़ने वाले सभी व्रतों की गणना की जावेगी। जैसे दशलक्षण पर्व में यदि अन्य व्रत भी हों तो उनकी जाप एव पूजा करके व्रत सम्पादित करें।

व्रतोपयोगी आवश्यक विधियाँः-

1. कांजी- सिर्फ पानी और भात मिलाकर खाना अथवा सिर्फ चावलों का धोवन या मांड पीना।

2. आँवली- छहों रस के बिना सिर्फ नीरस एक अन्न पानी के साथ लेना।

3. बेलड़ी- पानी, भात और मिर्च मिलाकर खाना।

4. एकलठाना- मात्र एक बार का परोसा भोजन संतोष पूर्वक लेना।

5. आचाम्ल(आमिल)- भात एव इमली पानी लेना।

6. रूक्षाहार- (नीरस आहार) छहों रस के बिना आहार पानी लेना।

7 तदुलाहार- चावल एव चावल के बने सामान्य पदार्थ लेना।

8 मुनिवृत्ति- मौन एव अन्तराय पूर्वक मुनि वृत्ति से दिन मे एक बार ही आहार-जल लेना।

अभक्ष्यों के नाम-

ओला घोर बडा निशि भोजन, बहु बीजक बैंगन सधान।
बड पीपल ऊमर कठूमर, पाकर फल जो होय अजान।।
कन्दमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान।
फल अति तुच्छ तुषार चलित रस, ये बाइस अभक्ष्य बखान।।

इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत अभक्ष्य पदार्थ हो सकते हैं जिन्हें स्वविवेक से ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, नाम, वर्ण आदि की अप्रशस्तता, प्रतिकूलता देखकर छोड देना चाहिए।

भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ एवं मर्यादाएँ

ऋतु परिवर्तन अष्टान्हिक पर्व पूर्णमासी से अगली अष्टान्हिका पूर्णमासी तक माना गया है। मगसिर वदी 1 से फाल्गुन सुदी 15 तक शीतकाल, चैत्र वदी 1 से आषाढ सुदी 15 ग्रीष्मकाल, श्रावणवदी 1 से कार्तिक सुदी 15 तक वर्षाकाल।

क्र.	पदार्थ का नाम	शीतकाल	ग्रीष्मकाल	वर्षाकाल
1.	शक्कर या गुड़ से बना बूरा घर में बनाने के बाद	1 महीना	15 दिन	7 दिन
2.	दूध दुहने के पश्चात्	48 मिनिट	48 मिनिट	48 मिनिट
3.	दूध उबालने के पश्चात् (स्वाद बिगड़ने पर त्याज्य है)	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
4.	छाछ (बिलौते समय पानी डालें तो)	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
5	पीछे कच्चा पानी डालें तो	48 मिनिट	48 मिनिट	48 मिनिट
6	दही (गर्म दूध का)	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
7.	घी	जब तक स्वाद न बिगड़े		
8	गुड	जब तक स्वाद न बिगड़े		
9	तेल	जब तक स्वाद न बिगड़े		
10	आटा सभी प्रकार का	7 दिन	5 दिन	3 दिन
11	मसाले पिसे हुए	7 दिन	5 दिन	3 दिन
12.	नमक पिसा हुआ	48 मिनिट	48 मिनिट	48 मिनिट
13.	नमक मसाला पिसा हुआ/गर्म किया हुआ	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
14	नमक किसी पकवान मेंजब तक उस पदार्थ की मर्यादा है।			
15	खिचड़ी, कड़ी, रायता, दाल, सब्जी, भात इत्यादि अधिक पानी वाले पदार्थ	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
16.	मौइन वाले पकवान	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
17.	पूड़ी, पराठा, हलुवा, बड़ा, पुआ, बबरा, मंगौडी, जलटिक्की, कचौड़ी,	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
18.	बिना पानी के पकवान लड्डू, बर्फी, पंजीरी, कटे हुए काजू, लाई मेवा आदि	7 दिन	5 दिन	3 दिन

19. मीठा मिला दही तथा मक्खन48 मिनिट48 मिनिट 48 मिनिट
20. गुड़ मिला दही, राई नमकसर्वथा अभक्ष्य है।
    मिला दही, छांछ दही में दाल मिली हुई (द्विदल)
21. अमर्यादित नवनीत(मक्खन), सर्वथा अभक्ष्य है।
    अनजानफल, अनाज आदि
22. औषधि, चूर्ण, काष्ट, सौंठ,जब तक औषधि खराब न हो
    (2 महीना तक) वनस्पतियाँ, पीपल, बहेड़ा
23. मूल, बीज, अदरक, हल्दीसर्वथा अभक्ष्य हैं।
    आदि गीले हों तो
24. प्रकृति के विरुद्ध अनिष्टसर्वथा अभक्ष्य है।
    कारक पदार्थ
25 अनुपसेव्य (जिनका सेवनसर्वथा अभक्ष्य है।
    लोक विरुद्ध हो)

1	छना हुआ पानी	48 मिनिट
2	प्रासुक पानी (कम गर्म)/ पिसी लोंग डालकर	6 घण्टे
3	उबला हुआ पानी	24 घण्टे
4	भेड़ बकरी का प्रसूति के बाद दूध	8 दिन के बाद
5	गाय का दूध (प्रसूति के बाद)	10 दिन के बाद
6	भैंस का दूध (प्रसूति के बाद)	15 दिन के बाद

सूर्योदय के काल में विभिन्नता होने के कारण अलग-अलग पचागों में तिथि का मान हीनाधिक होता है। ऐसी स्थिति होने पर व्रत करने के लिए आचार्यों ने निम्नानुसार निर्देश दिये हैं।

तिथि ज्ञान के लिए दो मत हैं हिमाद्रि और कुलाद्रि। हिमाद्रि मत उदयकाल के तिथि के होने पर ही तिथि को ग्रहण करता था किन्तु कुलाद्रि मत छह घटी प्रमाण उदय काल में तिथि होने पर ही तिथि को व्रत के लिए ही ग्रहण करता था। षट् कुलाचल होने के कारण छ. घटी प्रमाण उदय काल में तिथि मानने से ही मत का नाम कुलाद्रि मत या कुलाद्रि घटिका पड़ गया।

सोदयं दिवसं ग्राह्यं, कुलाद्रिघटिकाप्रमम्।
व्रते वटोपमागत्यं गुरुः प्राहस्त्विति स्फुटम्।।

-व्रत तिथि निर्णय पृ० 81/9

छह घड़ी प्रमाण तिथि के होने पर दिनभर के लिए वह तिथि मान ली जाती है, अतः व्रत ग्रहण, उपनयन, प्रतिष्ठा आदि कार्य उस ही तिथि में करना चाहिए।

मुनिसुव्रत पुराण के आधार पर व्रत तिथि प्रमाणः-

षष्ठांशाऽप्युदये ग्राह्यः तिथि-व्रत-परिग्रहेः।
पूर्व-मन्यतिथेर्योगो व्रत हानिः करोति च।।

-व्रत तिथि निर्णय पृ० 107/1

अर्थ-व्रत करने वालों को सूर्योदय काल में षष्ठांश तिथि के रहने पर व्रत करना चाहिए। षष्ठाश से अधिक तिथि होने पर तो व्रत किया जा सकता है, पर न्यूनांश होने पर व्रत नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि अन्य विधि का संयोग होने से व्रत हानि होती है, व्रत का फल नहीं मिलता है।

इस श्लोक में अपि शब्द भी आया है, जिसका अर्थ षष्ठांश से अधिक तिथि ग्रहण करने का है अर्थात् षष्ठाश से अधिक या षष्ठांश तुल्य तिथि उदय काल हो तभी व्रत किया जा सकता है। षष्ठांश से अल्प तिथि के होने पर व्रत नहीं किया जा सकता।

व्रत के लिए छः घड़ी प्रमाण तिथि न मानने वालों के दोषः-

ये ग्रह्णन्ति सूर्योदयं शुभदिने सद्दृष्टिपूर्वा नराः
तेषां कार्यमनेकधा व्रतविधिर्मार्गमेवेति च।
धर्माधर्म-विचारहेतु रहिताः कुर्वन्तु मिथ्यानिशम्
तिर्यक् शुभ्रमवाश्रिता जिनपते-र्बाह्यंगता धर्मतः।।

-व्रत तिथि निर्णय पृ० 86/10

जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदय में रहने वाली तिथि को ही शुभ दिन मानते हैं उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहने के कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रत विधि और कार्य भी अनिश्चित होते हैं। वे धर्म और अधर्म के विचार से रहित होकर असत् तिथि में व्रत करते हैं, जिससे धर्म के विरुद्ध आचरण करने के कारण तिर्यंच, नरक गति को प्राप्त होते हैं। अभिप्राय यह है कि उदय कालीन तिथि को ही प्रमाण मानकर व्रत करना आगम विरुद्ध है।

तिथि ह्रास में व्रत करने का विधानः-

त्रिमुहूर्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्तं समेति च।
सा तिथिः सकला ज्ञेया उपवासादिकर्मणि।।

-व्रत तिथि निर्णय पृ० 88/11

सूर्योदय के समय तीन मुहूर्त अर्थात् छह घडी से लेकर छह मुहूर्त यदि बारह घडी पर्यन्त प्रतिपादित तिथियों के होने पर व्रत किये जाते हैं। व्रत के दिन यदि तिथि छह घटी से कम हो तो एक दिन पूर्व ही व्रत करना चाहिए यदि शुक्रवार को अष्टमी 4 घटी हो तो गुरुवार को अष्टमी करना चाहिए।

व्रतों को अपने अनुसार नहीं बल्कि आगम के अनुसार पालना चाहिए। हम अपनी सुविधा के अनुसार व्रतविधि में परिवर्तन कर लेते हैं और कुछ देखा-देखी आचरण भी करने लगते हैं। उपवास का एकाशन, एकाशन में शाम को दूध और फल और उसमें भी चाय आदि अभक्ष्य का सेवन करते हुए भी अपनी भूल स्वीकार नहीं करते हैं। व्रत दिखावे की चीज नहीं अपितु अव्रतों, इन्द्रिय विषयों की आशक्ति से विरक्ति का नाम व्रत है। व्रत मोक्ष प्राप्त करने का साधन है साध्य नहीं।

-कटरा बाजार, टीकमगढ़ (म०प्र०)

मंगल-पञ्चक

गुणरत्नभूषा विगतदूषा. सौम्यभाव निशाकराः
सद्बोधभानुविभा-विभासित-दिक्चया विदुषांवराः
निःसीम-सौख्य-समूह-मण्डित-योग-खण्डित-रतिवराः
अर्हंत इह कुर्वन्तु मंगलमद्य आदि-जिनेश्वराः।।1।।

सद्ध्यान-तीक्ष्ण-कृपाण-धारा-निहत-कर्म-कदम्बका
देवेन्द्र-वृन्द्र-नरेन्द्र-वन्द्याः प्राप्त-सुख-निकुरम्बका
योगीन्द्र-योग-निरूपणीया. प्राप्त-बोध-कलापका
कुर्वन्तु मगलमत्र ते सिद्धा· सदा सुखदायका ।।2।।

आचार-पञ्चक-चरण-चारण-चुञ्चव· समताधराः
नानातपोभरहेति-हापित-कर्मका सुखिताकरा
गुप्तित्रयी परिशीलनादि-विभूषिता वदता वराः
कुर्वन्तु मगलमत्र ते श्री-सूरयोऽर्जित शम्भरा·।।3।।

द्रव्यार्थ-भेद-विभिन्न-श्रुतभरपूर्ण-तत्त्व-निभालिनो
दुर्योग-योग-निरोधदक्षा· सकल-गुणवर-जालिन
कर्तव्य-देशन-तत्परा विज्ञान-गौरव-शालिन.
कुर्वन्तु मगलमत्र ते गुरुदेव-दीधित-मालिन·।।4।।

सयम-समित्यावश्यकापरिहाणि-गुप्ति-विभूषिताः
पञ्चाक्ष-दान्ति-समुद्यता· समता-सुधा-परिभूषिताः
भूपृष्ठ-विष्टर-शायिनो विविधर्द्धिवृन्द-विभूषिताः
कुर्वन्तु मगलमत्र ते मुनयः सदा शम-भूषिताः।।5।।

□□□

मंगलाष्टक पाठ

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिता· सिद्धाश्च सिद्धीश्वरा
आचार्या जिन-शासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायका·
श्री सिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः
पञ्चैते परमेष्ठिन. प्रतिदिन कुर्वन्तु नो मंगलम्।।1।।

श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योतरत्नप्रभा
भास्वत्पाद-नखेन्दव. प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठका· साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरव कुर्वन्तु नो मगलम्।।2।।

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममल रत्नत्रय पावन
मुक्ति-श्री-नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः
धर्म सूक्ति-सुधा च चैत्यमखिल चैत्यालय श्र्यालय
प्रोक्त च त्रिविध चतुर्विधममी कुर्वन्तु नो मगलम्।।3।।

नाभेयादिजिना प्रशस्त-वदना· ख्याताश्चतुर्विंशति·
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश
ये विष्णु प्रतिविष्णु-लागलधराः सप्तोत्तरा विशतिस्
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषा· कुर्वन्तु नो मगलम्।।4।।

ये सर्वौषध-ऋद्धय श्रुत-तपो वृद्धिगता पञ्च ये
ये चाष्टाग-महानिमित्त-कुशलाश्चाष्टौ वियच्चारिणः
पञ्चज्ञान धरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वरा·
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु नो मगलम्।।5।।

ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु नो मगलम्।।6।।

कैलासो वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरी
चम्पा वा वसुपूज्य-सज्जिनपतेः सम्मेद-शैलोऽर्हताम्
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरी नेमीश्वरस्यार्हतो
निर्वाणावनय. प्रसिद्ध विभदा. कुर्वन्तु नो मगलम्।।7।।

सर्पो हारलता-भवत्यसि-लता सत्पुष्पदामायते
सम्पद्येत रसायन विषमपि-प्रीतिं विधत्ते रिपु·
देवा यान्ति वश प्रसन्नमनस कि वा बहु ब्रूमहे
धर्मादेव नभोऽपि वर्षतितरा कुर्वन्तु नो मगलम्।।8।।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवता जन्माभिषेकोत्सवो
यो जात परिनिष्क्रमेण विभवो य· केवलज्ञानभाक्
य कैवल्यपुरप्रवेश-महिमा सम्पादित. स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पञ्च सतत कुर्वन्तु नो मगलम्।।9।।

इत्थ श्री जिनमगलाष्टकमिद सौभाग्य सम्पतकर
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणा-मुषात्
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थ-कामान्विता
लक्ष्मीराश्रयते व्यापायरहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि।।10।।

जैनाचार्यों ने चार तरह के अभिषेक का उल्लेख किया है- जन्माभिषेक, राज्याभिषेक, दीक्षाभिषेक, चतुर्थाभिषेक। तीर्थंकर बालक को सुमेरुपर्वत पर स्थित पाण्डुक शिला पर ले जाकर जो क्षीरसागर के जल से अभिसिंचित किया जाता है वह जन्माभिषेक कहलाता है। तीर्थंकर कुमार का राजतिलक के अवसर पर जो अभिषेक किया जाता है वह राज्याभिषेक कहलाता है। तीर्थंकर का जिन दीक्षा लेने से पूर्व जो अभिषेक किया जाता है वह दीक्षाभिषेक कहलाता है। विधि-विधान पूर्वक प्रतिष्ठित किए गए जिनबिंब पर जो अभिषेक किया जाता है वह चतुर्थाभिषेक या प्रतिमाभिषेक कहलाता है।

-मुनि क्षमासागर

अभिषेक विधि

जलशुद्धि मन्त्र

ॐ ह्रा ह्री ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमत्पद्म-महापद्म-तिगिञ्छकेसरि-महापुण्डरीकपुण्डरीक गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्या हरिद्धरिकान्ता-सीतासीतोदा-नारीनरकान्ता सुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः क्षीराम्भोधिजल सुवर्णघटप्रक्षिप्तं नव- रत्नगन्ध पुष्पाक्षतादिबीजपूरितं पवित्र कुरु कुरु झ्रौं झ्रौं वं वं म मं हं ह स स त त पं प स्वाहा (जलाभिमन्त्रणम्)

शुद्धि-मन्त्र

शोधये सर्वपात्राणि पूजार्थानपि वारिभि

समाहितो यथाम्नाय करोमि सकलीक्रियाम्।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पवित्रतर जलेन पात्रशुद्धिं करोमि

(सभी पात्र दाहिनी चुल्लू में जल लेकर मन्त्रित जल से स्वय की शुद्धि करें।)

पात्रेऽर्पित चन्दनमौषधीश, शुभ्र सुगन्धाहृतचञ्चरीकम्।

स्थाने नवाके तिलकाय चर्च्य, न केवल देहविकारहेतो ।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांगशुद्धिं कुरु कुरु

(नवतिलक करें)

श्रीमन्मन्दरमस्तके शुचिजलै धौतै. सदर्भाक्षतै

पीठे मुक्तिवर निधाय रचित त्वत्पादपद्मस्रज ।

इन्द्रोऽह निजभूषणार्थकमिद यज्ञोपवीत दधे।

मुद्रा-कंकण-शेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे।।

ॐ ह्रीं इन्द्रोचिताभूषणमवधारयामि।

(हार मुकुट, यज्ञोपवीत आदि धारण करें)

दिग्बन्धन मन्त्र

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां पूर्व दिशातः समागतविघ्नान् निवारय-निवारय एतान् सर्वान् रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

(बन्द मुट्ठी से पूर्व दिशा में पुष्प क्षेपण करें।)

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं दक्षिण दिशातः समागतविघ्नान् निवारय-निवारय एतान् सर्वान् रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

(बन्द मुट्ठी से दक्षिण दिशा में पुष्प क्षेपण करें।)

ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं ह्रूं पश्चिम दिशातः समागतविघ्नान् निवारय-निवारय एतान् सर्वान् रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

(बन्द मुट्ठी से पश्चिम दिशा में पुष्प क्षेपण करें।)

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं उत्तर दिशातः समागतविघ्नान् निवारय-निवारय एतान् सर्वान् रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

(बन्द मुट्ठी से उत्तर दिशा में पुष्प क्षेपण करें।)

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्व-दिशातः समागतविघ्नान् निवारय- निवारय एतान् सर्वान् रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

(बन्द मुट्ठी से सभी दिशा में पुष्प क्षेगण करें।)

रक्षा मन्त्र

ॐ हूं क्षूं फट् किरिटिं किरिटिं घातय-घातय पर विघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्र खण्डान् कुरु-कुरु पर मुद्रां छिन्द-छिन्द, परमन्त्रान् भिन्द भिन्द क्षां क्षः वाः वाः हूं फट् स्वाहा।

(स्वय के ऊपर पुष्प क्षेपण करें)

शान्ति मन्त्र

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोष कल्मषाय दिव्य तेजोमूर्तये नमः श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्न-प्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु विनाशनाय सर्वपरकृच्छ्रक्षुद्रोपद्रव-

नाशनाय सर्व-क्षामडामर-विघ्न-विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरु-कुरु स्वाहा।

(विश्वशान्ति की कामना के साथ सभी दिशाओं में पुष्प क्षेपण करें।)

मंगल-कलश स्थापन

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽस्मिन् विधीयमाने कर्मणि................श्रीवीरनिर्वाण संवत्सरे...... ......मासे...........पक्षे.........तिथौ..................वासरे प्रशस्तलग्ने.........कार्यस्य निर्विघ्न समाप्त्यर्थं नवरत्नगन्ध-पुष्पाक्षत-श्रीफलादि-शोभितं मंगलकलश-स्थापनम् करोमि। श्री क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

(मुख्य दिशानुसार ईशान कोण में मगल कलश स्थापित करे)

दीपक स्थापन

रुचिरदीप्तिकर शुभदीपक सकललोकसुखाकर-मुज्ज्वलम्।
तिमिरजालहर प्रकर सदा किल धरामि सुमगलक मुदा।।

ॐ ह्रीं अज्ञानतिमिरहरं दीपकं स्थापयामि।

(मुख्य दिशानुसार आग्नेय कोण में दीपक स्थापित करें)

अभिषेक हेतु धातु के बिम्बों को ही स्थापित करना चाहिए, पाषाण प्रतिमाओं के ऊपर धारा न करके केवल गीले एव सूखे छन्ने से मार्जन करना चाहिए।

प्रत्यग्रं चलनक्षमं दृढवपुः तथा धातुजं।
योग्यं नित्यमहोत्सवेषु शिविकासत्स्यंदनारोहणे।।

प्रतिष्ठा पाठ, आ जयसेन, श्लोक 71

नवीन अरु हलन चलन में समर्थ अरु दृढ है शरीर की सन्धि जाकी ऐसी धातु की प्रतिमा नित्योत्सवनि (दैनिक अभिषेक आदि) मे पालकी अथवा रथ में आरोहण योग्य कहा है।

अभिषेक पाठ

(आचार्य माघनन्दीकृत)

श्रीमन्-नतामर-शिरस्तट-रत्न-दीप्ति-
तोयावभासि-चरणाम्बुज-युग्म-मीशम्।
अर्हंत-मुन्नत-पद-प्रद-माभिनम्य-
त्वन्मूर्तिषूद्यदभिषेक-विधि-करिष्ये।।

अथ पौर्वाह्निक / माध्याह्निक / अपराह्निकदेव-वन्दनाया पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भावपूज वन्दनास्तवसमेत श्रीपञ्चमहागुरु भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(श्वासोच्छवास पूर्वक नौ बार णमोकार मन्त्र का स्मरण करें)

या कृत्रिमास्तदितरा· प्रतिमा जिनस्य,
सस्नापयन्ति पुरुहूत-मुखादयस्ता।
सद्भाव -लब्धि-समयादि-निमित्त-योगात्
तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुम क्षिपामि।।

ॐ ह्रीं अभिषेकप्रतिज्ञापनाय पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीपीठक्लृप्ते विशदाक्षतौघैः,
श्रीप्रस्तरे पूर्ण-शशांककल्पे।
श्रीवर्तके चन्द्रमसीतिवार्तां,
सत्यापयन्तीं श्रियमालिखामि।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीं श्रीलेखनं करोमि।

कनकाद्रि-निभ कम्र पावन पुण्य-कारणम्।
स्थापयामि वर पीठ जिनस्नपनाय भक्तितः।।

ॐ ह्रीं पीठ (सिंहासन) स्थापनं करोमि।

भृंगार-चामर-सुदर्पण-पीठ-कुम्भ -
तालध्वजातप-निवारक-भूषिताग्रे।

वर्धस्व नन्द जय पाठ-पदावलिभि.,
सिंहासने जिन! भवन्त-मह श्रयामि।।
वृषभादिसुवीरान्तान् जन्माप्तौ जिष्णुचर्चितान्।
स्थापयाम्यभिषेकाय भक्त्या पीठे महोत्सवम्।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह स्नपनपीठे तिष्ठ तिष्ठ!

श्रीतीर्थकृत्स्नपन-वर्य-विधौ-सुरेन्द्र.
क्षीराब्धि-वारिभि-रपूरय-दर्थ-कुम्भान्।
तास्तादृशा-निव विभाव्ययथार्हणीयान्
सस्थापये कुसुम-चन्दन-भूषिताग्रान्।।
शात-कुम्भीय-कुम्भौघान् क्षीराब्धेस्तोय-पूरितान्।
स्थापयामि जिनस्नान-चन्दनादि-सुचर्चितान्।।

ॐ ह्रीं चतुःकोणेषु स्वस्तये चतुःकलशस्थापनं करोमि

आनन्द-निर्भर-सुर-प्रमदादि-गानै -
र्वादित्र-पूर-जय-शब्द-कलप्रशस्तै ।
उद्गीय-मान-जगती-पति-कीर्ति-मेना,
पीठस्थली वसु-विधार्चनयोल्लसामि।।

ॐ ह्रीं स्नपनपीठस्थितजिनायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म-प्रबन्ध-निगडै-रपि हीनताप्त,
ज्ञात्वापि भक्ति-वशत. परमादि-देवम्।
त्वा स्वीय-कल्मष-गणोन्मथ-नाय देव,
शुद्धौदकै-रभिनयामि नयार्थ-तत्त्वम्।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामः।

तीर्थोत्तम भवै-र्नीरैः क्षीर-वारिधि-रूपकैः।
स्नपयामि सुजन्माप्तान् जिनान् सर्वार्थ-सिद्धिदान्।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः

स्नात्वा शुभांवरधराः कृत-यत्नयोगात्
यन्त्र निवेश्य शुचिपीठ-वरेऽभिषिञ्चेत्।
ॐ भूर्भुवः स्वरिह मगलयन्त्र मेतत्
विघ्नौघवारक मह परिषेचयामि।।

ॐ ह्रीं विघ्नौघवारकयन्त्रं वयं परिषेचयामः

ॐ ह्रीं श्रीवृषमादि वीरान्तान् विनायक सिद्ध यन्त्रं च जलेन स्नपयामः

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवंतं कृपालसन्तं श्रीवृषमादिमहावीरान्त-चतुर्विंशतितीर्थंकरपरमदेवं मध्यलोके जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे.......प्रदेशे.....नाम्निनगरे........... मन्दिरे(-मण्डपे) ....वीर-निर्वाणसंवत्सरे मासानामुत्तमे मासे........मासे.........पक्षे............वासरे मुन्या-आर्यिका श्रावक श्राविकाणां सकल कर्म क्षयार्थं जलेन जिनमाभिषिंचयामः।

सकल-भुवन-नाथ तं जिनेन्द्र सुरेन्द्रै,
रभिषव-विधि-माप्त स्नातक स्नापयाम.।
यदभिषवन-वारा, बिन्दु-रेकोऽपि नृणा,
प्रभवतिहि विदधातु भुक्तिसन्मुक्तिलक्ष्मीम्।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं झं झ्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं हः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः ह्रीं द्रां द्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति बृहच्छान्तिमन्त्रेणाभिषेकं करोमि।

हे तीर्थपा निज-यशो-धवली-कृताशाः,
सिद्धौषधाश्च भव दुःख-महा-गदा-नाम्।
सद्भव्य-हृज्जनित-पंक-कबन्ध-कल्पा,
यूयं जिनाः सतत-शान्तिकरा भवन्तु।।12।।

शान्त्यर्थं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

पानीय-चन्दन-सदक्षत-पुष्पपुञ्ज-
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फल-व्रजेन।
कर्माष्टक-क्रथन-वीर-मनन्त-शक्तिं,
सम्पूजयामि महसा महसा निधानम्।।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते श्री वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

नत्वा मुहु-र्निज-करै-रमृतोप-मेयैः,
स्वच्छै-र्जिनेन्द्र तव चन्द्र-करावदातै ।
शुद्धाशुकेन विमलेन नितान्त-रम्ये,
देहे स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि।।14।।

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बं मार्जनं करोमि

स्नान विधाय भवतोष्ट-सहस्र-नाम्ना-
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
जिघृक्षुरिष्ठ-मिन तेऽष्ट-तयी विधातु
सिहासने विधि-वदत्र निवेशयामि।।15।।

ॐ ह्रीं वेदिकायां सिंहासने जिनबिम्बं स्थापयामि।

जल-गन्धाक्षतै पुष्पैश्चरु-दीप-सुधूपकै.।
फलै-रर्घै-र्जिनमर्चे जन्मदु खापहानये।।

ॐ ह्रीं पीठस्थितजिनायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

नत्वा परीत्य निज-नेत्र-ललाट-योश्च,
व्यात्पु-क्षणेन हरता-दघ-सञ्चय मे,
शुद्धोदक जिनपते तव पाद-योगाद्,
भूयाद्-भवातप-हरं धृत-मादरेण।।16।।

नमस्कारं कृत्वा जिनगन्धोद्दकं शिरसि धारयामि

शान्ति-धारा

ॐ नम सिद्धेभ्य श्रीवीतरागाय नम

ॐ ह्रीं णमो अरिहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण

णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण।

चत्तारि मगल-अरिहता मगल सिद्धा मगल साहू मगल केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो चत्तारि सरण पव्वज्जामि-अरिहते सरण पव्वज्जामि सिद्धे सरण पव्वज्जामि साहू सरण पव्वज्जामि केवलिपण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि ॐ ह्री अनादि-मूल-मन्त्रेभ्यो नम सर्व-शान्ति तुष्टिं पुष्टि च कुरु-कुरु।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोष-कल्मषाय दिव्य-तेजोमूर्तये नम श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु-विनाशनाय सर्व-परकृच्क्षुद्रोपद्रवनाशनाय सर्वक्षामडामर-विघ्न विनाशनाय ॐ ह्रा ह्री ह्रू ह्रौ ह्र अ सि आ उ सा सर्व-शान्ति तुष्टि पुष्टि च कुरु-कुरु।

ॐ ह्रू क्ष्रू फट् किरिटि किरिटि घातय घातय पर विघ्नान् स्फोटय-स्फोटय सहस्र-खण्डान् कुरु-कुरु परमुद्रा छिन्द-छिन्द पर-मन्त्रान् भिन्द भिन्द क्षा क्ष वा वा ह्रू फट् सर्वशान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्री श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहतविद्यायै णमो अरिहताण ह्रौं सर्वविघ्नशान्ति कुरु-कुरु।

ॐ अ ह्रा सि ह्रीं आ ह्रू उ ह्रौं सा ह्र जगदातप-विनाशनाय ह्री शान्तिनाथाय नम सर्व-शान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय अशोक तरु-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय अशोक तरु-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय ह्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्व शान्तिं कुरु-कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय सुरपुष्पवृष्टि-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय सुरपुष्पवृष्टि-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय भ्म्ल्व्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शान्तिकराय नमः सर्व-शान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय दिव्यध्वनि-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय दिव्यध्वनि-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय म्म्ल्व्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शान्तिकराय नम· सर्व शान्तिं कुरु-कुरु।

ॐ ह्री श्रीशान्तिनाथाय चामरोज्ज्वल-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय चामरोज्ज्वल-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय र्म्ल्व्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शान्तिकराय नम· सर्व शान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्री श्रीशान्तिनाथाय सिहासन-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय सिंहासन-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय घ्म्ल्व्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शान्तिकराय नम सर्व-शान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय भामण्डल-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय भामण्डल-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय झ्म्ल्व्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शान्तिकराय नम सर्व-शान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय दुन्दुभि-सत्प्रातिहार्य मण्डिताय दुन्दुभि-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय स्म्ल्व्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शान्तिकराय नम सर्व शान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय छत्रत्रय-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय छत्रत्रय-सत्प्रातिहार्य-शोभनपदप्रदाय ख्म्ल्व्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शान्तिकराय नम सर्व शान्ति कुरु-कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय प्रातिहार्याष्ट-सहिताय बीजाष्ट-मण्डन-मण्डिताय सर्वविघ्नशान्तिकराय नम· सर्वशान्ति कुरु-कुरु।

तव भक्तिप्रसादाल्लक्ष्मीपुर राज्यगेह पदभ्रष्टोद्‌भवो-पद्रव दारिद्रोद्‌भवोपद्रव-स्वचक्र-परचक्रोद्-भवोपद्रव-प्रचण्ड-पवनानल-

जलोद्भवोपद्रव-शाकिनी-डाकिनी-भूत-पिशाच-कृतोपद्रव-दुर्भिक्षव्यापार-वृद्धिरहितोपद्रवाणां विनाशनं भवतु।

श्रीशान्तिरस्तु शिवमस्तु जयोस्तु नित्यमारोग्यमस्तु सर्वेषा पुष्टिरस्तु तुष्टिरस्तु समृद्धिरस्तु कल्याणमस्तु सुखमस्तु अभिवृद्धिरस्तु कुलगोत्र-धनधान्य सदास्तु श्रीसद्धर्मबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सम्पूर्णकल्याणमंगलरूपमोक्षपुरुषार्थश्च भवतु।

सम्पूजकानां प्रतिपालकाना,
यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ.
करोति शान्ति भगवज्जिनेन्द्रः।।

आरती

आनन्द आपार है भक्ति का प्रसार है।
देखो बिम्ब प्रतिष्ठा का, कैसा जय-जयकार है।।टेक।।

मगल आरती लेकर स्वामी, आया तेरे द्वार जी।
गुण गाता हूँ आदि प्रभू का, होगा बेड़ा पार जी।।।।1।।

इन्द्र इन्द्राणी नाचे भगवन, आज तुम्हारे द्वार जी।
शान्ति प्रभू करके न्हवन, बोलें जय-जयकार जी।।2।।

पर परिणति से अब तक भटका, शरण कहीं नहीं पाया जी।
तारन तरन विरद सुन करके, सिद्ध शरण में आया जी।।3।।

अब तो पार लगा दो भगवन, 'पुष्प' चरण शिरनाया जी।
अजर अमर पद पा जाऊँ मैं, सिद्ध शरण में आया जी।।4।।

विनय पाठ

इह विधि ठाडो होय के, प्रथम पढै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जू आठ।।1।।

अनन्त चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज।
मुक्ति-वधु के कन्त तुम, तीन भुवन के राज।।2।।

तिहुँ जग की पीडा हरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार।।3।।

हरता अघ अंधियार के, करता धर्मप्रकाश।
थिरतापद दातार हो, धरता निजगुण रास।।4।।

धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहु जग भूप।।5।।

मै बन्दौ जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव।
कर्मबन्ध के छेदने, और न कछू उपाव।।6।।

भविजन को भवकूपतै, तुमही काढनहार।
दीनदयाल अनाथ पति, आतम गुण भण्डार।।7।।

चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिवगैल।।8।।

तुम पदपकज पूजतै, विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय।।9।।

चक्री सुर खग इन्द्रपद, मिलैं आपतैं आप।
अनुक्रमकर शिवपद लहै, नेम सकल हनि पाप।।10।।

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन।।11।।

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अञ्जन से तारे प्रभु, जय जय जय जिनदेव।।12।।

थकी नाव भवदधिविषै, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव।।13।।

रागसहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव।।14।।

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान।।15।।

तुमको पूजै सुरपती, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव।।16।।

अशरण के तुम शरण हो निराधार आधार।
मै डूबत भवसिन्धु मे खेव लगाओ पार।।17।।

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारकै, कीजै आप समान।।18।।

तुमरी नेक सुदृष्टितै, जग उतरत है पार।
हा हा डूबो जात हो, नेक निहार निकार।।19।।

जौ मै कहहूॅ औरसो, तो न मिटै उर झार।
मेरी तो तोसो बनी, तातैं करौ पुकार।।20।।

वन्दों पॉचों परम गुरु, सुरगुरु वन्दत जास।
विघनहरन मगलकरन, पूरन परम प्रकाश।।21।।

चौबीसों जिनपद नमो, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु 'नमि', रच्यो पाठ सुखदाय।।22।।

मंगलपाठ

मगल मूर्ति परमपद, पञ्चधरो नित ध्यान।
हरो अमगल विश्व का, मगलमय भगवान।।23।।

मगल जिनवर पद नमों, मगल अर्हंतदेव।
मगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दों स्वयमेव।।24।।

मगल आचारज मुनि मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दों मन वच काय।।25।।

मगल सरस्वती मातका, मगल जिनवर धर्म।
मंगल मय मगल करो, हरो असाता कर्म।।26।।

या विधि मंगल करन से, जग में मगल होत।
मंगल "नाथूराम" यह, भवसागर दृढ पोत।।27।।

अथ अर्हत्-पूजा-प्रतिज्ञायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म क्षयार्थं-भावपूजा वन्दनास्तव समेतं-पञ्चमहागुरुभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूजा की प्रतिज्ञा करते हुए नौ बार णमोकार मन्त्र का ध्यान करें)

पूजा प्रारम्भ

ॐ जय जय जय नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु।
णमो अरिहताण णमो सिद्धाण णमो आयरियाण
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण।।

ॐ ह्रीं अनादि-मूल-मन्त्रेभ्यो नमःपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

चत्तारि मगल अरिहता मगल सिद्धा मगल
साहू मगल केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल।
चत्तारि लोगुत्तमा अरिहता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो
चत्तारि सरण पव्वज्जामि अरिहते-सरण पव्वज्जामि
सिद्धे सरण पव्वज्जामि साहू सरण पव्वज्जामि
केवलि पण्णत्त धम्मं सरण पव्वज्जामि।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा, पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

अपवित्र· पवित्रो वा, सुस्थितो दु·स्थितोऽपि वा।
ध्यायेत् पञ्च-नमस्कार, सर्वपापै· प्रमुच्यते।।1।।

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः।।2।।
अपराजित-मन्त्रोऽयं, सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगल मत·।।3।।
एसो-पच-णमोयारो, सव्व-पावप्पणासणो।
मगलाण च सव्वेसि, पढमं होइ मंगलं।।4।।
अर्हमित्यक्षर ब्रह्म-वाचकं परमेष्ठिन·।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वत· प्रणमाम्यह।।5।।
कर्माष्टक-विनिर्मुक्त, मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतन।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेत, सिद्धचक्र नमाम्यह।।6।।
विघ्नौघा प्रलय यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगा·।
विष निर्विषता याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।7।।

(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकै·।
धवल-मगल-गान रवाकुले जिनगृहे कल्याणमह यजे।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाणपञ्चकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं।

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकै ।
धवल-मगल-गान रवाकुले जिनगृहे जिननाथमह यजे।।2।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मगल-गान रवाकुले जिनगृहे जिननाम यजाम्यहम्।।3।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनअष्टाधिकसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं नि० स्वाहा।

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकै·।
धवल-मगल-गान रवाकुले जिनगृहे जिनसूत्रमह यजे।।4।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तत्त्वार्थ सूत्रे दशाध्याये अर्घ्यं

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकै ।
धवल-मगल-गान रवाकुले जिनगृहे जिनस्तोत्रमहं यजे।।5।।

ॐ ह्रीं सर्व जिनस्तोत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री-मज्जिनेन्द्र-मभिवन्द्य जगत्-त्रयेश,
स्याद्‌वाद-नायक-मनन्त-चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूल-सघ-सुदृशा सुकृतैक-हेतुर्,
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधि-रेष मयाऽभ्यधायि।।1।।

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुगवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्ज्जित-दृगमयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्-भुत-वैभवाय।।2।।

स्वसत्युच्छलद्-विमलबोधसुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोक-विततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय।।3।।

द्रव्यस्य शुद्धि-मधिगम्य यथानुरूप,
भावस्य शुद्धि-मधिकामधिगन्तुकाम.।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।4।।

अर्हन् पुराण-पुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन्-ज्वलद्विमल-केवल-बोध वह्नौ,
पुण्य समग्रमह-मेकमना जुहोमि।।5।।

ॐ ह्रीं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजित.।
श्रीशम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभ.।
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतल·।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।
श्रीविमल. स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्म स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।
श्रीकुन्थु. स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लि· स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रत ।
श्रीनमि. स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथ.।
श्रीपार्श्व स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमान ।

इति चतुर्विंशतिजिनेन्द्र-स्वस्तिमंगलविधानं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

नित्याप्रकम्पाद्भुत-केवलौघा., स्फुरन्मनःपर्यय-शुद्धबोधा ।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधा , स्वस्ति क्रियासु. परमर्षयो नः।1।

(यहाँ से प्रत्येक श्लोक के अन्त मे पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीज, सम्भिन्न-सश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विध बुद्धि-बल दधाना·, स्वस्ति क्रियासु· परमर्षयो न ।।2।।
सस्पर्शन सश्रवण च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान् मतिज्ञान-बलाद्वहन्तः, स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न ।।3।।
प्रज्ञा-प्रधाना. श्रमणा समृद्धा , प्रत्येक-बुद्धा दशसर्वपूर्वै.।
प्रवादिनोऽष्टाग-निमित्त-विज्ञा·, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो न ।।4।।
जघानल-श्रेणि-फलाम्बु-तन्तु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो न.।।5।।
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि, लघिम्नि शक्ता कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपु-र्वाग्बलिनश्च नित्य, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो न.।।6।।

सकाम-रूपित्व-वशित्वमैश्य, प्राकाम्य-मन्तर्द्धि-मथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधाना, स्वस्ति क्रियासु· परमर्षयो नः।।7।।
दीप्त च तप्तं च तथा महोग्र, घोर तपो घोरपराक्रमस्था·।
ब्रह्मापर घोर-गुणाश्चरन्त, स्वस्ति-क्रियासु परमर्षयो नः।।8।।
आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशी-र्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च।
सखेल-विड्जल्ल-मलौषधीशा, स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न·।।9।।
क्षीर स्रवतोऽत्र घृत स्रवतो, मधु स्रवतोऽप्यमृत स्रवतः।
अक्षीण-सवास-महानसाश्च, स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न।।10।।

इति परमर्षिस्वस्तिमंगल-विधानं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

आह्वान, स्थापन एवं सन्निधिकरण

पूजा के पाच अग होते हैं-1 आह्वान 2 स्थापन 3 सन्निधिकरण 4 पूजन 5 विसर्जन।

इनके अनुसार ही पूजा विधि सम्पादित करना चाहिए।

प्रथम तीन अग मुद्रा पूर्वक सम्पादित करके ठोने पर बने स्वस्तिक के ऊपर पुष्प क्षेपण करके पूजा का सकल्प करना चाहिए आह्वानम् मद्रा- हथेली को ऊपर करके हाथ की दोनो रेखाओं को मिलाकर अगूठे को अनामिका के मूल मे लगाकर जिनबिम्ब को देखते हुए आह्वान का भाव करना।

स्थापन मुद्रा- ऊपर की मुद्रा की अधोमुखी हथेली करते हुए स्थापन का भाव करना।

सन्निधिकरण मुद्रा- दोनों अगूठों को ऊपर उठाकर मुट्ठी बद करके अगूठे को हृदय के पास लगाकर सन्निधिकरण का भाव करके पूजा का सकल्प करते हुऐ पुष्प या लवग ठोने पर क्षेपण करें। इस क्रिया मे गिनकर (3-3) पुष्प चढाने का विधान किसी ग्रन्थ में नहीं मिला है।

—पुष्पाञ्जलि

समुच्चय पूजा

दोहा- देवशास्त्र गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूं चित्त हुलसाय।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु-समूह विद्यमान-विंशति-तीर्थंकर-समूह अनन्तानन्त-सिद्ध-परमष्ठि-समूह अत्रावतर अवतर संवौषट् आह्वानम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल से शुचिता को माना।
शुद्धनिजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहि पहचाना।।
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।1।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने अब तक मैंने, पर मे की झूठी ममता है।।
चन्दन सम शीतलता पाने, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।2।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यः संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि0 स्वाहा।

अक्षय पद बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनि में।
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिग लाया मैं।।
अक्षय निधि निज की पाने को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।3।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से विन्ध करके, चहुँ गति दुख उपजाया है।।
स्थिरता निज में पाने को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।4।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यः कामवाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट् रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शान्त हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई।।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
निज गुण दरशायक ज्ञान दीप से, मिटा मोह का अधियारा।।
ये दीप समर्पित करके मै, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।6।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं नि० स्वाहा

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी।
उस शक्ति दहन प्रगटाने को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।7।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म-विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरस भीने निजगुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया।।
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।8।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज मैं निज गुण प्रगट किये।
ये अर्घ्य समर्पण करके मै, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।9।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस जिन, सिद्ध अनन्तानन्त।
गुण गाऊँ जयमालिका, भव दुख नशे अनन्त।।

नशे घातिया कर्म अर्हन्त देवा, करे सुरअसुर नर मुनि नित्य सेवा।
दरश ज्ञान सुख बल अनन्त के स्वामी, छियालीस गुण युत महाईश नामी।।
तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी, महा मोह विध्वसिनी मोक्ष दानी।
अनेकान्त मय द्वादशागी बखानी, नमो लोक माता श्री जैन वाणी।।
विरागी अचारज उवज्झाय साधू, दरश ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेषधारी सु एका बिहारी, निजानन्द मण्डित मुकति पथ प्रचारी।।
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजें, विहरमान बन्दू सभी पाप भाजें।
नमूं सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।।

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धरले रे।
पूजन ध्यान गान गुन करके, भव सागर जिय तरले रे।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशति-तीर्थंकरानन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूत भविष्यत वर्तमान की, तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ।।

ॐ ह्रीं त्रिकाल-सम्बन्धि-विंशत्यधिकसप्तशत-तीर्थंकरेभ्यो कृत्रिमाकृत्रिम-चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्य भक्ति आलोचन चाहूँ, कायोत्सर्ग अघ नाशन हेत।
कृत्रिमाकृत्रिम तीनलोक में, राजत हैं जिन बिम्ब अनेक।।
चतुर निकाय के देव जजें लें, अष्ट द्रव्य निज भक्ति समेत।
निज शक्ति अनुसार जजूँ मैं, कर समाधि पाऊँ शिवखेत।।

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्व मध्य अपराह्न की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
देव वन्दना करूँ भाव से सकल कर्म की नाशन हार।।
पञ्च महा गुरु सुमरन करके कायोत्सर्ग करूँ सुखकार।
सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना जाऊँगा अब मैं भव पार।।

पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् (नौ बार णमोकार मन्त्र का ध्यान करें)

श्रीजिन के प्रसाद तें, सुखी रहें सब जीव।
यातें-तन-मन-वचन-तें सेओ-भव्य सदीव।।

इत्याशीर्वाद:

पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्

जैन दर्शन में सयम और व्रत की मुख्यता है यदि व्रत सयम न होता तो जैन दर्शन आदर्शता को प्राप्त नहीं हो पाता। जैसे शरीर में रीड की हड्डी जीवन को प्राणदायिनी मानी जाती है उसी प्रकार व्रत-सयम जैनदर्शन की रीढ़ है।

—ब्र. डॉ. प्रमिला जैन

अर्घ्यावली

अकृत्रिम चैत्यालय अर्घ्य

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्,
वन्दे भावन-व्यन्तर-द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगाान्।
सद्-गन्धाक्षत-पुष्पदामचरुकै. सद्दीपधूपै. फलै-
र्नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शान्तये।।

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं नि०।

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुगवाना।।1।।

अवनितल-गताना कृत्रिमाकृत्रिमाणा।
वन-भवन-गताना दिव्य-वैमानिकानाम्।।
इह मनुज-कृताना देवराजार्चिताना।
जिनवर निलयाना भावतोऽहं स्मरामि।।2।।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवा-
श्चन्द्राम्भोज शिखण्डिकण्ठ-कनक-प्रावृड्घनाभाजिना.।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धना.,
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नम ।।3।।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषांके,
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ-दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि।।4।।

द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ,
द्वौ बन्धूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिता. सन्तप्त हेम-प्रभा-
स्ते सज्ज्ञान-दिवाकरा सुर-नुताः सिद्धि प्रयच्छन्तु न.।।5।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिम-जिन-चैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इच्छामि भते। चेइयभत्ति काउसग्गो कओ तस्सालोचेऊ अहिलोय-तिरियलोय- उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि-जिण-चेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसियकप्पवासिय त्ति चउविहा देवा सपरिवाराः दिव्वेण गधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण ध्रूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकाल अच्चंति पुज्जंति वदंति णमस्सति अहमवि इह सन्तो तत्थ सताइ णिच्चकाल अच्चेमि पूज्जेमि वदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झ।

इति पौर्वाह्निक/माध्याह्निक/आपराह्निक-देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा वन्दनास्तवसमेत चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

वर्तमान चौबीसी अर्घ्य

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करो।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरो।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्दकन्द सही।
पद जजत हरत भवफन्द, पावत मोक्ष मही।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरान्त-चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री आदिनाथ अर्घ्य

शुचि निर्मल नीर गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सु लेकर, नाचतताल मृदग बजाय।।
श्रीआदिनाथ के चरण कमल पर बलि बलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुख मेटो, यातें मैं पूजों प्रभु पाय।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री अजितनाथ अर्घ्य

जल फल सब सज्जै, वाजत वज्जै, गुनगनरज्जै मनमज्जै।
तुम पदजुगमज्जै सज्जन जज्जै, ते भव भज्जै निजकज्जै।।
तुम अजित जिनेशं नुत चक्रेशं चक्रधरेशं खग्गेशं।
मन वाछित दाता त्रिभुवन त्राता, पूजों ख्याता जग्गेशं।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्भवनाथ अर्घ्य

जल चन्दन तन्दुल पुष्प चरु, दीप धूप फल अर्घ्य किया।
तुमको अरपो भावभगतिधर, जै जै जै शिवरमनि पिया।।
सम्भवजिन के चरन चरचते, सब आकुलता मिट जावै।
निज निधि ज्ञान-दरश-सुख-वीरज, निराबाध भविजन पावै।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री अभिनन्दन अर्घ्य

अष्ट द्रव्य सवारि सुन्दर, सुजस गाय रसाल ही।
नचत रजत जजों चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही।।
कलुष ताप निकन्द श्री अभिनन्द, अनुपम चन्द है।
पदवन्द वृन्द जजे प्रभू भवद्वन्द-फन्द निकन्द है।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री सुमतिनाथ अर्घ्य

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप फल सकल मिलाय।
नाचिराचि शिरनाय समरचों, जय जय जय जय जयजिनराय।।
हरिहर वन्दित पाप निकन्दित, सुमतिनाथ त्रिभुवन के राय।
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदित मन उदित सुभाय।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री पद्मप्रभ अर्घ्य

जलफल आदि मिलाय गाय गुन, भगति भाव उमगाय।
जजों तुमहि शिवतियवर जिनवर, आवागमन मिटाय।।
पूजों भाव सों श्री पद्मनाथ पद सार, पूजों भाव सों।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री सुपार्श्वनाथ अर्घ्य

आठों दरव साजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढाय।
दया निधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।।
तुम पद पूजो मन वच काय, देव सुपारस शिवपुरराय।
दया निधि हो जय जगबन्धु दयानिधि हो।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री चन्द्रप्रभ अर्घ्य

वसु विधि अर्घ्य बनाय मनोहर, श्री जिन मन्दिर जावो।
अष्टकर्म के नाश करन को, श्री जिन चरण चढावो।।
चञ्चल चित को रोक, चतुर्गति चक्रभ्रमण निरवारो।
चारु चरण आचरण चतुरनर, चन्द्रप्रभ चितधारो।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री पुष्पदन्त अर्घ्य

जलफल सकल मिलाय मनोहर मनवचतन हुलसाय।
तुम पद पूजों प्रीति लायकें जय जय त्रिभुवनराय।।
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय मेरी अरज सुनीजे।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री शीतलनाथ अर्घ्य

कश्री फलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजे।
नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजे।।
रागादिदोष मलमर्द्दन हेतु येवा।
चर्चों पदाब्ज तव शीतल नाथ देवा।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री श्रेयांसनाथ अर्घ्य

जल मलय तन्दुल सुमन चरु, अरु दीप धूप फलावली।
करि अर्घ्य चरचों चरनजुग प्रभु मोहि तार उतावली।।
श्रेयासनाथ जिनेन्द्र त्रिभुवन वन्द्य आनन्द कन्द है।
दुख द्वन्दफन्द निकन्द पूरनचन्द्र जोति अमन्द है।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री वासुपूज्य अर्घ्य

जल फल दरव मिलाय गाय गुन, आठों अग नमाई।
शिवपदराज हेतु हे श्री पति! निकट धरों यह लाई।।
वासुपूज्य वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई।
बाल ब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री विमलनाथ अर्घ्य

आठों दरब सवार, मनसुखदायक पावने।
जजों अर्घ्य भर थार विमल विमल शिवतिय रमन।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री अनन्तनाथ अर्घ्य

शुचि नीर चन्दन शालितन्दुल, सुमन चरुदीपक धरों।
धूप फल जुत अरघ करके, कर जोर जुग विनती करों।।
जगपूज परमपुनीत मीत, अनन्त सन्त सुहावनें।
शिवकन्तवन्त महन्त ध्यावो, भ्रमणतन्त नशावनें।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री धर्मनाथ अर्घ्य

आठों दरव साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुन गाई।
बाजत दृमदृम दृम मृदगगत, नाचत ता थेइ थाई।।
परम धरम शमरमण धरम-निज अशरनशरन तिहारी।
पूजूँ पाय गाय गुन सुन्दर, नाचूँ दै दै तारी।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री शान्तिनाथ अर्घ्य

वसु द्रव्य सवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुणाधारी, यातै थारी शरनारी।।
श्री शान्ति-जिनेश, नुतशक्रेश, वृषचक्रेश, चक्रेश।
हनि अरि चक्रेश, हे गुनधेश, दयामृतेश, मक्रेश।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री कुन्थुनाथ अर्घ्य

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी।
फलजुत जजन करो मन सुखधरि, हरो जगत फेरी।।
कुन्थु सुन अरज दासकेरी, नाथ सुन अरज दासकेरी।
भवसिन्धु परयो हों नाथ, निकारो बाँह पकर मेरी।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री अरनाथ अर्घ्य

शुचि स्वच्छ पटीर, गन्धगहीर, तन्दुलशीरं पुष्प चरुं।
वर दीपं धूपं, आनन्दरूपं, लै फल भूप अर्घ्य करूं।।
प्रभु दीनदयाल अरिकुलकालं, विरद विशाल सुकुमालम्।
हरि मम जजाल, हे जगपाल, अरगुनमाल वरमालम्।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री मल्लिनाथ अर्घ्य

जलफल अरघ मिलायगाय गुन पूजो भगति बढाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरनगहो मैं आई।।
राग द्वेष मद मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा।
यातें शरन गही जगपतिजी, वेग हरो भव पीरा।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०।

श्री मुनिसुव्रतनाथ अर्घ्य

जलगन्ध आदि मिलाय आठो, दरब अरघ सजों वरो।
पूजो चरनरज भगत जुत, जाते जगत सागर तरो।।
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ मुनिगुनमाल है।
तुम चरन आनन्दभरन तारन, तरन विरद विशाल है।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं।

श्री नमिनाथ अर्घ्य

जल फलादि मिलाय मनोहर, अरघ धारय ही भय भव हरं।
जजतु हों नमि के गुन गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय कें।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री नेमिनाथ अर्घ्य

जलफल अर्घ्य बनाय गाय गुन, रतन थाल भरिये सुखदान।
अष्टकर्म के नाशक प्रभु को, पूजूँ निजगुणदायक जान।।

बाल ब्रह्मचारी जगतारी, नेमिश्वर जिनराज महान।
मैं नित ध्यान करूँ प्रभु तेरा, मोकूँ दीजे अविचल थान।।
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री पार्श्वनाथ अर्घ्य

सघर्षों मे उपसर्गों में तुमने समता का भाव धरा।
आदर्श तुम्हारा अमृत बन भक्तों के जीवन में बिखरा।।
मैं अष्टद्रव्य से पूजा का शुभथाल सजाकर लाया हूँ।
जो पदवी तुमने पाई है मैं भी उस पर ललचाया हूँ।।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री महावीर अर्घ्य

जलफल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरो।
गुणगाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों।।
श्री वीर महा अतिवीर सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो।।
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री बाहुबलि अर्घ्य

वसु विधि के वश वसुधा सब ही परवश अति दुख पावे,
तिहि दुख दूर करन को भविजन अर्घ्य जिनाग्र चढावे।
परम पूज्य वीराधिवीर जिन बाहुबलि बलधारी,
तिनके चरण कमल को नित प्रति धोक त्रिकाल हमारी।।
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलि-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

सोलहकारण अर्घ्य

जल फल आठों दरब चढाय, द्यानत वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरश विशुद्ध भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।

परम गुरुहो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

(श्री जिनपूजा जग में सार, भवदधिपार उतारनहार, परम०)

ॐ ह्रीं दर्शन-विशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं निव० स्वाहा

रत्नत्रय अर्घ्य

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।

जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्-रत्नत्रयाय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।।

पञ्चमेरु का अर्घ्य

आठदरब मय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजों श्री जिनराय।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

(अकृत्रिम जिनवर जिनथान, पूजत होत पाप की हान महा)

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्ध्यशीति-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वरद्वीप का अर्घ्य

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।

'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों।।

नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पूज करों।

वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरो।।

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशत्-जिनालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धचक्र अर्घ्य

निर्मल सलिल शुभ वास चन्दन धवल अक्षययुत अनी।

शुभ पुष्प मधुकर नित रमें, चरुप्रचुर स्वाद सुविधि घनी।।

वर दीपमाल उजाल धूपायन रसायन फल भले।

करि अर्घ्य सिद्ध समूह पूजित कर्मअरि सब दलमले।।

ते क्रमावर्त नशाय युगपत ज्ञान निर्मल रूप हैं।
दुख जन्म टार अपार गुण सूक्षम सरूप अनूप हैं।।
कर्माष्ट बिन त्रैलोक्य पूज्य अदूज शिवकमलापती।
मुनि ध्येय सेय अमेय चहुँगुण, ज्ञेय द्यो हम शुभमती।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनाहत-पराक्रमाय सकल-कर्म-विमुक्ताय श्री-सिद्धचक्राधिपतये सम्मत्त-णाण-दंसण-वीर्य-सुहम-अवगहणं-अगुरुलघु-अव्वावाहं अष्टगुण-संयुक्ताय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

दशलक्षण का अर्घ्य

आठो दरव सवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव-आताप निवार, दस-लक्षण पूजो सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवदेवता अर्घ्य

मध्ये कर्णिकमर्हदार्य-मनघ बाह्येष्ट-पत्रोदरे,
सिद्धान् सूरिवराश्च पाठक-गुरुन् साधूश्च दिक्पत्रगान्।
सद्धर्मागम-चैत्यचैत्यनिलयान् कोणस्थ-दिक्पत्रगान्,
भक्त्या सर्वसुरासुरेन्द्र-महितान् तानष्टधेष्ट्या यजे।।

ॐ ह्रीं अर्हदादि-नवदेवेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

विनायक यन्त्र अर्घ्य

सुवरण के थाल भराये, शुचि आठों द्रव्य मिलाये।
गुरुपञ्च परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई।।

ॐ ह्रीं अर्हं मंगलोत्तम-शरण्यभूतेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस्वती अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत, फूल चरु, अरुदीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावै।

तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनी, अंग रचे चुनि ज्ञान मई
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभवुन मानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्‌भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तर्षि अर्घ्य

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित अर्घ्य कीजे पावना।।
मन्वादि चारण ऋद्धि धारी मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हटे सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।

निर्वाणक्षेत्र अर्घ्य

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर दीप धूपायन धरों,
द्यानत करो निर्भय जगत सों, जोरकर विनती करों।
सम्मेदगढ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलाश को,
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि निवास को।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।

समुच्चय महार्घ्य

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सों।।
अर्हन्त-भाषित बैन पूजूँ द्वादशाग रची गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरन शिव हेतु सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि दया-मय पूजूँ सदा।
जजूँ भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहीं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय जजूँ।
पञ्चमेरु नन्दीश्वर जिनालय खचर सुर पूजित भजूँ।।

कैलाश श्रीसम्मेद श्रीगिरनार गिरि पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस-वसु जय होय पति शिवगेह के।।

दोहा- जल गन्धाक्षत पुष्प चरु दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूज हूँ बहु विधि भक्ति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो द्वादशांग-जिनागमेभ्यो उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्मेभ्यो दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो त्रिलोकस्थित-जिन-विम्बेभ्यो पञ्चमेरुसम्बन्ध्यसीतिचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो नन्दीश्वरद्वीप-स्थित-द्विपञ्चाशत्-जिनालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो श्री-सम्मेदाष्टापदूर्जयन्तगिरि - चम्पापावापुरादि - सिद्धक्षेत्रेभ्यो सातिशयक्षेत्रेभ्यो विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो अष्टाधिक-सहस्र-जिननामभ्यो श्रीवृषमादि-चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो जलादि- महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ

दोधक छंद

शान्तिनाथ मुख शशि उनहारी, शील-गुणव्रत-सयमधारी।।
लखन एक सौ आठ विराजे, निरखत नयन कमलदल लाजे।।
पञ्चम चक्रवर्तीपद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिन नायक, नमो शान्तिहित शान्ति विधायक।।
दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी।।
शान्ति जिनेश शान्ति सुखदाई, जगत्पूज्य पूजौ शिर नाई।।
परम शान्ति दीजे हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार सघ को।।

बसन्ततिलका

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके,
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।।

सो शान्तिनाथ वरवंश जगतप्रदीप,
मेरे लिये करहिं शान्ति सदा अनूप।।

इन्द्रवज्रा

सम्पूजकों को प्रतिपालकों, को यतीनकों को यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले, कीजै सुखी हे जिन शान्तिको दे।

स्रग्धरा छन्द

होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समय पै, तिलभर न रहै, व्याधियों का अन्देशा।।
होवै चोरी न जारी, सुसमय बरतै हो न, दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारैं, जिनवर-वृषको जो, सदा सौख्यकारी।।

दोहा- घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शान्ति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज।।

मन्दाक्रान्ता

शास्त्रों का हो, पठन सुखदा, लाभ सत्सगति का।
सद्वृत्तों का, सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का।।
बोलूँ प्यारे, वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तो लौं सेऊँ, चरण जिनके, मोक्ष जौ लौं न पाऊँ।।

आर्या

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौ प्रभु, जब लौं न पाया मुक्ति पद मैंने।।
अक्षर पद मात्रा से दूषित, सो कछु कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा करि, पुनि छुड़ाहु भवदुख से।।
हे जगबन्धु जिनेश्वर!, पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय हो सुबोध सुखकारी।।

शान्तिभक्तिंसमाधिभक्तिंच पठित्वा कायोत्सर्गं करोम्यहम्
पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

विसर्जन-पाठ

बिन जाने व जानके रही टूट जो कोय।
तुम प्रसादतैं परम गुरु सो सब पूरन होय।।1।।
पूजन विधि जानूँ नहीं नहि जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं क्षमा करहु भगवान।।2।।
मन्त्रहीन धनहीन हूँ क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे देहु चरणकी सेव।।3।।
श्रद्धा से आराध्य पद, पूजे भक्ति प्रमान।
पूजा विसर्जन मै करूँ, सदा करो कल्याण।।4।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हदादिपरमेष्ठिनः पूजाविधिं विसर्जनं करोमि अपराध-क्षमापणं भवतु जःजःजः।

(उक्त मत्र पढ़कर ठोने पर पुष्प क्षेपण करें)

(निम्नाकित छन्द पढते हुये गवासन मुद्रा से अर्हंत भगवान को नमोऽस्तु करके आशीर्वाद लेते हुए कायोत्सर्ग पूर्वक कार्य पूर्ण करें।)

श्री जिनवर जी की आशिका, लीजै शीश चढ़ाय।
भव भव के पातक कटैं, दु.ख दूर हो जाय।।

विसर्जन

पूजा का समापन ही विसर्जन है। पूर्व में पूजन का सकल्प पचमहागुरू भक्ति पूर्वक किया था अन्त में शांति एव समाधि भक्ति पूर्वक पूजन को पूर्ण करते हैं। पूजन अनुष्ठान क्रिया में होने वाली त्रुटियों, असावधानियों। अज्ञानता के लिए प्रभु चरणों में क्षमायाचना करके मत्र पूर्वक ठोने पर पुष्प क्षेपण करके पूजन के संकल्प का विसर्जन क्रिया करना चाहिए।

(विधान के पूर्व सिद्धभक्ति एव विसर्जन के पश्चात् शान्ति भक्ति पढ़ें)

सिद्धभक्ति

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य।
सायार-मणायारा लक्खण-मेयं तु सिद्धाणं।।1।।
मूलोत्तर-पयडीणं बंधोदय-सत्त-कम्मउम्मुक्का।
मंगल-भूदा सिद्धा अट्ठगुणातीद-ससारा।।2।।
अट्ठविह-कम्म वियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठ-गुणा किदकिच्चा लोयग्ग-णिवासिणो सिद्धा।।3।।
सिद्धा णट्ठट्ठमला विसुद्ध-बुद्धी य लद्धि-सब्भावा।
तिहुअण-सिर-सेहरया पसियंतु भडारया सव्वे।।4।।
गमणागमण-विमुक्के वियडिय-कम्म-पयडि-संघारा।
सासय-सुह-सपत्ते ते सिद्धा वदिमो णिच्चं।।5।।
जय-मगल-भूदाण विमलाण णाण-दसणमयाण।
तइलोइ-सेहराण णमो सदा सव्व-सिद्धाण।।6।।
सम्मत्त-णाण-दसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवग्गहणं।
अगुरु-लघु अव्वावाहं अट्ठ-गुणा होंति सिद्धाण।।7।।
तव-सिद्धे णय-सिद्धे सजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमस्सामि।।8।।

इच्छामि भंते। सिद्ध-भत्ति काओसग्गो कओ-तस्सालोचेओ, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं अट्ठविह-कम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठ-गुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अतीदाणागद-वड्ढमाण कालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहि-मरणं जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं। इति पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं कायोत्सर्गं करोमि।

शान्तिभक्ति

न स्नेहाच्छरण प्रयान्ति भगवन् पादद्वयं ते प्रजाः।
हेतुस्तत्र विचित्र दुःखनिचयः संसार-घोरार्णवः।
अत्यन्त-स्फुरदुग्र-रश्मिनिकर-व्याकीर्ण-भूमण्डलो
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपाद-सलिलच्छायानुराग रविः।।1।।
क्रुद्धाशीर्विष-दष्ट-दुर्जय-विष-ज्वालावली-विक्रमो
विद्या-भेषज-मन्त्र-तोय-हवनै-र्याति प्रशान्ति यथा।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज-युग-स्तोत्रोन्मुखाना नृणां।
विघ्ना· काय-विनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो विस्मयः।।2।।
सन्तप्तोत्तम-काञ्चन-क्षितिधर-श्री-स्पर्द्धि-गौरद्युते।
पुसा त्वच्चरण-प्रणाम-करणात्पीडाः प्रयान्ति क्षयम्।
उद्यद्-भास्कर-विस्फुरत्कर-शतव्याघात-निष्कासिता ।
नाना देहि विलोचन-द्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी।।3।।
त्रैलोक्येश्वर-भगलब्धविजयादत्यन्त-रौद्रात्मकान्।
नाना जन्मशतान्तरेषु पुरतो जीवस्य ससारिण·।।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्र-दावानलान्-
न स्याच्चेत्तव पादपद्म-युगलस्तुत्यापगावारणम्।।4।।
लोकालोकनिरन्तर-प्रवितत-ज्ञानैकमूर्ते विभो।
नानारत्न-पिनद्ध-दण्डरुचिर-श्वेतात-पत्रत्रयम्।
त्वत्पादद्वय-पूतगीत-रवत. शीघ्र द्रवन्त्यामयाः
दर्पाध्मात-मृगेन्द्र भीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः।।5।।
दिव्यस्त्री-नयनाभिराम-विपुल-श्रीमेरु-चूडामणे
भास्वबाल-दिवाकर-द्युतिहर प्राणीष्ट-भामण्डलम्।
अव्याबाध-मचिन्त्यसार-मतुल त्यक्तोपम शाश्वतम्।
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द-युगल स्तुत्यैव सम्प्राप्यते।।6।।

यावन्नोदयते प्रभा-परिकरः श्रीभास्करो-भासयं-
स्तावद्धारयतीह पंकज-वन निद्राति-भारश्रमम्।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्नस्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीव-निकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्।।7।।
शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र शान्तमनसस्-त्वत्पाद-पद्माश्रयात्,
सम्प्राप्ताः पृथिवी-तलेषु बहव शान्त्यर्थिन प्राणिनः।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो दृष्टि प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वय-दैवतस्य गदतः शान्त्यष्टक भक्तितः।।8।।
शान्तिजिन शशि-निर्मल-वक्त्रं शील-गुणव्रत-सयम-पात्रं।
अष्ट-शतार्चित-लक्षण-गात्र, नौमि जिनोत्तम-मम्बुज-नेत्रम्।।9।।
पञ्चममीप्सित-चक्रधराणा, पूजितमिन्द्र-नरेन्द्र गणैश्च।
शान्तिकर गणशान्तिमभीप्सु. षोडश-तीर्थकर प्रणमामि।।10।।
दिव्य-तरु· सुरपुष्प-सुवृष्टिर्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।
आतप-वारण-चामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डल-तेज.।।11।।
त जगदर्चित-शान्तिजिनेन्द्र शान्तिकर शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्ति मह्यमर पठते परमां च।।12।।
येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नै· शक्रादिभि. सुरगणैः स्तुत-पादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवर-वश-जगत्प्रदीपा. तीर्थंकराः सतत-शान्तिकरा भवन्तु।।13।।
सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनाना।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवज्जिनेन्द्रः।
क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तुनाशम्।।14।।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगता मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्य-प्रदायि।।15।।

तद्-द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः सन्तन्यता प्रतपता सतत स कालः।
भाव. स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण रत्नत्रय प्रतपतीह मुमुक्षु-वर्गे।।16।।
प्रध्वस्त-घातिकर्माण. केवलज्ञान-भास्कराः।
कुर्वन्तु जगता शान्ति वृषभाद्या-जिनेश्वराः।।17।।

इच्छामि भंते शान्तिभत्ति-काओसग्गो कओ तस्सालोचओ पञ्चमहाकल्लाण-सम्पण्णाणं अट्ठ-महापाडिहेर-सहियाणं चउतीसातिसय- विसेस-संजुत्ताणं बत्तीस-देवेन्द-मणिमय-मउड-मत्थय-महियाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसिमुणि-जदि-अणगारोवगूढाणं थुइसय-सहस्स-णिलयाणं उसहाइवीर-पच्छिम मंगल-महापुरिसाणं सया-णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं समाहि-मरणं जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं। (कायोत्सर्गं करोम्यहम्)

मण्डल विसर्जन

जगत शान्तिविवर्धनमहसा प्रलयमस्तु जिनस्तवनेन मे (ते)।
सुकृतबुद्धिरल क्षमयायुतो जिनवृषे हृदये मम (तव) वर्तताम्।।
मोहध्वान्तविदारण विशद विश्वोद्भासि दीप्तिश्रियम्।
सन्मार्गप्रतिभासक विबुधसन्दोहामृतापादकम्।
श्रीपाद जिनचन्द्रशान्तिशरण सद्भक्तिमानेऽपि ते।
भूयस्तापहरस्य देव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनम्।।
मगलार्थं समाहूता विसर्ज्याखिलदेवता·।
विसर्जनाख्यमन्त्रेण वितीर्य कुसुमाञ्जलि।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् बिम्बप्रतिष्ठामहात्सवे (कर्मणि) आहूयमान-देवगणाः स्वस्थानं गच्छन्तु अपराधक्षमापणं भवतु।

अकृत्रिम चैत्यालय पूजा

आठ कोड़ अरु छप्पन लाख, सहस सत्याणव चतुशत भाख।
जोड़ इक्यासी जिनवर थान, तीन लोक आह्वान करान।।

ॐ ह्रीं त्रैलौक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालय-समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं त्रैलौक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालय समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं त्रैलौक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालय समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

क्षीरोदधि नीर, उज्ज्वल क्षीर, छान सुचीरं, भरि झारी।
अति मधुर लखावन, परम सुपावन, तृषा बुझावन, गुण भारी।।
वसुकोटि सु छप्पन, लाख सत्तावन, सहस चारशत इक्यासी।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुँजग भीतर, पूजत पद ले अविनाशी।।

ॐ ह्रीं त्रैलौक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि पावन, चन्दन बावन, ताप बुझावन घसि लीनो
धरि कनक कटोरी, द्वै करजोरी, तुम पद ओरी, चित दीनो।वसुकोटि०

ॐ ह्रीं त्रैलौक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यः संसार-तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुभांति अनोखे, तन्दुल चोखे, लखि निरदोखे, हम लीने।
धरि कञ्चनथाली, तुम गुणमाली, पुँज विशाली, कर दीने।।
वसुकोटि सु छप्पन, लाख सत्तावन, सहस चारशत इक्यासी।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुँजग भीतर, पूजत पद ले अविनाशी।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अक्षय-पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ पुष्प सुजाती, है बहुभांति, अलि लिपटाती, लेय वरं।
धरि कनक रकेबी, करगह लेबी, तुम पद जुग की भेंट, धर।वसुकोटि०

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

खुरमा जु गिदोडा, बरफी पेडा, घेवर मोदक, भरि थारी।
विधिपूर्वक कीने, घृतपय भीने, खण्ड मैं लीने, सुखकारी।।वसुकोटि०

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यात्व महातम, छाय रह्यो मम, निजभव परगति, नहि सूझै।
इहकारण पाकैं, दीप सजाकै, थाल धराकैं, हम पूजै।।वसुकोटि०

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश गन्ध कुटाकैं, धूप बनाकैं, निजकर लेकैं, धरि ज्वाला।
तसु धूम उडाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला।।वसुकोटि०

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे, दाखवरं।
इन आदि अनोखे, लखि निरदोखे, थाल पजोखे, भेंट धरं।।वसुकोटि०

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन तंदुल, कुसुम रु नेवज, दीप धूप फल थाल रचौं।
जयघोष कराऊँ, बीन बजाऊँ, अर्घ चढाऊँ, खूब नचौं।।वसुकोटि०

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य-सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीत्यकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येक अर्घ

।। चोपाई ।।

अधोलोक जिन आगम साख, सात कोडि अरु बहत्तर लाख।
श्रीजिनभवन महा छवि देइ, ते सब पूजौं वसुविधि लेइ।।

ॐ ह्रीं अधोलोक-सम्बन्धिसप्तकोटिद्वासप्ततिलक्षश्रीअकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मध्य लोक जिन मन्दिर ठाठ, साढे चार शतक अरु आठ।
ते सब पूजौं अर्घ चढ़ाय, मनवचतन त्रयजोग मिलाय।।

ॐ ह्रीं मध्यलोक-सम्बन्धिचतुःशताष्टपञ्चाशत्श्रीजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। अडिल्ल छन्द ।।

ऊर्ध्व लोक के माहिं भवन जिन जानिये।
लाख चौरासी सहस सत्याणव मानिये।।

तापै धरि तेईस जजौं शिर नायकैं।

कञ्चन थारा मझार जलादिक लायकैं।।

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोक-सम्बन्धिचतुशीतिलक्ष-सप्तनवति-सहस-त्रयोविंशति-श्रीजिनचैत्य-चैत्यालेयेभ्योऽर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

बसुकोटि छप्पन लाख ऊपर, सहस सत्यानवे मानिये।

शत चारपै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये।।

तिहुँलोक भीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं।

तिन भवन को हम अर्घ लेके, पूजिहैं जग दुःख हरैं।।

ॐ ह्रीं त्रिलोक-सम्बन्धी-अष्टकोटि-षट्पञ्चाशत्-लक्ष-सप्तनवति-सहस्र-चतुःशतैकाशीति-श्रीअकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालेयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा-अब वरणू जयमालिका, सुनो भव्य चितलाय।

जिन-मन्दिर तिहुँलोक के, देहुँ सकल दरशाय।।1।।

पद्धरि छन्द

जय अमल अनादि अनन्त जान, अनिमित जु अकीर्तम अचल थान।

जय अजय अखण्ड अरूप धार, षट्द्रव्य नहीं दीसै लगार।।2।।

जय निराकार अविकार होय, राजत अनन्त परदेश सोय।

जे शुद्ध सगुण अवगाह पाय, दश दिशा माहि इय विधि लखाय।।3।।

यह भेद अलोकाकाश जान, ता मध्य लोक नभ तीन मान।

स्वयमेव बन्या अविचल अनन्त, अविनाशि अनादि जु कहत सन्त।।4।।

पुरुष आकार ठाढ़ो निहार, कटि हाथ धारि है द्वै पग पसार।

दक्षिण उत्तर दिशि सर्व ठोर, राजू जु सात भाख्यो निचोर।।5।।

जय पूर्व अपरदिश घाट बाधि, सुनै कथन कहू ताको जु साधि।

लखि श्वभ्रतलें राजू जु सात, मधि लोक एक राजू रहात।।6।।

फिर ब्रह्म सुरग राजू जु पाँच, भूसिद्ध एक राजू जु साँच।
दश चार ऊँच राजू गिनाय, षट् द्रव्य लये चतुकोण पाय।।7।।
तसु वातवलय लपटाय तीन, इह निराधार लखियो प्रवीन।
त्रसनाड़ी तामधि जान खास, चतुकोन एक राजु जु व्यास।।8।।
राजु उतंग चौदह प्रमान, लखि स्वयं सिद्ध रचना महान।
ता मध्य जीव त्रस आदि देव, निज थान पाय तिष्ठै भलेय।।9।।
लखि अधोभाग में श्वभ्रथान, गिन सात कहे आगम प्रमान।
षट् थान माहिं नारकि बसेय, इक श्वभ्रभाग फिर तीन भये।।10।।
तसु अधोभाग नारकि रहाय, पुनि ऊर्ध्वभाग द्वय थान पाय।
बस रहे भवन व्यन्तर जु देव, पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव।।11।।
तिंह थान गेह जिनराज भाख, गिन सात कोटि बहत्तर जु लाख।
ते भवन नमों मन वचन काय, गति श्वभ्रहरण हारे लखाय।।12।।
पुनि मध्यलोक गोला अकार, लखि दीप उदधि रचना विचार।
गिन असख्यात भाखे जु सन्त, लखि संभुरमण सबके जु अन्त।।13।।
इक राजू व्यास में सर्व जान, मधिलोक तनों इह कथन मान।
सब मध्य द्वीपजम्बू गिनेय, त्रयदशम रुचिकवर नाम लेय।।14।।
इन तेरह में जिन-धाम जान, शत चार अठावन हैं प्रमान।
खग देव असुर नर आय-आय, पद पूज जाय शिर नाय-नाय।।15।।
जय ऊर्ध्वलोक सुर कल्पवास, तिह थान छजै जिन-भवन खास।
जय लाख चौरासी पर लखेय, जय सहस सत्यानवे और ठेय।।16।।
जय बीस तीन पुनि जोड़ देय, जिन-भवन अकीर्तम जान लेय।
प्रतिभवन एक रचना कहाय, जिनबिम्ब एक शत आठ पाय।।17।।
शत पञ्च धनुष उन्नत लसाय, पद्मासनयुत वर ध्यान लाय।
शिर तीन छत्र शोभित विशाल, त्रय पादपीठ मणिजड़ित लाल।।18।।

भामण्डल की छवि कौन गाय, पुनि चँवर ढुरत चौसठि लखाय।
जय दुन्दुभि रव अद्भुत सुनाय, जय पुष्पवृष्टि गन्धोदकाय।।19।।
जय तरु अशोक शोभा भलेय, मगल विभूति राजत अमेय।
घट धूप छजै मणिमाल पाय, घट धूम्र धूम्र दिग सर्व छाय।।20।।
जय केतु पंक्ति सोहै महान, गन्धर्व देवगण करत गान।
सुर जनम लेत लखि अवधि पाय, तिह थान प्रथम पूजन कराय।।21।।
जिन गेह तणे वरणन अपार, हम तुच्छ बुद्धि किम लहत पार।
जय देव जिनेसुर जगत भूप, नमि "नेम" मगै निज देहु रूप।।22।।

दोहा- तीन लोक मे सासते, श्रीजिन भवन विचार।
मनवचतन करि शुद्धता, पूजों अरघ उतार।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंध्यष्टकोटि-षट्पञ्चाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीति-अकृत्रिम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिहुँ जग भीतर श्रीजिनमदिर, बने अकीर्त्तम अति सुखदाय।
नरसुरखग कर वन्दनीक, जे तिनको भविजन पाठ कराय।।
धनधान्यादिक सपति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय।
चक्री सुर खग इन्द्र होयके, करम नाश शिवपुर सुख थाय।।

इत्याशीर्वादः

अनन्तव्रत पूजा

श्रीजिनराज चतुर्दश जग जयकार जी।
कर्म नाशि भवतार सु शिवसुख धार जी।।
संवौषट् ठ· ठ सुवषट् यह उच्चरूँ।
आह्वान स्थापन मम सन्निधि करूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

।। गीता छन्द ।।

गगादि तीर्थको सु जल भर कनकमय भृगार में।
चउदश जिनेश्वर चरण उपरि धार डारौं सार में।।
श्री वृषभ आदि अनन्त जिन पर्यंत पूजौं ध्याय के।
करि अनन्तव्रत तप कर्म हनिके लहों शिव सुख जायके।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चदन अगर घनसार आदि, सुगध द्रव्य घसायके।
सहजहि सुगन्ध जिनेन्द्र के पद, चर्च हों सुखदाय के।।श्री वृषभ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यः संसार ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल अखण्डित अति सुगध, सुमिष्ट लेके कर धरों।
राजत तुम चरणन निकट, शिरनाय पूजों शुभ धरों।।श्री वृषभ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चम्पा चमेली केतकी पुनि मोगरो शुभ लायके।
केवड़ो कमल गुलाब गैंदा जुही माल बनायके।।श्री वृषभ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लाडू कलाकन्द सेव घेवर और मोतीचूर के।
गूंजा सु पेड़ा खीर व्यञ्जन थाल में भरपूर ले।।श्री वृषभ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ले रत्न जड़ित सु आरती तामाहि दीप संजोयके।
जिनराज तुम पद आरतीकर तिमिर मिथ्याखोयके।।
श्री वृषभ आदि अनन्त जिन पर्यंत पूजौं ध्याय के।
करि अनन्तव्रत तप कर्म हनिके लहौं शिव सुख जायके।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन अगरतर सिलारस कर्पूरकी करि धूप को।
ता गधतें मधु चकित सो खेऊँ निकट जिन भूप को।।श्री वृषभ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नारगि केला दाख दाड़िम, बीजपूर मगायके।
पुनि आम्र और बादाम खारिक कनक थार भरायके।।श्री वृषभ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल सुचन्दन अखत पुष्प सुगध बहुविधि लायकै।
नैवेद्य दीप सुधूप फल इनको जु अर्घ बनायके।।श्री वृषभ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

।।पद्धरि छन्द।।

जय वृषभनाथ वृष को प्रकाश, भविजन को तारे पाप नाश।
जय अजितनाथ जीते सु कर्म, ले क्षमा खड्ग भेदे जु मर्म।।1।।
जय सम्भव जग सुख के निधान, जग सुख करता तुम दियो ज्ञान।
जय अभिनन्दन पद धरो ध्यान, तासों प्रगटे शुभ ज्ञान भान।।2।।
जय सुमति सुमतिके देन हार, जासों उतरे भव उदधि पार।
जय पद्म पद्म पदकमल तोहि, भविजन अति सेवै मगन होहिं।।3।।

जय जय सुपार्श्व तुम नमत पाय, क्षय होत पाप बहु पुण्य थाय।
जय चन्द्रप्रभ शशिकोट भान, जग का मिथ्यातम हरो जान।।4।।
जय पुष्पदंत जग माहिं सार, पुष्पक को मारयो अनि सुमार।
करि धर्मभाव जगमें प्रकाश, हरि पाप तिमिर दियो मुक्तवास।।5।।
जय शीतलजिन भवहर प्रवीन, हरि पाप ताप जग सुखी कीन।
श्रेयास कियो जग को कल्यान, दे धर्म दुःखित तारे सुजान।।6।।
जय वासुपूज्य जिन नमों तोहि, सुर नर मुनि पूजत गर्व खोहि।
जय विमल विमल गुण लीन मेय, भवि करे आप सम सुगुण देय।7।
जय अनन्तनाथ करि अनन्तवीर्य, हरि घातिकर्म धरि नन्त धीर्य।
उपजायो केवलज्ञान भान, प्रभु लखे चराचर सब सु जान।।8।।

दोहा-यह चौदह जिनजगत में, मगल करन प्रवीन।
पाप हरण बहु सुख करन, सेवक सुखमय कीन।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभाद्यनन्त-पर्यन्त-चतुर्दश-जिनेन्द्रेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मचूर व्रत पूजा

दोहा- अष्टकर्म को नष्ट कर, अष्ट महीपतिराय।
भव्य जीव नित प्रति तुम्हे, उठ प्रभात शिरनाय।।
सिद्ध अनन्तानन्त को, नमूँ जोड़ जुग हाथ।
मुझ अनाथ को आज प्रभु, करदो आप सनाथ।।

सोरठा- कर्मचूर व्रत आज, कर्मचूर हों सर्व मम्।
कर्मचूरने काज, कर्म चूर प्रभु को जजूँ।।

ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतं अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।
ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतं अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतं अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अष्टक (तर्ज-नन्दीश्वर श्री जिनधाम)

गंगा का निर्मल नीर, कंचन पात्र भरूँ।
हो जन्म मरण का नाश, तुम्हरे चरण पड़ूँ।।
व्रत कर्मचूर के सार, जो भी जन करते।
वे अष्ट कर्म को नाश, मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं कर्मचूर-व्रतेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कश्मीरी केशर लाय, चरणन निकट धरूँ।
मेरा भव आतप मिट जाय, ये ही आश करूँ।।व्रत कर्मचूर.

ॐ ह्रीं कर्मचूर-व्रतेभ्यो भवाताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

ले सुरभित शालि शुभ्र, सुन्दर मन मोहक।
अक्षय पद पावन काज, गुण मणि तुम रोपक।।व्रत कर्मचूर

ॐ ह्रीं कर्मचूर-व्रतेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुर तरुवर की उनहार, पुष्प मगाय धरं।
मम काम बाण हो नाश, चरण चढ़ाय अरे।।व्रत कर्मचूर.

ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट् रस मिश्रित पकवान, लाये आज प्रभु।
क्षुधारोग मेरा नश जाय, ये ही चाह प्रभु।।व्रत कर्मचूर .

ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रतननि की ज्योति प्रकाश, जग अंधियार हरे।
प्रभू अन्तर तिमिर विनाश, दीप प्रजाल धरे।।व्रत कर्मचूर . .

ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन अगरादि कपूर, धूप सुगन्ध मई।
अग्नि बिच खेऊँ जाय, कर्म व्यथा जु क्षई।।व्रत कर्मचूर.....

ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

चक्षु मन मोहक शुद्ध फल अर्पण करते।
दो मोक्ष महल पहुँचाय, यह भावन करते।।व्रत कर्मचूर.....

ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले अष्ट द्रव्य शुचि साज, स्वर्णन थाल भरे।
हो अष्ट कर्म का नाश, फेर न जगत परे।।व्रत कर्मचूर....

ॐ ह्रीं कर्मचूरव्रतेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा-कर्म नाश कर राजते, सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध।
नमूँ नमूँ त्रय योग से, पाऊँ अनुपम रिद्ध।।

चाल-हे दीनबन्धु

यह सिद्ध प्रभु गुण अनन्तानन्त के स्वामी।
यह तीन काल तीन लोक अन्तर्यामी।।
सुर नर खगेश नमते हैं प्रभु चरण तुम्हारे।
कटते हैं जनम-जनम पाप नाम उच्चारे।।
समकित दरश ज्ञान अगुरु लघु के धारी।
सूक्ष्मत्व वीरजमान निराबाध गुण कारी।।
अवगाहना प्रभु की अति विशाल है गाई।
इक सिद्ध में अनन्त सिद्ध राजते भाई।।
व्रत कर्मचूर के जिनेश ने ये बताए।
चाहें किसी भी माह से कर सकते बताए।।
करते हैं केवल अष्टमी सित असित पक्ष में।
नहीं मध्य छूटें व्रत कभी आपत्ति विपत्ति में।।
पहले की आठ अष्टमी उपवास से कही।
फिर आगे आठ अष्ठमी कांजी आहार की।।

तंदुल आहार तीजी आठ अष्टमी में ले।
चौथी जो आठ अष्टमी को एक ग्रास ले।।
पुनि आठ अष्टमी को एक कलछी मात्र है।
छठवीं में एक अन्न एक रस विख्यात है।।
फिर आठ अष्टमी को एकाशना करें।
रूक्ष आहार करके आठ अष्टमी करें।।
चौसठ है कुल अष्टमी अठ-अठ प्रकार की।
त्रय मास ऊन तीन वर्ष हो जाती पूर्ण ही।।
नरनारि श्रद्धा धार कर उद्यापन विधि करें।
कर्मों को चूरकर वे मुक्ति बल्लभा वरें।।

ॐ ह्रीं कर्मचूर व्रतेभ्यो जयमालाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-कर्म चूर के व्रत विधि जो करते भवि जीव।
कर्म चूर के विशुद्ध पद पावें सौख्य सदीव।।

इत्याशीर्वाद पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्।

कर्म निर्झर व्रत पूजा

अडिल्ल- चौतीसों अतिशय सहित जिनदेव है।
प्रातिहार्य पुनि आठ लखें स्वयमेव हैं।।
गुण अनन्त अरिहत चतुष्टय धाम है।
कहवत के छयालीस परम अभिराम हैं।।

दोहा-वीतराग सर्वज्ञ जिन, हित उपदेशी बान।
ऐसे श्री जिनको यजों, होय कर्म की हान।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्, सन्निधिकरणम्।

अष्टक चाल (चाल चौबीस महाराज)

गंगा सम शीतल नीर, लायो भर झारी।
पूजों तुम चरणन धीर, जन्म जरा हारी।।
श्री वीतराग जिनदेव, हित उपदेशक हो।
सर्वज्ञ लखो स्वयमेव, जग निर्देशक हो।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-रोग-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।1।

केशर कर्पूर मिलाय, चन्दन घिस लीनों।
जिन चरनन अरचों आय, भव तप हर दीनों।।श्री वीतराग..... ..।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि.।2।

परिमल तदुल जिनराज! बासमती लायो।
अक्षय पंद पावन काज, पूजन रचवायो।।श्री वीतराग . .।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् नि.।।3।।

मदार मोगरा फूल, चम्पा गध सने।
मिट जाये मदन कृत शूल, जिनवर पूज ठने।।श्री वीतराग. . .।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि.।।4।।

मोदक-मन-हरन अनूप, सुन्दर सद्य बने।
उत्तम प्रासुक रस कूप, यजत क्षुधादि हने।।श्री वीतराग. .. .।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि.।।5।।

दीपक की ज्योति अपार, तम खण्डन हारी।
मम मोह तिमिर निरवार, पूजों दृग धारी।।श्री वीतराग. ......।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय मोह-तिमिर-विनाशनाय दीपं नि.।6।

ले धूप दशांगी सार, तुम ढिंग खेवत हूँ।
मिस धूम्र कर्म हैं क्षार, निज पद बेवत हूँ।।श्री वीतराग........।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय अष्ट-कर्म-दहनाय धूपं नि.।।7।।

षट् ऋतु के सुफल मँगाय, नयनन सुखकारी।
पूजों श्री जिन उमगाय, शिव फल दो भारी।।श्री वीतराग........।।
ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं नि.।।8।।
जल चन्दन आदिक आठ, द्रव्य मिला दीजे।
जिन पूजन का कर ठाठ, वसु विधि हर लीजे।।श्री वीतराग.....।।
ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि.।।9।।

जयमाला

दोहा-घात घातिया चार विध, पायो केवल राज।
ऐसे श्री अरहंत की, रचूँ माल शिव काज।।

पद्धड़ि छन्द

जब गर्भ माहि आवें जिनेश, भुवि लाय शीश नावें सुरेश।
पाकर आज्ञा छ. मास पूर्व, धन देव रचे नगरी अपूर्व।।
रत्नों की वर्षा तीन काल, करता कुबेर गृह मही पाल।
फिर रुचिक वासिनी देवि आय, कर गर्भ शुद्धि जननी नमाय।।
श्री आदिक देवी आय आय, जिन जननी की सेवा कराय।
पुनि जन्में जब तीर्थेश देव, आवें निकाय के सर्व देव।।
इन्द्राणी माता पास जाय, कृत्रिम बालक धर जिन लहाय।
लख जिनको इन्द्र न तृप्त होय, जिन नेत्र बनावे सहस सोय।।
फिर ऐरावत पर कर सवार, ले जाय मेरु पर चंवर ढार।
पञ्चम समुद्र से सलिल लाय, धारा डारें जिन शीश गाय।।
इन्द्राणी जिनका कर सिंगार, माता को सौंपे ला अगार।
जिन जनक जननि पूजा कराय, सुरगण पहुँचे निज वास जाय।।
क्रम क्रम जिन बढते मात क्रोड़, क्रीड़ा करते हुए हाथ जोड।
काल क्रम से बचपन बिताय, पहुँचे तरुणाई में जिनाय।।

केई जिन लेते राज पाट, रचते विवाह कर ठाठ बाट।
केई नहिं करते राज ब्याह, केवल संयम में ही उछाय।।
तप के दिन की महिमा महान, लौकान्तिक आवें हर्ष मान।
हे भगवन धन धन दिवस आज, संसार समुद्र तारण जहाज।।
यह है असार संसार-भोग, नहीं सत पुरुषन के रमण जोग।
ले शिविका काँधे इन्द्र आप, उत्सव युत वन में देय थाप।।
भगवन पुनि भूषण बसन त्याग, दीक्षाधारें मन ही विराग।
द्वादश अनुप्रेक्षा चिंतन कीन कचलोंच तभी करते प्रवीण।।
दुर्द्धर तप द्वादश धरें धीर, गुण श्रेणी चढ़ते परम वीर।
सप्तमगुण थानक सात घात, स्वस्थान प्रमत की है जु बात।।
सातिशय माँहि पुनि तीन आय, घातैं प्रभु निजके हो सहाय।
नवमें में छत्तीसों खिपाय, फिर लोभ दशम गुण में नशाय।।
एकादश गुण छूते न कोय, द्वादशवें में सोलह विगोय।
इस दिधि विधि त्रेसठ चूर्ण कीन, केवल लहि जग जानें प्रवीण।।
धर्मोपदेश देते उदार, जग जीवन का करते उधार।
समवश्रित मे समता रखाय, सब भेद भाव दूरे भगाय।।
तब जय जय ध्वनि शत इन्द्रकीन, नावें निजशीश न होय दीन।
हे प्रभुवर अशरण शरण जान, हम शरण गही करुणा निधान।।
पुनि ध्यान शुक्ल को साथ लीन बेहतर तेरह की क्षीण कीन।
इस विधि सौ-अड़तालीस घात, अष्टम भू पहूँचे हो अगात ।।
प्रभु होय आपमें आप लीन, आठों गुण अपने प्रकट कीन।
हे देव शिरोमणि नमस्कार, हमको भी भवदधि करो पार।।

यह 'चन्द' चरण में नमे भाल।
जय जय जय जय जिनवर कृपाल।।

दोहा-तुम गुण महिमा अगम है, को कवि पावे पार।
अशरण शरण अधार प्रभु, भव नायक भवतार।।

ॐ ह्रीं श्रीमज्जिनेन्द्र-देवाय जयमालाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा- जो जिन पूज रचाय, भाव भक्ति मन लायके।
पावे सुर नर काय, शिवपुर जावे अन्त में।

इत्याशीर्वादः।

गणधरवलय पूजन

जयवीर रहें महावीर अमित गुरु, स्याद्वाद को नमन करें।
आठ ऋद्धि धारी गणधर हैं उनका हम आह्वान करें।।
अत्र अत्र तिष्ठौ! हे ऋषिवर! स्थापन के भाव धरै।
भव बषट् करें भक्ति सौं, कर जोरें हम पाय परें।।

ॐ ह्रीं द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्

ॐ ह्रीं द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्

ॐ ह्रीं द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

गंगा हृद निरमल नीर, सुवरन कलश भरूँ।
मेरी जनम मरण की पीर, मेंटो अरज करूँ।।
तुम चार ज्ञान के नाथ, ऋषिवर तपधारी।
कर जोरें दोऊ धर माथ, गणधर उपकारी।।1।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यो जन्मजरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव भव में भटको नाथ, ताप न मिट पायो।
भव ताप पाप सब नाशि, चन्दन घिस लायो।।

गुणधारी भारी आप, ताप नशै मेरी।

मोहि भयो भरोसो आज, पल की नहि देरी।।2।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यः संसार-ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती से चावल लेय, पाँच जगह धारूँ।

पाँचो पापनि कू जारि, अक्षय पद धारूँ।।

वसु ऋद्धिन के भरतार, मोहित नहि होवे।

तव भक्ति मुक्ति करतार, जग में शुभ बोवे।।3।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सब दिव्य लोक के फूल, भौंरा मडरावै।

अब काम व्यथा के शूल, मेरे मिट जावै।।

कदर्प बली के वान, तुम पर नहि लागैं।

तुम्हे देखि दूर तें आप, उल्टे पग भागैं।।4।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

गोला की चटक बनाय, थाल भरायो है।

अब क्षुधा रोग नशि जाय, चरण चढ़ायो है।।

त्रिभक्ति करैं हम आप, त्रिगुप्ती धारी।

आवे न असाता वेद, पूजत नर नारी।।5।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अज्ञान तिमिर को नाश, दीपक करि डारै।

रतननि के दीप संभारि, चरणन ढिग धारै।।

घी के रतननि के दीप और कपूर कहे।

भक्ति तें धरे समीप, फल भरपूर लहे।।6।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हम अगर तगर सब लेय, धूपायन डारें।

सब आठ भाँति के होंय, करमन कौं जारें।।

सब आठ ऋद्धि कौ ठाठ, तुमने पायो है।

होवे ऋद्धिन की सिद्धि, हम सिर नायो है।।7।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल दक्षिण ते लाय, दोऊ कर ले लीनो।

शिव नारि वरैं हम जाय, मनभावन भीनौ।।

हे गणधर! वर ऋषिराज! गुणगण भूषित हो।

शिव रमणी रमने आज, ज्ञान विभूषित हो।।8।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यो महामोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल लीने हरषाय, भक्ति में नाचे।

तुम चरणन देत चढाय, पद अनरघ जाचें।।

वृषभादि वीर चौबीस, गणधर सहस्र कहे।

सब चार सौ बावन औरु, तिन हम शीश नए।।9।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं क्ष्वीं श्रीं अर्हं अ सि अ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः।

(108 बार जाप करें)

जयमाला

दोहा-ज्ञान बिना नहिं जगत में, जीव जानिए कोय।
मनपर्यय मति श्रुत अवधि, गणधर कहिए सोय।।

पद्धरि छन्द

चौरासी गणधर आदिनाथ। भये वृषभ सेन तहा मुख्य साथ।
नब्बे गणधर हैं अजित संग। सिंहादिसैन कहिए मतग।।1।।
चारुसेन मुखिया बनाय। सभव के सौ अरु पाँच गाय।
एक शतक तीन गणधर प्रमान। अभिनन्दन के वज्रनाभि जान।।2।।
चामर है गणधर सुमति नाथ। जहाँ एक शतक सोलहसु साथ।
दश औरु शतक वज्रादि कहे। पद्म प्रभ तब उपदेश दये।।3।।
श्री सुपार्श्वनाथ के समोशरण। बलदत्तादि पाँच नब्बे को नमन।
सप्तघाटि शतकहै गणधराय। दत्तादि चद्रप्रभ ढिग रहाय।।4।।
अठ्ठासी सब तिनमें विदर्भ। पुष्पदन्त प्रभु पद नमत सर्व।
इक्यासी सब अनगार मुख्य। शीतल प्रभु पदमाने सुसौख्य।।5।।
कुथ्वादि सतत्तर गणधराज। श्रेयासनाथ तारण जहाज।
छियासठ गणधर उनमें सुधर्म। नमि वासुपूज नित लहें शर्म।।6।।
मदराय पचास रु पाँच जान। नित सुनें विमल की विमल वानि।
गणधर जयादि सब हैं पचास। पूजैं अनन्त धरि कैं हुलास।।7।।
तियालीस कहै गणधर अरिष्ट। श्री धर्मनाथ मेटें अनिष्ट।
चक्रायुधादि छत्तीस मान। श्री शांतिनाथ के संगजान।।6।।
स्वयंभू है मुखिया तीस पाँच। श्री कुन्थुनाथ गणधर सुसाँच।
गणधर कुभार्य हैं सकल तीस। श्री अरहनाथ नित नमें शीश।।9।।
गणधर विशाख सब बीस आठ। मल्लिनाथ पदहि सेवें सुठाठ।
दश आठ मल्लिसब गणधरेश। पूजैं मुनिसुव्रत पद हमेश।।10।।

सुप्रभादि कहे सत्रह सुसार। नमिनाथ भक्ति करते अपार।
वरदत्त मुख्य ग्यारह सुगाय। श्री नेमिनाथ पद शीश नाय।।11।।
स्वयभ्यादि मुख्य सब दश गिनेय। श्रीपार्श्व वानि सुनि थकत नाहिं।
ग्यारह तिन गौतम मुख्यजान। श्रीमहावीर गणधर महान।

सवैया

जब लग गणधर होंय न भाई! वाणी प्रभु की कभी न होय।
गणधर सुनिकर प्रभु वाणी कूँ, द्रव्यरूप श्रुत गूँथे सोय।।
ये उपकार महा गणधर का, यातें सब जग पढ़ि पावै।
जो भवि इनकी भक्ति करै जग, "अजित" जीत शिव चढ़ि जावै।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-गणधर पद मगल करे, बढे सु ज्ञान निधान।
भक्ति करैं हम शक्ति से, पावैं पद निरवान।।

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

गुरुपूजा

दोहा-चहुँगति दुखसागर विषैं, तारनतरन जहाज।
रत्नत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्रावतरावतर, संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

शुचि नीर निरमल क्षीरोदधिसम सुगुरु चरन चढ़ाइया।
तिहुँ धार तिहुँ गद टार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया।।

भव भोग तन वैराग धार, निहार शिव तप तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ आराध साधु सु पूज नित गुन जपत हैं।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जलं नि. स्वाहा।।1।।

करपूर चदन सलिल सों घसि, सुगुरु पद पूजा करौं।
सब पाप ताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः चन्दनं नि. स्वाहा।।2।।

तन्दुल कमोद सुवास उज्ज्वल, सुगुरु पग तर धरत हैं।
गुनकार औगुनहार स्वामी, वन्दना हम करत हैं।।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अक्षतान् नि. स्वाहा।।3।।

शुभफूल रास प्रकाश परिमल, सुगुरु पाँयनि धरत हों।
निरवार मार उपाधि स्वामी, शील दृढ़ उर धरत हों।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः पुष्पं नि. स्वाहा।।4।।

पकवान मिष्ट सलौन सुन्दर, सुगुरु पाँयन प्रीति सौं।
कर क्षुधा रोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीति सौं।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो नैवेद्यं नि. स्वाहा।।5।।

दीपक उदोत सजोत जगमग, सुगुरु पद पूजों सदा।
तमनास ज्ञानउजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो दीपं नि. स्वाहा।।6।।

बहु अगर आदि सुगध खेऊँ, सुगुण पद पद्महि खरे।
दुख पुञ्ज काठ जलाय स्वामी, गुण अखय चिन्त में धरे।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो धूपं नि. स्वाहा।।7।।

भर थार पूग बदाम बहु विधि, सुगुरुक्रम आगे धरों।
मगल महाफल करो स्वामी, जोर कर विनती करों।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः फलं नि. स्वाहा।।8।।

जल गन्ध अक्षत फूल नेवज, दीप धूप फलावली।
'द्यानत' सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहि तार उतावली।।भव०।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।।9।।

जयमाला

दोहा- कनककामिनी विषयवश, दीसैं सब संसार।
त्यागी वैरागी महा, साधु सुगुरु भंडार।।1।।
तीन घाटि नवकोड सब, वर्दौ शीश नवाय।
गुन तिन अठ्ठाईस लों, कहूँ आरती गाय।।2।।
एक दया पालै मुनिराजा, रागद्वेष द्वै हरन परं।
तीनों लोग प्रकट सब देखैं, छहों दरब जाने सुहितं।
सातभग वानी मन लावै, पावै आठ रिद्ध उचितं।।3।।
नवों पदारथ विधि सौं भाखैं, बध दशौ चूरन करनं।
ग्यारह शंकर जानै मानै, उत्तम बारह व्रत धरन।।
तेरह भेद काठिया चूरे, चौदह गुणथानक लखियं।
महाप्रमाद पञ्चदश नाशे, शील कषाय सबै नखियं।।4।।
बधादिक सत्रह सब चूरे, ठारह जन्म न मरन मुन।
एक समय उनईस परीषह, बीस प्ररूपनि में निपुनं।।
भाव उदीक इकीसौ जानै, बाइस अभक्षन त्याग कर।
अहिमिदर तेईसों वदे, इन्द्र सुरग चौबीस वरं।।5।।
पच्चीसौं भावन नित भावै, छब्बिस अंगउपंग पढैं।
सताइससों विषय विनाशै, अठ्ठाईसौं गुण सु बढ़ै।।
शीत समय सर चौहटवासी, ग्रीषम गिरिसिर जोग धरैं।
वर्षा वृक्षतरैं थिर ठाड़े, आठ करम हनि सिद्धि वरैं।।6।।

दोहा- कहीं कहाँ लों भेद मैं, बुध थोड़ी गुण पूर।
'हेमराज' सेवक हृदय, भक्ति भरी भरपूर।।7।।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः

चारित्रशुद्धि व्रत पूजन

दोहा- शुद्ध सुगुण छयालीस युत, समवशरण के ईश।
निज आतम उद्धार हित, नमत चरण में शीश।।
आतम शुद्धि के अर्थ हम, जिनवर पूज रचाय।
रत्नत्रय के प्राप्त हित, श्री जिनेन्द्र गुण गाय।।
करूँ त्रिविधशुद्ध योग से, आह्वानम् विधिसार।
आवहु तिष्ठहु हृदय में, नाथ त्रिलोक आधार।।

सोरठा- व्रत चारित्र महान, इस बिन मुक्ति न पावहीं।
चारित्र शुद्धि विधान, इसीलिए अर्चन करूँ।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित-चतुस्त्रिंशदधिक-द्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत्-परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित-चतुस्त्रिंशदधिक-द्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत्-परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित-चतुस्त्रिंशदधिक-द्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत्-परमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अष्टक- गगादिक निर्मल नीर, कंचन कलश भरूँ।
प्रभु वेग हरो भव पीर, चरणन धार करूँ।।
बारह सौ चौंतीस सार प्रोषध सुखकारी।
मैं पूजूँ विविध प्रकार आतम हितकारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितेभ्यो अर्हत्परमेष्ठिभ्यो जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

मलयागिर चन्दन सार, केशर रंग भरी।

प्रभु भव आताप निवार, यह विनती हमरी।।

बारह सौ चौंतीस सार प्रोषध सुखकारी।

मैं पूजूँ विविध प्रकार आतम हितकारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो भवाताप-विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

ले चन्द किरण सम शुद्ध, अक्षत शुचि सारे।

तसु पुञ्ज धरूँ अवरुद्ध, तुम पग तल धारे।।बारह सौ . .।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुर तरु के सुमन समेत, अलि गुञ्जार करे।

मै जजूँ चरण निज हेत, मद गद व्याल हरें।।बारह सौ ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना विधि के पकवान, कचन थाल भरूँ।

मै जजूँ चरण ढिग आन, भूख व्यथा जु हरूँ।।बारह सौ ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

तम खण्डन दीप अनूप, तुम पद निकट धरूँ।

मम मोह हरो शिव भूप, याते पूज करूँ।।बारह सौ ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठियो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

दस विधि की धूप बनाय, पावक में खेऊँ।

मम दुष्ट करम जर जाय, तुम पद नित खेऊँ।।बारह सौ . ..।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम सुपारी लाय, केला फल प्यारे।
तुम शिव फल देहु दयाल, तुम पद फल धारे।।
बारह सौ चौंतीस सार प्रोषध सुखकारी।
मै पूजूँ विविध प्रकार आतम हितकारी।।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल वसु कचन थाल, आठों द्रव्य भरूँ।
छोटे नित नावत भाल, तुम पद अर्घ्य करूँ।।बारह सौ . ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मगल अर्घ्य बनाय गाय गुण, कचन थाली भरिये।
अर्घ्य देत जिनराज चरण में, महाहर्ष उर धरिये।
चारित शुद्धि व्रत के हित मै, जिन पद पूज रचाऊँ।
आतम हित के हेत जिनेश्वर, पद में शीश नवाऊँ।।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक-शुद्ध-चारित्रव्रत-मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्य-पद-प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप्य-ॐ ह्रीं असिआउसा चारित्र-शुद्धि-व्रतेभ्यो नमः।

(108 बार जाप्य करे)

जयमाला

जिसकी शुद्धि के बिना, जिनवर सीझें नाहि।
उसकी शुद्धि के लिये, जिनवर पूज रचाहि।।
व्रत चारित को शुद्ध कर, पहुँचे अविचल थान।
उनके ही पद कमल का, धरूँ हृदय में ध्यान।।

पद्धरि छन्द

जय जय जय जिनवर देव भूप, जय जय जय शिव वल्लभ अनूप।
जय जगपति जय-जय जगन्नाथ, जय मंगल मय हम नमत नाथ।।

जय शिव शकर जय विष्णु देव, जय ब्रह्मा जय मगल विशेष।
जय कमलासन कृत कर्म ईश, इन्द्रादि चरण नित नमत शीश।
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, जय मगलमय भव हरत पीर।
जय अन्तरिक्ष जानत जिनेश, जय चतुर्गति काटत क्लेश।।
जय इन्द्रिय जय जय धर्मवीर, जय कर्म दलन भर अति गम्भीर।
जय जगत शिरोमणि गुण निधान, जय शत्रु मित्र जानत समान।।
जय व्रत चारित धारो करण्ड, जय शुद्ध बिहारी आत्म पिण्ड।
जय सत् चित घन आनन्द रूप, जय शुद्ध चिदानन्द सत् स्वरूप।।
जय पञ्च महाव्रत धरण धीर, जय पञ्च समिति पालक सु वीर।
जय तीन गुप्ति के रथ सवार, यह तेरह विधि चारित्र धार।।
जय चारित्र शुद्ध धर व्रत दयाल, इक क्षण मे तोडा कर्म जाल।
ऐसा विशुद्ध वर व्रत विधान, उस व्रत को हम पूजत सु आन।।
यह व्रत है सब जग मे प्रसिद्ध, है नित्य अनादि स्वय सिद्ध।
इसके बिन मुक्ति नही होय, यह व्रत है तारण सिन्धु तोय।।
हे व्रताधीश हे व्रत दिनेश, हे शिव वल्लभ काटो क्लेश।
अब तेरी शरण गही सु आन, छोटे चाहत नित आत्म ज्ञान।।

दोहा-व्रत चारित मन से सदा, चारित पालें वीर।
ते पावे निर्वाण सुख, आठो कर्म नशाय के।।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिक-द्वादशशतक जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-जो विशुद्ध मन से सदा, चारित पालें वीर।
ते वसु कर्म नसाय के, पहुँचे भव के तीर।।

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं।

चौसठऋद्धि पूजा

संसार सकल असार जामें सारता कछु है नहीं।
धन धान धरणी और गृहणी त्यागि लीनी वन मही।
ऐसे दिगम्बर हो गये, अरु होयेंगे वरतत सदा।
इत थापि पूजों मन वचन करि देहु मगल विधि तदा।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकार-सर्व-मुनिश्वरसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकार-सर्व-मुनिश्वरसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकार-सर्व-मुनिश्वरसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

लाय शुभ गगाजल भरि कै, कनक भृगार धरि कर कै ।
जन्म जरा मृत्यु के हरनन, यजों मुनिराज के चरणन ।।1।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

घसों काश्मीर सग चन्दन, मिलावो केलि को नन्दन।
करत भवाताप को हरनन, यजों मुनिराज के चरणन।।2।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यः संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत शुभ चद्र के कर से, भरौं कनथाल में सरसे।

अक्षयपद प्राप्ति के करणन, यजों मुनिराज के चरणन।।3।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये-अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप ल्यौं घ्राण के रंजन, उडत ता माहि मकरदन ।

मनोभव बाण के हरनन, यजों मुनिराज के चरणन ।।4।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय-पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लेय पक्वान्न बहुविधि के, भरौ शुभ थाल सुवरण के ।

असातावेदनी क्षरणन, यजों मुनिराज के चरणन ।।5।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय-नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जगमगे दीप ले करि के, रकाबी स्वर्ण में धरि के ।

मोहविध्वंस के करणन, यजों मुनिराज के चरणन ।।6।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय-दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर मलयागिरी चन्दन, खेयकरि धूप के गधन ।

होय कर्माष्ट को जरनन, यजों मुनिराज के चरणन ।।7।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सिरीफल आदि फल ल्यायो, स्वर्ण को थाल भरवायो ।
होय शुभ मुक्ति को मिलनन, यजों मुनिराज के चरणन ।।8।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यो मोक्षफल- प्राप्तये-फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलादिक द्रव्य मिलवाए, विविध वादित्र बजवाये ।
अधिक उत्साह करि तन में, चढ़ावों अर्घ चरणन में।।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

तारण तरण जिहाज, भवसमुद्र के माहिं जी ।
ऐसे श्री ऋषिराज, सुमरि सुमरि विनती करों ।।1।।

जय जय जय मुनियुगल पाय, मैं प्रणमों मन वच शीश नाय ।
ये सब असार संसार जानि, सब त्याग कियो आतम कल्याण ।।2।।
क्षेत्र वास्तु अरु रत्न स्वर्ण, धन धान्य द्विपद अरु चतुकचर्ण ।
अरु कौप्य भाड दश बाह्य भेद, परिग्रह त्यागे नहि रचखेद ।।3।।
मिथ्यात्व तज्या ससार मूल, मुनि हास्य अरति रति शोक शूल ।
भय सप्त जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुनि पुरुष वेद अरु क्लीव वेद ।।4।।
अरु क्रोध मान माया रु लोभ, ये अन्तरंग में करत क्षोभ ।
इम ग्रन्थ सबै चौबीस येह, तजि भए दिगम्बर नग्न जेह ।।5।।
गुण मूल धारि तजि रागदोष, तप द्वादश धरि तन करत शोष ।
तृण कचन महल मसान मित्त, अरु शत्रुनि में समभाव चित्त ।6।
अरु मणि पाषाण समान जास, पर परणति में नहिं रंच वास ।
यह जीव देह लखि भिन्न भिन्न, जे निजस्वरूप में भाव किन्न ।7।

ग्रीष्मऋतु पर्वत शिखर वास, वर्षा में तरुतल है निवास ।
जे शीतकाल में करत ध्यान, तटनी तट चोहट शुद्ध थान ।।8।।
हो करुणासागर गुण अगार, मुझ देहि अखय सुख को भडार ।
मैं शरण गही मुझ तार तार, मा निज-स्वरूप द्यो बार-बार ।।9।।
यह मुनि गुणमाला, परम रसाला, जो भविजन कण्ठै धरही ।
सब विघ्न विनाशहि मगल भासहि, मुक्तिरमा वह नर वर ही ।10।

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल-सम्बन्धि-पुलाकबकुशकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातक-पञ्चप्रकारसर्व-मुनीश्वरेभ्यो अनर्घ्यपद- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्व मुनिन की पूज यह, करै भव्य चित्त लाय ।
ऋषि सर्व घर मे बसै, विघ्न सबै नशि जाय ।।11।।

इत्याशीर्वादः

जम्बूस्वामी पूजा

भरथेरी- चौबीसौ जिन पाय, पञ्च परम गुरु वन्दि के।
पूज रचो सुखदाय, विघ्न हरो मंगल करो।।

अडिल्ल छन्द- विद्युतमालि देव चये जम्बू भये,
कामदेव अवतार अन्त केवलि भये।
कार्तिक कारे पाख वरागनि शिववरी,
आवो आवो स्वामि भक्ति मम उर भरी।।1।।

ॐ ह्रीं जम्बूस्वामिन् अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वानम्

सिह पीठ मम देह कमल उर सोहनो।
तिष्ठौ तिष्ठौ तीर्थ भविक मन मोहनो।।
अब मोहि चिन्ता कौन सिद्ध कारज भये।
आतम अनुभव पाय सकल सुर थिर भये।।2।।

ॐ ह्रीं जम्बूस्वामिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः स्थापनम्

स्वामि अपनो रूप मोहि इक दीजिए।
मैं हूँ पूजक भक्त आज चित दीजिए।।
यह ससार महान असाता के विषै।
तो सों तन मन होय सकल आनन्द जगै।।3।।

ॐ ह्रीं जम्बूस्वामिन् अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्

गगादिक जल लेय रत्न झारी भरूँ।
जै जै कर उच्चारि धारिदे प्रति करूँ।।
सिद्धचक्र मय वन्द्य जम्बु पूजा करूँ।
ज्ञानावरणी कर्म तनी थिति को हनूँ।।1।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि.।

बावन चन्दन ल्याय और मलयागिरी।
केशर द्रव्य मिलाय घिसाय इकमिक करी।।
सिद्धचक्र मय वद्य जम्बु पूजा रचूँ।
दर्शनावरणी कर्म तनी थिति को हनूँ।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि.।

तन्दुल मुक्ता जिम इन्दु करणा जिसे।
दीर्घ अखण्डन कोर पूज करिये तिसे।।
ज्योति सरूपी धाय जम्बु पूजा रचूँ।
अन्तराय क्षय कीन अक्षय पद मैं चहूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् नि.।

पारिजात चन्दन अरु मेरु सुहावने।
सन्तानक सुन्दर के पुहुप मंगावने।।
अखल रूप अवधार जम्बु पद को जजूँ।
मोहनी कर्म निवार कामते ना लजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि.।

सुन्दर घृत मिष्ठान्न विविध मेवा जिते।
मैदा सहित मिलाय पिण्ड करिये तिते।।
समयसार नित वन्द प्रभु आगे धरूँ।
जम्बू स्वामि मनाय वेदनी को हरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि.।

चन्द्रकान्ति और सूर्यकान्ति शुभ मणि भली।
और सनेही वात जोय आनन्द रली।।
अष्टम गुण जुत ध्याय जम्बू पूजूँ सदा।
चार आयु तिथि मेटि फिरूँ नहीं मैं कदा।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि.।

धूप दशाग मगाय अग्नि सग खेय ही।
धूपायन जु कनक मय सार जु लेव ही।।
नीच गोत्र अर ऊँच गोत्र नहि पाय हो।
आतम सु रूपी ध्यान निरञ्जन ध्याय हो।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं नि.।

श्रीफल लोंग बदाम छुआरे लाय के।
एला पुगी आदि मनोज्ञ मनाय के।।
अष्ट गुणायुत ध्याय सकल भव को हरू।
नाम करम झड़ जाय प्रभु पायन परू।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

क्षायक सम्यक् शुद्ध ज्ञान केवल मय सोहे।
केवल दर्शन प्राप्ति अगुरुलघु सुख में जो है।।
इक में नेक समाहि हर्ष भारी गुन तेरो।
अव्याबाध निवारि अर्घ्य दे चरनन चेरो।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूस्वामिने अनर्घ्य-पद-प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

दोहा-वर्द्धमान जिन वन्द्य के, गुरु गौतम के पाय।
अरु सुधर्म गणि को प्रणमि, जम्बूस्वामि मनाय।।

जय विद्युतमाली देव सार, पञ्चम दिव में महिमा अपार।
जय राजगृहीपुर सेठ थान, उपजे मनमथ अन्तिम सुजान।।
लघु वय में उर वैराग्य धार, जग सब अस्थिर जान्यो कुमार।
तब सब परिवार उछाह ठान, ब्याही वनिता जिन वय समान।।
रतनन के दीपक दिपै महल, वनिता बैठी जुतकाम शैल।
तिन सो ज्ञानादिक वच उचार, रागादि रहित कीनी सु नार।।
तब विद्युतप्रभ तहाँ चोर आय, रसभीनी अष्ट कथा सुनाय।
ताको वैराग्य कथा प्रकाश, निज तत्त्व दिखाओ चिद विलास।।
जग अथिर रूप थिर नाहिं कोय, नहि शरण जीवकूँ आन होय।
ससार भ्रमण विधि पाँच ठान, इक जीव भ्रमत नहि साथ आन।।
षट्द्रव्य भिन्न सत्ता नशाय, निज स्वय सिद्ध त्रयलोक गाय।
निज धर्म लसैं कोई पुमान, दुर्लभ नहि आतम ज्ञान भान।।
द्वादश भावन इहि भाँति भाय, बहुजन युत भेटे वीर पाय।
दीक्षा धर केवल ज्ञानधार, रिद्धि सप्त लई महिमा अपार।।
सन्मति गौतम धर्मा मुनीश, शिवपाय तबै केवल जगीश।
वानी जु खिरी अक्षरन रूप, तत्त्वन को भाष्यो इम सरूप।।
आपापर परसों प्रीति होय, चेतन बन्धै चवभाँति मोय।
तब निज अनुभूति प्रकाश पाय, सत्ता सुकर्म नाशे अघाय।।
चय बन्ध रहित तब होत जीव, सिद्धालय थिरता है तदीव।
षट्द्रव्य बखानो भेद रूप, चैतन्य और पुद्गल सरूप।।
चालन सहचारी थिति सुहाय, बरतावन द्रव्यन कूँ सुभाय।
पुनि सर्व द्रव्य जा में समाय, अवकाश दुतिय अवलोक गाय।।
मुनि श्रावक को आचार भाष, आचारज ग्रन्थन में प्रकाश।
पुनि आरज खण्ड विहार कीन, जम्बू वन में थिति जोग लीन।।

सब करमन कौ क्षय करि मुनीश, शिव वधू लही नावत मैं शीश।
मथुरा तैं पश्चिम कोस आध, छत्री पद में महिमा अगाध।।
ब्रज मण्डल में जे भव्य जीव, कार्तिकवदि रथ काढत सदीव।
केउ पूजत केऊ नृत्य ठान, केऊ गावत विधि सहित तान।।
निशि द्यौस होत उत्सव महान्, पूरत भव्यन के पुन्य थान।
पद कमल प्राग तुम दास होय, निज भक्त विभव दे अरज मोय।।
घत्ता-जय चन्दन लाये, अखत मिलाये, पुहुप सुहाये मन भाये।
नैवेद्य सु दीप दश विधि धूप फलरु अनूप श्रुत गाये।।
सुवरन के थाल भरिजु रसाल फेरि त्रिकाल सिर नाये।
गुणमाल तिहारी मम उरधारी जगत उजारी सुख दाये।।

ॐ ह्रीं जम्बूस्वामी-सिद्धपरमेष्ठिने पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-महिमा जम्बू स्वामि की, मोपे कही न जाय।
कै जानै केवलि मुनि, कै उन माहि समाय।।

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

जिनगुण सम्पत्ति व्रत पूजा

स्थापना

गीताछन्द

जैनेन्द्र गुण की सम्पदा के नाम त्रेसठ मुख्य हैं।
सोलह सुकारण भावनावर, प्रातिहार्य जु अष्ट हैं।।
चौंतीस अतिशय पञ्चकल्याणक सुत्रेसठ जानिये।
श्रीजिनगुणों की स्थापना कर पूजते सुख मानिये।।1।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिषष्टि-जिनगुण-सम्पत्ति-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं श्री त्रिषष्टि-जिनगुण-सम्पत्ति-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री त्रिषष्टि-जिनगुण-सम्पत्ति-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

चाल- पूजों-पूजों श्री अरिहंत देवा

नीर गंगा नदी का लाऊँ, हेमझारी से धारा कराऊँ।
मैल आतम का शीघ्र हटाऊँ, जिनेन्द्रगुणसम्पद जजूँ मनलाके।।
तीर्थंकर गुणों की संपद, पूजते क्षीण होती विपत सब।
शीघ्र मिलती निजातम सपद, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके।।1।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्वेत चदन सु केशर लाऊँ, नाथ के गुण की पूजा रचाऊँ।
ताप ससार का सब मिटाऊँ, जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।। तीर्थंकर

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यः संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द रश्मि सदृश अक्षत है, पुञ्ज धरते नशत सब अघ है।
मिलें आतम की सब सपद है, जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।।तीर्थंकर

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्द मदार चपक मल्ली, पूजते ही कटे भव वल्ली।
फैले जगमें भविक यशवल्ली, जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।। तीर्थंकर .

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फैनी घेवर कलाकंद लाके, व्याधि विरहित प्रभु गुण गाके।
भूख बाधा को पूर्ण मिटाके, जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।। तीर्थंकर .

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप में शुद्ध गोघृत जलाऊँ, ज्योति से पूजते भ्रम भगाऊँ।
चित्त में ज्ञान ज्योति जगाऊँ. जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।।तीर्थंकर.

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप कृष्णागरु चन्दन है, खेवते पापराशि दहन है।
आत्मपीयूष वर्षा सघन है, जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।। तीर्थंकर

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम, अगूर, अमरूद फल हैं, पूजते विघ्न राशि विफल है।
शीघ्र मिलता निजातमफल है, जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।। तीर्थंकर

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गधादि अर्घ बनाऊँ, आपकी नित्य पूजा रचाऊँ।
अनमोल रतन तीन पाऊँ, जिनेन्द्रगुणसपद जजूँ मनलाके।। तीर्थंकर

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-शान्तिधारा करत है, त्रिभुवन में नित शान्ति।
जिनगुण सपद् अर्चना, करें निजातम शान्ति।।10।।

शान्तये शान्तिधारा।

दोहा-कमल केतकी मालती, पुष्प सुगन्धित लाय।
पुष्पाञ्जलि कर पूजते, सुख संपत्ति अधिकाय।।

पुष्पाञ्जलिः।

जयमाला

सोरठा- मिले मुक्ति साम्राज्य, जिनगुण सम्पत्ति पूजते।
तुमगुण मणि की माल, धारूँ कंठ विषै सदा।।1।।

चाल- श्रीपति जिनवर करुणायतनं

जय-जय जिन गुण संपत जग में, मुक्ति पद कारण मानी है।
जय-जय तीर्थंकर प्रकृति बंध, की सोलह भावना मानी है।।
जय-जय दर्शन सुविशुद्ध आदि, गुण निधि को जो जन पाते हैं।
सोलह कारण भावन भाके, तीर्थंकर पद पा जाते हैं।।1।।
गर्भावतार जिन गुण सपत, जन्माभिषेक कल्याण महा।
दीक्षा केवल निर्वाणरूप, कल्याणक होते पाँच अहा।।
जो भविजन इनको पा लेते, वे धर्मचक्र नेता होते।
भव पञ्च परावर्तन तजकर, तीर्थंकर जग वेत्ता होते।।2।।
वे आठ प्रातिहार्यों से नित, भूषित अगणित महिमाधारी।
तरुवर अशोक सुर पुष्प वृष्टि, दिव्यध्वनि चामर सुखकारी।।
सिहासन भामडल शोभे, त्रय छत्र त्रिजग वैभव गाते।
प्रभु समवशरण लक्ष्मी भर्ता, त्रिभुवन के गुरु माने जाते।।3।।
वे जन्म समय के दश अतिशय, पाकर के अतिशयशाली हैं।
कैवल्य रमापति होते ही, दश अतिशय गुण मणि माली हैं।।
देवों के द्वारा किये गये, चौदह अतिशय भी गाये हैं।
चौंतीसों अतिशय सहित हुये, अर्हंत प्रभु कहलाये हैं।।4।।
इस विधि त्रेसठ जिन गुण सपत, व्रत का भवि पालन करते है।
सोलह प्रतिपद के सोलह अर, पञ्चमी के पाँच उचरते है।।
अष्टमी तिथि के व्रत आठ गिने, दशमी के बीस कहाये हैं।
चौदश के चौदह व्रत करके, त्रेसठ जिन गुण व्रत पाये हैं।।5।।
इस विधि से जो नर नारी गण, उपवास सहित व्रत करते हैं।
अथवा एकाशन से करके, जिन गुण सपत वरते हैं।।
धन्य धान्य समृद्धि सुख पाते, चक्री की पदवी पाते हैं।
देवेन्द्र सुखों को भोग-भोग, तीर्थंकर भी हो जाते हैं।।6।।
मैं भी श्रद्धा से जिन गुण में, नितप्रति भाव लगाता हूँ।
प्रत्येक भावना पुनः पुन· अनुरागी होकर गाता हूँ।।

निज आत्म गुणों की सम्पत्ति को मैं पाने हेतु ही आया हूँ।
रागादिक दोष मिटा दीजे, यह आश हृदय में लाया हूँ।।7।।
हे देव कृपा ऐसी करिये, मेरे दुःखों का क्षय होवे।
कर्मों का क्षय हो बोधि लाय, होवे अरे सुमतिगमन होवे।।
होवे समाधि के मरणनाथ, मुझको जिन गुण सपत्ति होवे।
कैवल्य ज्ञानमति हो करके, नित मुक्तिरमा में रति होवे।।8।।

दोहा-गुण अनन्त सागर प्रभो, कोई न पावे पार।
किंचित गुणमणि गुथ के, धरूँ कठ में हार।।9।।

ॐ ह्रीं त्रिषष्टि-जिनगुण-संपद्भ्यो जयमाला-पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

शातये शान्तिधारा ।पुरिपुष्पाञ्जलिं।

दोहा-गणपति गुणगणना करे, निज आतम गुण हेतु।
जो नर नारी भी गिने, शीघ्र लहे भव सेतु।।10।।

इत्याशीर्वादः

णमोकार महामन्त्र पूजा

गीता छन्द

अनुपम अनादि अनन्त है, यह मन्त्रराज महान है।
सब मगलो मे प्रथम मगल, करत अघ की हान है।।
अर्हंत सिद्धाचार्य पाठक, साधुओ की वन्दना।
इस शब्दमय परब्रह्म को, थापूँ करूँ नित अर्चना।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्र ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथाष्टकं भुजंगप्रयात छन्द

महातीर्थ गगानदी नीर लाऊँ, महामन्त्र की नित्य, पूजा रचाऊँ।
णमोकार मन्त्राक्षरो को जजूँ मै, महाघोर ससार दु.ख से बचूँ मैं।।1।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय जन्मजरामृत्यु- विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कपूरादि चन्दन महागध लाके।
पर शब्द ब्रह्म की पूजा रचाके। णमोकार0।।2।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

पय. सिन्धु के फेन सम अक्षतों को,
लिया थाल में पुज से पूजने को। णमोकार0।।3।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जुही कुद अरविन्द मदार माला।
चढाऊँ तुम्हें काम को मार डाला। णमोकार0।।4।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कलाकद लड्डू इमरती बनाऊँ।
तुम्हें पूजते भूख व्याधि नशाऊँ। णमोकार0।।5।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शिखा दीप की ज्योति विस्तारती है।
महामोह अन्धेर सहारती है। णमोकार0।।6।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुगंधी बढ़े धूप खेते अग्नि में।

सभी कर्म की भस्म हो एक क्षण में। णमोकार0।।7।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अनन्नास अगूर अमरूद लाया।

महामोक्ष सपत्ति हेतू चढाया। णमोकार0।।8।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उदक गध आदि मिला अर्घ्य लाया।

महामन्त्र नवकार को मै चढ़ाया। णमोकार0।।9।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-शान्ति धारा मै करूं, तिहुँजग शान्ति हेत।

भव-भव आतप शान्त हो, पूजूँ भक्ति समेत।।

शान्तये शान्तिधारा।

दोहा-वकुल मल्लिका पुष्प ले, पूजूँ मन्त्र महान।

पुष्पाञ्जलि से पूजते, सकलसौख्यवरदान।पुष्पाञ्जलि।

जाप्य- **ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं। ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं।**

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं। ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अथवा

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय- सर्वसाधुभ्यो नमः।

(108 बार जाप करना)

जयमाला

सोरठा- पञ्चपरमगुरुदेव, नमूँ नमूँ नित शीश मैं।

करो अमंगल छेव, गाऊँ तुम गुणमालिका।।1।।

चाल-हे दीनबन्धु

जयवत महामन्त्र मूर्तिमंत धरा में।
जयवंत पर ब्रह्म शब्द ब्रह्म धरा में।।
जयवत सर्वमगलों में मगलीक हो।
जयवत सर्वलोक में तुमहि श्रेष्ठ हो।।1।।
त्रैलोक्य में हो एक तुम्हीं शरण हमारे।
माँ शारदा भी नित्य ही तुम कीर्ति उचारे।
विघ्नों का नाश होता है तुम नाम जाप से।
सम्पूर्ण उपद्रव नशे हैं तुम प्रताप से।।2।।
छयालीस सुगुण को धरें अरिहंत जिनेशा।
सब दोष अठारह से रहित त्रिजग महेशा।
ये घातिया को घात के परमात्मा हुए।
सर्वज्ञ वीतराग औ निर्दोष गुरु हुए।।3।।
जो अष्ट कर्म नाश के ही सिद्ध हुए है।
वे अष्ट गुणो से सदा विशिष्ट हुए है।
लोकाग्र मे हैं राजते वे सिद्ध अनन्ता।
सर्वार्थसिद्धि देते हैं वे सिद्ध महन्ता।।4।।
छत्तीस गुण को धारते आचार्य हमारे।
चउसघ के नायक हमे भवसिन्धु से तारे।
पच्चीस गुणों युक्त उपाध्याय कहाते।
भव्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश पढ़ाते।।5।।
जो साधु अट्ठाईस मूलगुण को धारते।
वे आत्म साधना से साधु नाम धारते।
ये पञ्च परम देव भूत काल में हुए।
होते हैं वर्तमान में भी पञ्चगुरु ये।।6।।

होंगे भविष्य काल में भी सुगुरु अनन्ते।
ये तीन लोक तीन काल के हैं अनन्ते।
इन सब अनन्तानन्त की मैं वन्दना करूँ।
शिवपथ के विघ्न पर्वतों की खण्डना करूँ।।7।।
इक ओर तराजू पे अखिल गुण को चढाऊँ।
इक ओर महामन्त्र अक्षरों को धराऊँ।
इस मन्त्र के पलडे को उठा न सके कोई।
महिमा अनन्त यह धरे ना इस सदृश कोई।।8।।
इस मन्त्र के प्रभाव से श्वान देव हो गया।
इस मन्त्र से अनन्त का उद्धार हो गया।
इस मन्त्र की महिमा को कोई गा नहीं सके।
इसमें अनन्त शक्ति पार पा नहीं सके।।9।।
पाँचों पदो से युक्त मन्त्र सार भूत है।
पैंतीस अक्षरो से मन्त्र परम पूत है।
पैंतीस अक्षरों के जो पैंतीस व्रत करें।
उपवास या एकाशना से सौख्य को भरें।।10।।
तिथि सप्तमी के सात पञ्चमी के पाँच हैं।
चौदश के चौदह नवी के भी नौ विख्यात हैं।
इस विधि से महामन्त्र की आराधना करें।
वे मुक्ति वल्लभा पति निज कामना करें।।11।।

दोहा-यह विष को अमृत करें, भव भव पाप विदूर।
पूर्ण "ज्ञानमति" हेतु मैं, जजूँ भरों सुख पूर।।12।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपञ्चनमस्कारमन्त्राय जयमाला अर्घ्यं नि.।

सोरठा- मन्त्रराज सुखकार, आतम अनुभव देत हैं।
जो पूजें रुचिधार, स्वर्ग मोक्ष के सुख लहें।।

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पाञ्जलिः।

तत्त्वार्थसूत्र पूजा

षट् द्रव्य को जामें कह्यो, जिनराज-वाक्य प्रमाण सों।
किये तत्त्व सातों का कथन, जिन-आप्त-आगम मान सों।।
तत्त्वार्थ- सूत्रहि शास्त्र सो, पूजों भविक मन धारि के।
लहि ज्ञान तत्त्व विचार, भवि शिव जा भवोदधि पार के।।
जामें षट् द्रव्यहि कह्यो, कह्यो तत्त्व पुनि सात।
सो दश सूत्रहिं थापि के, जजैं कर्म कटि जात।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सुरसरी का नीर सुलाय के , करि सुप्रासुक कुम्भ भराय के।
जजन सूत्रहि शास्त्रहि को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहि शिववरो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय-जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलय तगर पवित्र मगाय के, पीसकर कपूर मिलायके।
जजन सूत्रहि शास्त्रहि को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहि शिववरो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय-संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुनव शालि सुगंधित लायके, खड विवर्जित थाल भरायके।
जनन सूत्रहिं शास्त्रहि को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय-अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुमन बेल चमेलहिं केवरा, जिन सुगध दशों दिश विस्तरा ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहि शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय-कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

वर सुहाल सुफेनिहिं मोदका, रसगुला रसपूरित मोदका ।
जजन सूत्रहि शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहि शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय-क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत कपूर मणीमय दीयरा, करहि उद्योत हरौ तम हीयरा।
जजन सूत्रहि शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहि शिववरो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय-मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु सुगधित धूप दशांगहि, धरि हुताशन धूम उडावहि।
जजन सूत्रहि शास्त्रहि को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहि शिववरो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय- अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रमुक दाख बादाम अनार ला, नारग नीबूहि आमहि श्रीफला।
जजन सूत्रहि शास्त्रहि को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहि शिववरो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय- मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलसुचदन आदिक द्रव्य ले, अरघके भरि थालहि ले भले।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय- अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सवैया

विमल-विशद वाणी, श्री जिनवर बखानी।
सुन भये तत्त्वज्ञानी ध्यान-आत्म पाया है।।
सुरपति मनमानी, सुरगण सुखदानी।
सुभव्य उर आनी, मिथ्यात्व हटाया है।
समझहि सब नीके, जीव समवशरण के।
निज-निज भाषा माहि, अतिशय दिखानी है।।
निरअक्षर अक्षर के, अक्षरन सों शब्द के।
शब्द सों पद बने, जिन जु बखानी है।

ससार मोह में मोह भरा, प्रगटी जिनवाणी मोह हरा।
उद्धरत हो तम नाश करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।
अति मानसरोवर झील खरा, करुणारस पूरित नीर भरा।
दश-धर्म बहे शुभ हस तरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
कल्पद्रुम के सम जान नरा, रत्नत्रय के शुभ पुष्ट वरा।
गुण तत्त्व पदार्थन पात्र करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
वसुकर्म महारिपु दुष्ट खरा, तसु उपजी फैली बेली वरा।
तसु नाशन वाहि कुठार करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
मद माया लोभऽरु क्रोध धरा, ए कषाय महादुःखदाय तरा।
तिन नाशि भवोदधि पार करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
वर षोडश कारण भाव धरा, षट् कायन रक्षण नियम करा।
मद आठहुँ मदि के गर्द करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
जिनवाणी न जाने त्रिजगत फिरा, जड़ चेतन भाव न भिन्न वरा।
नहिं पायो आतम बोध वरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
शुभ-कर्म उद्योत कियो-हियरा, जिनवाणिहि ज्ञान जग्यो जियरा।
भवभर मणहर शिव मार्ग धरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
सुत 'कन्हैयालाल' परणाम करा, 'भगवानदास' जिहि नाम धरा।
जिनवाणी बसो नित तिहि हियरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।

घत्ताछन्द

जिनवाणी माता, सब सुख दाता, भवभ्रमहर मुक्तिकरा।
शुभ सुत्रिहिं शास्त्रहि, बारहि बारहि, दास जोरिकर नमन करा।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूताय-तत्त्वार्थसूत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे पूजै ध्यावें भक्ति बढावैं जिनवाणी सेती।
ते पावहिं धन धान्य सम्पदा पुत्र पौत्र जेती ।।
निरोग शरीर लहैं कीरति जग हरै भ्रमण फेरी ।
अनुक्रम सेती लहैं मोक्षथल तंह के होय बसेरी ।।

इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपामि ।

तीस चौबीसी पूजा

पाँच भरत शुभ क्षेत्र पाँच ऐरावते,
आगत-नागत वर्तमान जिन शाश्वते।
सो चौबिस जिन तीस जजूँ मन लायके,
आह्वानम् विधि करूँ बार त्रय गायके।।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-भरतैरावत-क्षेत्रस्थ-आगतानागत-वर्तमान-सम्बन्धि-चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-भरतैरावत-क्षेत्रस्थ-आगतानागत-वर्तमान-सम्बन्धि-चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-भरतैरावत-क्षेत्रस्थ-आगतानागत-वर्तमान-सम्बन्धि-चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

नीर दधि क्षीर समल्यायो, कनक को भृग भरवायो,

चरण तुम पास ले आयो, जनम जर रोग नशवायो।।

द्वीप अढ़ाई सरस राजे, क्षेत्र दस ता विषै छाजें,

सात शत बीस जिनराजे, पूजतॉं पाप सब भाजें।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरभि श्रीखण्ड ले आयो, सग करपूर घसवायो ।

धार तुम चरण ढरवायो, भव आताप नशवायो ।।द्वीप०।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्रसम तन्दुल सार, किरण मुक्ता जु उनहार ।

पुञ्जतुम चरण ढिंग धारं, अक्षयपद प्राप्त के कारन ।।

द्वीप अढ़ाई सरस राजे, क्षेत्र दस ता विषै छाजें,

सात शत बीस जिनराजे, पूजताँ पाप सब भाजें।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प शुभ गधजुत सौहै, सुगधित अक्ष मन मोहै ।

जजत तुम मदन क्षय होते, मुक्तिपद पलक में जोवे ।।द्वीप०।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस व्यंजन लिया ताजा, तुरत बनवाय के खाजा ।

चरन तुम जजत महाराजा, क्षुधारोग पलक में भाजा ।।द्वीप०।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप तमनाशकारी है, सरस शुभ जोतिधारी है ।
दशों दिस हो उजारी हैं, धूम्र मिस पाप हारी है ।।
द्वीप अढाई सरस राजे, क्षेत्र दस ता विषै छाजें,
सात शत बीस जिनराजे, पूजताँ पाप सब भाजें।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस शुभ धूप दश अगी, जलाऊँ अग्नि के सगी ।
करम की सेन चतुरगी, चरन तुम पूजते भगी ।। द्वीप0।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मिष्ट उत्कृष्ट फल ल्यायो, अष्ट अरि दुष्ट नशवायो ।
श्रीजिन भेंट धरवायो, मोक्ष पद प्राप्त करवायो ।।द्वीप0।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य आठों जुलीना है, अर्घ कर में नवीना है ।
पूजते पाप छीना है, 'भानमल' जोर कीना है ।।द्वीप0।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येक अर्घ्य

जम्बूद्वीप की प्रथममेरु की, दक्षिण दिशा भरत शुभ जान ।
तहाँ चौबीसी तीन विराजैं, आगत नागत जिन वर्तमान ।।
तिनके चरण कमल को निशदिन, अर्घ चढ़ाय करूँ उर ध्यान।
इस ससार भ्रमण ते तारो, अहो जिनेश्वर! करुणावान ।।

ॐ ह्रीं सुदर्शन-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदर्शन मेरु की उत्तर दिश में, ऐरावत क्षेत्र शुभ जान।
आगत नागत वर्तमान जिन, बहत्तर सदा शाश्वते तिनजान। तिनके०
ॐ ह्रीं सुदर्शन-मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
खण्ड धातकी विजय मरुके, दक्षिण दिशा भरत शुभ जान
तहाँ चौबीसी तीन विराजे, आगत नागत अरुवर्तमान।तिनके0
ॐ ह्रीं विजय-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
इसी द्वीप की प्रथम शिखर को, उत्तर ऐरावत जू महान
आगत नागत वर्तमान जिन, बहत्तर सदा सासते जान। तिनके0
ॐ ह्रीं विजय-मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
खण्ड धातकी अचल सुमेर, दक्षिण तास भरत चहूँ घेर।
तामें चौबीसी त्रय जान, आगत नागत और वर्तमान। तिनके0
ॐ ह्रीं अचल-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
अचल मेरु की उत्तर दिशजान, ऐरावत शुभ क्षेत्र बखान।
तामैं चौबीसी त्रयजान, आगत नागत और वर्तमान।
तिनके चरण कमल को निशदिन, अर्घ चढाय करूँ उर ध्यान।
इस ससार भ्रमण ते तारो, अहो जिनेश्वर! करुणावान ।।
ॐ ह्रीं अचल-मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
द्वीप पुष्पकर की पूरव दिशा, मन्दर मेरु की दक्षिण भरत-सा।
ताविषे चौबीसी तीन जु, अर्घ लेय जजू परवीन जू । तिनके0।
ॐ ह्रीं मन्दर-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गिरि सु मन्दर उत्तर जानिये, ताके पूर्व दिशा बखानिये।
ताविषें चौबीसी तीनजू, अर्घ लेय जजूँ परवीनजू।
तनके चरण कमल को निशदिन, अर्घ चढाय करूँ उर ध्यान।
इस ससार भ्रमण ते तारो, अहो जिनेश्वर! करुणावान ।।

ॐ ह्रीं मन्दर-मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम पुष्पगिरि विद्युन्माल, ताके दक्षिण भरत विशाल।
तामें चौबीसी है जु तीन, वसु द्रव्य लेय जजूं परवीन।।तिनके०।

ॐ ह्रीं विद्युन्माली-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

याहि गिरि के उत्तर जू ओर, ऐरावत क्षेत्र बनो निहोर।
तामे चौबीसी है जु तीन, वसु द्रव्य लेय जजूँ परवीन।।तिनके०।

ॐ ह्रीं विद्युन्माली-मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि- त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वीप अढाई के विषै, पञ्चमेरु हित दाय।
दक्षिण उत्तर तासकै, भरत ऐरावत भाय।।
भरत ऐरावत भाय, सु जबूद्वीप के मॉही।
चौबीसी है तीन, दशों दिशि के ही मॉही।।
दशों क्षेत्र में राजे सप्त शत बीस जिनेश्वर।
अर्घ ल्याय चढाय भानुमल जजहि सुमनकर।।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-भरतैरावतक्षेत्रस्थ-त्रिकालवर्ती-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- चौबीसी तीसों नमो, पूजा परम रसाल ।
मन वच तन को शुद्ध कर, अब वरणो जयमाल।।

पद्धरि

जय द्वीप अढाई में जु सार, गिरि पाँच मेरु उन्नत अपार।
तागिरि पूर्व-पश्चिम जु ओर, शुभ क्षेत्र विदेह बसै जु ठौर ।।
ता दक्षिण क्षेत्र भरत जु जान, है उत्तर ऐरावत महान ।
गिरि पाँच तने दश क्षेत्र जोय, छवि ताकी कहि न सकै कोय ।।
ताको वरणू वरणन विशाल, तैसा ही ऐरावत है रसाल ।
इस क्षेत्र बीच विजयार्द्ध एक, ता ऊपर विद्याधर अनेक ।।
इस क्षेत्र विषैं षट्खण्ड जान, तहाँ छहौं काल वरतै महान ।
जो तीन काल में भोग भूमि, दस जाति कल्पतरु रहे झूमि ।।
जब चौथा काल लगै जु आय, तब कर्म भूमि बर्ते सुहाय ।
तब तीर्थंकर को जन्म होय, सुर लेय जजै गिरि पर सु जोय ।।
बहुभक्ति करैं सब देव आय, ता थेई थेई थेई की तान ल्याय ।
हरि ताण्डव नृत्य करे अपार, सब जीवन मन आनन्दकार ।।
इत्यादि भक्ति करके सुरेन्द्र, निजथान जाय जुत देव वृन्द ।
इह विधि पाँचो कल्याण होय, हरिभक्ति करै अतिहर्ष जोय ।।
या कालविषै पुण्यवन्त जीव, नर जन्म धार शिव लहै अतीव ।
तब श्रेष्ठ पुरुष परवीन होय, सब याही काल विषै जु होय ।।
जब पञ्चम काल करै प्रवेश, मुनिधर्म तणों नहीं रहें लेश ।
विरले कोई दक्षिन देश माँहि, जिनधर्मी नर बहुते जु नाहि ।।
जब षष्ठम काल करै प्रवेश, तब धर्म कर्म नहि रहें लेश ।
दस क्षेत्रन में रचना समान, जिनवाणी भाष्यो सो प्रमाण ।।
चौबीसी होइके क्षेत्र तीन, दश क्षेत्रनि में जानों प्रवीन ।
आगन अनागत वर्तमान, सातशतक अरु बीस जान ।।
सबही महाराज नमूँ त्रिकाल, मम भवसागर तैं लेहु निकाल ।
यह वचन हिय में धार लेव, मम रक्षा करहु जिनेन्द्र देव ।।
'विमल' की विनती सुनहु नाथ, मैं पाँय परूँ जुग जोरि हाथ ।
ममवांछित कारज करौ पूर, यह अरज हृदय में धरि जरूर ।।

घत्ता छन्द

शत सात जु बीसं श्री जगदीश, आगतनागत अर वर्ततु हैं ।
मन वच तन पूजै सुध मन हूजै, सुरग मुक्ति पद पावत है ।।

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत-जिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- तीनकाल चौबीस जिन, पूजैं मन बच काय।
पुण्य लाभ सब सुख लऐ, निश्चय सुर शिव जाय।।

इत्याशीर्वादः

देवपूजा

दोहा- प्रभु तुम राजा जगत के, हमें देय दुख मोह।
तुम पद पूजा करत हूँ, हम पै करुणा होहि।।1।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्र भगवन् अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्र भगवन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्र भगवन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

छन्द त्रिभंगी

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुम ढिग आयो जल आयो।
उत्तम गगाजल, शुचि अति शीतल, प्रासुक निर्मल, गुन गायो।।
प्रभु अन्तरयामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो।
यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै, दया करो।।1।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

अघ तपत निरन्तर, अगनि पटन्तर, मो उर अन्तर, खेद कर्‌यो।
लै बावन चंदन, दाह निकदन, तुम पद वदन हरष धर्‌यो।।प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यो भवतापनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।
औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता, बहुत करै।
तन्दुल गुनमंडित, अमल अखण्डित, पूजत पण्डित, प्रीति धरै।।प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।
सुर नर पशु को दल, काम महाबल, बात कहत, छल मोह लिया।
ता केशर लाऊँ फूल चढाऊँ, भगति बढ़ाऊँ खोल हिया।।प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।
सब दोषन माही, जा सम नाही, भूख सदा ही, मोय लागे।
सद्घेवर बावर, लाडू बहु धर, थार कनक भर, तुम आगे।।प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।
अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यौ हम, दुख पावै।
तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप संवारा, जस गावै।।प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
इह कर्म महावन, भूल रह्यो जन, शिवमारग नहि पावत हैं।
कृष्णागरुधूपं, अमल अनूप, सिद्धस्वरूपं ध्यावत है।।प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सबते जोरावर, अन्तराय अरि, सुफल विघ्न करि डारत हैं।
फल पुञ्ज विविध भर, नयन मनोहर, श्री जिनवर पद धारत है।
प्रभु अन्तरयामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो।
यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै, दया करो

ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दुखदानी, आठ निशानी, तुम ढिग आनी, निवारन हौं।
दीनन निस्तारन, अधम उधारन"द्यानत"तारन कारन हौ।।प्रभु०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यो अनर्घपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- गुण अनन्त को कहि सके, छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूँ, तुम ही होहु सहाय।।1।।

एक ज्ञान केवल जिन स्वामी, दो आगम अध्यातम नामी।
तीन काल विधि परगट जानी, चार अनन्त चतुष्टय ज्ञानी।।2।।
पञ्च परावर्तन परकासी, छहों दरब गुन परजय भासी।
सातभंग वानी परकाशक, आठों कर्म महारिपु नाशक।।3।।
नव तत्त्वन के भाखन हारे, दश लच्छन सों भविजन तारे।
ग्यारह प्रतिमा के उपदेशी, बारह सभा सुखी अक्लेशी।।4।।
तेरह विधि चारित के दाता, चौदह मारगना के ज्ञाता।
पन्द्रह भेद प्रमाद निवारी, सोलह भावन फल अविकारी।।5।।
तारे सत्रह अक भरत भुव, ठारे थान दान दाता तुव।
भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन, बीस अंक गणधर जी को धुन।।6।।
इकइस सर्व घात विधि जानै, बाइस बंध नवम गुणथानै।
तेइस विधि अरु रतन नरेश्वर, सो पूजे चौबीस जिनेश्वर।।7।।

नाश पचीस कषाय करी हैं, देशघाति छब्बीस हरी हैं।
तत्त्व दरब सत्ताइस देखे, मति विज्ञान अठाइस पेखे।।8।।
उनतीस अक मनुष सब जाने, तीस कुलाचल सर्व बखाने।
इकतिस पटल सुधर्म निहारे, बत्तिस दोष समाइक टारै।।9।।
तेतिस सागर सुखकर आये, चौंतिस भेद अलब्धि बताये।
पैंतिस अक्षर जप सुखदाई, छत्तिस कारन रीति मिटाई।।10।।
सैंतिस मग कहि ग्यारह गुन में, अडतिस पद नहिं नरक अपुन में।
उनतालीस उदीरन तेरम, चालिस भवन इन्द्र पूजें नम।।11।।
इकतालीस भेद आराधन, उदै बियालिस तीर्थंकर मन।
तैंतालिस बन्ध ज्ञाता नहि, द्वार चवालीस नर चौथे मही।।12।।
पैतालीस पल्य के अक्षर, छियालिस बिन दोष मुनीश्वर।
नरक उदैं न छियालिस मुनिधुन, प्रकृत छियालीस नाश दशम गुन।।13।।
छियालीस घन राजु सात भुव, अक छियालीस सरसों कहि कुव।
भेद छियालीस अन्तर तपवर, छियालीस पूरन गुन जिनवर।।14।।

आडिल्ल छन्द- मिथ्यातपन निवारण चन्द्र समान हो।
मोहतिमिर वारन को कारन भान हो।।
काम कषाय मिटावन मेघ मुनीश हो।
"द्यानत" सम्यक्रत्नत्रय गुन ईश हो।।15।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित- श्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वाद

भक्तामरस्तोत्र पूजा

अनुष्टुप्- परम ज्ञान वाणासि, घाति-कर्म प्रघातिनम्।
महाधर्म प्रकर्त्तारं, वन्देऽहमादि नायकम्।।
भक्तामरमहास्तोत्र, मन्त्रपूजां करोम्यहम्।
सर्वजीव-हितागार, आदिदेव नमाम्यहम्।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकं

सुरसुरी-नद-सभृत-जीवनै सकल-ताप-हरै सुख-कारणै।
वृषभनाथ वृषाक-समन्वित शिवकर प्रयजे हत किल्विष।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

मलय-चन्दन-मिश्रित-कुकुमै. सुरभितागत-षट्पद-नन्दनै।
वृषभनाथ वृषाक-समन्वित शिवकर प्रयजे हत किल्विष।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

कमल-जाति-समुद्भवतन्दुलै परम-पावन-पञ्च-सुपुञ्जकैः।
वृषभनाथ वृषाक-समन्वित शिवकर प्रयजे हत किल्विषं।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं।।3।।

जलज-चम्पक-जाति-सुमालती वकुलपाडलकुन्द-सुपुष्पकैः।
वृषभनाथ वृषाक-समन्वित शिवकरं प्रयजे हत किल्विष।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

वटक-खज्जक-मण्डक-पायसैर्विविध-मोदकव्यञ्जनषट्रसैः।

वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

रविकरद्युति-सन्निभ-दीपकै· प्रबलमोह-घनान्ध-निवारकैः।

वृषभनाथ वृषांक-समन्वित शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

स्वगुरु-धूपभरै-र्घटनिष्ठितै· प्रतिदिशामिलितालिसमूहकैः।

वृषभनाथ वृषाक-समन्वितं शिवकर प्रयजे हत किल्विष।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

सरस-निम्बुकलागलिदाडिमै कदलि-पुंगकपित्थशुभै· फलैः।

वृषभनाथ वृषाक समन्वित शिवकर प्रयजे हत किल्विषं।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

सलिल-गन्ध-शुभाक्षत-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।

वृषभनाथ वृषाक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

वन-सुगन्ध-सुतण्डुल-पुष्पकैः प्रवर-मोदक-दीपक-धूपकैः।

फल वरैः परमात्म-पदप्रदं, प्रतियजे श्रीआदि-जिनेश्वरम्।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टचत्वारिंशत्कमलेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

प्रमाणद्वय-कर्त्तारं स्यादस्ति-वाद-वेदकं।
द्रव्यतत्त्व-नयागार- मादिदेव नमाम्यहम्।।

छन्द

आदि जिनेश्वर योगागार, सर्व जीववर दया सुधारं।
परमानन्द रमा सुखकन्द, भव्य जीव हित करणममन्दं।।2।।
परम पवित्र वशवर मण्डन, दु ख दारिद्र काम बल खण्डन।
वेद-कर्म दुर्जय बल दण्डन, उज्ज्वल ध्यान प्राप्ति शुभ मण्डन।।3।।
चतु अस्सीलक्ष पूर्व जीवित पर, धनुष पञ्च शत मानस जिनवर।
हेमवर्ण रूपौघ विमल कर, नगर अयोध्या स्थान व्रत धर।।4।।
नाभिराज परमात्म सु वेत्ता, माता मरुदेवी गुण नेता।
सोल स्वप्न पर भेद विख्याता, त्रिभुवननायक पुत्र विधाता।।5।।
गर्भ कल्याणक सुरपति कीधा, जन्मकल्याणक मेरु शिर सीधा।
स्वय स्वयभू दीक्षाधारी, केवल बोध सु त्रिभुवन प्यारी।।6।।
अष्ट गुणाकर सिद्ध दिवाकर, परम धर्म विस्तारण जय भर।
शीतताप रहित भव हारी, सर्व सौख्य निरूपम गुणधारी।।7।।

घत्ता

जय आदि सु ब्रह्मा, त्रिभुवन ब्रह्मा, ब्रह्मस्वात्म स्वरूप पर।
जय बोध सु ब्रह्मा, पञ्च सु ब्रह्मा, ब्रह्मा सुमति जलधिनिकरं।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथपरमदेवाय जयमालाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शार्दूल विक्रीडित

देवोऽनेक-भवार्जितो गत-महापापः प्रदीपानलः।
देव· सिद्ध-वधू विशाल-हृदयालंकार-हारोपम ।।
देवोऽष्टादश दोष सिन्दुरघटा दुर्भेद पञ्चाननो।
भव्यानां विदधातु वाञ्छित-फलं श्रीआदिनाथो जिनः।।

इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

पञ्चपरमेष्ठी पूजन

अडिल्ल छन्द

अर्हंत्सिद्धाचार्य उपाध्याय साधु हैं।
कहे पञ्चपरमेष्ठी गुणमति साधु हैं।।
भक्ति भाव से करूँ यहाँ पर थापना।
पूजूँ श्रद्धा धार करूँ हित आपना।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथाष्टकं

चाल नंदीश्वर श्री जिनधाम .....।

सुर सरिता का जल स्वच्छ, कंचन भृंग भरूँ।
भव तृषा बुझावन हेतु, तुम पद धार करूँ।।
श्री पञ्च परम गुरु देव, पञ्चमगति दाता।
भव भ्रमण पञ्च हर लेव, पूजूँ पद त्राता।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो जन्मरामृत्यु- विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयज चन्दन कर्पूर, गंध सुगंध भरूँ।
भव दाह करो सब दूर, चरणन चर्च करूँ।।श्री पञ्च.।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो भवाताप-नाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

पयसागर फेन समान, अक्षत धोय लिया।

अक्षय गुण पावन काज, पुंज चढ़ाय दिया।।श्री पञ्च.।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मचकुंद कमल वकुलाद, सुरभित पुष्प लिया।

मदनारिजयी पदकंज, पूजत सौख्य लिया।।श्री पञ्च.।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर फेनी रस पूर्ण, मोदक शुद्ध लिया।

मम क्षुधा रोग कर चूर्ण, तुम पद पूज किया।।श्री पञ्च ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योति प्रकाश, दशदिश ध्वात हरे।

तुम पूजत मन का मोह, हर विज्ञान भरे।।श्री पञ्च ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो मोहान्धकार- विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगध सुगधित धूप, खेवत कर्म जरें।

सब कर्म कलंक विदूर, आतम शुद्ध करें।।श्री पञ्च ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगूर अनार खजूर, फल से थाल भरे।

तुम पद अर्चत भव दूर, शिवफल प्राप्त करें।।श्री पञ्च.।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प, नैवज दीप लिया।
वर धूप फलों से पूर्ण, तुम पद अर्घ्य किया।।
श्री पञ्च परम गुरु देव, पञ्चमगति दाता।
भव भ्रमण पञ्च हर लेव, पूजूँ पद त्राता।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-पञ्चपरमगुरु के चरण, जल की धारा देत।
निज मन शीतल हेतु अर, तिहुँ जग शान्ति हेत।।

शांतये शान्तिधारा।

वकुल मल्लिका सित कमल, पुष्प सुगन्धित लाय।
पुष्पाञ्जलि कर जिन चरण, पुजूँ मन हरषाय।।

दिव्य पुष्पाञ्जलि·।

जाप्य-ॐ ह्रीं अर्ह अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

(108 बार जाप्य करें)

जयमाला

सोरठा- भवजलनिधि जिहाज, पञ्चपरम गुरु जगत में।
तिनकी गुणमणिमाल, गाऊँ भक्ति वश सही।।

चाल-हे दीनबन्धु ......।

जयवंत अरिहंत देव सिद्ध अनन्ता।
जयवत सूरि उपाध्याय साधु महंता।।
जयवंत तीन काल में ये पञ्चगुरु हैं।
जयवंत तीन काल के भी पञ्चगुरु हैं।।
अर्हंत देव के हैं छियालीस गुण कहे।
जिन मात्र से ही पाप शेष न रहे।।

दशजन्म के अतिशय हैं चमत्कार से भरे।
कैवल्यज्ञान होत ही अतिशय जु दश धरें।।
चौदह कहे अतिशय हैं देव रचित बताये।
तीर्थंकरों के ये सभी चौंतीस हैं गाये।।
है आठ प्रातिहार्य जो वैभव विशेष हैं।
अनन्त चतुष्टय सुचार सर्वश्रेष्ठ हैं।।
जो जन्म मरण आदि दोष आठ दश कहे।
अर्हंत में न हो अतः निर्दोष वे रहें।।
सर्वज्ञ वीनराग हित के शास्ता हैं जो।
है बार बार वन्दना अरिहत देव को।।
सिद्धों के आठ गुण प्रधान रूप से गाये।
जो आठ कर्म के विनाश से हैं बताये।।
यों तो अनन्त गुण समुद्र सर्व सिद्ध हैं।
उनको है वन्दना जो सिद्धि में निमित्त हैं।।
आचार्य देव के प्रमुख छत्तीस गुण कहे।
दीक्षादि दे चउसघ के नायक गुरु रहें।।
पच्चीस गुणों युक्त उपाध्याय गुरु हैं।
जो मात्र पठन पाठनादि मे ही निरत हैं।।
जो आत्मा की साधना में लीन रहे हैं।
वे मूलगुण अट्ठाइसों से साधु कहे हैं।।
आराधना सुचार की आराधना करें।
हम इन त्रिभेद साधु की उपासना करें।।
अरिहंत सिद्ध दो सदा आराध्य गुरु कहे।
त्रयविधि मुनि आराधकों की कोटि में रहे।।

अर्हंत सिद्ध देव हैं शुद्धात्मा कहे।
शुद्धात्म आराधक हैं सूरि स्वात्मा कहे।।
गुरुदेव उपाध्याय प्रतिपादकों में हैं।
शुद्धात्मा के साधकों को साधु कहे हैं।।
पाँचों ये परम पद में सदा तिष्ठ रहे हैं।
इस हेतु से परमेष्ठी ये नाम लहे हैं।।
इन पाँच के है इक सो तियालीस गुण कहें।
इन मूल गुणों से भी सख्यातीत गुण रहें।।
उत्तर गुणों से युक्त पाँच सुगुरु हमारे।
जिनका सुनाम मन्त्र भवोदधि से उबारे।।
हे नाथ ! इसी हेतु से तुम पास मै आया।
सम्यक्त्व निधि पायके तुम कीर्ति को गाया।।
बस एक विनती पे मेरी ध्यान दीजिये।
कैवल्य "ज्ञानमती" का ही दान दीजिये।।

दोहा-त्रिभुवन के चूड़ामणी, अर्हंत सिद्ध महान।
सूरी पाठक साधु को, नमूँ नमूँ गुणखान।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-पञ्चपरमगुरु की शरण, जो लेते भविजीव।
रत्नत्रय निधि पाय के, भोगें सौख्य सदीव।।

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पाञ्जलिः।

पञ्चपर्व व्रत पूजा

पाँचों परवी व्रत शुद्ध मन वच करो।
सकल पाप क्षय होय कर्म निरजर करो।।1।।

ॐ ह्रीं पञ्चपर्वव्रत! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं पञ्चपर्वव्रत! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं पञ्चपर्वव्रत! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

जल मन मोहन ले आय, कचन के कलशा,
प्रभु चरनन देत चढ़ाय, ज्ञानावरणी नशा।
पाँचों परवी व्रत सार, है सब दु:ख हरता,
कर जन्म मरण का नाश, हो तुम सुख करता।

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन कपूर मिलाय केसर घसि लायो,
दर्शनावरणी कर नाश, मैं शरने आयो।पाँचो परवी

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि.स्वाहा।

उत्तम अक्षत ले हाथ लायो भर थारी,
कर कर्म वेदनीनाश अक्षय पद धारी।पाँचो परवी ..

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

हैं ब्रह्मचर्यव्रत धार नाशक काम महा,
करें कर्म मोहनी नाश पूजा पुष्प यहाँ।पाँचो परवी ..

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

लाडू घेवर नैवेद्य फैनी तैयार करूँ,
कर आयु कर्म का नाश तुमरे चरन परूँ।पाँचो परवी ..

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

मैं दीप रतनमय लेय तुम पूजन आयो,
मम नाम कर्म विनशाय मैं बहु दुःख पायो।
पाँचों परवी व्रत सार, है सब दुःख हरता,
कर जन्म मरण का नाश, हो तुम सुख करता।

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कृष्णागर धूप सुवास लायो तुम चरना,
है गोत्र कर्म अति दुष्ट ताको तुम हरना।पाँचो परवी...

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

यह फल वह फल है नाहिं जो तुम वरना है,
प्रभु अन्तराय का नाश वेगही करना है।पाँचो परवी.....

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

जल फल वसु द्रव्य मिलाय तुम सनमुखधारी,
प्रभु पर्व दुःख कर नाश तुम पद बलिहारी।पाँचो परवी.

ॐ ह्रीं पञ्चपर्व-व्रतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अडिल्ल- पाँचें कीजो पाँच, दूज दो लीजिये,
आठें कीजो आठ, ध्यान धर दीजिये।
ग्यारस ग्यारा करो, व्रत चित्त में धरो,
चौदस चौदह करै, कर्म निरजर करो।पूर्णार्घ्यं।

जयमाला

इक गाँव उज्जैनी नगर सार, तहाँ प्रजापाल राजा निहार।
मदनावली रानी तास जान, सुख भोगै राव अति ही महान।।
बन गयो राव इक दिन विचार, तहाँ मिले मुनि चारित्रधार।
राजा नमियो करजोड़ माथ, कहो धर्म अबै कीजो सनाथ।।

मुनि कहै धर्म दोनों प्रकार, यति श्रावक धर्म कहो विचार।
निश्चय व्यवहारनय है प्रमान, सन्तोष सदा ही है महान।।

अडिल्ल- इक दिन मुनि आहार निमित्त नगरी गये,
रितुवती रानी ने भोजन दे दिये।
गरब करों रानी मन में शका धरै,
भूखो यती जो जावे हाँसी विस्तरै।।1।।
पुण्य पाप को भेद तबै जानो नहीं,
कुष्ट रोग तब व्यापो रानी तन महीं।
एक दिवस राजा मुनिवर से भेटियो,
रानी को दुख राजा मुनिवर से कहो।।2।।
राजा से तब मुनिवर यूँ कहते भये,
अशुचिपणे रानी ने मुनि भोजन दिये।
पञ्च परवी व्रत करै शुद्ध यह भावसों,
सकल पाप क्षय जाय कहै मुनि चावसों।।3।।
रानी ने शुद्ध मन वच तन व्रत आदरो,
कोढ रोग मिट गयो सकल सशःय टरो।
जो कोई यह व्रत मन वच तन आदरें,
कर्म काट शिव लहै स्वर्ग तत्क्षन वरै।।4।।
व्रत करो अरु दान चार परकार दो,
उद्यापन अरु पूजा जाप मत वीसरो।
मनुष्य देह का लाभ लेउ शुद्ध भावसों,
व्रत लो निश्चय धार करो अति चावसों।।5।।

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपर्व-व्रतेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं।

इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिः

रक्षाबन्धन पर्व पूजा

श्री अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनिवर पूजा

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी।
बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी।।
जय जय विष्णु कुमार मुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी।
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणा धारी।।
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय जयकार हुआ।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर घर मंगलाचार हुआ।।
श्रीमुनि चरण कमल में वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन।
भक्तिभाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुने! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुने! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुने! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

जनम मरण के नाश हेतु, प्रासुक जल करता हूँ अर्पण।
रागद्वेष परिणति अभावकर, निज परिणति में करूँ रमण।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि, सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक, विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव सन्ताप मिटाने को मैं, चन्दन करता हूँ अर्पण।
देहभोग भवसे विरक्त हो, निजपरिणति में करूँ रमण।।श्री अकम्प०

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय पद अखड पाने को, अक्षत धवल करूँ अर्पण।
हिंसादिक पापों को क्षयकर, निजपरिणति में करूँ रमण।श्री अकम्प०
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम बाण विध्वस हेतु मैं, सहज पुष्प करता अर्पण।
क्रोधादिकचारों कषाय हर, निज परिणति में करूँ रमण।।श्री अकम्प०
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा रोग के नाश हेतु, नैवेद्य सरस करता अर्पण।
विषय भोग की आकांक्षाहर, निज परिणति में करूँ रमण।।श्री अकम्प०
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिर मिथ्यात्व तिमिर को हरने, दीपज्योति करता अर्पण।
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा, निज परिणति में करूँ रमण।।श्री अकम्प०
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट कर्म के नाश हेतु यह, धूप सुगन्धित है अर्पण।
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रगटाऊँ, निज परिणति में करूँ रमण।।श्री अकम्प०
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ति प्राप्ति हेतु उत्तम फल, चरणों में करता हूँ अर्पण।
मैं सम्यक् चारित्र प्राप्तकर, निज परिणति में करूँ रमण।श्री अकम्प०
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत पद अनर्घ पाने को, उत्तम अर्घ करूँ
रत्नत्रय की तरणी खेऊँ, निज परणति में क
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि, सप्तशतक को
मुनि उपसर्ग निवारक, विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वान्सल्य के अंग की महिमा अपरम्पार।
विष्णु कुमार मुनीन्द्र की गूजी जय जयकार।।
उज्जयनी नगरी के नृप, श्री वर्मा के मन्त्री थे चार।
बलि प्रहलाद नमुचि बृहस्पति, चारों अभिमानी सविकार।।
जब अकम्पनाचार्य संघ, मुनियों का नगरी में आया।
सात शतक मुनि के दर्शन कर, नृप श्रीवर्मा हर्षाया।।
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निदा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की।।
किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये।
वाद विवाद किया श्रीमुनि से, हारे जीत नहीं पाये।।
अपमानित होकर निशि में, मुनि पर प्रहार करने आये।
खड्ग उठाते ही कीलित, हो गये हृदय में पछताये।।
प्रातः होते ही राजा ने, आकर मुनि को किया नमन।
देश निकाला दिया मंत्रियों, को तब राजा ने तत्क्षण।।
चारों मन्त्री अपमानित हो, पहुँचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी, सेवाओं से प्रसन्न कर।।
मुँहमाँगा वरदान नृपति ने, बलि को दिया तभी सत्त्वर।
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर।।

अक्षयकर अकम्पनाचार्य सात सौ, मुनियों सहित नगर आये।
छिं बलि के मन में मुनियों की, हत्या के भाव उदय आये।।

कुटिल चालचल बलि ने नृप से, आठ दिवस का राज्य लिया।
भीषण अग्नि जलाई चारों, ओर द्वेष से कार्य किया।।
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्वध्यान में लीन हुए।
नश्वर देव भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए।।
यह नर मेघ यज्ञ रच बलि ने, किया दान का ढोंग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र।।
पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महामुनिवर।
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर सकट का सुनकर।।
किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये।
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये।।
बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला।
जितनी चाहो उतनी लेलो, वामन मूर्ख बड़ा भोला।।
हँसकर मुनि ने एक पाँव में, ही सारी पृथ्वी नापी।
पग द्वितीय में मानुषोत्तर, पर्वत की सीमा नापी।।
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रखा।
क्षमा क्षमा कह कर बलि ने, मुनि चरणों में मस्तक रखा।।
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की, श्री मुनियों की रक्षा की।
जय जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी।।
नवधा भक्ति पूर्वक सबने, मुनियों को आहार दिया।
बलि आदिक का हुआ हृदय ,परिवर्तन जयजयकार किया।।
रक्षासूत्र बाँधकर तब, जन-जन ने मंगलाचार किये।
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये।।

समकित के वात्सल्य अंग की, महिमा प्रगटी इस जग में।
रक्षा बन्धन पर्व इसी दिन, से प्रारम्भ हुआ जग में।।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का दिन, था रक्षासूत्र बँधा कर में।
वात्सल्य की प्रभावना का, आया अवसर घर घर में।।
प्रायश्चित्त ले विष्णुकुमार ने, पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया।
अष्ट कर्मबन्धन को हरकर, इस भव से ही मोक्ष लिया।।
सब मुनियों ने भी अपने, अपने परिणामों के अनुसार।
स्वर्ग मोक्ष पद पाया जग में, हुई धर्म की जय जयकार।।
धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ।
रहे शुद्ध आचरण सदा ही, धर्म मार्ग अनुकूल चलूँ।।
आत्म ज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज परको मैं पहिचानूँ।
समकित के आठों अगों की, पावन महिमा को जानूँ।।
तभी सार्थक जीवन होगा, सार्थक होगी यह नर देह।
अन्तर घट में जब बरसेगा, पावन परम ज्ञान रस मेह।।
पर से मोह नहीं होगा, होगा निजात्म से अति नेह।
तब पायेंगे अखड अविनाशी, निज सुखमय शिवगेह।।
रक्षाबन्धन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षाबन्धन पर्व ज्ञान का, रक्षा का त्यौहार प्रधान।।
रक्षाबन्धन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षाबन्धन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि, सात शतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक, विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रक्षा बन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार।
मन वच तन सो पूजते, पाते सौख्य अपार।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

रोहिणी व्रत पूजा (वासुपूज्य पूजा)

गीता छन्द

वासवगणों से पूज्य भगवन् ! वासुपूज्य महान हो।
तीर्थंकरों में बारहवें, वर तीर्थकर्ता मान्य हो।।
वर भक्ति श्रद्धाभाव से, प्रभु आप आह्वानन करें।
पूजा रचाके आपको, निज आत्म आराधन करें।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथाष्टक (नाराच छन्द)

सिंधु नीर स्वच्छ शुद्ध स्वर्ण कुम्भ में भरूँ।
आप पाद पूजते हि कर्मकालिमा हरूँ।।
रोहिणी नक्षण में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्यदेव पूज शोक दूर कीजिये।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

अष्टगध गधपूर्ण नाथपद पूजिये।
राग आग दाह नाश पूर्ण शान्त हूजिये।।रोहिणी...

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

चन्द्र चन्द्रिका समान श्वेत शालि लाइये।
नाथ पाद पूजते अखण्ड सौख्य पाइये।।रोहिणी...

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

पारिजात मालती गुलाब पुष्प लाइये।
काम मल्ल जीतने जिनेश को चढ़ाइये।।
रोहिणी नक्षण में उपोषणादि कीजिए।
वासुपूज्यदेव पूज शोक दूर कीजिये।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

मोदकादि मुद्ग पायसादि थाल में भरें।
भूख व्याधि नाशने जिनेन्द्र अर्चना करें।।रोहिणी..

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

रत्नदीप में कपूर ज्वालते शिखा बढे।
आप पूजते सुज्ञान ज्योति चित्त में बढे।।रोहिणी. .

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

रक्त चन्दनादि मिश्र धूप अग्नि में जलें।
आप पास में समस्त कर्म भस्म हो चलें।।रोहिणी.

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

आम दाड़िमादि खारिकादि थाल में भरे।
आप चर्ण पूजते अनन्त सिद्धि को वरें।।रोहिणी...

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

तोय गध शालि पुष्प अन्न दीप धूप है।
सत्फलों से युक्त अर्घ्य से जजूँ अनूप है।।रोहिणी..

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

दोहा-शान्तिधारा मै करूँ, जिनपदपंकज माहिं।

शान्ति करो सब लोक में, कर्मकीच धुल जाहिं।।10।।

शांतये शान्तिधारा।

दोहा-कमल वकुल मल्ली कुसुम, सुरतरु के उनहार।

पुष्पाञ्जलि करते प्रभु, मिले सकल सुखसार।।11।।

दिव्य पुष्पाञ्जलिः।

पञ्चकल्याणक अर्घ्य - स्रग्विणी छन्द

मात विजयावती गर्भ में आवते,

मास आषाढ़ षष्ठी वेदी थी जबे।

इन्द्र आ गर्भ कल्याण पूजा करें,

अर्चते पाप सब एक क्षण में टरें।।1।।

ॐ ह्रीं आषाढ-कृष्ण-षष्ठयां गर्भकल्याणकप्राप्त-श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्रा अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुनी कृष्ण चौदस जनम आपका,

इन्द्र कीना नह्वन मेरु पे आपका।

जन्म कल्याण उत्सव शचीपति करें,

नित्य पूजें तुम्हें विघ्न बाधा टरें।।2।।

ॐ ह्रीं फाल्गुन-कृष्णा-चतुर्दश्यां जन्मकल्याणकप्राप्त-श्रीवासु-पूज्यजिनेन्दा अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्ण फाल्गुन सुचौदस दिगम्बर हुए,

बाह्य अन्तर परिग्रह सभी तज दिए।

देव दीक्षा सुकल्याण पूजा करे,

आज हम पूजते सर्व पीडा हरें।।3।।

ॐ ह्रीं फाल्गुन-कृष्णा-चतुर्दश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्त-श्रीवासु-पूज्यजिनेन्द्रा अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ शुक्ला द्वितीया तिथि जो भली,
घात के घातिया तुम हुए केवली।
इन्द्र ने ज्ञान कल्याण पूजा करी,
पूजते ज्ञान ज्योति मेरे अन्तरी।।4।।

ॐ ह्रीं माघ-शुक्ल-द्वितीयायां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्त-श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्रा अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भाद्रपद शुक्ल चौदस प्रभु शिव गये,
देव निर्वाण कल्याण पूजत भये।
भक्ति से मोक्ष कल्याण पूजा करें,
पञ्च कल्याण लक्ष्मी तुरन्तहि वरें।।5।।

ॐ ह्रीं भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्त-श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्रा अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शान्तिधारा, परिपुष्पाञ्जलिः।

जाप्य-ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय नमः।

(108 बार जाप्य करें)

जयमाला

दोहा-वासुपूज्य वसुपूज्य सुत, वासवगण से वद्य।
तुम गुणमणिमाला धरूँ, कठ माँहि सुखकद।।1।।

चाल-हे दीनबन्धु ....।

जय वासुपूज्य देव तीन लोक वद्य हो।
जय जय अनन्त सुगुण रत्न के करड हो।।
हे नाथ ! भक्ति भाव से मैं वन्दना करूँ।
अनन्त सौख्य सिंधु नाथ अर्चना करूँ।।1।।
चपापुरी को धन्य आप जन्म से किया।
माता जयावती की कुक्षी से जन्म लिया।।

आयु है बहत्तर सुलक्ष वर्ष की कही।
तनु की ऊँचाई दो सौ असी हाथ प्रभु कही।।2।।
तनुकाति पद्मरागमणि के समान है।
है चिह्न महिष कहा जाने जहान हैं।।
कल्याणकों पाँचों की भू पवित्र कही है।
चपापुरी निर्वाणभूमि सौख्य मही है।।3।।
जो वासुपूज्य देव की आराधना करें।
सम्यक्त्वशुद्ध तीन रत्न साधना करें।।
जो रोहिणी नक्षत्र दिवस व्रत विधि करें।
तुम नाम मन्त्र जाप से भव जल निधि तरें।।4।।
वर हस्तिनापुरी नरेश जो अशोक था।
उसकी प्रिया थी रोहिणी जिसको न शोक था।।
इक बार वक्ष कूटती रोती थी भामिनी।
तब रोहिणी ने प्रश्न किया धाय सामनी।।5।।
हे मात ! कहो कौनसी ये नृत्य कला है।
तब धाय कहे तू हुई उन्मत्त भला है।।
यह देख के आश्चर्य नृपति पुत्र उठाया।
ऊँचे महल की छत से उसे भू पे गिराया।।6।।
तत्क्षण सुरों ने पुत्र को आसन पे बिठाया।
ढोरे चवर यह आश्चर्य सबको दिखाया।।
राजा मुनि से एक बात पूछता सही।
क्यों नाथ ! रोहिणी को रुदन ज्ञान भी नहीं।।7।।
मुनि ने कहा यह रोहिणी व्रत का महात्म्य है।
रोना किसे कहते हैं ? जो इसको न ज्ञान है।।

यह फल तो मनाक् क्रम से मोक्ष मिले हैं।

संसार के सुख भोग बोध कमल खिले हैं।।8।।

घत्ता

जय जय तीर्थंकर भव सकट हर, विघ्न आदि को चूर्ण करें।

जो तुम पद ध्यावें, शिवसुख पावें, 'ज्ञानमति' को पूर्ण करें।।9।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-धर्मचक्र को धारते, तीर्थंकर जिनदेव।

'ज्ञानमती' लक्ष्मी सहित तुरन्त सिद्ध पद देव।।10।।

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पाञ्जलिः।

श्रीमण्डप पूजा

आडिल्ल छन्द

श्रीमण्डप में जाय विराजें देव जू,

सुर नर पूजत पाँय करें नित सेव जू।

हम पूजत शिरनाय यहाँ कर थापना,

जजत जिनेश्वर पाय लहें हित आपना।।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थ-चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थ-चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थ-चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अष्टक

सुकारण पूजत हों, जय समवसरण में जाय, सुकारण पूजत हों।

श्रीचौबिस जिनके पाँय, सुकारण पूजत हों।टेक

कञ्चन की झारी में भरिकें, उज्ज्वल नीर सु लावो।

जन्म जरा दुख नाशन कारण, श्री जिनचरण चढ़ावो।।सुकारण०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर में कर्पूर मिलायके मलयागिर सुखराशी।

चरण पूज जिनराज प्रभू के, भव आताप विनाशी।।सुकारण०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यः संसारताप- विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

देवजीर सुखदास सु अक्षत्, मुक्ताफल सम आनो।

पुञ्ज मनोहर जिनपद आगे, देत अखय पद जानो।।

सुकारण पूजत हों, जय समवसरण में जाय, सुकारण पूजत हों।

श्रीचौबिस जिनके पाँय, सुकारण पूजत हों।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी जुही चमेली, बेला सुभग सुहावे।

ले गुलाब जिनवर पद पूजो, काम नाश शिव पावे।।सुकारण०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फेनी घेवर मोदक लाडू, गोझा सरस सुहाते।

क्षुधारोग निर्वारन कारन, पूजन कर धर ताते।।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोग- विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणिमय दीप अमोलक लेकर, बाती तुरत प्रजालो।

मोह तिमिर भहरात फिरे तँह, जगमग होत दिवालो।।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरु कर्पूर कूटके, धूप दशांगी खेवो।
अष्टकर्म छिनमाहिं जारिके, छार होंय प्रभु सेवो।।सुकारण०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल लोंग सुपारी भारी, पिस्ता नये चढ़ावो।
कहत जिनेश्वर मुखतें वानी, तुमहू सुर शिव जावो।।सुकारण०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल अर्घ्य बनाय गाय गुण, पढि जयमाल सुनाचो।
तुच्छबुद्धि "कवि लाल" पायके, वॉचत मन धर सॉचो।।सुकारण०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थितचतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा-समवशरण के बीच में, श्रीमण्डप सुविशाल,
बीच विराजें शम्भु जी,"लाल"भने जयमाल।

त्रिभंगी

जय जय गुण-सुन्दर, नमत पुरन्दर, धरम धुरन्धर जगतपते।
जगमगतसु ज्ञानं, दुर्णय भान, जोगनिधान देव नते।।

पद्धरि

जय चारघातिया घात नमस्ते, राग द्वेष दो टारि नमस्ते।
केवल दर्शन पाय नमस्ते, परमौदारिक काय नमस्ते।।
इन्द्र पूज आनन्द नमस्ते, पूजा करत सुछन्द नमस्ते।
क्षीरोदधि जल लाय नमस्ते, स्तुति करत बनाय नमस्ते।
सब देवन शिरताज नमस्ते, गुणमण्डित जिनराज नमस्ते।।

महा मोह हतिकार नमस्ते, भव्यन को सुखदाय नमस्ते।
पर-परिणति-परिहार नमस्ते, ज्ञाननिधान सु भान नमस्ते।।
निष्पृह हो जगतें जु नमस्ते, धरि समाधि वैराग्य नमस्ते।
सिद्ध-चिदानद राय नमस्ते, शिवमारग दरशाय नमस्ते।।
सुरनर मिल नित ध्याय नमस्ते, करुणासागर देव नमस्ते।
अशरण-शरण जिनेश नमस्ते, वचन दयारस लीन नमस्ते।।
हरिहर करि प्रभु पूज नमस्ते, लोकालोक विलोक नमस्ते।
जय जय जग आधार नमस्ते, सुर जय जय उच्चार नमस्ते।।
पञ्चाचार सु पाय नमस्ते, इन्द्र सु स्तुति गाय नमस्ते।
फिर निजभाल नमाय नमस्ते, मण्डितनृत्य सु ध्याय नमस्ते।।
थेइ थेइ थेइ धुनि होत नमस्ते, जगमग जिनतन ज्योति नमस्ते।
बाजत बीन मृदग नमस्ते, दे प्रदक्षिणा तीन नमस्ते।।
बहुविध पुण्य उपाय नमस्ते, जय जय जय सुखदाय नमस्ते।
प्रातिहार्य वसु पाय नमस्ते, तरु अशोक हो पास नमस्ते।।
सुर वरषावत पुष्प नमस्ते, वाणी खिरत जिनेश नमस्ते।
तीन छत्र शिरधार नमस्ते, ढोरत चौंसठ चमर नमस्ते।।
सिहासन थिर देव नमस्ते, भामण्डल छवि पेख नमस्ते।
बाजत दुन्दुभि द्वार नमस्ते, श्रावक श्राविका करें नमस्ते।।
देव असख्याते सु नमस्ते, गुण अनन्त विख्यात नमस्ते।
श्रावक गण सुखदाय नमस्ते, क्षमावान गुणवान नमस्ते।।
जय जय भाल नवाय नमस्ते, तुच्छबुद्धि "कवि लाल" नमस्ते।
भववारिधतें तार नमस्ते, यह विनती उरधार नमस्ते।।

दोहा-श्री अरिहन्त जिनेश की, गूँथी शुभ जयमाल।
जो पहिरे भवि कण्ठ में, तिनके भाग्य विशाल।।

ॐ ह्रीं श्रीमण्डपकेवलिसंयुक्त-समवशरणस्थित-जिनेन्द्रभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अडिल्ल

जो बाचे यह पाठ सरस मन लायकें,
सुने भव्य दे कान सु मन हरषायकें।
धनधान्यादिक पुत्र पौत्र सम्पति वरे,
सुर नर के सुख भोगि बहुरि शिवतियवरे।।

इत्याशीर्वादः

सप्तपरमस्थान पूजा

गीता छन्द

श्री वीतराग जिनेन्द्र को प्रणमूँ सदा वर भाव से।
श्री सप्तपरमस्थान पूजूँ प्राप्ति हेतु चाव से।।
आह्वान थापन सन्निधापन, भक्ति श्रद्धा से करूँ।
सज्जाति से निर्वाण तक, पद सप्त की अर्चा करूँ।।1।।

ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानानि अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् आह्वानं।
ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानानि अत्र मम सन्निहितानि भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथाष्टक चाल (नन्दीश्वर श्रीजिनधाम)

जल शीतल निर्मल शुद्ध केशर मिश्र करूँ।
अतर्मल क्षालन हेतु, शुभ त्रय धार करूँ।।
मै सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।1।।

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरभित अलिचुंबित गंध, कुंकुम सग मिला।
भव दाह निकदन हेतु, चर्चत सौख्य मिला।।मैं सप्त . ...

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ताफल सम वर शुभ्र, तंदुल धोय धरूँ।
वर पुंज चढाऊँ आन, उत्तम सौख्य वरूँ।।मैं सप्त . ..

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मदार वकुल मचकुद सुरभित पुष्प लिया।
मदनारि विनाशन हेतु, अर्चूं खोल हिया।।
मैं सप्तपरमपद हेतु, परमस्थान जजूँ।
सब कर्म कलक विदूर, परिनिर्वाण भजूँ।।1।।

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुविध उत्तम पकवान, घृत से पूर्ण भरे।
निज क्षुधा निवारण हेतु, अर्चूं भक्ति भरे।।मैं सप्त

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत दीपक ज्योति प्रकाश, जगमग ज्योति करे।
दीपक से पूजा सत्य, ज्ञान उद्योत करे।।मैं सप्त

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगध सुगधित धूप, खेवत पाप जरें।
वर सप्त पदो को पूज, उत्तम सौख्य वरें।।मैं सप्त

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम सुपारी दाख, एला थाल भरे।
फल से पूजत शिव सौख्य अनुपम प्राप्त करें।।मैं सप्त

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प, नेवज दीप लिया।
वर धूप फलों से युक्त, उत्तम अर्घ्य किया।।मैं सप्त ..

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

शान्तिधारा देय, सप्तपरमपद को जजूँ।
परमशान्ति सुख हेत, सब जग शान्ति हेतु मैं।
शांतये शान्तिधारा।

चंपक हर सिंगार, पुष्प सुगन्धित लायके।
सप्तपरमपद हेतु, पुष्पाञ्जलि अर्पण करूँ।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

नरेन्द्र

माता पिता के उभय पक्ष की शुद्धि सज्जाति है।
सम्यग्दर्शन सहित भव्य को निश्चित मिल जाती है।।
जलगंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
सज्जाति स्थान परम को, पूजत सौख्य भजूँ मैं।।1।।

ॐ ह्रीं सज्जातिपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वजनों से मान्य जगत में, सद्गृहस्थ पद माना।
धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष को, आकर श्रेष्ठ बखाना।।
जलगधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
सद् गार्हस्थ्य परमपद पूजत, उत्तम सौख्य भजूँ मै।।2।।

ॐ ह्रीं सद्गृहस्थत्वपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चमहाव्रत पञ्चसमिति त्रय गुप्ति सहित जो माना।
वरचारित्रमय परिव्राज्य पद, जग में सर्व प्रधाना।।
जलगधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
परिव्राज्य पद परम पूजकर, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।3।।

ॐ ह्रीं प्राव्राज्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कोटि कोटि सुर सहित महर्दि, गुण सम्पन्न कहाता।
सुरपति पद सब देवगणों में, आज्ञा नित्य चलाता।।

जलगंधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
वर सुरेन्द्र पद पूजन करके, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।4।।

ॐ ह्रीं सुरेन्द्रत्वपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षटखडाधिप चक्रवर्ति पद, वैभव पूर्ण जगत में।
सम्यग्दर्शन शून्यजनों को, मिलना दुष्कर सच में।।
जलगधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
शुभ साम्राज्य परम पद पूजत, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।5।।

ॐ ह्रीं साम्राज्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्निकाय देव गण पूजित, महामहोत्सवकारी।
तीर्थंकर पद सर्वोत्तम पद त्रिभुवन जन सुखकारी।।
जलगधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मैं।
तीर्थंकर स्थान परम पद पूजत, उत्तम सौख्य भजूँ मैं।।6।।

ॐ ह्रीं आर्हन्त्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घाति अघाति कर्म घातकर, हुए निकल परमात्मा।
शुद्धसिद्ध कृतकृत्य निरजन, लोक शिखर गतात्मा।।
जलगधादिक अष्ट द्रव्य ले, हर्षित भाव जजूँ मै।
परिनिर्वाण परमपद पूजत, उत्तम सौख्य भजूँ मैं:।7।।

ॐ ह्रीं निर्वाणपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सज्जाति सद्गृहस्थ पद अर, पारिव्राज्य सुरनाथा।
वर साम्राज्य परम आर्हत्य, परिनिर्वाण विधाता।।
सप्त परम स्थान भुवन में, सर्वोत्तम कहलाते।
पूर्ण अर्घ्य ले इन्हें जजूँ मैं, निज पद पूरण वास्ते।।8।।

ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप्य-ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानाय नमः।

(108 बार जाप्य करें)

जयमाला

दोहा-गुणरत्नाकर वृषभजिन, भव्यकुमुद भास्वान।
सप्तपरमपद पाय के, भोगें सुख निर्वाण।।1।।

चाल-श्रीपति जिनवर ....।

शुभजाति गोत्र परवंश तिलक, जो सज्जाति के जन्मे हैं।
जो उभय पक्ष की शुद्धि सहित, औ उच्चगोत्र में जन्में हैं।।
वे प्रथम परम पद सज्जाति पाकर छहपद के अधिकारी।
वह सज्जाति स्थान सदा, भव भव में होवें गुणकारी।।2।।
धर्मार्थ काम त्रय वर्गों को, जो बाधा रहित सदा सेते।
पञ्चाणुव्रत औ सप्तशील, धारण कर सद्‌गृहस्थ होते।।
वे ही भव भोगों से विरक्त, जिन दीक्षा धर मुनि बनते हैं।
प्राव्राज्य तृतीय परम पद पा, निज आतम अनुभव करते है।।3।।
विधिवत् सन्यास मरण करके, देवेन्द्र परम पद पाते हैं।
स्वर्गों के अनुपम भोग भोग, फिर चक्रीश्वर बन जाते है।।
सोलहकारण भावना भाकर, तीर्थंकर पद को पाते हैं।
छठवें अर्हन्त्य परम पद को, पाकर शिवमार्ग चलाते हैं।।4।।
सब कर्म अघाती भी विनाश, निर्वाण रमापति हो जाते।
जो काल अनन्तानन्तों तक, सुखसागर में गोते खाते।।
इन सप्त परम स्थानों को, क्रम से भविजन पा लेते हैं।
जो सप्तपरमपद व्रत करते, वह अन्तिमपद वर लेते हैं।।5।।

घत्ता

जय सप्तपरमपद, त्रिभुवन सुख प्रद, जय जिनवर पद नित्य नमूँ।
सज्ज्ञान मतीवर, शिव लक्ष्मीकर, जिनगुण सम्पत्ति मैं परणूँ।।6।।

ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानेभ्यो जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शान्तिधारा, परिपुष्पाञ्जलिः।

जो सम्यक्विधि सप्तपरम-स्थान सुव्रत को करते हैं।
भक्ति से जिनराज चरण का नित अर्चन करते हैं।।
वे क्रम से इन परमपदों को, पाकर सुख भजते हैं।
स्वर्ग सौख्य भज कर्म विलय कर, परम सिद्ध बनते हैं।।1।।

इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिः।

सहस्रनाम समुच्चय पूजा

दोहा- वृषभादिक चौबीस जिन, प्रणमूँ बारम्बार।
सहस्रनाम पूजा रचूँ, उर धर हर्ष अपार।।

ॐ ह्रीं श्रीमदादि-धर्मसाम्राज्यनायकान्ताष्टाधिकसहस्रन्ता-शुभनाम-धारक-श्रीजिनेन्द्रदेव अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्रीमदादि-धर्मसाम्राज्यनायकान्ताष्टाधिकसहस्रन्ता-शुभनाम-धारक-श्रीजिनेन्द्रदेव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीमदादि-धर्मसाम्राज्यनायकान्ताष्टाधिकसहस्रता-शुभनाम-धारक-श्रीजिनेन्द्रदेव अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

भव-भव का सारा मैल धुला, अब इच्छाओं की प्यास नही।
सम्यक् ज्ञानामृत पा करके, मृग जल पर अब विश्वास नहीं।।
जिन सहस्रनाम की भक्ति भावना, हृदय हिलोरें लेती है।
सद्भक्तों के चेतन में छा तन मन पावन कर देती है।।

ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय जलं नि.स्वाहा।

तन-मन तपन मिटी मेरी, बुझ रही राग की आग यहाँ।
वचनामृत शीतल चन्दन से, चेतन में उठा विराग यहाँ।।जिन०

ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय चंदनं नि.स्वाहा।

क्षत-विक्षत पर्यायों पर से, उठ गई हमारी दृष्टि प्रभो।
निज को अखण्ड अक्षत पाकर, बदली सब लौकिक सृष्टि विभो।।जिन0
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

इन रग बिरंगे फूलो पर, अब कभी नहीं मंडराऊँगा।
विषयों के चुभते शूलों पर अब, नही भूल कर जाऊँगा।।जिन0
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जब दर्शन पूजन करने से, तन-मन-लोचन सब तृप्त हुए।
तब क्षुधा मिटाने तथा कथित, ये षट्रस व्यञ्जन व्यर्थ हुए।।जिन0
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस ज्ञान दीप के जलने से, मिथ्यात्व अँधेरा भाग गया।
जग का व्यापार सचेत हुआ, निश्चय अपने मे जाग गया।।जिन0
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु भक्ति वन्दन के द्वारा, शुभ अशुभ विकार हुए स्वाहा।
शुद्धोपयोग की पावक में, चिच्चमत्कार चमका आहा।।जिन0
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

है नर्क निगोद अशुभ का फल, शुभ का फल मानवता है।
मानवता का फल संयम है, सयम को देव तरसता है।।जिन0
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत पुष्प और, नैवेद्य एकाकार हुए।
जड़ दीप धूप फल अष्ट द्रव्य, ये पूजा के उपचार हुए।।जिन०

ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

श्री जिनेन्द्र की भक्ति में, होकर अति तल्लीन।
गाऊँ गुणमाला विशद, समता भाव प्रवीण।।

अस्तित्त्व आपका प्रतिक्षण ही, सन्मार्ग प्रकाशित करता है।
श्री जिनवाणी का अवलम्बन, सम्यक्त्व हृदय में भरता है।।
कर्मों की छाया क्षणभगुर, रागादि निमित पा जाती है।
चरणारविन्द की रज लेकिन, परिणाम सुखद कर जाती है।।
सद्ध्यान कसौटी चढ करके, आतम कुन्दन हो जाता है।
तप सौरभ का स्वर्णिम सपना, साकार स्वय हो जाता है।।
भावों की सुन्दर सरिता भी, कण-कण से नि सृत होती है।
सुर गगा भी बहकर पावन, भव भव के कल्मष धोती है।।
सत अनेकान्त मय वस्तु तत्त्व को, स्याद्वाद दर्शाता है।
प्रत्येक धर्मी बन मुख्य गौण, अपनी आभा बिखराता है।।
जिनसेन तथा जिन वैन मृदुल, जिन कल्पवृक्ष की छावों में ।
वचनों के नामों की माला, गूँथी गुण सूत्री भावों में।।

ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्रीजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

नाम-मन्त्र के जाप से, भव-भव के सन्ताप।
कटते अपने आप ही, कोटि जन्म के पाप।।

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

सुगन्धदशमी पूजा

अडिल्ल

सुगन्ध दसैं को पर्व भादवा शुक्ल में।
सर्व इन्द्रादिक देव आय मधि लोक में।।
जिन अकृत्रिम धाम धूप खेवे तहाँ।
हम भी पूजत आह्वानम् करके यहाँ।।

ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रत ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रत ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रत ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

पद्मादिक द्रह को जल उत्तम मणि भृगार भरावे।
जन्मजरामृत नाशन कारण त्रय धारा जु ढुरावे।।
पर्व सुगन्ध दसै दिन जिनवर पूजैं अति हरषाई।
सुगन्ध देह तीर्थंकर पद को पावे शिव दुखदाई।।

ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिर चन्दन सग केसर केली नंद घसावें।
चन्दन पूजत जिनवर को भव आताप मिटावे।।पर्वसुगन्ध।।

ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यो भवताप-नाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्र किरण सम अक्षत उज्ज्वल कमल शालि के ल्यावै।
जिन चरणाग्रज पुंज करत ही तुरत अखय पद पावै।।पर्व सुगन्ध।।

ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात संतान कल्पतरु, पुष्प सुगन्ध घनेरे।
कमल जिनेश्वर पद को पूजों, काम की व्यथा उडेरे।।पर्व सुगन्ध।।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यः कामबाण-विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

खाजा फेणी मोदक चन्द्रक तुरहि घृत से बनावे।
मिष्ट रसन कर पूरित, जिन पद भेंटत क्षुधा नसावैं।।पर्व सुगन्ध।।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप रतन मय कर्पूरादिक, सूर्य किरण में ल्यावै।
जिन चरनन धरिवारै आर्तिक, ज्ञान अनन्त व्है जावे।।पर्व सुगन्ध।।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

केलि नन्दन पावन चन्दन, अगर तगर को चूरे।
धूप सुगन्ध सो स्वर्ण धुपायन, जारे बसु विध चूरे।।पर्व सुगन्ध।।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐला केला आम्र सुगन्ध सु नासानेत्र सुहावै।
जिनवर पद पूजत ही फलतैं मुक्त वधू वर पावै।।पर्व सुगन्ध।।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

कमल सुगन्धित नीर सुचन्दन अक्षत पुष्प मिलावै।
दीप धूप फल अर्घ सु निर्मल सुवरन थाल भरावै।।पर्व सुगन्ध।।
ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
जाप्य-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय नमः
(108 बार जाप्य करें)

जयमाला

दोहा-पर्व सुगन्ध दसे तनो अति महिमा को धाम।
ताकी जयमाला कहूँ मुक्ति मिलन के काम।।
भादव सुदी दशमी विषें, सब इन्द्रादिक देवसुर सुरागना
सैन्य जुत आवत है स्वयमेव सुगन्ध दसमी जिन पूजस्यां।।
ताकी विधि वरनन करूँ महिमा जिन पद चन्द।
भक्ति थकि या बाल हो काटत भव का फंद।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्या।।
खेय कर धूप सुगन्ध भक्त मुदित मन होय।
भ्रमर फिरे आकाश में, गध सुहावनी सोय।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्या।।
चतुरनिकाय सुराधिया, प्रति इन्द्रन जु सहेत।।
धुज वादित्र जू अग्रकर, जिनगुण गान करेह।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्या।।
मध्यलोक में आय के, अकृत्रिम जिनगेह।
तहाँ आय पूजन करै, गुन गाय करेह।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्या।।
विविध सुगन्ध मिलाय के, खेवत धूप सुगन्ध।
ताकि धूम्रज अलि सहित, नभ जु करै सम्बन्ध।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्यां।।
जय जय रवि देवन तने, गुनगन गान करत।।
सर्व पृथ्वी सुखमय भई, मानो हरषत अग।।
सगन्ध दशमी जिन पूजस्यां।।

धूप धूम्र मिस करम की, मानो धूप उडंत।
दस दिन में भरमत फिरै, ठोर न कहूँ दिसंत।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्या।।
इहाँ हूँ नगर मझार सब, अग्र ग्रामादिक माहि।
नर नारी अति हरष ने, उच्छव अति हि कराहि।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्यां।।
वस्त्राभूषन धार तन, धूप सुगन्ध बनाय।
जिन मन्दिर में धूप धर, खेवत धूप जु जाय।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्या।।
सुगन्ध दसैं के पर्व की वरनन की बुध नाहीं।
चन्द्र स्वरूप जु कहत हैं, कोलों कहूँ बनाय।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्याँ।।
जो यो दशमी व्रत करै।
मन वच तन कर शुद्ध सकल करम को।
नासकर होय केवली बुद्ध।।
सुगन्ध दशमी जिन पूजस्याँ।।

ॐ ह्रीं सुगन्धदशमीव्रतोद्योतनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

अडिल्ल- या पूजा जो करे निरन्तर भावसूँ।
मन वच तन उछाह करै अति चाहसों।।
रिद्धि बुद्धि धर ताके माहि बसै सदा।
मोक्ष पुरी सुख भोगे सो नर सर्वदा।।

इत्याशीर्वादः।

त्रिकाल चौबीसी पूजा

अडिल्ल

भूत भविष्यत वर्तमान चौबीस को,
जबू भरत मझार तीन जग ईशको ।
निरवाणादि अतीत वर्त्त वृषभादि हैं,
महा पद्मादि भविष्य करत अरि नाश हैं।।1।।
ये तीनों चौबीस बहत्तर नाथकों,
थापि जजूँ मन वचन नाय निज माथकों ।
आह्वानम् सस्थापन मम सन्निहित युता,
भाव भक्ति अति आनि हानि मति भ्रमयुता ।।2।।

ॐ ह्रीं त्रिकालचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।

ॐ ह्रीं त्रिकालचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं त्रिकालचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

गीतिका

गग क्षीर सुनीर निर्मल स्वर्ण झारी में भरैं,
जन्म जर मरणादि हारन अचल पद प्रापति करैं ।
भरत जम्बूद्वीपके त्रयकाल त्रय चौबीस को,
पूजूँ सदा मन वचन तनतें दाय पद जगदीश को ।1।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर केसर मिलत चदन अगर आदि सुगन्ध तैं ।

भरिस्वर्ण झारी धार देते छूटते भवतापतें ।

भरत जम्बूद्वीपके त्रयकाल त्रय चौबीस को,

पूजूँ सदा मन वचन तनतें दाय पद जगदीश को ।2।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यः संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अति श्वेत सुन्दर सुरभि मडित तदुलौघ सुथाल में ।

भरि जजत जिनके चरन युगको अखैपद के पावने ।भरत3।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन स्वर्ण स्वरूप मय शुभ स्वर्ण थाल भराईये।

अरि अनत भग सु करन कारणशील सार बढाइये ।भरत4।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान मेवा आदि चरुवर कनक भाजन मे भरै ।

क्षुधा वेदनी के नाश कारण प्रभु चरण सन्मुख धरै ।भरत5।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप मणिमय ज्योति भरकर प्रभा सुन्दर रवि समा ।

ते धारिथारी कनक निर्मित पूजिये सब तम हना ।भरत6।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप मेलि सुगन्ध नाना कीजिये अरि नाश ही ।

सो कनक धूपायन हि खेवत अष्ट कर्म विनाश ही ।भरत7।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्रीफल दाख बदाम पिस्ता फल अनेक सु लाइये ।
सो कनक भाजन भरि सुपूजत मोक्ष महाफल पाइये ।भरत8।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध तन्दुल सुमन चरुवर दीप धूप फलौघ ही ।
करि अर्घ्य द्रव्य अनर्घ ले के नमैं भव अघ औघ ही ।भरत9।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ-भरतक्षेत्रोत्पन्न-त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति-जिनेभ्यो अनर्घ पद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा -ये तीनों चौबीस जिन, सकल सुखनि को मूल ।
कहूँ तास जयमालिका, पृथक अनुकूल पृथक युत थूल ।1।

चौपाई

तामें प्रथम भूत चौबीस, नाम जपौ भ्रम हरन मुनीश ।
निर्वाणरु सागर महासाध, विमल विमलप्रभ शुद्ध अराध ।2।
श्रीधर दत्तनाथ अमलेश, उधरन अगनिनाथ शुभभेश ।
सजम पुष्पांजलि शिवगुणा, उत्साहरु चक्षु ज्ञान सुभणा ।3।
परमेश्वर विमलेश्वर सार, और यथार्थ जसोधर सार ।
कृष्ण ज्ञानमति विशुद्धमतीय, भद्ररु शांत युक्त शिवपीय ।4।
ये चौबीस अतीत जिनेश, वदौं दायक पद परमेश ।
आगे वर्तमान जिन ईश, नाम जपौं नम कर जगदीश ।5।
ऋषभ अजित सभव सुख बीज, अभिनंदन सु सुमत भव-ईश।
पद्मप्रभ जु सुपारस नाथ, चंद्र-प्रभ चन्द्र सम गात।6।
पुष्पदन्त शीतल तपहार, श्रेयास वासुपूज सुखकार।
विमल अनत धर्म जिनराज, शाति कुंथु दायक सुख साज।7।
अर मलि मुनिसुव्रत जगनाथ, नमि अरु नेमनाथ सुख साथ ।
पाश्वरु वीराधिप महावीर, कर्म चूरि पहुँचे भव तीर ।8।

ये चौबीस कहे वर्तमान, भव तारन जग गुरुवर महान ।
आगे कहूँ अनागत जिना, चतुर्विंश संख्या तिन गिना ।9।
महापद्म पुनि सुर सुदेव, सुप्रभ स्वयंप्रभ करत सेव ।
सर्वायुध जगदेव जिनेश, उदयदेव उदयंक महेश।10।
प्रश्नकीर्ति जयकीर्ति उदार, पूर्णबुद्ध निः कषाय सार ।
विपुलप्रभ जिन बहल सु भले, चित्र समाधि गुप्त निर्मले ।11।
स्वयभू व कंदर्प जिनेश, जयनाथ जिनं विमल प्रभेश ।
दिव्यवाद जिन अनत सुवीर, अनतवीर्य चौबिस समधीर ।12।
ये चौबीस अनागत जिना, भव उधरन कारण शिवसना ।
भूत भविष्यत वर्त चौबीस, कीनी थुति भव हरन जगीश ।13।
तिन सबके बहत्तर जिनराज, वदों भवदधि तरन जहाज ।
त्रय चौबीसनिके परसाद, गिरि कैलाश विषै सुख साध ।14।
निर्मापित थे भरत चक्रीश, पूजै तासु शक्र चक्रीश ।
ये ही कर्मनाश के कार, ये ही शिव रमणी भरतार ।15।
ये ही परम पूज्य परमेश, ये ही सकल सुखनि के वेश ।
ये ही मो मन वाछित कार, या भव पर-भव सुखदातार ।16।
ये ही जनम जरा मृतु हरैं, ये ही परम रिद्धि को करैं ।
जाके शरण और नहि कोय, ताके बड़ो शरण यह जोय ।17।
कोई हुये कारनते सघ, ये बिन कारण सब जगबध ।
ये जिन बहत्तर की गुनमाल, जे पहरैं निज कंठ विशाल ।18।
ते भव भव जग विभव अनेक, लाभे परभव होय शिवेश ।
पूजूँ ताकौं अर्घ सुदेय, मन वच तन बहु भक्ति सुलेय ।19।
दोहा- ये चौबीस तीनकी, समुचय करि सुपूज ।
आगै भिन-भिन करत हौं, भक्ति अधिक मम हूज ।20।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्रोत्पन्न-अतीत-वर्तमान-अनागत-चतुर्विंशति-जिनेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः।

श्री अनन्त व्रत कथा

नमों अनन्त अनन्त गुण, नायक श्री तीर्थेश।
कहूँ अनन्त व्रत की कथा, दीजे बुद्धि जिनेश।।

इसी जम्बूद्वीप के आर्यखण्डों में कौशल देश है। उसमें अयोध्या नगरी के पास पद्मखण्ड नाम का ग्राम था। उस ग्राम में सोमशर्मा नाम का एक अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी सोमा नाम की स्त्री और बहुत सी पुत्रियों सहित रहता था। वह विद्याहीन और दरिद्र होने के कारण भिक्षा मांग कर उदर पोषण करता था, तो भी भरपेट खाने को नहीं मिलता था।

तब एक दिन अपनी स्त्री की सम्मति से उसने सहकुटुम्ब प्रस्थान किया तो चलते समय मार्ग में शुभ शकुन हुए। अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियाँ सन्मुख मिलीं। कुछ और आगे चला तो क्या देखता है कि, हजारों नर-नारी किसी स्थान को जा रहे हैं। पूछने से विदित हुआ कि वे सब अनन्तनाथ भगवान के समोशरण में वन्दना के लिये जा रहे हैं।

यह जानकर यह ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया और समोशरण में गया। वहाँ प्रभु की वन्दना कर तीन प्रदक्षिणा दी और नर कोठे में यथास्थान जा बैठा, जहाँ समवशरण में दिव्यध्वनि सुनकर उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई।

पश्चात् चारित्र का कथन सुनकर उसने जुआ, मांस, मद्य, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन यह सात व्यसन त्याग किये। पंच उदम्बर और तीन मकार त्याग यह अष्ट मूलगुण भी धारण किये। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और प्ररिग्रह इन पंच पापों का एकदेश त्यागरूप अणुव्रत और तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी ग्रहण किये। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित बारह व्रत लिये। पश्चात् कहने लगा-

हे नाथ। मेरी दरिद्रता किस प्रकार से मिटेगी कृपा करके कहिये।

तब भगवान ने उसे अनन्त चौदस का व्रत करने को कहा इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी 11 का उपवास कर 12 और 13 को एकाशन करें। अर्थात् एकाशन से मौन सहित स्वाद रहित प्रासुक भोजन करें, सात प्रकार गृहस्थों के अन्तराय पाले, पश्चात् चतुर्दशी के दिन उपवास करे। तथा चारों दिन ब्रह्मचर्य रखे, भूमि पर शयन करे व्यापार आदि गृहारंभ न करे। मोहादि रागद्वेष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ हास्यादिक कषायों को छोड़े, सोना, चांदी या रेशम सूत आदि का अनन्त बनाकर, इसमें प्रत्येक गाँठ पर 14 गुणों का चिन्तवन करके 14 गाँठ लगाना।

प्रथम गाँठ पर ऋषभनाथ भगवान से अनन्तनाथ भगवान तक 14 तीर्थंकरों के नाम उच्चारण करे।

दूसरी गाँठ पर सिद्धपरमेष्टी के लिए 14 गुण स्थानो का चिन्तवन करे। तीसरी पर 14 मुनि जो मतिश्रुत अवधिज्ञान युक्त हो गये हैं उनके नाम उच्चारण करे।

चौथी पर केवली भगवान के 14 अतिशय का स्मरण करे। पाँचवीं पर जिनवाणी में जो 14 पूर्व हैं उनका चिन्तवन करे।

छठवीं पर चौदह गुण स्थानों का विचार करे। सातवीं पर चौदह मार्गणाओं का स्वरूप विचारें।

आठवीं पर 14 जीवसमासों का विचार करे, नवमीं पर गंगादि 14 नदियों का नामोच्चरण करे। दशवीं पर तीन लोक जो 14 राजू प्रमाण ऊँचा है उसका विचार करे।

ग्यारहवीं पर चक्रवर्ती के चौदह रत्नों का चिन्तवन करे। बारहवीं पर 14 स्वर (अक्षर अ से औ तक) का चिन्तवन करे। तेरहवीं पर चौदह तिथियों का विचार करे। चौदहवीं गाँठ पर मुनि के मुख्य 14 दोष टालकर जो आहार लेते हैं। उनका विचार करे। इस प्रकार 14 गाँठ लगाकर मेरु के ऊपर स्थापित प्रतिमा के सन्मुख इस अनन्त को रखकर अभिषेक करे। अनन्त प्रभु की पूजन करे फिर नीचे लिखा मंत्र 108 बार जपे-

मन्त्र-ॐ णमो भगवदो अरहदो अणंत सिज्झ-धम्मे भगवदो विज्झर महाविज्झर अणंते अणंतणाणे अणंत केवलणाणे अणंतकेवलदंसणे अणु पुज्जवासणे अणंतागम कैवलियै स्वाहा।

मन्त्र-ॐ अर्हं हं सः अनन्तकेवलिने नमः (2)

इस प्रकार चारों दिन अभिषेक, जप और जागरण भजन पूजनादि करे। फिर पूनम के दिन उस अनन्त को दाहिनी भुजा पर या गले में बाँधे।

पश्चात् उत्तम मध्यम या जघन्य पात्रों से जो समय पर मिल सकें उनको आहार आदि दान देकर आप पारणा करे। इस प्रकार 14 वर्ष तक करे। पश्चात् उद्यापन करे तब 14 प्रकार के उपकरण मंदिर में देवें जैसे- शास्त्र, चमर, छत्र, चौकी आदि। चार प्रकार संघों को आमंत्रण करके धर्म की प्रभावना करे। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार श्री मुख से व्रत की विधि और उत्तम फल सुनकर उस ब्राह्मण ने स्त्री सह व्रत लिया तथा और भी बहुत लोगों ने यह व्रत लिया।

पश्चात् नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने ग्राम में आया और भाव सहित 14 वर्ष तक व्रत को विधियुक्त पालन करके उद्यापन किया। इससे दिनों दिन उसकी बढ़ती होने लगी। इसके साथ रहने से और भी बहुत लोग धर्म-मार्ग में लग गये। क्योंकि लोग जब उसकी इस प्रकार बढती देखकर उससे इसका कारण पूछते तो वह अनन्त व्रत आदि व्रतों की महिमा और जिनभाषित धर्म के स्वरूप का कथन कह सुनाता। इससे बहुत लोगों की श्रद्धा उस पर हो जाती और वे उसे गुरु मानने लगते।

इस प्रकार वह ब्राह्मण भले प्रकार सांसारिक सुखों को भोगकर अन्त में सन्यास मरण कर स्वर्ग में देव हुआ। उसकी स्त्री भी समाधि से मरकर उसी स्वर्ग में उसकी देवी हुई । वहाँ अपनी पूर्व-पर्याय का

अवधि से विचारकर धर्मध्यान सेवन करके वहाँ से चये, सो वह ब्राह्मण जीव अनन्तवीर्य नाम का राजा हुआ और ब्राह्मणी उसकी पटरानी हुई।

ये दोनों दीक्षा लेकर अनन्तवीर्य तो इसी भव से मोक्ष को प्राप्त हुए और श्रीमती स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्ग में देव हुई। वहाँ से चयकर मध्यलोक में मनुष्य भव धारण कर संयम ले मोक्ष जावेगी।

इस प्रकार एक दरिद्र ब्राह्मणी अनन्त व्रत पालकर सद्गति को पाकर उत्तमोत्तम पद् को प्राप्त हुई। यदि अन्य भव्य जीव यह व्रत पालेंगे तो वे भी सद्गति पावेंगे।

सोमशर्म सोमा सहित, अनन्त चौदश व्रत पाल।
लहो स्वर्ग अरु मोक्षपद, ते वदूँ त्रैकाल।।

अनंतभव कर्महराष्टमी व्रत कथा

राजगृही में राजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना के साथ राज्य करता था, एक दिन उस नगर के उद्यान में सहस्रकूट चैत्यालय के दर्शनार्थ यशोभद्र नाम के महाज्ञानी 500 मुनियों सहित पधारे, उस समय रत्नमाला नाम की एक भव्य श्राविका चैत्यालय में अपना अनतभव कर्महराष्टमी व्रत का विधान करने के लिए गयी थी, विधान की समाप्ति करके मंदिर के बाहर आयी और धर्मोपदेश सुनने के लिए मुनिराज के निकट बैठ गयी, उस समय एक पक्षी मन्दिर के शिखर से मंदिर के प्रागण में गिर पड़ा और विशेष वेदनाग्रस्त होकर मरणासन्न हो गया, तब यह देख कर रत्नमाला उस पक्षी के निकट गई और कहने लगी हे पक्षीराज! आज मैंने व्रत किया है। उसका पुण्य मैं तुमको देती हूँ तुम शांति से अपने प्राण छोड़ो, उसी वक्त यशोभद्र मुनिराज भी वहाँ आये और मरणासन्न पक्षी को पच नमस्कार मत्र देने लगे, पक्षी णमोकार मंत्र सुनता हुआ मर कर पांड्य देश के पद्म नगर

के पाण्ड्य राजा की पटरानी नैनादेवी के गर्भ से घटार्तिकी नाम की कन्या के रूप में जन्मा। जब यशोभद्र मुनिराज विहार करते हुए पद्म नगर में आये, तब घटार्तिकी ने नवधा भक्ति से आहार दिया। दान के प्रभाव से पंचाश्चर्य वृष्टि हुई, यह सब देखकर सब को बहुत आनन्द हुआ, उस समय मुनिराज को देखते ही घटार्तिकी कुमारी को जाति स्मरण हुआ, निकट जाकर मुनिराज के चरणों में भक्ति पूर्वक नमस्कार करके बैठ गई, अपना पूर्व भव का प्रपच जानकर आदर से दोनों हाथ जोडकर कहने लगी, हे स्वामिन्! इस रत्नमाला के द्वारा दिए गये व्रत के पुण्य के प्रभाव से आज मैं कन्या होकर उत्पन्न हुई हूँ। इसलिए भव सिन्धुतारक अब उस व्रत का विधान मुझे बताओ मैं अब उस व्रत को यथाविधि पालन करना चाहती हूँ। तब मुनिराज ने उसको सम्पूर्ण व्रत को ग्रहण कराया। मुनिराज अपने स्थान को वापिस चले गये, आगे उस घटार्तिकी ने समयानुसार व्रत का पालन किया, उद्यापन भी किया। वह कन्या मासिक धर्म से होने लगी है, ऐसा देखकर पाड्य राजा ने देवसेन राजा से घटार्तिकी का विवाह कर दिया। दोनों पति पत्नी आनन्द से अपना समय व्यतीत करने लगे, एक दिन दोनों पति पत्नी सहस्रकूट चैत्यालय की वदना के लिए गये थे, भगवान को नमस्कार करके बाहर आये, मुनिराज का धर्मोपदेश सुनकर अपने नगर में वापस आये, सुख से राज्य करते हुए अत में समाधिमरण पूर्वक मरकर स्वर्ग सुख का अनुभव करने लगे और आगे मोक्षसुख भी प्राप्त किया।

❑❑❑

आष्टाह्निक/नन्दीश्वर व्रत कथा

वन्दों पांचों परमगुरु, चौबीसो जिनराज।
अष्टाह्निका व्रत की कहूँ, कथा सबहि सुखकाज।।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्ड में अयोध्या नाम का एक सुन्दर नगर है। वहाँ हरिषेण नाम का चक्रवर्ती राजा अपनी गन्धर्वश्री नाम की पट्टरानी सहित न्यायपूर्वक राज्य करता था एक दिन वंसतऋतु में राजा नगरजनों तथा अपनी 96000 रानियों सहित वनक्रीड़ा के लिए गया।

वहाँ निरापद स्थान में एक स्फटिक शिलापर अत्यन्त क्षीणशरीरी महातपस्वी परम दिगम्बर अरिंजय और अमितंजय नाम के चारण मुनियों को ध्यानारुढ़ देखा। सो राजा भक्तिपूर्वक निज वाहन से उतरकर पट्टरानी आदि समस्तजनों सहित श्री मुनियों के निकट बैठ गया और सविनय नमस्कार कर धर्म का स्वरूप सुनने की अभिलाषा प्रगट की मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया और पश्चात् धर्मोपदेश करने लगे।

मुनिराज बोले-राजा। सुनो, संसार में कितने लोग गंगादि नदियों में नहाने को, कोई कन्दमूलादि भक्षण को, कोई पर्वत से पड़ने में, कोई गया में श्राद्धादि पिंडदान करने में, कोई ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक की पूजा करने में, कालभैरों, भवानी, काली आदि देवियों की उपासना में धर्म मानते हैं अथवा नवग्रहादिकों के जप कराने और मस्तसाँडों सदृश कुतपस्वियों को दान देने में कल्याण होना समझते हैं, परन्तु यह सब धर्म नहीं है और न इससे आत्महित होता है, किन्तु केवल मिथ्यात्व की वृद्धि होकर अनन्त संसार का कारण बन्ध ही होता है।

इसलिये परम पवित्र अहिंसा (दयामई धर्म को धारणकर), जो समस्त जीवों को सुखदायी है और निर्ग्रन्थ मुनि (जो संसार के

विषयभोगों से विरक्त ज्ञान, ध्यान, तप में लवलीन हैं, किसी प्रकार का परिग्रह आडम्बर नहीं रखते हैं और सबको हितकारी उपदेश देते हैं) को गुरु मानकर उनकी सेवा वैयावृत्त कर, जन्म, मरण, रोग, शोक, भय, परिग्रह, क्षुधा, तृषा, उपसर्ग आदि सम्पूर्ण दोषों से रहित, वीतराग देव का आराधन कर, जीवादि तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करके निजात्म तत्त्व को पहचान, यही सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन तथा ज्ञानपूर्वक सम्यक्-चारित्र को धारण करो, यही मोक्ष (कल्याण) का मार्ग है।

सातों व्यसनों का त्याग, अष्ट मूलगुण धारण, पंचाणु व्रत पालन इत्यादि गृहस्थों का चारित्र है, और सर्व प्रकार आरम्भ परिग्रह रहित द्वादश प्रकार का तप करना, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति आदि का धारण करना सो, अठ्ठाइस मूलगुणों सहित मुनियों का धर्म है (चारित्र है), इस प्रकार धर्मोपदेश सुनकर राजा ने पूछा-प्रभो ! मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया है जिससे यह इतनी बड़ी विभूति मुझे प्राप्त हुई है।

तब श्री गुरु ने कहा, कि इसी अयोध्या नगरी में कुबेरदत्त नामक वैश्य और उसकी सुन्दरी नाम की पत्नी रहती थी, उसके गर्भ से श्री वर्मा, जयकीर्ति और जयचन्द ये तीन पुत्र हुए। श्रीवर्मा ने एक दिन मुनिराज को वन्दना करके आठ दिन का नन्दीश्वर व्रत किया, और उसे बहुत काल तक यथाविधि पालन कर आयु के अन्त में संयास मरण किया जिससे प्रथम स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुआ, वहाँ असंख्यात वर्षों तक देवोचित सुख भोगकर आयु पूर्णकर चया, सो अयोध्या नगरी में न्यायी और सत्यप्रिय राजा चक्रबाहु की रानी विमला देवी के गर्भ से तू हरिषेण नाम का पुत्र हुआ है और तेरे नन्दीश्वर व्रत के प्रभाव से नव निधि चौदह रत्न, छयानवें हजार रानी आदि चक्रवर्ती की विभूति यह छः खण्ड का राज्य प्राप्त हुआ है।

तेरे दोनों भाई जयकीर्ति और जयचन्द भी श्री धर्मगुरु के पास से श्रावक के बारह व्रतों सहित उक्त नन्दीश्वर व्रत पालकर आयु के अन्त में समाधिमरण करके स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए थे सो वहाँ से

चयकर हस्तिनापुर में विमल नामा वैश्य की साध्वी सती लक्ष्मीमती के गर्भ से अरिंजय अमितंजय नाम के दोनों पुत्र हुए सो वे दोनों भाई हम ही है।

हमको पिताजी ने जैन उपाध्याय के पास चारों अनुयोग आदि संपूर्ण शास्त्र पढ़ाये और अध्ययन कर चुकने के अनंतर कुमारकाल बीतने पर हम लोगों के ब्याह की तैयारी करने लगे परन्तु हम लोगों ने ब्याह को बंधन समझकर स्वीकार नहीं किया और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह त्याग करके गुरु के निकट दीक्षा ग्रहण की, सो तप के प्रभाव से यह चारण ऋद्धि प्राप्त हुई है।

यह सुनकर राजा बोला-हे प्रभु! मुझे भी कोई व्रत का उपदेश करो, जब श्री गुरु ने कहा कि तुम नंदीश्वर व्रत पालो और श्री सिद्धचक्र की पूजा करो। इस व्रत की विधि इस प्रकार है सो सुनो-

इस जम्बूद्वीप के आसपास लवण समुद्रादि असंख्यात समुद्र और धातकी खण्डादि असंख्यात द्वीप एक दूसरे को चूड़ी के आकार घेरे हुए दूने विस्तार को लिये हैं। उन सब द्वीपों में जम्बूद्वीप नाभिवत् सब के मध्य है। जम्बूद्वीप को आदि लेकर, जो धातकी खण्ड पुष्करवर, वारुणीवर, क्षीरवर, घृतवर, इक्षुवर और नंदीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा में एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर इस प्रकार (13) तेरह पर्वत हैं।

चारों दिशाओं के मिलकर सब 52 पर्वत हुए। इन प्रत्येक पर्वतों पर अनादि निधन (शाश्वत्) अकृत्रिम जिन भवन हैं, और प्रत्येक मंदिर में 108 जिनबिंब अतिशय युक्त विराजमान हैं, ये जिनबिंब 500 धनुष ऊँचे हैं। वहाँ इन्द्रादि देव जाकर नित्य प्रति भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। यहाँ मनुष्य का गमन नहीं होता इसलिये मनुष्य उन चैत्यालयों की भावना अपने-अपने स्थानीय चैत्यालयों में ही भाते हैं और नंदीश्वर द्वीप का मण्डल माँडकर वर्ष में तीन बार (कार्तिक, फाल्गुन, और आषाढ़ मास के शुक्ल पक्षों में ही अष्टमी से पूनम

तक) आठ दिन पूजनाभिषेक करते हैं और आठ दिन व्रत भी करते हैं। अर्थात् सुदी सातम से धारणा करने के लिये नहाकर प्रथम जिनेन्द्र देव का अभिषेक पूजा करें, फिर गुरु के पास अथवा गुरु न मिले तो जिनबिंब के सन्मुख खड़े होकर व्रत का नियम करें।

सातम से पड़िमा तक ब्रह्मचर्य रक्खे, सातम को एकाशन करें, भूमि पर शयन करें, सचित्त पदार्थों का त्याग करें। आठम को उपवास करें, रात्रि जागरण करें, मंदिर में मंडल माँडकर अष्टद्रव्यों से, पूजा और अभिषेक करें, पंचमेरु की स्थापना कर पूजा करें, चौबीस तीर्थंकरों की पूजा जयमाला पढ़ें, नंदीश्वर व्रत की कथा सुनें और 'ॐ ह्रीं नंदीश्वरसंज्ञाय नमः' इस मन्त्र की 108 बार जाप करें।

आठम के उपवास से दश लाख उपवासों का फल मिलता है नवमी को सब क्रिया आठम के समान ही करना केवल 'ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः' इस मन्त्र की 108 जाप करें। और दोपहर पश्चात् पारणा करें इस दिन दश हजार उपवासों का फल होता है।

दशमी के दिन भी सब क्रिया आठम के समान ही करें। 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसार संज्ञाय नमः' इस मन्त्र की 108 जाप करें और केवल पानी और भात खावें। इस दिन के व्रत का फल साठ लाख उपवास के समान होता है।

ग्यारस के दिन भी सब क्रिया आठम के समान करें, सिद्धचक्र की त्रिकाल पूजा करें और 'ॐ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः' इस मन्त्र की 108 बार जाप करें और ऊनोदर (अल्प भोजन) करें।

इस दिन के व्रत से 50 लाख उपवास का फल होता है। बारस को भी सब क्रिया ग्यारस के ही समान करें और 'ॐ ह्रीं पंचमहालक्षणसंज्ञाय नमः' इस मन्त्र की 108 जाप करें तथा एकाशन करे। इस दिन के व्रत से 84 लाख उपवासों का फल होता है।

तेरस के दिन भी सर्व क्रिया बारस के समान करें, केवल 'ॐ ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञाय नमः' इस मन्त्र की 108 जाप करें और इमली

और भात का भोजन करें। इस दिन के व्रत से 40 लाख उपवास का फल मिलता है।

चौदस के दिन सब क्रिया ऊपर के समान ही करें और 'ॐ ह्रीं सिद्धचक्राय नमः' इस मन्त्र की 108 जाप करें तथा तृण (सूखा) साग आदि शुद्ध हो तो उसके साथ अथवा पानी के साथ भात खावें। इस दिन के व्रत का फल 1 करोड़ उपवास का फल होता है।

पूनम के दिन सब क्रिया ऊपर के ही समान करें केवल 'ॐ ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः' इस मन्त्र की 108 जाप करें तथा चार प्रकार के आहार त्याग करें (अनशन व्रत करे) इस दिन के व्रत का तीन करोड़ पाँच लाख उपवास के जितना फल होता है।

पश्चात् पड़िमा के दिन पूजनादि क्रिया के अनन्तर घर आकर चार प्रकार संघों को चार प्रकार का दान करके आप पारणा करें।

जो कोई इस व्रत को तीन वर्ष तक करता है उसे स्वर्गसुख मिलता है। तत्पश्चात् नियम से मोक्ष पद पाता है और जो पांच वर्ष तक करता है वह उत्तमोत्तम सुख भोगकर सातवें भव में मोक्ष जाता है तथा जो सात वर्ष एवं आठ वर्ष तक व्रत करता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की योग्यतापूर्वक उसी भव से मोक्ष जाता है।

इस व्रत को अनन्तवीर्य और अपराजित ने किया, सो वे दोनों चक्रवर्ती हुए और विजयकुमार इस व्रत के प्रभाव से चक्रवर्ती का सेनापति हुआ। जरासिंधु ने पूर्व जन्म में यह व्रत किया, जिससे वह प्रतिनारायण हुआ।

जयकुमार-सुलोचना ने यह व्रत किया जिसे वह अवधिज्ञानी होकर ऋषभनाथ भगवान का 72 वां गणधर हुआ और उसी भव से मोक्ष गये। सुलोचना भी आर्यिका के व्रत धारण कर स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई।

श्रीपाल का भी इससे कोढ़ गया और उसी भव से मोक्ष भी हुआ। अधिक कहाँ तक कहा जाये? इस व्रत की महिमा कोटि जीभ से भी नहीं कही जा सकती है।

इस प्रकार तीन पाँच व सात (आठ) वर्ष इस व्रत को करके उद्यापन करें, आवश्यकता हो तो नवीन जिनालय बनावें, सब संघों को तथा विद्यार्थी जनों को मिष्ठान्न भोजन करावें, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमा पधरावें, शांति हवन आदि शुभ कार्य करें, प्रतिष्ठा करावें, पाठशाला बनावें, ग्रंथों का जीर्णोद्धार करें, और प्रत्येक प्रकार के उपकरण आठ-आठ मंदिर में भेंट करें, इस प्रकार उत्साह से उद्यापन करें। यदि उद्यापन की शक्ति न हो तो व्रत दूना करे।

इस प्रकार राजा हरिषेण ने व्रत की विधि और फल सुनकर मुनिराज को नमस्कार किया और घर जाकर अनेक वर्षों तक यथा विधि यह व्रत पालन करके पश्चात् संसार भोगों से विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली, तप के प्रभाव व शुक्लध्यान के बल से चार घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशों में बिहार कर भव्यजीवों को संसार से पार होने वाले सच्चे जिन मार्ग में लगाया। पश्चात् आयु के अन्त में शेष कर्मों को नाश कर सिद्ध पद पाया।

इस प्रकार यदि अन्य भव्यजीव भी इस प्रकार पालन करेंगे तो वे उत्तमोत्तम सुखों को अपने-2 भावों के अनुसार पाकर उत्तम गतियों को प्राप्त होवेंगे। तात्पर्य व्रत का फल तब ही होता है जबकि मिथ्यात्व तथा क्रोध, मान, माया और लोभ आदि कषाय तथा मोह को मन्द किया जाए। इसलिए इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

नन्दीश्वर व्रत फल लियो, श्री हरिषेण नरेश।
कर्म नाश शिवपुर गयो, वन्दूँ चरण हमेश।।

❑❑❑

अक्षयतृतीया व्रत कथा

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में राजगृह नाम की एक सुन्दर नगरी है। वहाँ मेघनाद नाम का महा मण्डलेश्वर राजा राज्य करता था। वह रूप लावण्य से अत्यन्त सुंदर था वह रूपवान के साथ-साथ बलवान एवं योद्धा भी था। उसकी पट्टरानी का नाम पृथ्वीदेवी था। वह अति रूपवान व जैनधर्म रत थी। उसे जैन धर्म का पक्का श्रद्धान था। राजा मेघनाद के राज्य में सारी प्रजा प्रसन्न थी। राजा बडे विनोद के साथ राज्य कर रहा था।

एक दिन पट्टरानी पृथ्वीदेवी अपनी अन्य सहेलियों के साथ अपने महल की सातवीं मंजिल से दिशावलोकन कर रही थी आनंद से बैठी-बैठी विनोद की बातें कर रही थी तब उसने देखा कि बहुत से विद्यार्थी विद्या पढ़कर अपने घर आ रहे थे, जो खेलने कुदने में इतने मग्न थे कि उनका सारा वदन धूल से सना होने पर भी आठों अंग खेलने में क्रियारत थे।

रानी ने उक्त बालकों की सारी क्रिया देखी तो उसका चित्त विचारमग्न हो गया। रानी को कोई पुत्र नहीं था। बालकों का अभिनय देखकर उसे अपने पुत्र न होने का दु:ख प्राप्त हुआ। दिल में विचार किया कि जिस स्त्री के कोख से पुत्र जन्म नहीं होता उसका जीना इस मंसार में वृथा है। इन्हीं विचारधाराओं के साथ वह नीचे आई तथा चिंता ग्रस्त शरीर बनाकर शयनकक्ष में जाकर सो गई। कुछ समय पश्चात् राजा उधर आया तो उसने रानी को इस तरह देखकर विस्मिता प्रगट की।

रानी से पूछा-प्रिये! आज आप इतनी चिंतित क्यों हो? रानी चुप रही। पुनः राजा ने प्रश्न किया, अनेक बार राजा के प्रश्न करने पर उसने जवाब दिया, हे राजन्! अपनी कोई सन्तान नहीं है और यह समस्त राज वैभव सन्तान के अभाव में व्यर्थ है।

राजा ने उसे धैर्य बँधाते हुए जवाब दिया- इसमें किस के हाथ की बात है। जो होनहार होता है वह होता है। हमारे अशुभ कर्मों का उदय है इसमें चिंता करने से क्या हो। यदि भाग्य में होगा तो अवश्य होगा-किन्तु।

होनहार होगा वही, विधि ने दिया रचाय।

'विमल' पुण्य प्रभाव से, सुख सम्पत्ति बहु पाय।।

कुछ समय बीता, नगर के बाहर उद्यान में सिद्धवरकूट चैत्यालय की वन्दना हेतु पूर्व विदेह क्षेत्र से सुप्रभ नाम के चारणऋद्धिधारी मुनिश्वर आकाश मार्ग से पधारे। वनमाली यह सब देख अत्यंत प्रफुल्लित हुआ और उसने अनेक प्रकार के फल-फूल आदि से डाली सजाकर प्रसन्न चित्त से राजा के पास जाकर निवेदन किया-

हे राजन्! श्रीमान के उद्यान में सुप्रभ चारण ऋद्धिधारी मुनिराज पधारे हैं।

राजा सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसी समय सिंहासन से उतरकर 10 कदम आगे बढ मुनिराज को साष्टांग परोक्ष प्रणाम किया तथा प्रसन्नचित हो वनमाली को वस्त्राभूषण धनादि देकर प्रसन्न किया।

सारे नगर में आनंद भेरी बजवाई। आनंद भेरी सुनकर सब नगर निवासियों ने राजा के साथ चारण ऋद्धिधारी मुनि की वन्दना को प्रस्थान किया।

राजा ने अपने साथ में अत्यंत सुन्दर अष्ट द्रव्य मुनि पूजा हेतु लिये और अनेक गाजे बाजे दुन्दुभि के साथ उद्यान में पहुँचा, वहाँ पहुँचकर चैत्यालय की वन्दना की, सर्व प्रथम चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा दी तथा भगवान की स्तुति करके साष्टांग नमस्कार किया।

फिर भगवान को मणिमय सिंहासन पर विराजमान कर बड़े उत्साह के साथ कलशाभिषेक किया व अष्ट द्रव्यों से पूजा की। भगवत् आराधना के पश्चात् राजा मुनिराज के पास पहुँचा व नमस्कार

कर चरण समीप बैठ गया और मुनिराज से प्रार्थना की- हे मुनिवर! कृपाकर धर्म श्रवण कराईए।

उधर रानी पृथ्वीदेवी ने (राजा की पट्टरानी ने) दोनों कर जोड़कर विनम्र निवेदन किया कि हे मुनिवर! इस भव में मुझे सब सुख प्राप्त है, परन्तु संतान के अभाव में मेरा जन्म निरर्थक है।

कुछ क्षण रुककर मुनिराज ने जवाब दिया कि हे देवी! तुम्हारे अन्तराय कर्म का उदय है, अस्तु तुम्हारे कोई संतान नहीं है। रानी ने पुनः निवेदन किया कि हे महाराज! ऐसा कौन सा पूर्वभव का उदय है, कृपाकर समझाइये, अर्थात् मेरे अंतराय कर्म होने का पूर्व भव सुनाइये-

भरतक्षेत्र में कश्मीर नाम का एक विशाल देश हैं जिसमें रत्नसंचयपुर नाम का एक सुन्दर नगर है। वहाँ एक वैश्य कुल में उत्पन्न श्रीवत्स नाम का राजा सेठ रहता था। जिसकी सेठानी का नाम श्रीमती था। वह अत्यंत सुन्दर एवं गुणवान थी। दोनों सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। तब इसी नगर में चैत्यालय की वन्दना हेतु मुनिगुप्त नाम के दिव्यज्ञान धारी अन्य 500 मुनियों के साथ पध रे।

मुनिगण के दर्शन पाकर राजा सेठ अत्यंत प्रसन्न हुआ और अपना जन्म सफल समझा। वह मुनि महाराज को नमोस्तु कर मुनिसंघ को अपने उद्यान में ले गया। घर जाकर अपनी स्त्री श्रीमती से कहा कि तुम आहार की व्यवस्था शीघ्र करो, आज हमारा पुण्योदय है जिससे विशाल मुनि संघ का आगमन हुआ है।

किन्तु सेठानी ने सुनी अनसुनी कर दी और कोई व्यवस्था नहीं की। सेठ स्वयं आया और शुद्धतापूर्वक बहुत से पकवान तैयार कर सात गुणों से नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। सबके निरंतराय आहार से वह बहुत संतुष्ट हुआ। महाराज ने सेठ को 'अक्षयदानमस्तु' नाम का आशीर्वाद दे विहार किया।

इधर सेठानी श्रीमती अत्यंत क्रोधित हुई और अन्तराय कर्म का बन्ध हो गया, उसी अन्तराय कर्म से तेरे इस भव में सन्तान नहीं है।

रानी ने मुनि महाराज के मुँह से अपना पूर्व भव सुना तो वह अपने कुकृत्य पर अत्यंत दुःखी हुई और प्रार्थना की कि हे मुनिराज! अंतराय कर्म नष्ट हो इसके लिये कोई उपाय बताओ जिससे मुझे संतान-सुख की प्राप्ति हो।

मुनि ने कहा-हे महादेवी! तुम अपने कर्मों का क्षय करने हेतु अक्षयतृतीया व्रत विधि पूर्वक करो। यह व्रत सर्व सुख को देनेवाला तथा अपनी इष्ट पूर्ति करनेवाला है।

रानी ने प्रश्न किया- हे मुनिवर! यह व्रत पहिले किसने किया और क्या फल पाया? इसकी कथा सुनाइये-

मुनिराज ने कहा रानी! इसकी पूर्वकथा सुनो-

विशाल जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगधदेश नाम का एक देश है। उसी देश में एक नदी के किनारे सहस्रकूट नाम का चैत्यालय स्थित है। उस चैत्यालय की वन्दना हेतु एक धनिक नाम का वैश्य अपनी सुन्दरी नामा स्त्री सहित गया। वहाँ कुण्डल पंडित नाम का एक विद्याधर अपनी स्त्री मनोरमा देवी सहित उक्त व्रत (अक्षय तीज व्रत) का विधान कर रहे थे। उस समय (पति-पत्नी) धनिक सेठ व सुन्दरी नामा स्त्री ने विद्याधर युगल से पूछा कि यह आप क्या कर रहे हो-अर्थात् यह किस व्रत का विधान है?

विद्याधर ने जवाब दिया कि इस अवसर्पिणीकाल में अयोध्या नगरी में पहिले नाभिराय नाम के अन्तिम मनु हुए। उनके मरुदेवी नाम की पट्टरानी थी। रानी के गर्भ में जब प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ आये तब गर्भकल्याणक उत्सव देवों ने बड़े ठाठ से मनाया और जन्म होने पर जन्म कल्याणक मनाया। फिर दीक्षा कल्याणक होने के बाद आदिनाथ जी ने छः मास तक घोर तपस्या की। छः माह के बाद चर्या (आहार) विधि के लिए आदिनाथ भगवान ने अनेक ग्राम नगर

शहर में विहार किया किन्तु जनता व राजा लोगों को आहार की विधि मालूम न होने के कारण भगवान को धन, कन्या, पैसा, सवारी आदि अनेक वस्तु भेंट की। भगवान के यह सब अंतराय का कारण जानकर पुनः वन में पहुँच छः माह की तपश्चरण योग धारण कर लिया।

अवधि पूर्ण होने के बाद पारणा करने के लिये चर्या मार्ग से ईर्यापथ शुद्धि करते हुए ग्राम नगर में भ्रमण करते करते कुरुजांगल नामक देश में पधारे। वहाँ हस्तिनापुर नाम के नगर में कुरुवंश के शिरोमणि महाराजा सोम राज्य करते थे। उनके श्रेयांस नाम का एक भाई था उसने सर्वार्थसिद्धि नामक स्थान से चयकर यहाँ जन्म लिया था।

एक दिन रात्रि के समय सोते हुए उसे रात्रि के आखिरी भाग में कुछ स्वप्न आये। उन स्वप्नों में मंदिर, कल्पवृक्ष, सिंह, वृषभ, चन्द्र, सूर्य, समुद्र, आग, मंगल द्रव्य यह अपने राजमहल के समक्ष स्थित हैं ऐसा उस स्वप्न में देखा तदनंतर प्रभातबेला में उठकर उक्त स्वप्न अपने ज्येष्ठ भ्राता से कहे-तब ज्येष्ठ भ्राता सोमप्रभ ने अपने विद्वान पुरोहित को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। पुरोहित ने जबाब दिया हे राजन् ! आपके घर श्री आदिनाथ भगवान पारणा के लिये पधारेंगे, इससे सबको आनन्द हुआ।

इधर भगवान आदिनाथ आहार हेतु ईर्या समितिपूर्वक भ्रमण करते हुए उस नगर के राजमहल के सामने पधारे तब सिद्धार्थ नाम का कल्पवृक्ष ही मानो अपने सामने आया है-ऐसा सबको भास हुआ। राजा श्रेयांस को आदिनाथ भगवान का श्रीमुख देखते ही उसी क्षण अपने पूर्वभव में श्रीमती वज्रजंघकी अवस्था में एक सरोवर के किनारे दो चारण मुनियों को आहार दिया था-उसका जातिस्मरण हो गया। अतः आहार दान की समस्त विधि जानकर श्री आदिनाथ भगवान को तीन प्रदक्षिणा देकर पड़गाहन किया व भोजनगृह में ले गये।

'प्रथम दान विधि कर्ता' ऐसा वह दाता श्रेयांस राजा और उनकी धर्मपत्नी सुमती देवी व ज्येष्ठ बंधु सोमप्रभ राजा अपनी पत्नी लक्ष्मीमती सहित आदि सबों ने मिलकर श्री आदिनाथ भगवान को सुवर्ण कलशों द्वारा तीन खण्डी (बंगाली तोल) इक्षुरस नवधा भक्तिपूर्वक आहार में दिया। तीन खण्डी में से एक खण्डी इक्षुरस तो अंजुली में होकर निकल गया और दो खण्डी रस पेट में गया।

इस प्रकार भगवान आदिनाथ की आहार चर्या निरन्तराय सम्पन्न हुई। इस कारण उसी वक्त स्वर्ग के देवों ने अत्यंत हर्षित होकर पंचाश्चर्य (रत्न-वृष्टि, पुष्पवृष्टि गन्धोदक वृष्टि, देव दुंदुभि, बाजों का बजना व जय जयकार शब्द का होना) वृष्टि हुई और सभी ने मिलकर अत्यंत प्रसन्नता मनाई।

आहार चर्या करके वापिस जाते हुए भगवान आदिनाथ ने सब दाताओं को 'अक्षयदानस्तु' अर्थात् दान इसी प्रकार कायम रहे। इस आशय का आशीर्वाद दिया, यह आहार वैशाख सुदी तीज को सम्पन्न हुआ था।

जब आदिनाथ निरन्तराय आहार करके वापिस बिहार कर गये। उसी समय से अक्षयतीज नाम का पुण्य दिवस प्रारंभ हुआ। (इसीको आखा तीज भी कहते हैं) यह दिन हिन्दु धर्म में भी बहुत पवित्र माना जाता है। इस रोज अनबूझा मुहूर्त मानकर शादी विवाह एवं मंगलकार्य प्रचुर मात्रा में होते हैं।

श्रेयांस राजा ने आदि तीर्थंकर को आहार देकर दान की उन्नति की, दान को प्रारंभ किया। इस प्रकार दान की उन्नति व महिमा समझकर भरतचक्रवर्ती, अकम्पन आदि राजपुत्र व सपरिवार सहित श्रेयांस व उनके सह राजाओं का आदर के साथ सत्कार किया। प्रसन्नचित्त हो अपने नगर को वापिस आये।

उक्त सर्व वृत्तांत (कथा) सुप्रभनाम के चारण मुनि के मुख से पृथ्वीदेवी ने एकाग्र चित्त से श्रवण किया। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने

मुनि को नमस्कार किया। तथा उक्त अक्षयतीज व्रत को ग्रहण करके सर्व जन परिजन सहित अपने नगर को वापिस आये। पृथ्वी देवी ने उस व्रत को विधि अनुसार सम्पन्न किया। पश्चात् यथाशक्ति उद्यापन किया। चारों प्रकार के दान चारों संघ को बाँटे। मन्दिरों में मूर्तियाँ विराजमान की। चमर, छत्र आदि बहुत से वस्त्राभूषण मन्दिर जी को भेंट चढ़ाये।

उक्त व्रत के प्रभाव से उसने 32 पुत्र और 32 कन्याओं को जन्म दिया। साथ ही बहुत सा वैभव और धन कंचन प्राप्त कराया, आदि ऐश्वर्य समृद्ध होकर बहुत काल तक अपने प्रति सहित राज्य का भोग किया और अनंत ऐश्वर्य को प्राप्त किया।

पश्चात् वह दम्पति वैराग्य प्रवर होकर जिनदीक्षा धारण करके तपश्चर्या करने लगे और तपोबल से मोक्ष सुख को प्राप्त किया। अस्तु ! हे भविक जनो ! तुम भी इस प्रकार अक्षय तृतीया व्रत को विधि पूर्वक पालन कर यथाशक्ति उद्यापन कर अक्षय सुख प्राप्त करो। यह व्रत सब सुखों को देने वाला है व क्रमशः मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

यह व्रत वैशाख सुदी तीज से प्रारंभ होता है। उस दिन शुद्धतापूर्वक एकाशन करें या 2 उपवास या 3 एकाशन करें।

इसकी विधि यह है कि व्रत की अवधि में प्रातः नैत्यिक क्रिया से निवृत्त होकर मन्दिर जी को जावे। मन्दिर जी में जाकर शुद्ध भावों से भगवान की दर्शन स्तुति करें। पश्चात् आदिनाथ भगवान की प्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान कर कलशाभिषेक करें। नित्य नियम पूजा भगवान आदि तीर्थंकर (आदिनाथ) की पूजा एवं पंचकल्याणक का मण्डल जी मंडवाकर मण्डल जी की पूजा करें। तीनों काल (प्रातः मध्याह्न, सांय) निम्नलिखित मन्त्र का जाप्य करें एवं सामायिक करें।

मन्त्र-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं आदिनाथ तीर्थंकराय नमः स्वाहा।
प्रातः सांय-णमोकार मन्त्र का शुद्धोच्चारण करते हुए जाप्य करें।

व्रत के समय में गृहादि समस्त क्रियाओं से दूर रहकर स्वाध्याय, भजन, कीर्तन आदि में समय यापन करें रात्रि में जागरण करे। दिनभर जिनचैत्यालय में ही रहें। व्रत अवधि में ब्रह्मचर्य से रहे। हिंसादि पाँचों पापों का अणुव्रत रूप से त्याग करें। क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायों को शमन करें।

पूजनादि के पश्चात् प्रतिदिन मुनिश्वरादि चार प्रकार के संघ को चारों प्रकार का दान देवें आहार करावें फिर स्वयं पारणा करें। प्रतिदिन अक्षय तीज व्रत की कथा सुने व सुनावें।

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत को 5 वर्ष करें। व्रत पूर्ण होने पर यथाशक्ति उद्यापन करें। भगवान आदिनाथ की प्रतिमा मंदिर जी में भेंट करें तथा चार संघ को चार प्रकार का दान देवें।

इस प्रकार शुद्धतापूर्वक विधिवत् व्रत करने से सर्व सुख की प्राप्ति होती है तथा साथ ही क्रम से अक्षय सुख अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अक्षय फल दशमी व्रत कथा

ॐकार हृदय धँरु, सरस्वती शिरनाय।
अक्षयदशमी व्रत कथा, भाषा कहूँ बनाय।।1।।

इसी राजगृही नगर में मेघनाद नाम के राजा की रानी पृथ्वीदेवी अत्यन्त रूप और शीलवान थी, परन्तु कोई पूर्व पाप के उदय से पुत्र विहीन होने से सदा दु:खी रहती थी। एक दिन अति आतुर हो वह कहने लगी- हे भर्तार ! क्या कभी मैं कुलमण्डन स्वरूप बालक को अपनी गोद में खिलाऊँगी? क्या कभी ऐसा शुभोदय होगा कि जब मैं पुत्रवती कहाऊँगी?

अहा! देखो, संसार में स्त्रियों को पुत्र की कितनी अभिलाषा होती है? वे इस ही इच्छा से दिन रात व्याकुल रहतीं अनेकों उपचार

करतीं और कितनी ही तो (जिन्हें धर्म का ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोड़कर धर्म तक से गिर जाती हैं। यह सुनकर राजा ने रानी से कहा-प्रिये। चिन्ता न करो, पुण्य के उदय से सब कुछ होता है। हम लोगों ने पूर्वजन्मों से कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि जिसके कारण निःसन्तान हैं। इस प्रकार वे राजा रानी परस्पर धैर्य बँध ाते कालव्यतीत करते थे।

एक दिन उनके शुभोदय से श्री शुभंकर नाम के मुनिराज का शुभागमन हुआ, सो राजा रानी उनके दर्शनार्थ गये। उनकी वन्दना करने के अनन्तर धर्म श्रवण करके राजा ने पूछा-

हे प्रभु! आप त्रिकाल ज्ञानी है, आपको सब पदार्थ दर्पणवत् प्रतिभाषित होते हैं, सो कृपाकर यह बताईये कि किस कारण से मेरे घर पुत्र नहीं होता है? तब श्री गुरु ने भवांतर की कथा विचार कर कहा राजा ! पूर्व जन्म में इस तुम्हारी रानी ने मुनिदान में अन्तराय किया था, इसी कारण से तुम्हारे पुत्र की अन्तराय हो रही है। तब राजा ने कहा-प्रभु! कृपया कोई यत्न बताईये, कि जिससे इस पापकर्म का अन्त आवे।

यह सुनकर श्री मुनिराज बोले-वत्स! तुम अक्षय (फल) दशमी व्रत करो। श्रावण सुदी 10 को प्रोषध करके श्री जिन मंदिर में जाकर भाव सहित पूजन विधान करो, और 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय नमः' इस मंत्र का जाप्य करो। यह व्रत दश वर्ष तक करके उद्यापन करो, दश-दश उपकरण श्री मन्दिर जी में भेंट करो दश शास्त्र लिखाकर साधर्मियों को भेंट करो और दीनदुःखी जीवों पर दया दान करो, विद्यादान देवो, अनाथों की रक्षा करो जिससे शीघ्र ही पाप का नाश हो सातिशय पुण्य लाभ हो इत्यादि विधि सुनकर राजा रानी आए और विधिपूर्वक व्रत पालन करके उद्यापन किया।

सो इस व्रत के माहात्म्य तथा पूर्व पाप के क्षय होने से राजा को सात पुत्र और पाँच कन्याएँ हुई। इस प्रकार बहुत काल तक राजा दया

धर्म को पालन करते हुए मनुष्योचित्त सुख भोगते रहे। पश्चात् समाधि मरण करके पहिले स्वर्ग में देव हुए और वहाँ से चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भव्य जीव यदि श्रद्धा सहित यह व्रत पालेंगे तो उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखों की प्राप्ति होवेगी।

अक्षय दशमी व्रत किया, मेघनाद नृप सार।
'दीप' रहीं पंचम गती, नमूँ त्रिलोक सम्हार।।

अधिक सप्तमी व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्य खड के उत्तर भाग में नेपाल नाम का एक विशाल देश है। उस देश में पचपुर नाम के नगर में एक बार योग नाम का राजा राज्य करता था। वह राजा नीतिवान, गुणवान, पराक्रमी था। राजा की रूप में सुन्दर गुणवती महारानी थी, रानी के साथ राजा सुखों को भोग रहा था। कुछ दिनों के बाद रानी ने एक सुन्दर तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया, किन्तु वह बालक सब प्रकार की बाल क्रीड़ा दिखाकर पाँच वर्ष में ही मरण को प्राप्त हुआ। पुत्रमरण के शोक से रानी बहुत दुःखी रहने लगी। एक बार उस नगर के उद्यान में, त्रिलोक प्रज्ञप्ति नाम के महामुनि वर पधारे, सहसा उद्यान के फल फूल खिलने लगे, मुनि आगमन का आश्चर्य देखकर वहाँ का वन पालक अपने हाथों में षट्ऋतुओं में फलने फूलने वाले फल फूलों को लेकर राज सभा में गया, राजा को फल फूल भेंट किये मुनि आगमन के समाचार कह सुनाये राजा ने अपने सिंहासन से उठकर सात कदम आगे चलकर माष्टाग नमस्कार किया, वनपाल को शरीर के वस्त्राभरण उतार कर सहर्ष दे दिये। समस्त प्रजाजन परिजनों को साथ लेकर पैदल ही मुनिराज के दर्शन को उद्यान में पहुँच गया, मुनिराज के चरणों में नमस्कार करके धर्मोपदेश सुनने के लिए मुनिराज के निकट बैठ गया, धर्मोपदेश समाप्त होने के बाद रानी

ने विनय पूर्वक भक्ति से पूछा हे मुनिराज दया सिन्धु! कृपा करके बातइये कि मुझे पुत्र दुख क्यों हुआ है, तब मुनिराज ने कहा! संसारी जीवों को संसार में रहकर नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। इसलिए जीवों को दयामय धर्म ही शरण है, रानी तुम दु·ख करना छोड़ दो और जैसा मैं उपाय बताऊँ वैसा कर, तुम अधिक सप्तमी व्रत को भक्तिभाव से करो। अन्त में उद्यापन करो, तब तुमको सर्व सुखों की प्राप्ति होगी, इस प्रकार मुनिश्वर के वचन सुनकर रानी को अत्यन्त आनन्द हुआ, रानी ने मुनिराज से कहा कि हे गुरुदेव! कृपा करके मुझे अधिक सप्तमी व्रत का विधान क्या है ? पूर्ण रूप से बताइये, मैं व्रत का अवश्य पालन करूँगी, मुनिराज ने व्रत की विधि विस्तार पूर्वक कह सुनाई। राजा रानी व्रत की विधि को सुनकर आनन्दित हुए, रानी ने व्रत को स्वीकार किया, घर आकर व्रत को अच्छी तरह पालन किया, अन्त में उद्यापन किया। इस व्रत के पालन करने से राजा रानी को अनेक प्रकार के सुखों की प्राप्ति हुई, इसलिए हे भव्य जीवो तुम भी अधिक सप्तमी व्रत का पालन करो तुम्हें भी सर्व सुखों की प्राप्ति होगी।

अहिगही व्रत कथा

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्यखण्ड है। वहाँ द्वारावती नगरी का राजा त्रिखडाधिपति श्री कृष्ण पटरानी सहित राज्य करता था। उनके पुत्र का नाम प्रद्युम्न कुमार था, वह कामदेव था। एक दिन श्री कृष्ण ने प्रद्युम्न कुमार की शादी के लिए योग्य कन्या रति देवी है यह जानकर अपने साले रुक्मी को दूत के द्वारा कुन्दनपुर समाचार भेजे। दूत के द्वारा समाचार पाकर रुक्मी नरेश बहुत नाराज हुआ और दूत को कहने लगा, कि हे दूत मैं अपनी पुत्री चाडाल को दे दूँगा किन्तु

कामकुमार को नहीं दूँगा, दूत ने ज्यों ही समाचार श्री कृष्ण को सुनाया प्रद्युम्न कुमार रति को बलात् हर कर अपनी द्वारिका नगरी में ले आया और अपना रूप चांडाल का बनाकर रतिकुमारी से कहने लगा। मैं चांडाल हूँ मैंने मायाचारी से यह सब किया है। अब तुमको मेरे साथ ही शादी करनी पडेगी। यह सब सुन देखकर रति कुमारी रोने लगी और बहुत दुःखी हुई।

रति कुमारी को दुखी देखकर रुक्मणी ने रतिकुमारी को समझाया, कि हे रतिकुमारी तुम रोओ मत दुःखी मत हो, प्रद्युम्न कुमार की आदत ही है व्यर्थ की चेष्टा करना। मैं तुम्हारा विवाह उसी के साथ करूँगी तुम चिन्ता न करो, तब रुक्मणी ने प्रद्युम्न कुमार के साथ रति का विवाह कर दिया, परन्तु प्रद्युम्न ने रति कुमारी को एक अलग महल देकर छोड़ दिया, पति विरह के कारण रति देवी दुःखी रहने लगी। एक दिन नगर के उद्यान में एक मुनिराज के दर्शन रति को हुए, रति ने हाथ जोडकर नमस्कार किया और अपने दु खों का सब वृतात कह सुनाया मुनिराज अपने अवधिज्ञान से सब जानकर कहने लगे कि हे बेटी, तुमने पूर्व भव में अपनी सौत के द्वेष से भगवान की प्रतिमा सात घडी तक छुपाकर रखी थी। इसलिए तुमको इस प्रकार का दु ख प्राप्त हुआ है, अगर पापों से मुक्ति चाहती हो तो तुम अहिगही व्रत का पालन करो, जिससे पति सयोग से तुम्हें सुख की प्राप्ति होगी। मुनिराज ने सब व्रत की विधि अच्छी तरह से बता दी,यह सब कथन सुनकर उसको बहुत आनन्द आया उसने मुनिराज के द्वारा बताये गये व्रत को धारण किया और नगर में आकर यथायोग्य व्रत का पालन किया तथा उद्यापन किया। धर्म के प्रभाव से प्रद्युम्न कुमार रति पर प्रसन्न हो गया और दोनों संसार सुख भोगने लगे। कुछ दिनों के बाद नेमिनाथ तीर्थंकर के समवशरण में जाकर

प्रद्युम्न कुमार ने दीक्षा धारण कर ली तब रति ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। दोनों ही घोर तपश्चरण करने लगे। प्रद्युम्न कुमार ने कर्मों को काटकर मोक्ष प्राप्त किया। रति ने भी स्त्रीलिंग का छेदन करके स्वर्ग को प्राप्त किया। आगे मोक्ष को प्राप्त करेगी, इस व्रत का यही प्रभाव है।

आकाश पंचमी व्रत कथा

द्वादशांगवाणी नमूँ, धँरू हृदय शुभ ध्यान।
कथाऽऽकाश पंचमी तनी, कहूँ स्वपर हित जान।।

आर्य खण्ड के सोरठ देश में तिलकपुर नाम का एक विशाल नगर था। वहाँ महीपाल नाम का राजा और विचक्षणा नामक रानी थी। उसी नगर में भद्रशाल नाम का व्यापारी रहता था उसकी नन्दा नाम की स्त्री से विशाला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।

यद्यपि वह कन्या अत्यन्त रूपवान थी, तथापि इसके मुख पर सफेद कोढ़ हो जाने से सारी सुन्दरता नष्ट हो गई थी। इसलिये उसके माता-पिता तथा वह कन्या स्वयं भी रोया करती थी, परन्तु कर्मों से क्या वश है? निदान माता का उपदेश से पुत्री धर्म ध्यान में रत रहने लगी, जिससे कुछ दुःख कम हुआ।

एक दिन एक वैद्य आया और उसने सिद्धचक्र की आराधना करके औषधि दी जिससे उस कन्या का रोग दूर हो गया। तब उस भद्रशाल ने अपनी कन्या इसी वैद्य को ब्याह दी। पश्चात् वह पिंगल वैद्य उस विशाला नाम की वणिक पुत्री के साथ कितने ही दिन पीछे देशाटन करता हुआ, चितौड़गढ़ की ओर गया, वहाँ पर भीलों ने उसे मारकर सब धन लूट लिया।

निदान विशाला वहाँ से पति और द्रव्य रहित हुई नगर के जिनालय में गई और जिनराज के दर्शन करके वहाँ तिष्ठे हुए श्री गुरु को नमस्कार करके बोली-प्रभु! मैं अनाथनी हूँ, पति भी मारा गया

और द्रव्य भी लुट गया। अब मुझे कुछ नहीं सूझता है कि क्या करूँ, कृपाकर कुछ कल्याण। का मार्ग बताइये।

तब मुनिराज ने कहा-बेटी सुनो, यह जीव सदैव अपने ही पूर्वकृत कर्मों का शुभाशुभ फल भोगता है। तू प्रथम जन्म में इसी नगर में वेश्या थी। तू रूपवान तो थी ही, तथा गायन विद्या में भी निपुण थी।

एक समय सोमदत्त नाम के मुनिराज यहाँ आये। यह सुनकर नगर के लोग वंदना को गये और बहुत उत्साह से उत्सव किया। जैसे सूर्य का प्रकाश उल्लु को अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार कुछ मिथ्यात्वी विधर्मी लोगों ने मुनि से वादविवाद किया और अन्त में हारकर वेश्या (तुझे ही) को मुनि के पास ठगने के लिए (भ्रष्ट करने को) भेजा तो तूने पूर्ण स्त्री चरित्र फैलाया, सब प्रकार रिझाया, शरीर का आलिंगन भी किया, परंतु जैसे सूर्य पर धूल फेकनें से सूर्य का कुछ बिगड़ता ही नहीं किन्तु फेकनें वाले ही का उल्टा बिगाड़ होता है। उसी प्रकार मुनिराज तो अचल मेरुवत स्थिर रहे और तू हार मानकर लौट आई।

इससे इन मिथ्यात्वी अधर्मियों को बड़ा दु:ख हुआ और तुझे भी बहुत पश्चाताप हुआ। इस कृत्य से तुझे कोढ़ हो गया सो दु:खित अवस्था में मरकर तू चौथे नर्क गई। वहाँ से आकर तू यहाँ वणिक के घर पुत्री हुई है। यहाँ भी तुझे सफेद कोढ़ हुआ था। सो पिंगल वैद्य ने तुझे अच्छा किया और उसी से तेरा पाणिग्रहण भी हुआ था।

पश्चात् पूर्व पाप के उदय से चोरों ने उसे मार डाला और तू उससे बचकर यहाँ तक आई है। अब यदि तू कुछ धर्माचरण करेगी, तो शीघ्र ही इस पाप से छूटेगी इसलिये सबसे प्रथम तू सम्यग्दर्शन को स्वीकार कर अर्थात् श्री अर्हंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी जिन भगवान के कहे हुए धर्मशास्त्र के सिवाय अन्य मिथ्या देव, गुरु और धर्म को छोड़ जीवादिक सात तत्त्वों का श्रद्धान् कर और सम्यग्दर्शन के नि:शंकित आदि आठ अंगों का पालन करके उसके

25 मल दोषों का त्याग कर, तब निर्मल सम्यग्दर्शन सधेगा। इस प्रकार सम्यक्तपूर्वक श्रावक के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि 12 व्रत को पालन करते हुए आकाशपंचमी व्रत को भी पालन कर।

यह व्रत भादों सुदी 5 को किया जाता है। इस दिन चार प्रकार का आहार त्यागकर उपवास धारण करे और अष्ट प्रकार के द्रव्य से श्री जिनालय में जाकर भगवान का अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पश्चात् रात्रि के समय खुले मैदान में या छत (अगासी) पर बैठकर भजनपूर्वक जागरण करे। और यदि उस समय उस स्थान पर वर्षा आदि के कारण कितने ही उपसर्ग आवें तो सब सहन करें परन्तु स्थान को न छोड़े।

तीनों समय महामंत्र नवकार के 108 जाप करें। इस प्रकार 5 वर्ष तक करें। जब व्रत पूरा हो जावे तो उत्साह सहित उद्यापन करें।

छत्र, चमर, सिंहासन, तोरण पूजन के बर्तन आदि प्रत्येक 5-5 नग मंदिर में भेंट करें और कम से कम पाँच शास्त्र पधरावें। चार प्रकार के संघ को चारों प्रकार का दान देवें और भी विशेष प्रभावना करें। इस प्रकार विशाला कन्या ने श्रद्धापूर्वक बारह व्रत स्वीकार किये, और इस आकाशपंचमी व्रत को भी विधि सहित पालन किया। पश्चात् समाधिमरण कर वह चौथे स्वर्ग में मणिभद्र नाम का देव हुआ।

वहाँ उसने देवांगनाओं सहित क्रीड़ा करते हुए अनेक तीर्थों के दर्शन, पूजा वन्दना तथा समोशरण आदि की वंदना की। इस प्रकार सात सागर की आयु पूर्ण कर उज्जैन नगर में प्रियंगुसुन्दर नामक राजा के यहाँ तारामती नामक रानी से सदानंद नामक पुत्र हुआ, बहुत काल तक राज्योचित सुख भोगे।

पश्चात् एक दिन नगर के बाहर वन में मुनिराज के दर्शन कर और उनके मुख से संसार से पार उतारने वाला धर्म का उपदेश

सुनकर उसने वैराग्य को प्राप्त होकर जिनदीक्षा अंगीकार की और शुक्लध्यान के बल से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रकार विशाला नाम की वणिक कन्या ने व्रत के प्रभाव से स्वर्ग और मोक्ष पद प्राप्त किया, यदि श्रद्धा सहित अन्य जीव यह व्रत पालेंगे तो क्यों न उत्तम सुखों को प्राप्त होवेंगे? अवश्य होंगे।

सूता विशाला वणिक व्रत, आकाश पंचमी सार।
स्वर्ग मोक्ष सम्पति लही, 'दीप' नमावत भाल।।

इन्द्रध्वज व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में भूषण नाम के देश में भूमितिलक शहर में वज्रसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम भूषणा था।

एक दिन नगर के उद्यान में चन्द्र व वरचन्द्र नामक दो चारणऋद्धि धारी मुनिश्वर पधारे। ऐसा समाचार वनपाल से सुन राजा ने मुनिराज को परोक्ष नमस्कार किया और नगर वासियों के साथ उद्यान में गया। चारणऋद्धि मुनीश्वरों को नमस्कार करके वहाँ नजदीक में बैठ गया। कुछ समय धर्मोपदेश सुनकर राजा की पटरानी भूषणा हाथ जोड़कर नमस्कार करके मुनिराज को कहने लगी कि हे गुरुदेव मेरे सतान नहीं है, इसका क्या कारण है।

तब मुनिराज ने कहा कि हे बेटी! तुमने पूर्व भव में कनकमाला की पर्याय में व्रत को धारण कर पूर्ण पालन नहीं किया। बीच में ही व्रत को छोड़ देने से ही तुम को पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, अगर तुम्हें संतान चाहिए तो तुम इन्द्रध्वज व्रत को विधि पूर्वक करो, तब तुम को इन्द्र के समान प्रभावशाली पुत्र रत्न उत्पन्न होगा, ऐसा कहकर मुनिराज ने व्रत की विधि कह सुनाई जिसे सुनकर बहुत आनन्द हुआ। भूषणा देवी ने गुरु को नमस्कार करके व्रत ग्रहण किया।

सभी नगर में वापस आये, रानी अच्छी तरह से व्रत को पालन करने लगी। थोड़े ही दिनों में रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ, राजा रानी बहुत काल पर्यन्त सुख का अनुभव करते रहे। क्रमश· स्वर्ग सुख की प्राप्ति करके मोक्ष सुख को प्राप्त किया।

उपसर्ग निवारण व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्य खड में हस्तिनापुर नामक रमणीय नगर है। उसमे मेघरथ राजा अपनी पद्मावति रानी के साथ सुख से राज्य कर रहा था, उस राजा के विष्णुकुमार और पद्मरथ नाम के दो गुणवान पुत्र थे। एक दिन नगर के बाहर सहस्रकूट चैत्यालय के दर्शन के लिए सुग्रीव महामुनीश्वर अपने सघ सहित पधारे।

इस वार्ता को वनमाली ने राजा मेघरथ को सुनाया, राजा अपनी रानी व पुत्र नगरवासी सहित मुनि सघ वदनार्थ सहस्रकूट में गया और देव भक्ति करके मुनिराज को नमस्कार कर धर्मश्रवण के लिए धर्मसभा में बैठ गया। धर्मश्रवण कर राजा विनयपूर्वक हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगा कि हे ससारतारक मुनिवर! मुझे सुख प्रदान करने वाला कोई एक व्रत का विधान कहिए।

तब मुनिश्वर राजा की विनती को सुनकर कहने लगे कि हे राजन्! आपको उपसर्ग निवारण पार्श्वनाथ व्रत करना चाहिए। ऐसा कहकर व्रत की विधि और विधान कह सुनाया, व्रत का स्वरूप सुनकर राजा मेघरथ और उनके पुत्र विष्णुकुमार ने उस व्रत को ग्रहण किया और सब वापस अपने नगर आ गये। आगे उन दोनों ने यथाविधि व्रत को पालन करके यथाविधि उद्यापन किया। एक दिन निमित्त पाकर दोनों को वैराग्य उत्पन्न हो गया और श्रुतसागर मुनिश्वर के पास

जाकर निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण करने लगे। तप के प्रभाव से विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि प्रकट हो गई।

अवन्ति देश की उज्जयनी नगरी में श्री वर्मा नाम का राजा राज्य करता था, राजा के बली, बृहस्पति, प्रह्लाद, नमुची नामक चारों ही मन्त्री मिथ्यादृष्टि और दुष्ट प्रकृति के थे। एक दिन उस नगरी के उद्यान में अकंपनाचार्य अपने 700 मुनियों का सघ लेकर पधारे। नगर निवासी धर्मात्मा लोग दर्शनार्थ जाने लगे। अकपनाचार्य जी ने यह जानकर कि नगर का राजा और चारों ही मंत्री मिथ्या दृष्टि है सघ को बुलाकर आदेश किया कि नगर से दर्शनार्थ आने वालों को कोई भी मुनि आशीर्वाद न देवे, न वार्तालाप ही करे, यह सुनकर सभी मुनि ध्यानस्थ हो गये।

नगरवासी लोग दर्शन करके जाने लगे, राजा ने नगर में, नगरवासियों की हलचल देखकर चारों मन्त्रियों से पूँछा कि आज क्या त्योहार है, जो नगरवासियों में बहुत हलचल है, लोग कहाँ जा रहे है।

तब मन्त्री कहने लगे कि नगर के उद्यान में दिगम्बर नगे साधु आये है, तब राजा कहने लगा चलो मैं भी दर्शन करने जाऊँगा, सुनते है दिगम्बर साधु बहुत ज्ञानी ध्यानी तपस्वी होते है। मन्त्री कहने लगे कि राजन् ये नगे लोग दर्शन के लायक नहीं होते निर्लज्ज होते हैं। कभी स्नान नहीं करते, उनके शरीर से दुर्गन्ध आती रहती है।

तब राजा कहने लगा कि कुछ भी हो मैं तो दर्शन के लिए अवश्य जाऊँगा तब मन्त्री चुप हो गये और राजा के साथ मन्त्री दर्शन को भी गये, उद्यान में जाकर राजा ने प्रत्येक मुनि को पृथक पृथक नमस्कार किया। लेकिन किसी मुनिराज ने राजा को आशीर्वाद नहीं दिया, राजा ने देखा कि सभी मुनिराज ध्यानस्थ है। दर्शन कर

प्रभावित होकर नगर को वापस लौट रहा था। तब मन्त्रियों ने राजा को भड़काने की कोशिश करते हुए कहा - आप राजा हो राजा होकर भी आप ने इन मुनियों को नमस्कार किया तो भी इन साधुओं ने आपको आशीर्वाद नहीं दिया। हमने कहा था कि ये लोग व्यवहारशून्य रहते हैं। 'मुर्खजती मौनगहे' वाली कहावत के अनुसार ये लोग कुछ बोलना ही नहीं जानते ज्ञानशून्य रहते हैं आदि - आदि।

इतने में एक श्रुतसागर मुनिराज जिन्होंने गुरु की आज्ञा नहीं सुनी थी, पहले ही आहारचर्या के लिए निकल चुके थे। आहार करके वापस लौट रहे थे, देखकर मन्त्री लोग राजा से कहने लगे कि हे राजन! देखो यह एक तरुण बैल मठा पीकर आ रहा है। इस प्रकार के वचन सुनकर और यह जानकर कि ये लोग मिथ्यादृष्टि हैं, मुनिराज भी चुप नहीं रहे और चारों ही मन्त्रियों को वाद विवाद में जीत लिया। राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। चारों मन्त्री लज्जित होकर नगर में लौट गये। मुनिराज वहाँ से सघ में पहुँचे, गुरु को रास्ते की बात कह सुनाई। गुरु कहने लगे कि वत्स तुमने अच्छा नहीं किया। मिथ्यादृष्टि मन्त्रियों से वार्तालाप करने से अब पूरे संघ पर उपसर्ग होगा। तुम जाओ और जहाँ मन्त्रियों के साथ वाद विवाद हुआ था। वहाँ जाकर ध्यानस्थ हो जाओ। श्रुतसागर मुनिराज गुरु का आदेश सुनते ही वहाँ जाकर ध्यानस्थ खड़े हो गये।

रात्रि होने पर चारों मंत्री हाथ में तलवार लेकर संघ पर उपसर्ग करने चले। रास्ते में श्रुतसागर जी वाद विवाद की जगह पर ध्यान करते पाकर हमारा शत्रु तो यहाँ पर ही है इसको मार कर आगे चलें ऐसा विचार कर चारों ही एक साथ ऊपर तलवार उठाये मारने को हुए उसी समय वनरक्षक देव ने आकर उन चारों को वहीं कील दिया,

चारों ही मन्त्री जैसे के तैसे उपसर्ग करने की मुद्रा में वहाँ कीलित हो गये। प्रातःकाल हुआ दर्शनार्थी लोग आने लगे यह मन्त्रियों का चरित्र देखकर आश्चर्य करने लगे सब लोग धिक्-धिक् करने लगे कुछ लोगों ने जाकर राजा को समाचार कह सुनाया राजा शीघ्र ही वहाँ पर दौड़ा आया, देखकर मन्त्रियों के ऊपर बड़ा क्रोधित हुआ। इतने में मुनिश्वर का ध्यान खुला यह सब देखकर, किसने धर्म की रक्षा के लिए इन मन्त्रियों को कीला है ? ऐसा कहते ही शीघ्र ही यक्षेन्द्र प्रकट हुआ। मुनिराज के कहने पर मन्त्रियों को छोड़ दिया। मुनिश्री की क्षमा भावना देखकर धर्म की सब जगह जय जयकार होने लगी।

राजा ने उन चारों मन्त्रियों को नगर में लाकर काला मुँह करके गधे पर बिठा कर नगर के बाहर निकलवा दिया, वो चारों ही मन्त्री निष्कासित होकर घूमते घूमते हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ पर राजा पद्मरथ बड़ा ही धर्मात्मा था, लेकिन समीपवर्ती राजा के कारण मन में बहुत दुःखी हो रहा था। राजसभा में जाकर मन्त्रियों ने देखा कि पद्मरथ का मन उदासीन दिख रहा है। वो चारों ही मंत्री दु·खी होने के कारण को जानकर कहने लगे इसमें क्या बड़ी बात है। हम लोग आपके शत्रु राजा को शीघ्र ही युद्ध में जीत कर बाँध के आपके चरणों में डाल देते है। पहले हम आपका कार्य करते है। ऐसा कह वो चारों ही राज्य सभा से निकलकर समीपवर्ती राज्य के राजा को छल से बाँधकर पद्मरथ राजा के चरणों में डाल देते हैं, पद्मरथ राजा उन चारों ही मन्त्रियों से बड़ा ही प्रभावित हुआ और कहने लगा कि माँगो क्या माँगते हो ? जो माँगोगे सो दूँगा।

तब वे चारों ही कहने लगे, हमारा वचन भण्डार में रहे जब आवश्यकता होगी तब माँग लेंगे, इस प्रकार राजा को प्रभावित कर स्थान पा लिया और हस्तिनापुर में रहने लगे। कुछ दिनों बाद आचार्य

अकम्पनाचार्य का संघ भी बिहार करता हुआ हस्तिनापुर के उद्यान में आ पहुँचा। नगरवासियों को समाचार प्राप्त होते ही नगर वासी दर्शनार्थ उमड़ पड़े, चारों मन्त्रियों को भी यह समाचार प्राप्त हुआ, कि वही संघ यहाँ भी आ गया है। तब विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिए। यहाँ का राजा जैन है हमारा रहस्य खुल जायेगा तो राजा हमको प्राण दण्ड दिये बिना नहीं रहेगा, सघ के आगमन का समाचार पाने के पहले ही सात दिन का राज्य प्राप्त कर मुनियों को मारने का उपाय करना चाहिए।

ऐसा विचार कर शीघ्र ही राजा के पास गये और कहने लगे - हे राजन् हमारा वचन भण्डार में है, उसकी पूर्ति कीजिए। राजा ने कहा माँगो क्या माँगते हो ? उन चारों ने ही राजा से कहा हम को सात दिन के लिए राज्य दीजिए। राजा तथास्तु कह कर सिहासन छोड अंतःपुर में जाकर रहने लगा। इधर दुष्ट मन्त्री राज्य पाकर मुनि सघ के ऊपर उपसर्ग करने का उपक्रम करने लगे, उद्यान में जाकर सब मुनियों को घेरकर बाड़ा करवा दिया, चारों ओर दुर्गन्धित पदार्थों से हवन का प्रदर्शन करवाने लगा सघ के ऊपर उपसर्ग आया जान सर्व मुनिराज समाधि धारण कर ध्यानस्थ हो गये। मुनिसघ के ऊपर घोर उपसर्ग प्रारम्भ हो गया।

मिथिलापुरी के उद्यान में श्रुतसागर नामक मुनि रात्रि में ध्यान कर रहे थे। रात्रि आकाश में श्रवण नक्षत्र काँपते हुए देखकर अवधिज्ञान से हस्तिनापुर में होने वाली घटना को जान लिया। उसी समय हाय हाय करने लगे, समीप बैठे हुए क्षुल्लक पुष्पदतसागर ने आकर पूछा भगवान यह क्या, आप दुःखपूर्ण वचन क्यों उच्चारण कर रहे हैं, क्या कारण है? तब श्रुतसागर मुनिश्वर ने सब हाल कह सुनाया और कहा तुम शीघ्र ही धरणीधर पर्वत पर जहाँ विष्णुकुमार

मुनि ध्यान कर रहे हैं। जाओ वह विक्रिया ऋद्धि से सम्पन्न हैं। इस उपसर्ग को वे ही दूर कर सकते हैं।

क्षुल्लक रात्रि में उसी समय धरणीधर पर्वत पर आकाश गामिनी विद्या की सहायता से पहुँचा और विष्णुकुमार मुनिश्वर को हस्तिनापुर में होने वाले मुनि उपसर्ग का हाल सुनाया। सुनकर विक्रिया ऋद्धि का परीक्षण कर के विष्णुकुमार मुनि हस्तिनापुर आये और अपना बामन रूप बनाकर चारों मन्त्रियों से तीन पाँव भूमि का सकल्प करवाकर विक्रिया ऋद्धि से अपना बहुत बड़ा शरीर बनाया और एक पाँव मेरु पर्वत, दूसरा पाँव मानुषोत्तर पर्वत पर रखा, अब कहने लगे तीसरे पाँव के लिए जगह दो तब बली ने अपने पीठ पर तीसरा पैर रखने को कहा पैर रखते ही उनके भार से वह गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगने लगा। तत्पश्चात् उसने उपसर्ग दूरकर मुनियों की वैयावृत्ति की चारों मन्त्री भी मिथ्यात्व छोड़कर जिनधर्मी बने। विष्णुकुमार मुनि उपसर्ग दूर कर अपने यथास्थान पर पहुँचकर घोर तपस्या करने लगे। कुछ ही दिनों में कर्म काटकर मोक्ष चले गये। इस प्रकार धर्म प्रभावना हुई।

औषधिदान व्रत कथा

जन्म जरा अरु मरण के रोग रहित जिन देव।
औषधिदान तणी कथा कहूँ करूं तिन सेव॥

सोरठ देश में द्वारिका नगर हैं। वहाँ नव में नारायण श्री कृष्णचन्द्र राज्य करते थे। इनके सत्यभामा तथा रुक्मणी आदि सोलह हजार रानियाँ थी, जो परस्पर बहिन भाव से (प्रेम पूर्वक) रहती थी।

श्री कृष्ण प्रजा पालन और नीति न्यायादि कार्यो में सम्पन्न थे। एक दिन वे श्री कृष्णजी स्वजनों सहित श्री नेमिनाथ प्रभु की वन्दना को जा रहे थे कि मार्ग में एक मुनि अत्यंत क्षीणशरीरी ध्यानस्थ देखे तो करुणा और भक्ति से चित्त आर्द्र हो गया और अपने साथ वाले

वैद्य से कहा कि तुम रोग का निदान करके उत्तम प्रासुक औषधि तैयार करो जो कि मुनिराज को आहार के साथ दी जाय, जिससे रोग मिटकर रत्नत्रय की वृद्धि हो।

वैद्य ने राजा की आज्ञा प्रमाण औषधि तैयार की और जब श्री मुनिराज चर्या को निकले तो कृष्णराय ने विधिपूर्वक पडगाहकर नवधा भक्ति सहित श्री मुनिराज को भोजन के साथ औषधियुक्त तैयार किये हुए लाडू का आहार दिया, जिससे कृष्णराय के घर पंचाश्चर्य हुए और औषधि का निमित्त पाकर मुनिराज का रोग भी उपशम हुआ।

श्री कृष्णजी औषधिदान के प्रभाव से (वात्सल्य भाव के कारण) तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। किसी एक दिन श्री कृष्णराय पुनः मुनि दर्शन को गये सो भाग्यवशात् वे ही मुनि एक शिला पर ध्यानस्थ दिखायी दिये।

तब भक्ति सहित वन्दना करके राजा ने मुनिराज के शरीर की कुशल पूछी। तब शरीर से सर्वथा निष्प्रेम उन मुनिराज ने कहा-राजन! शरीर तो क्षणभंगुर है, इसकी कुशल अकुशलता ही क्या? ज्ञानी पुरुष इस पर वस्तु जानकर इसमें ममत्वभाव नहीं रखते हैं।

नाशवान देह तो किसी दिन निश्चय ही नष्ट होवेगा और यह आत्मा तो विनाशी टंकोत्कीर्ण स्वभाव से ज्ञाता दृष्टा है। सो उसकी पुद्गलादि पर पदार्थ कुछ भी बाधा नहीं पहुंचा सकते हैं इत्यादि।

इस प्रकार मुनिराज के वचनों से राजा को बहुत आनन्द हुआ परन्तु वह वैद्य जिसने औषधि बनाई थी, अपनी प्रशंसा न सुनकर तथा औषधि प्रयोग पर अपेक्षा भाव देखकर कुपित हुआ और मुनि की कृत ध्वनि आदि शब्दों से निंदा करने लगा।

इससे वह तिर्यंच आयु का बन्ध करके उसी वन में बन्दर (कपि) हुआ सो एक दिन जब कि वह बन्दर (वैद्य का जीव) वन में एक वृक्ष से उछलकर दूसरे पर, और दूसरे तीसरे वृक्ष पर जा रहा था, तब पवन के वेग से उस वृक्ष की एक डाली जिसके नीचे

मुनिराज बैठे थे, टूटकर उन पर पड़ा और उससे एक बड़ा घाव मुनि के शरीर में हो गया, जिससे रक्त बहने लगा।

यह देखकर वह बन्दर कौतुकवश वहाँ आया और देखा कि मुनिराज के ऊपर वृक्ष की एक बड़ी डाल गिर पड़ी है और उससे घाव होकर लहू बह रहा है। मुनि को देखकर बन्दर को जातिस्मरण हो गया जिससे उसने जाना कि पूर्व भव में मैं वैद्य था, और मैंनें इन्हीं मुनिराज की औषधि की थी परन्तु उनके मुख से प्रशंसा न सुनकर मैंने मान कषाय वश उनकी निंदा की थी जिससे कि मैं बन्दर की योनि को प्राप्त हुआ।

यह विचारकर उस बन्दर ने तुरन्त ही मुनिराज के ऊपर से ज्यों त्यों करके वह वृक्ष की डाली अलग कर दी। और जड़ी बूटी (औषधि) लाकर मुनि के घाव पर लगाई, जिससे मुनिराज को आराम हुआ। पश्चात् मुनिराज ने उसे धर्मोपदेश दिया और अणुव्रत ग्रहण कराये सो उसने व्रतपूर्वक आयु के अन्त में सात दिन पहिले सन्यास मरण किया, सो प्राण त्यागकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।

इस प्रकार औषधिदान के प्रभाव से श्री कृष्ण ने तीर्थंकर प्रकृति बांधी और बन्दर भी अणुव्रत ग्रहण कर स्वर्ग गया। यदि अन्य भव्य जीव इसी प्रकार आहार, औषधि, अभय और विद्यादान में प्रवृत्त होंगे तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त करेंगे।

औषधि दान प्रभाव से, श्रीकृष्ण नरराय।
अरु कपि पायो विमल सुख, देह सब मिल जाय।।

कर्म निर्जरा व्रत कथा

उज्जयिनी नगरी के समीप में एक छोटा सा गाँव था। वहाँ बलभद्र नाम का एक जागीरदार था। उसके सात पुत्र और सात पुत्रवधुएँ थी। इनके साथ वह आनन्द से रहता था।

एक दिन एक महामुनीश्वर उस गाव के नगरकोट के समीप में ध्यान करने को खड़े हो गये। उस जागीरदार की यशोमति नाम की

छोटी बहू ने अंधेरे में ही गोबर उठाकर कोट के बाहर डाल दिया। वह गोबर मुनिराज के ऊपर गिर पड़ा। उजाला होने पर जागीरदार शौच के लिए बाहर गया, देखा कि हमारी बहू ने मुनिराज के ऊपर भूल से गोबर डाल दिया है। तब उसने गरम पानी लेकर मुनिराज के शरीर को धोया और हाथ जोड़कर क्षमा याचना की। मुनिराज का ध्यान छूटने पर हाथ जोडकर नमस्कार करता हुआ कहने लगा कि हे मुनि! मेरी छोटी बहू ने आप के ऊपर अज्ञानपने से गोबर डाल दिया है, उसके लिए मुझे क्षमा करें। तब मुनिराज कहने लगे कि हे भव्य तुम्हारा कोई दोष नहीं है। हमारे ही पूर्व कर्मों का उदय है, ऐसा कहते ही आशीर्वाद देकर जंगल को चले गये।

इधर यशोमति पाप कर्म के उदय से तीव्र रोग से ग्रसित होकर मर गई और उज्जयनी नगर में वैश्य के घर में उत्पन्न हुई। उसके जन्म लेते ही उसके माँ बाप दोनों ही मर गये। तब एक गृहस्थ ने उसका पालन पोषण किया। जब वह पाँच वर्ष की हुई तब वह पालन करने वाला भी मर गया। फिर श्रीमती आर्यिका के निकट उसका पालन पोषण होने लगा, लोग उसको कर्मी नाम मे पुकारते थे।

एक दिन उस गाँव के मन्दिर में श्रुतसागर नामक महाऋद्धिधारी चारण मुनिश्वर आये, नगर के लोग उन मुनिराज के दर्शन के लिए गये। वह कर्मी भी वहाँ गई, सब लोग मुनिराज की प्रदक्षिणा देकर धर्मोपदेश सुनने के लिए वहाँ बैठ गये, वहीं कर्मी मुनिराज के चरणों में पकड़ कर रोने लगी, मुनिराज अपने अवधिज्ञान से उसका भवान्तर जानकर कहने लगे कि हे कन्ये! तुमने पूर्व भव में एक मुनिराज के ऊपर गोबर डाला था, उस पाप से ही तुमको ये दुःख भोगने पड़ रहे है। इसके कारण ही तुम्हारे माता पिता और पालन करने वाले मर गये। अब तुम इस कर्म निर्जरा के लिए, कर्म निर्जरा व्रत यथाविधि

पालन करो और व्रत का उद्यापन करो,तब तुमको ऐहिक सुख के साथ परमार्थिक सुख की भी प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर मुनिराज ने व्रत की विधि कह सुनाई।

लड़की ने व्रत को भक्ति पूर्वक ग्रहण किया। मुनिराज वहाँ से चले गये। कर्मी कुमारी ने श्रावक श्राविकाओं के सहारे से व्रत को पालन करना प्रारम्भ किया। एक दिन उज्जयनी नगरी के राजा का राजकुमार अकस्मात सर्प के काटने से मृतप्राय हो गया उस समय तक उसका विवाह नहीं हुआ था। राजकुमार की माता को बहुत दुःख हुआ। रानी अपने पति को कहने लगी कि हे राजन! आप अपने पुत्र का विवाह सस्कार हुये बिना दहन क्रिया नहीं करना। तब राजा ने मन्त्री को बुलाकर कहा कि हमारे लडके का विवाह हुये बिना दाह सस्कार नहीं होगा, इसलिए किसी कन्या की खोज करके लाना चाहिए।

तब मरे हुए राजकुमार को कन्या कौन देगा विचार करते हुए, सब लोग चिन्तामग्न हुए, तब मन्त्रियों ने एक गाडी में स्वर्ण-रत्नादि भरकर नगर में सूचना करवाई कि राजा के मरे हुए पुत्र को जो कोई अपनी कन्या देगा, उसको यह सारा धन दिया जायेगा। ऐसी सूचना करते करते सेवक लोग मन्दिर के निकट आये।

यह सूचना कर्मी ने भी सुनी और आर्यिका माता जी के पास जाकर कहने लगी कि हे माता जी! मैं उस मृतक राजकुमार के साथ विवाह करूँगी। इस धन से भगवान की पूजा करूँगी। तब आर्यिका माता जी ने उसको कहा कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो, उस समय कर्मी सेवकों के पास जाकर कहने लगी कि मैं राजपुत्र के साथ विवाह करूँगी यह धन मेरी माँ को दे दो। सेवक ने सब धन आर्यिका माताजी को सौप दिया तथा उस कर्मी को साथ लेकर राज दरबार में चल दिये।

राजा को बहुत आश्चर्य हुआ, उसी समय विवाह मण्डप तैयार कर कर्मी के साथ अपने मृतक राजकुमार का विवाह कर दिया। बाद में राजपुत्र की शवयात्रा निकाली गई। उसी समय भयंकर बारिस होने लगी, रास्ते में खूब पानी भरने लगा, रास्ता पानी से बन्द हो गया। तब सब लोग उस राजकुमार के शव को रास्ते में ही छोड़ कर अपने रजवाड़े वापस आ गये। शव के पास किंकर लोगों की स्थापना कर दी थी। मात्र कर्मी अपने मृतक पति के साथ वहाँ रही।

उस दिन कर्मी के व्रत का दिन था। उसको याद आया उसने भक्ति से भावपूजा वहीं बैठकर की। तब उसकी दृढभक्ति को देखकर पद्मावती देवी का आसन कम्पायमान हुआ। तब अवधिज्ञान से उस कन्या की सर्व परिस्थिति जानकर पद्मावती उसी क्षण वहाँ आई और अपना दिव्य रूप प्रकट कर कहने लगी कि हे बालिके तुम्हारे पास कोई द्रव्य नहीं है तो भी तुमने यह झूठी पूजा क्यों आरम्भ कर रखी है ? द्रव्य के अभाव में तुमको कोई भी फल नहीं मिलने वाला है।

तब उस कन्या ने पूछा कि हे भगवती! आप कौन है ? आप का परिचय क्या है ? तब पद्मावती देवी कहने लगी कि हे कन्या! तुम डरो मत मैं पद्मावती देवी हूँ तुम्हारी पंच परमेष्ठी भगवान के ऊपर दृढभक्ति देखकर मैं यहाँ आई हूँ तुम्हारे पर में प्रसन्न हुई हूँ तुझे जो वर माँगना हो वह माँगले।

तब वह कर्मी कहने लगी कि हे देवि! मेरी द्रव्यलोभ से मृत राजपुत्र के साथ शादी हुई है। राजपुत्र को आज ही प्रातःकाल में सर्प ने काट खाया है और वह मरणासन्न है। सो अब आपको जो अच्छा लगे वैसा कर दो, मेरा भविष्य आपके हाथ में है। तब पद्मावती देवी ने राजकुमार को निर्विष कर दिया और अपने स्थान पर वापस चली गई। राजकुमार ने जिन्दा होते ही पूछा कि यह सब क्या है, मुझे यहाँ

कौन लाया ? तब कर्मी ने सब वृतांत आद्योपांत कह सुनाया। रक्षक लोगों ने यह सब चमत्कार देखकर राजा को सब समाचार कह सुनाये।

ऐसा सुनकर उस सब को बहुत आश्चर्य हुआ। तत्काल वृषभसेन राजा, गुणसेना रानी, मन्त्री आदि बहुत लोग राजपुत्र के निकट आये। राजा ने अपने प्रिय पुत्र को देखते ही बहुत आनन्द आया तब अपनी बहू को पूछा कि यह कैसे हुआ। तब कर्मी ने सब हकीकत ज्यों की त्यों कह सुनाई और कहा कि यह सब कर्म निर्जरा व्रत का प्रभाव है। व्रत का प्रभाव देखकर जैन धर्म के ऊपर दृढ विश्वास सब लोगों को हुआ। यह महासती है, ऐसा कहते हुए सब लोगों ने कर्मी की बहुत-बहुत प्रशंसा की और राजा अपने राजकुमार को उसकी रानी कर्मी को हाथी पर बैठाकर राजशाही ठाठ से अपने राजमन्दिर में लेकर गया।

वह वृषभसेन राजा परिवार के साथ में सुख से राज्य करने लगा। थोड़े दिन राज्य करके सब लोग जिनदीक्षा लेकर अन्त में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुए वहाँ वे चिरकाल तक सुख भोगने लगे।

कवलचंद्रायण (कवलाहार) व्रत कथा

पूर्व में भूमण्डल में चन्द्रसा कमलाय नामक प्रजापालक राजा था। जिसकी पतिव्रता रानी का नाम विनयश्री था, राजा प्रजापालन न्यायनीति से करते थे। इतने में एक दिन राजा रानी वन उपवन में क्रीड़ा करते थे तो वहाँ उन्होंने एक स्थान पर श्री शुभचन्द्र नामक मुनि महाराज को देखा तो दोनों ने वहीं जाकर मुनिश्री को वन्दना की और उनके चरण में विनय से बैठे। फिर राजा ने मुनिश्वर से पूछा-महाराज! श्री कवलचंद्रायण नामक व्रत कैसे करना चाहिये,

उसकी विधि क्या है पूर्व में किसने यह व्रत करके उत्तम फल प्राप्त किया था, यह कृपा करके बतलाइये। तब मुनिराज बोले-

कवलचन्द्रायण व्रत एक माह का होता है व किसी भी महिने में इस प्रकार किया जा सकता है- प्रथम अमावस्या के दिन उपवास करना, फिर एकम के दिन एक ग्रास, दूज के दिन दो ग्रास, इस प्रकार चौदस को 14 ग्रास लेकर पूनम को उपवास करें फिर वदी 1 को 14, दूज को 13, उस प्रकार घटाते-घटाते जाकर वदी 14 को एक ग्रास आहार लेकर अमावस्या को उपवास करें तथा इन दिनों में आरम्भ व परिग्रह त्याग करके श्री मन्दिरजी में श्री चन्द्रप्रभ का अभिषेक करके श्री चन्द्रप्रभ की पूजा देव शास्त्र, गुरुपूजा विनय पूर्वक करें। वह दिन धर्मसेवन में तथा शास्त्र स्वाध्यायादि में व्यतीत करें। प्रतिपदा को पारणा के दिन किसी पात्र को भोजन कराकर पारणा करें। और अपनी शक्ति अनुसार चारों प्रकार का दान करें और यथा शक्ति उद्यापन भी करे जिसमें 30 फल व 30 शास्त्र बाँटे।

श्री महावीर प्रभु राजा श्रेणिक से कहते हैं-राजन! महा तपस्वी श्री बाहुबलि जी ने इस कवलचन्द्रायण व्रत को किया था जिसके प्रभाव से उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तथा श्री ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी व सुन्दरी ने भी यह व्रत किया था जिसके प्रभाव से वे दोनों स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्ग में यतीन्द्र हुये थे, और वहाँ से चयकर मनुष्य भव लेकर मुनि पद लेकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया था। अतः जो कोई मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविका यह व्रत करेंगे वे यथा शक्ति स्वर्ग मोक्ष को प्राप्त करेंगे और जो पंच पाप, सात व्यसन और चार कषायों को त्यागकर शुद्ध भाव से इस व्रत को करेंगे वे एक दो भव धारण करके मोक्ष को जावेंगे।

□□□

केवलज्ञान व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश में पुष्करण नाम का अत्यन्त रमणीय नगर है। वहाँ पहले यशोधर नाम का एक बलवान राजा अपनी यशोमती रानी तथा वज्रदंत पुत्रादिक के साथ में अत्यन्त सुख के साथ राज्य करता था। जब राजपुत्र यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब चौसठ कलाओं में अत्यन्त निपुण हो गया।

एक दिन वन पालक ने राजा को एक कमल पुष्प लाकर दिया। राजा ने कमल को देखा, उस कमल में एक काला भ्रमर मरा हुआ था। मरे हुए भ्रमर को देखकर राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने पुत्र वज्रदत को राज सिहासन पर बैठाकर, वन में गया और एक निर्ग्रन्थ मुनिश्वर के पास जिनदीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करके घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। इन्द्र ने गधकुटी की रचना की, देवों ने आकर भक्ति उत्साह से ज्ञानोत्सव मनाया।

इधर वज्रदत की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, पिता को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। यह दोनों ही समाचार एक साथ सुनकर राजा को बहुत आनन्द हुआ। सिहासन के नीचे उतरकर सात पग चलकर भगवान को नमस्कार किया, पुरजन-परिजन साथ में लेकर पैदल ही भगवान के दर्शन के लिए गया। वहाँ जाकर गध कुटी की तीन प्रदक्षिणा देकर मनुष्यों के कोठे में जाकर बैठ गये। भगवान का उपदेश सुनकर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहने लगा कि हे भगवान! हमारी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है सो क्या कारण है ?

तब भगवान कहने लगे कि हे राजन! आपने पूर्व भव में केवलज्ञान व्रत यथाविधि पाला था, उसके पुण्य से आज आपको

चक्ररत्न की प्राप्ति हुई है। ऐसा सुनते ही राजा को बहुत आनन्द हुआ और केवल ज्ञान व्रत की विधि क्या है, पुनः विचार करने लगा। भगवान ने राजा को सब विधि कह सुनाई, राजा ने अत्यन्त हर्ष पूर्वक पुनः उस व्रत को स्वीकार किया और नगर को वापस चला आया। आगे कालानुसार व्रत को पूर्ण करके व्रत का उद्यापन किया। इस व्रत के प्रभाव से बहुत दिनों तक चक्रवर्ती की विभूति का सुख भोगकर अन्त में जिन दीक्षा ग्रहण की और घोर तपश्चरण करके मोक्ष गये।

केवल्य सुखदाष्टमी व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के नेपाल देश में श्रीपुर नाम का नगर है। उस नगर का राजा भूपाल अपनी रानी रूपवती सहित राज्य करता था। उस नगरी में श्रीवर्मा नाम का राजश्रेष्ठी अपनी श्रीमती सेठानी के साथ रहता था। उसके नयसेन, धरसेन, कृतीसेन, कालसेन, रुद्रसेन, वरसेन, देवसेन, महासेन, अमरसेन और धान्यसेन, ऐसे दस पुत्र व एक कन्या बन्धुश्री थी। जब कन्या यौवनवती हुई तब काश्मीर देश के चित्रागत नगर में धनमित्र सेठ के पुत्र धनपाल का उस बन्धुश्री से विवाह कर दिया। एक दिन उस नगर के उद्यान में पाँच सौ साधुओं के सघ सहित भूतानन्द नाम महामुनीश्वर पधारे।

धनपाल श्रेष्ठी को समाचार मिलते ही वह अपने परिवार सहित उद्यान में मुनि दर्शन को गया। मुनिराज को तीन प्रदक्षिणा लगाकर दर्शन करता हुआ धर्मोपदेश सुनने के लिए सभा में बैठ गया। कुछ समय उपदेश सुनकर बन्धुश्री कहने लगी - हे स्वामिन! हमको इतना धन सम्पत्ति का वैभव प्राप्त हुआ है। वह कौन से पुण्य से प्राप्त हुआ है ? मुनिराज उसके वचन सुनकर अवधिज्ञान के बल से पूर्व भव का वृतात कहने लगे।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के मगध देश में राजगृह नाम का नगर है, वहाँ प्रतापधर नाम का राजा अपनी विजया देवी रानी के साथ राज्य करता था। उस नगर में अत्यन्त दीन दरिद्री कनकप्रभ नाम का मनुष्य रहता था, उसकी कनकमाला नाम की स्त्री थी। वे दोनों बहुत दुख से समय निकालते थे। एक दिन देवपाल नामक निर्ग्रन्थ मुनि आहार के लिए उस नगर में आये तथा उन दोनों पति पत्नी ने मुनिराज को नवधाभक्तिपूर्वक आहार दान दिया। निरन्तराय आहार होने के बाद मुनिराज से दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि हे देव! हमको इस मनुष्य पर्याय में दरिद्रता का दुःख क्यों भोगना पड़ रहा है ? दु ख निवारण के लिए उपाय बताइये। तब मुनिराज ने उनको कहा हे भव्य जीवो! तुम सुखी होने के लिए कैवल्य सुखदा अष्टमी व्रत का पालन करो। ऐसा कहकर व्रत की सर्व विधि कह सुनाई। तब उन दोनों ने आनन्दित होकर व्रत ग्रहण किया और नगर में वापस लौट आये।

कुछ समय व्रत का पालन कर उद्यापन किया। व्रत के प्रभाव से धनधान्य से खूब सम्पन्न हुए। कुछ काल सुख भोगकर अन्त में दीक्षा धारण कर समाधिमरण को प्राप्त किया और स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से चलकर तुम धनपाल व बन्धुश्री होकर जन्में हो। ऐसा सुनकर उन दोनों ने पुनः व्रत ग्रहण किया, यथाविधि व्रत को पालन कर समाधिपूर्वक मरण किया और अच्युत स्वर्ग में देव हुए और क्रम से मोक्ष गये।

❑❑❑

कोकिला पंचमी व्रत कथा

ॐकार वाणी नमूँ, स्याद्वाद मय सार।
जा प्रसाद सन्मति मिले, कथा कहूँ सुखकार।

कुरुजांगल देश में गंगा नदी के किनारे राजनगर है। वहाँ का राजा वीरसेन न्याय परायण और धर्मात्मा था। इसी नगर में दो वणिक श्रेष्ठि रहते थे-एक का नाम धनपाल और दूसरे का नाम जिनभक्त था।

धनपाल सेठ के धनमती नाम की सेठानी से धनभद्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और जिनभक्त सेठ के घर जिनमती नाम की कन्या उत्पन्न हुई सो कर्मयोग से इन दोनों वर कन्या (धनभद्र और जिनमती) का पाणिग्रहण संस्कार भी हो गया। तब जिनमती अपने पति के साथ ससुराल गई और गृहस्थी की रीति के अनुसार अपने पति के साथ नाना प्रकार के सुख भोगने लगी, परन्तु पूर्व कर्म संयोग से जिनमती और उसकी सासु में अनबन रहने लगी।

कुछ काल के अनन्तर धनपाल सेठ कालवश हुआ, तब जिनमती ने सासु से कहा-

माताजी! पति का क्रिया कर्म कीजिये और दानादिक शुभ कर्म करिये। इस पर सासु ने ध्यान नहीं दिया, किन्तु उल्टा उसने बहु से रीस करके पूजा होम आदि का सामान जो बहु ने इकट्‌ठा कर रखा था रात्रि को उठकर भक्षण कर लिया सो तिल आदि पदार्थों के भक्षण करने से उसे अजीर्ण हो गया और वह उदीर्णा मरण से अपने ही घर में कोकिला हुई।

जिनमती अपने पति धनभद्र सहित सुख से कालक्षेप करने लगी। उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, सो हर समय अपने पूर्व बैर के कारण जिनमती के ऊपर वीट (मल) कर दिया करती थी, इस कारण जिनमती बहुत दु:खी रहने लगी। एक दिन भाग्योदय से श्री मुनिराज

बिहार करते हुए वहाँ आ गये सो जिनमती स्नान कर पवित्र वस्त्र पहिन कर श्री गुरु के दर्शन को गई और भक्तिपूर्वक वंदना करके शांतिपूर्वक सत्यार्थ देव, गुरु, धर्म का व्याख्यान सुना। पश्चात् नतमस्तक होकर बोली।

हे प्रभु! यह कोकिला नाम का न जाने कौन दुष्ट जीवधारी है, जो मुझे निशदिन दु:ख देता है। तब श्री गुरु ने कहा-यह तेरी सासु धनमती का जीव है। इसने पूर्वभव में पूजा होम आदि का सामान नैवेद्य, तिल आदि भक्षण किया जिससे यह अजीर्ण रोग से आयु की उदीरणा कर मरी और कोकिला हुई है, सो उसी भव के बैर के कारण यह तुझे कष्ट पहुँचाती है। तब जिनमती ने कहा स्वामीजी! यह पाप कैसे छूट सकता है?

श्री मुनिराज ने उत्तर दिया-बेटी! संसार में कुछ भी कठिन नहीं है। यथार्थ में सब काम परिश्रम से सरल हो जाते हैं। तुम अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी धर्म की श्रद्धा रखकर, कोकिला पंचमी व्रत पालन करो तो नि:संदेह यह उपद्रव दूर हो जायेगा।

इसके लिये तुम आषाढ़वदी पंचमी से 5 मास तक प्रत्येक कृष्ण पक्ष की 5 को, इस प्रकार एक वर्ष की पाँच-पाँच पँचमी पाँच वर्षों तक करो।

अर्थात् इन दिनों में प्रोषध धारण कर अभिषेकपूर्वक जिन पूजा करो और धर्मध्यान में धारणा पारणा सहित सोलह प्रहर व्यतीत करो। सुपात्रों में भक्ति तथा दीन दु:खी जीवों को करुणापूर्वक दान देवो, पश्चात् उद्यापन करो। पाँच जिनबिंब पधराओ, पाँच शास्त्र लिखाओ, पाँच वर्ण का पंचपरमेष्ठी का मण्डल माँडकर श्री जिनपूजा विधान करो। पाँच प्रकार का पकवान बनाकर चार संघ को भोजन कराओ। पाँच ध्वजा चैत्यालय में चढ़ाओ, पाँच चन्दोवा, पाँच अछार, पाँच छत्र, पाँच चमर आदि पाँच-पाँच उपकरण बनवाकर मन्दिर में भेंट चढ़ाओ, विद्यालय बनवावो, श्राविका शालायें खोलो, रोगी जीवों के रोग निवारणार्थ औषधालय नियत करो, इस प्रकार शक्ति प्रमाण

चतुर्विध दानशालाएं खोलकर स्वपर हित करो, तथा श्रद्धासहित व्रत उपवास करो।

यह सुनकर जिनमती ने मुनि को नमस्कार करके व्रत लिया और उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, उसने भी अपने भवांतर की कथा गुरुमुख से सुनकर अपनी आत्मनिन्दा की और शुभ भावों से मरकर स्वर्ग में देव हुई, जिनमती और धनभद्र भी व्रत के प्रभाव से स्वर्ग में देव हुए।

अब वहाँ से आकर विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे। इस प्रकार जिनमती और धनभद्र ने कोकिला पंचमी व्रत पालन कर उत्तम गति का बन्ध किया। जो अन्य नरनारी यह व्रत करें।

तो क्यों न उत्तम पद को प्राप्त, होवेंगे अवश्य ही होवेंगे।

धनभद्र अरु जिनमती, कोकिला पंचमी सार।
कियो व्रत शुभ बन्ध कर, जासे मुक्ति मंझार।।

गणधरवलय व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मगलावती नामक देश के रत्नसचय नगर में सोमवाहन नामक राजा अपनी पत्नी विनयावती के साथ सुख से राज्य करता था। उस राजा का चद्राभ नाम का राजकुमार अपनी भार्या चन्द्रमुखी के साथ रहता था।

एक बार वनमाली ने एक कमलपुष्प राजा को भेंट में चढ़ाया। राजा ने उस पुष्प को हाथ में उठाकर देखा तो उस कमल में एक मरा हुआ भ्रमर था। मरे हुए भ्रमर को देखकर राजा सासारिक शरीर से विरक्त हो गया और अपना राज्य अपने पुत्र को देकर एक मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करके तपश्चरण से मोक्ष को गया।

इधर चंद्राभ कुमार को राज्य प्राप्त होते ही अहंकारवश सप्तव्यसन में आसक्त हो गया और पाप करने लगा। एक दिन कुछ दुर्जनों के

साथ शिकार खेलने जंगल में गया, वहाँ एक पेड़ के नीचे अभयघोष नामक मुनिराज को देखते ही द्वेष से उन मुनिराज के ऊपर उपसर्ग करने लगा। उसने समझा कि यह मुनि मेरे शिकार में बाधक बनेगा, इसलिए उन मुनिराज को वहाँ से जबरदस्ती उठाकर अन्यत्र भेज दिया।

उस पाप के उदय से कलिंग देश के राजा कालयवन ने आकर चन्द्राभ के ऊपर आक्रमण कर दिया और राज्य को अपने हाथ में लेकर चन्द्राभ को उस राज्य से उसकी पत्नी सहित भगा दिया। चन्द्राभ वहाँ से निकलकर मलयाचल पर्वत की एक गुफा में छुपकर बैठ गया। उस गुफा में युगंधर नामक मुनिराज ध्यानस्थ बैठे थे, चन्द्राभ कुमार और उसकी पत्नी ने मुनिराज को देखा दोनों ही मुनिराज के पास जाकर बैठ गये और हाथ जोडकर विनय करने लगे। जब मुनिराज ने ध्यान छोडा तो राजा कहने लगा हे मुनिराज! मेरी प्रार्थना यह है कि मेरा राज्य मेरे हाथ से कौन से पाप के कारण गया ?

मुनिराज कहने लगे कि हे राजन तुमने अभयघोष मुनिराज को जबरदस्ती तिरस्कार करके निकाल दिया था। उसी पाप के कारण तुम भी राज्य च्युत हो गये हो और यह विकट स्थिति तुम्हारे सामने आयी है। तब चन्द्राभ राजा को अपने किये पर बहुत पश्चाताप हुआ और वह मुनिराज के चरणों को पकड़कर अपने पापों के उद्धार का कारण पूछने लगा।

तब मुनिराज करुणाबुद्धि से उसको संबोधित करते हुए कहने लगे कि हे राजन! तुम पापों को दूर करने के लिए गणधरवलय व्रत करो और उसकी विधि भी कह सुनाई, तब राजा ने संतुष्ट होकर उस व्रत को स्वीकार किया। अन्त में वह राजा अपनी पत्नी सहित अपने

ससुराल में वापस आ गया। व्रत का अच्छी तरह से पालन करने लगा। इतने में मलयाचल प्रदेश का राजा स्वर्गस्थ हो गया, उसको कोई संतान नहीं थी। मन्त्रिमंडल ने विचारकर अपने राजा का पट्ट हाथी छोड़ा। वह हाथी घूमता हुआ चन्द्राभ के पास आया और उसका अभिषेक करके अपने ऊपर बैठाकर नगर में ले आया। नगर वासी नवीन राजा की प्राप्ति से बहुत खुश हुए और चन्द्राभ को राज सिहासन पर बैठाकर राज्याभिषेक कर दिया। राजा चन्द्राभ भी राज्य प्राप्त होने के बाद न्यायनीति से राज्य करने लगा।

कुछ काल के बाद अपने पूर्व राज्य के ऊपर चढाई करके कालयवन को हराकर अपना राज्य प्राप्त किया और सुख से रहने लगा, गणधर वलय व्रत को और भी अच्छी तरह से पालन करने लगा, व्रत के पूर्ण होने पर उद्यापन किया। अन्त में समाधिमरण कर स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ की आयु पूर्ण कर वह देव, जम्बूद्वीप के अपर विदेह में सीता नदी के किनारे दक्षिण तट पर पद्म देश में सिहपुरी नामक सुन्दर नगर है, उस नगर में पुरुषदत्त राजा की रानी विमलमति के गर्भ में आया।

जन्मते ही उसका नाम अपराजित रखा, पुत्र के बडा होने पर राज्य भार पुत्र को देकर राजा ने दीक्षा ले ली तथा। कर्म काट कर मोक्ष को गया। इधर अपराजित राजा ने भी बहुत काल तक राजसुख भोगकर अन्त में राज्य का त्यागकर विमलवाहन केवली के पास जाकर दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण कर केवली का गणधर बना, अन्त में मोक्ष को गया।

❑❑❑

गरुड़पंचमी व्रत कथा

वीतराग पद वंदके, गुरु निर्ग्रन्थ मनाय।
गरुडपंचमी व्रत कथा, कहूँ सबहि सुखदाय।।

जम्बूद्वीप संबन्धी भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की दक्षिण दिशा में रत्नपुर नाम का नगर है। वहाँ गरुड़ नाम का विद्याधर राजा अपनी गरुड़ा नाम की रानी सहित सानंद राज्य करता था। वह राजा अति श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदैव अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा वन्दना करता था।

एक दिन मार्ग में इसके पूर्वभव के बैरी ने अपना बदला लेने के हेतु इसकी विद्या छीन ली और इसे भूमि पर गिरा दिया।

सो वह राजा अपने स्थान को जाने में असमर्थ हुआ। उद्यान में भम्रण करता था कि सौभाग्य से उसे निर्ग्रन्थ परमगुरु का अचानक दर्शन हो गया। राजा श्री गुरु को देखकर गद्‌गद् होकर विनयसहित नमस्कार कर पूछने लगा- हे प्रभु! मैं मन्दभागी विद्या-विहीन हुआ भटक रहा हूँ। कृपा करके मुझे कोई ऐसा यत्न बताइये कि जिसमें मैं पुनः विद्या प्राप्त कर स्वस्थान तक जा सकूँ।

यह सुनकर श्री गुरु ने कहा-हे भद्र! धर्म के प्रसाद से सब काम स्वयमेव सिद्ध होते हैं। कहा है-'धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण। धर्म पन्थ साधे बिना, नर तिर्यंच समान' इसलिये तू सम्यक्त्व सहित 'गरुडपंचमी व्रत' पालन कर।

देखो इसका फल इस प्रकार है-

मालव देश में चिंच नाम का एक ग्राम है वहाँ नागगौड़ नामी एक मनुष्य रहता था। उसकी स्त्री का नाम कमलावती था। उसके महाबल, परबल, राम, सोम और भोम ऐसे 5 पुत्र और चारित्रमती नाम की एक कन्या थी। नागगौड़ ने अपनी चारित्रमती कन्या को ग्राम के धनदत्त गौड़ के पुत्र मनोरमण के साथ ब्याह दी। ये दोनों नवदम्पत्ति सुख से रहने लगे।

बहुत दिन पश्चात् इनके शांति नाम का एक बालक हुआ, फिर एक दिन सुगुप्त नाम के मुनि चर्या (भिक्षा) के हेतु नगर में पधारे उन्हें देखकर चारित्रमती को अत्यानन्द हुआ और उन्हें भक्तिपूर्वक पड़गाह कर प्रासुक भोजनपान कराया।

मुनिराज ने भोजन के अनन्तर 'अक्षयनिधि' यह शब्द कहे इतने ही में एक आदमी ने आकर चारित्रमति को उसके पिता के बीमार होने की खबर दी। यह सुनकर चारित्रमती ने श्री गुरु से पूछा- हे नाथ! मेरे पिता को कौन सी व्याधि हुई है? तब श्री गुरु ने कहा-पुत्री! तेरे बाप के खेत में एक बड़ का झाड़ था, उसके नीचे एक साँप की बाँबी थी, उन बाँबी में एक पार्श्वनाथ और दूसरी नेमिनाथ स्वामी की प्रतिमा थी जिनकी पूजा हमेशा भवनवासी देव करते थे, सो तेरे बाप ने उस झाड़ को कटवाकर बाँबी को नष्ट कराया है।

इनसे उन भवनवासी देवों ने क्रोधित होकर विषैली दृष्टि से तेरे पिता को देखा हैं। इससे वह मूर्छित हो गया है। तब चारित्रमती ने पूछा-हे नाथ! अब क्या यत्न करना चाहिये जिससे पिताजी को आराम मिले। तब श्री गुरु ने कहा-पुत्री श्रद्धापूर्वक गरुड़पंचमी व्रत पालन कर इससे तेरे पिता की मूर्छा दूर होकर वह स्वस्थ हो जावेगा।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि श्रावण सुदी पंचमी को उपवास करना, तीनों काल में सामायिक करना, मन्दिर में जाकर श्री जिनेन्द्र का अभिषेक पूजन करना फिर होम (हवन) करना, अर्हन्त प्रभु के 5 मंगल गान भजन जागरण करना आरती करना व आशीर्वाद बोलना।

इस प्रकार पाँच वर्ष तक यह व्रत पालना, पश्चात् उद्यापन करना। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो द्विगुणित (दूना) व्रत करना।

उद्यापन की विधि इस प्रकार है कि आरती, थाली, कलश, धूपदान, चमर, चन्दोवा, अछार, शास्त्र आदि उपकरण पाँच-पाँच

लाकर जिनालय में भेंट देवें और घण्टा, पानी के लिये घड़ा, झारी मन्दिर में पधरावे व अष्ट द्रव्य से भाव सहित अभिषेकपूर्वक पूजन करे। पाँच श्रावक तथा श्राविकाओं को भोजन करावें तथा दुःखित भूखित को करुणाबुद्धि से आहारादि चारों प्रकार के दान देवें।

चारित्रमती ने नमस्कार कर उक्त व्रत ग्रहण किया। पश्चात् गुरु ने कहा- पुत्री ! यह व्रत तू अपने पीहर (पितृगृह) में जाकर करना और गन्धोदक अपने पिता के गले में लगाना, इससे वह मूर्छा रहित हो जायगा। और श्रावण सुदी 5 के दूसरे दिन श्रावण सुदी 6 को नेमिनाथ स्वामी का व्रत है सो उस दिन अर्हन्त भगवान के छः अष्टक और छः माला जपना, पूजन अभिषेक करना, हवन करना, और पूजनादि के पश्चात् ककड़ी नारियल शुभ फल प्रत्येक छः छः सौभाग्यवती स्त्रियों को देना।

पश्चात् इसका भी उद्यापन करना अथवा दूना व्रत करना। इस प्रकार दोनों व्रत ग्रहण कर चारित्रमती अपने पिता के घर गई और यथाविधि व्रत पालन किया तथा अपने पिता को गन्धोदक लगाया जिससे वह मूर्छा रहित हो स्वस्थ हो गया।

यह चर्चा सब नगर में फैल गई और इस प्रकार यह गरुड़ (नाग) पंचमी व्रत का प्रचार संसार में हुआ।

कुछ दिन बाद चारित्रमती घर (श्वसुर गृह) जाने लगी परन्तु पिता आग्रह से और ठहर गई।

एक दिन वह चारित्रमती अपने बाप के खेत में निर्मल सरोवर पर जाकर पूजा करने लगी। इस बीच में वे ही मुनिराज जिन्होंने व्रत दिया था, वहाँ भ्रमण करते हुए आ पहुँचे।

उन्हें देखकर चारित्रमती ने नमस्कार वन्दना की और विनम्र हो धर्मश्रवण की इच्छा से वहीं बैठ गई। धर्मोपदेश सुनने के अनन्तर चारित्रमती ने अपने घर की कुशल पूछी। तब श्री मुनि ने अवधिज्ञान से विचारकर कहा-बेटी! तेरे पुत्र को तेरी सौतन ने नदी में डाल दिया

है। सो यदि तू श्रावण सुदी ; का व्रत पालन करेगी, तो तुझे तेरा पुत्र मिल जायेगा।

यह सुनकर चारित्रमती घर आई और मन, वचन, काय से छठ का व्रत पालन किया। इससे कुछ दिन पश्चात् उसका पुत्र उसे मिला इस प्रकार चारित्रमती ने मन, वचन, काय से व्रत पालन किये और विधि सहित उद्यापन किए, पश्चात् धर्मध्यान करती हुई अन्त में संन्यास से मरण कर वह स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग में देव हुई, और वहाँ से आकर राजपुत्र हुई।

पश्चात् राजपुत्र भी कारण पाकर वैराग्य को प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर शुक्ल ध्यान के बल से उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इस प्रकार व्रत का फल सुनकर गरुड़ विद्याधर ने मन वचन काय से व्रत पालन किया। जिससे उसे पुनः विद्या सिद्ध हो गई और वह मनुष्योचित सुख भोगकर अंत में वैराग्य को प्राप्त हो गया और दीक्षा ले तप करने लगा।

पश्चात् शुक्लध्यान के बल से केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धपद पाया। इस प्रकार यदि अन्य भव्यजीव भी श्रद्धा सहित यह व्रत पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम फल पावेंगे।

गरुड़ और चारित्रमती, अहि पंचमी व्रत पाल।
लहो शुद्ध शिवपद सही, तिनहि नमूँ तिहुँ काल।।

चन्दनषष्ठी व्रत कथा

देव नमो अरहन्त नित, वीतराग विज्ञान।
चन्दनषष्ठी व्रत कथा, कहूँ स्वपर हित जान।।

काशी देश में बनारस नाम का प्रसिद्ध नगर है। जिसको तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान ने अपने जन्म धारण करने से पवित्र किया था। उसी नगर में किसी समय एक सूरसेन नाम का राजा राज करता था। उसकी रानी का नाम पद्मनी था।

एक दिन वह राजा सभा में बैठा था, कि वनपाल ने आकर छः ऋतुओं के फल फूल लाकर राजा को भेंट किये। राजा इस शुभ भेंट से केवली भगवान का शुभागमन जानकर स्वजन और पुरजन सहित वंदना को गया और भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा दे नमस्कार करके बैठ गया।

श्री मुनिराज ने प्रथम ही मुनिधर्म का वर्णन करके पश्चात् श्रावक धर्म का वर्णन किया। उसमें भी सबसे प्रथम सब धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन का उपदेश दिया कि-वस्तुस्वरूप का यथार्थ श्रद्धान हुए बिना सब ज्ञान और चारित्र निष्फल है और वह वस्तुस्वरूप का श्रद्धान सत्यार्थ देव (अर्हन्त) सत्यार्थ गुरु (निर्ग्रन्थ और) दयामयी (जिन प्रणीत) धर्म से ही होता है।

अतएव प्रथम ही इनका परीक्षा पूर्वक श्रद्धान होना आवश्यक है। तत्पश्चात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग ये पाँच व्रत एकदेश पालन करे तथा इन्हीं के यथोचित पालनार्थ सप्तशीलों (तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतों) का भी पालन करे, इत्यादि उपदेश दिया, तब राजा ने हाथ जोड़कर पूछा-हे प्रभु! रानी के प्रति मेरा अधिक स्नेह होने का क्या कारण है? यह सुनकर श्री गुरुदेव ने कहा-

राजा! सुनो, अवन्ती देश में एक उज्जैन नाम का नगर है। वहाँ वीरसेन नाम का राजा और रानी वीरमती थी। इसी नगर में जिनदत्त नामक एक सेठ थे उसकी जयावती नाम सेठानी से ईश्वरचन्द्र नाम का पुत्र भी था, जो कि अपनी मामा की पुत्री चंदना से पाणिग्रहण का सुख से कालक्षेप करता था।

एक समय सेठ जिनदत्त और सेठानी जयावती कुछ कारण पाकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर मुनि-आर्यिका हो गये और तप के महात्म्य से अपनी अपनी आयु पूर्ण कर स्वर्ग में देव-देवी हुए। और पिता का पद प्राप्त करके ईश्वरचन्द्र सेठ भी चन्दना सहित सुख से रहने लगा।

एक दिन अतिमुक्तक नाम के मुनिराज मासोपवास के अनन्तर नगर में पारणा निमित्त आये सो ईश्वरचन्द्र ने भक्ति सहित मुनि को पड़गाह कर अपनी स्त्री से कहा कि श्री गुरु को आहार दो। तब चन्दना बोली-

स्वामी! मैं ऋतुवती हूँ, कैसे आहार दूँ। ईश्वरचन्द्र ने कहा कि गुपचुप रहो, हल्ला मत करो, गुरुजी मासोपवासी हैं इसलिये शीघ्र पारणा कराओ।

चंदना ने पति के वचनानुसार मुनिराज को आहार दे दिया, श्री मुनिराज तो आहार करके वन में चले गये और यहाँ तीन ही दिन पश्चात् इस गुप्त पाप का उदय होने से पति पत्नी दोनों के शरीर में गलित कुष्ट हो गया अत्यन्त दुःखी हुए और कष्ट से दिन बिताने लगे।

एक दिन भाग्योदय से श्रीभद्र मुनिराज संघ सहित उद्यान में पधारे। नगर के लोग वन्दना को गये और ईश्वरचन्द्र भी अपनी भार्या सहित वन्दना को गया, भक्ति पूर्वक नमस्कार कर बैठा और धर्मोपदेश सुना पश्चात् पूछने लगा-

हे दीनदयाल! हमारे यहाँ कौन पाप का उदय आया है, कि जिससे यह व्यथा उत्पन्न हुई है। तब मुनिराज ने कहा-तुमने गुप्त कपट कर पात्रदान के लोभ से अतिमुक्तक स्वामी को ऋतुवती होने की अवस्था में भी आहार पान व मन, वचन, काय शुद्ध है कहकर आहार दिया है अर्थात् तुमने अपवित्रता को भी पवित्र कहकर चारित्र का अपमान किया है सो इसी पाप के कारण से यह असातावेदनी कर्म उदय आया है।

यह सुनकर उक्त दम्पत्ति (सेठ सेठानी ने) अपने अज्ञान कृत्य पर बहुत पश्चाताप किया और पूछा-

प्रभु! अब कोई उपाय इस पाप से मुक्त होने का बताइये तब श्री गुरु ने कहा- हे भद्र! सुनो-भादों वदी षष्ठी को चारों प्रकार के आहार का त्याग करके उपवास धारण करो तथा जिनालय में जाकर

अभिषेक पूजन करो अर्थात् अष्टद्रव्य से छः अष्टक चढ़ावो, अर्थात् छः पूजा करो। एक सौ आठ (108) बार णमोकार मंत्र का जाप करो, चारों संघ को चार प्रकार का दान देवो।

तीनों काल सामायिक, व्रत, अभिषेक, पूजन करो, घर के आरंभ व विषयकषायों का उपवास के दिन और रात्रि भर आठ प्रहर तथा धारणा पारणा के दिन 4 पहर ऐसे सोलह पहरों तक त्याग करो।

इस प्रकार छः वर्ष तक यह व्रत करो। पश्चात् उद्यापन करो अर्थात् जहाँ जिनमन्दिर न हो वहाँ छः जिनालय बनवाओ, छः जिनबिंब पधरावो, छः जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार करावो, छः शास्त्रों का प्रकाशन करो। छः छः सब प्रकार के उपकरण मन्दिर में चढ़ाओ, छात्रों को भोजन करावो। चार प्रकार के (आहार, औषध, शास्त्र और अभयदान) दान देवो।

इस प्रकार दंपत्ति ने व्रत की विधि सुनकर मुनिराज की साक्षीपूर्वक व्रत ग्रहण करके विधि सहित पालन किया। कुछ दिन में अशुभ कर्म की निर्जरा होने से उनका शरीर बिलकुल निरोग हो गया और आयु के अंत में सन्यास मरण करके वे दम्पत्ति स्वर्ग में रत्नचूल और रत्नमाला नामक देव देवी हुए। बहुत काल तक सुख भोगते और नन्दीश्वर आदि अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा वन्दना करते कालक्षेप करते रहे।

अन्त में आयु पूर्णकर वहाँ से चयकर तुम राजा हुए हो और वह रत्नमालादेवी तुम्हारी पट्टरानी पद्मिनी हुई है। तुम दोनों का पूर्वभवों का सम्बन्ध होने से प्रेम विशेष हुआ है। यह वार्ता सुनकर राजा को भवभोगों से वैराग्य उत्पन्न हुआ, उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण किया और तप के प्रभाव से थोड़े ही काल में केवलज्ञान प्राप्त करके वे सिद्ध पद को प्राप्त हुए। रानी पद्मिनी जीव ने भी दीक्षा ली, वह भी तप के प्रभाव से स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ वहाँ से चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त करेगा।

इस प्रकार ईश्वरदत्त सेठ और चन्दना ने इस चंदनषष्ठी व्रत के प्रभाव से नर सुर के सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त किया और जो नर-नारी यह व्रत पालेंगे वे भी अवश्य उत्तम पद पावें।

चन्दन षष्ठी व्रत थकी, ईश्वरचन्द्र सुजान।
अरु तिस नारी चन्दना, पाया सुख महान।।

जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा

वन्दूँ आदि जिनेन्द्र पद, मन वच शीश नवाय।
जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा, कहूँ भव्य सुखदाय।।

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व मेरु संबन्धी-अपर विदेह क्षेत्र में गांधि ल देश और पाटलीपुत्र नाम का नगर है वहाँ नागदत्त नाम का सेठ और उसकी सुमति नाम की सेठानी रहती थी सो निर्धन होने के कारण अत्यन्त पीड़ित चित्त रहते और वन से लकड़ी का भारा लाकर बेचते थे। इस प्रकार उदरपूर्ति करते थे। एक दिन वह सुमति सेठानी भूख-प्यास की वेदना से व्याकुल होकर एक वृक्ष के नीचे थककर बैठी थी कि- इतने ही में क्या देखती है कि बहुत से नर-नारी अष्ट प्रकार की पूजन की द्रव्य लिये हुए बड़े उत्साह से हर्ष सहित कहीं जा रहे हैं। तब सुमति ने आश्चर्य से उन आगन्तुकों से पूछा-क्यों भाई! आप लोग कहाँ जा रहे हैं और काहे का उत्सव है?

तब उत्तर मिला कि अंबरतिलक पर्वत पर पिहताश्रव नाम के केवली भगवान पधारे हैं और यह अष्ट प्रकार की द्रव्य पूजार्थ लिये जाते हैं। सुमति सेठानी यह शुभ समाचार सुनकर सहर्ष सब लोगों के साथ ही प्रभु की वन्दना के निमित्त चल दी। इस प्रकार जब सब लोग पिहताश्रव स्वामी के निकट पहुँचे तो मन, वचन, काय से भक्तिपूर्वक भगवान की वंदना पूजा की और फिर एकाग्र चित्त कर धर्मोपदेश सुनने के लिये बैठ गये।

स्वामी ने देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन गृहस्थ के षट्कर्मों का उपदेश दिया। पश्चात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य,

ब्रह्मचर्य (स्वदार संतोष) और परिग्रह इन पंचाणुव्रतों तथा इनके रक्षक 4 शिक्षाव्रत और 3 गुणव्रत इन सात शीलों को ऐसे बारह व्रतों का उपदेश किया और सबसे प्रथम कर्तव्य सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाया।

इस प्रकार उपदेश सुनकर नर-नारी अपने अपने स्थान को पीछे लौटे। तब सुमति सेठानी जो अत्यन्त दरिद्रता से पीड़ित थी, अवसर पाकर श्री भगवान से अपने दुःख की वार्ता कहने लगी-

हे स्वामी! दीनबन्धु, दयासागर भगवान! मैं अबला दरिद्रता से पीड़ित हो नितांत व्याकुल हुई कष्ट पा रही हूँ। कौन कारण से सम्पत्ति (लक्ष्मी) मुझसे दूर रहती है। और वह कैसे मुझे मिले, जिससे मेरा दुःख दूर होकर मेरी प्रवृत्ति दान पूजादि रूप हो।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है-'भूखे पेट न भक्ति होय धर्माधर्म न सूझे कोय'। इसी कहावत के अनुसार अब सब लोग धर्मोपदेश सुन रहे थे, तब वह दरिद्र सुमति सेठानी अपने दारिद्रय रूपी तत्त्व के विचार में ही निमग्न थी जो कि अवसर मिलते ही झट से कह सुनाया।

स्वामी ने जिनकी दृष्टि में राजा और रंक समान हैं। उस सेठानी से चित्त को और प्रसन्न करने वाले शब्दों में इस प्रकार समझाया-ऐ बेटी सुमति! सुन, पलासकूट नामक नगर में दिविलह नामक ग्रामपति रहता था। उसकी भार्या सुमती और पुत्री धनश्री रूप यौवन सम्पन्न थी। एक समय धनश्री पाँच सात सखियों को लेकर वनक्रीड़ा के लिये नगर के उद्यान में गई, जहाँ पर एक वृक्ष के नीचे समाधिगुप्त नाम के मुनिराज ध्यान कर रहे थे सो यह मदोन्मत्त धनश्री मुनिराज को देखकर निन्दायुक्त वचन कहने लगी और घृणाकर मुनिराज के ऊपर कुत्ते छोड़ दिये, इससे मुनिराज को बड़ा उपसर्ग हुआ, परन्तु वे धीरवीर जिनगुरु अपने ध्यान से किंचित्मात्र भी च्युत न हुए।

किन्तु इस महापाप के कारण वह धनश्री मरकर सिंहनी हुई और सिंहनी मरकर तू धनहीन दरिद्रता नारी उत्पन्न हुई है। सो कोई मूढ़

नर-नारी श्री गुरु को उपसर्ग करते हैं, वे ऐसी ही नीच गति को प्राप्त होते हैं।

सुमति सेठानी अपने पूर्व भवांतर सुनकर बहुत दुःखी और पश्चाताप करके रोने लगी। पश्चात् कुछ धैर्य धरकर हाथ जोड़कर पूछने लगी- हे स्वामी! मेरा यह महापाप किस प्रकार छूटेगा?

तब भगवान ने कहा कि यदि तू सम्यग्दर्शनपूर्वक जिनगुण सम्पत्ति व्रत पालन करे तो तेरा दुःख दूर होकर मनवांछित कार्य सिद्ध होगा। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि प्रथम ही सोलह-कारण भावनाएँ जो तीर्थंकर प्रकृति के आश्रव का कारण हैं, उनके 16, पंचपरमेष्ठी के पाँच, अष्ट प्रातिहार्य के आठ और 34 अतिशयों के 34, इस प्रकार कुल 63 उपवास या प्रोषध करें।

इन उपवास के दिनों में समस्त गृहारंभ को त्याग कर श्रीजिनेन्द्र भगवान का अभिषेक और पूजन विधान करें, दिन में तीन बार सामायिक व स्वाध्याय करें और उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

उद्यापन की विधि निम्न प्रकार है- श्रीफल, अखरोट, खारक, बादाम, द्राक्ष इत्यादि प्रत्येक प्रकार के 63 त्रेसठ फल सहित अष्ट द्रव्य से भगवान का महाभिषेक पूर्वक पूजन करें, और जिनालय में चन्दोवा, चंवर, छत्र, झालर घण्टादि उपकरण भेंट करें, तथा त्रेसठ ग्रंथ लिखाकर श्रावक श्राविकाओं में ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने के लिए बांटे व जिनालय के सरस्वती भंडारों में ग्रंथ पधरावें, खूब उत्सव करें, अतिथियों को भोजन देवें व दीन दुःखी का यथा-सम्भव दुःख दूर करें, इत्यादि।

सुमति सेठानी इस प्रकार व्रत की विधि सुनकर घर आई और श्रद्धा सहित यह व्रत पालन करके शक्ति अनुसार उद्यापन भी किया, सो आयु के अंत में सन्यास मरण करके दूसरे स्वर्ग में ललितांग देव को पट्टरानी देवी हुई।

पुण्य के प्रभाव से वह स्वयंप्रभा देवी नाना प्रकार के सुखों को भोगती हुई। आयु पूर्णकर वहाँ से चयकर इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्पकलावती देश की पुण्डरीकनी नगरी में यज्ञदत्त चक्रवर्ती के लक्ष्मीमती नाम की रानी के गर्भ से श्रीमती नाम की पुत्री हुई, जो वज्रजंघ राजा के साथ ब्याही गई।

एक दिन ये दम्पत्ति वनक्रीड़ा को गये थे, सो वहाँ सर्पसरोवर के तट पर आये हुए चारण मुनि को आहार दान दिया और मुनि दान के प्रभाव से ये दम्पत्ति भोगभूमि में उत्पन्न हुए। फिर वहाँ से चयकर श्रीमती के जीव ने जम्बूद्वीप में अवतार लेकर आर्यिका के व्रत धारण किये और संन्यासपूर्वक मरण कर स्त्रीलिंग छेदकर दूसरे स्वर्ग में देव हुआ।

फिर वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी में सुबुधि नाम राजा की मनोरमा रानी के केशव नाम पुत्र हुआ, सो उसने बहुत काल तक अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य सुख न्याय-नीतिपूर्वक भोगा। पश्चात् कारण पाय वैराग्य को प्राप्त हुआ और सीमन्धरस्वामी के निकट जिनदीक्षा धारण करके दुर्द्धर तपश्चरण किया। तप के प्रभाव से संन्यास मरणकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ।

वहाँ से बाईस सागर की आयु सुख से पूर्ण करके जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकनी नगरी में कुबेरदत्त सेठ की अनन्तमती सेठानी के धनदेव नाम का पुत्र हुआ। एक दिन वह धनदेव चक्रवर्ती के साथ मुनिराज की वन्दना को गया, स्वामी का उपदेश सुनकर उसने वैराग्य को प्राप्त होकर जिनदीक्षा धारण की और तप करके संन्यास मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र हुआ।

फिर वहाँ से चयकर भरतक्षेत्र के कुरुजांगल देश की हस्तिनागपुर नगरी में श्रेयांस नाम का राजा हुआ बहुत काल राज्यसुख भोगने के पश्चात् श्री ऋषभदेव भगवान को आहार दान दिया, जिसके कारण दानियों में प्रसिद्ध प्रथम दानवीर कहलाया, जिसकी कथा आज तक प्रख्यात है और लोग उस दान के दिन (वैशाख सुदी 3) को अक्षय

तृतीया या आखातीज कहते हैं और उत्सव मनाते हैं क्योंकि सबसे प्रथम दान की प्रथा इन्हीं के द्वारा प्रचलित हुई है।

पश्चात् वे प्रसिद्ध दानी राजा श्रेयांस भगवान ऋषभदेव के मुख से धर्मोपदेश सुनकर जिन दीक्षा लेकर तप करने लगे और अपने शुक्ल ध्यान के प्रभाव से केवलज्ञान को प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार सुमति नाम की दरिद्र सेठानी ने जिनगुणसम्पत्ति व्रत सम्यग्दर्शन सहित पालन कर अनुक्रम से मोक्षपद प्राप्त किया और भव्य जीव यदि पालें तो क्यों नहीं उत्तम फल पावेंगे? अवश्य ही पावेंगे।

जिनगुण सम्पत्ति व्रत करो, सुमति वणिक वर नार।
नर सुर के सुख भोगकर, फेर हुई भव पार।।

जिनरात्रि व्रत कथा

वदूँ ऋषभ जिनेन्द्र पद, माथ नाय हित हेत।
कथा कहूँ जिनरात्रि व्रत, अजर अमर पद देत।।

जब तीसरे काल का अन्त आया, तब क्रम से कर्म भूमि प्रगट हुई और कल्पवृक्ष भी मन्द पड़ गये, ऐसे समय में भोगभूमि के भोले जीव भूख प्यास आदि प्रकार के दुःखों से पीड़ित होने लगे।

तक कर्मभूमि की रीतियाँ बतलाने वाले 14 कुलकर (मनु) उत्पन्न हुए। उन्हीं में से 14 वें मनु श्री नाभिराय हुए। नाभिराय की मरुदेवी नाम शुभलक्षणा रानी थी। इसके पूर्व पुण्योदय से तीर्थंकर पदधारी पुत्र ऋषभनाथ का जन्म हुआ। ये ऋषभनाथ प्रथम तीर्थंकर थे, इसी से इन्हें आदिनाथ भी कहते हैं।

आदिनाथ ने नन्दा सुनन्दा नाम की दो स्त्रियों से ब्याह किया और उनसे भरत बाहुबली आदि 101 पुत्र तथा ब्राह्मी और सुन्दरी दो कन्याएँ हुईं। सो ये कन्याएँ कुमार काल ही में दीक्षा लेकर तप करने लगीं।

इस प्रकार ऋषभदेव ने बहुत काल तक राज्य किया। जब आयु का केवल चौरासीवां भाग अर्थात् 1 लाख पूर्व शेष रह गया, तब इन्द्र ने प्रभु को वैराग्य निमित्त लगाया। अर्थात् एक नीलांजना नाम की अप्सरा जिसकी आयु अल्प समय (कुछ मिनिटों) ही रह गई थी, प्रभु के सन्मुख नृत्य करने को भेज दी। सो नृत्य करते-करते अप्सरा वहाँ से विलुप्त हो गई और उसी क्षण उसी पल में वैसी अप्सरा ही आकर नृत्य करने लगी।

इस बात को सिवाय प्रभु के और सभाजन कोई भी न जान सके, परन्तु प्रभु तो तीन ज्ञानसयुक्त थे, सो तुरन्त ही उन्होंने जान लिया। आप संसार को क्षणभंगुर जानकर द्वादशानुपेक्षाओं का चिंतवन करने लगे। उसी समय लोकांतिक देव आये और प्रभु के वैराग्य भावों की सराहना करके उन्हें वैराग्य में स्तुतिपूर्वक दृढ़ करके चले गये।

पश्चात् इन्द्रादि देवों व नरेन्द्रों ने उत्साहपूर्वक तप कल्याण का समारोह किया। भगवान ऋषभनाथ ने सिद्धों को नमस्कार करके स्वयं दीक्षा ली और भक्तिवश उनके साथ 1000 राजाओं ने भी देखादेखी दीक्षा ले ली, सो दुर्द्धर तप करने को असमर्थ होकर नाना प्रकार के भेष धारण कर 363 पाखण्ड मत चला दिए।

इन दीक्षा लेने वालों में भरतजी का पुत्र मारीच भी था। जब ऋषभनाथ महामुनिराज को केवलज्ञान हुआ और भरतजी उस समय वन्दना को गये और वन्दना करके मनुष्यों के कोठे (सभा) में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगे। धर्मोपदेश सुनने के अनन्तर भरतजी ने पूछा-हे ऋषिनाथ ! हमारे वंश में और भी कोई आपके जैसा धर्मोपदेश प्रवर्तक अथवा चक्रवर्ती होगा? तब प्रभु ने कहा-

मारीच का जीव नारायण होकर फिर तीर्थंकर भी होगा मारीच समवशरण में ही बैठा था, सो यह बात सुनकर हर्षोन्मत्त हो दीक्षा त्याग करके वह अनेक प्रकार के पाप कर्मों में प्रवृत्त हो गया, और पंचाग्नि तपकर अन्त समय प्राण छोड़कर पाँचवे स्वर्ग में देव हुआ।

वहाँ से मिथ्यात्व अवस्था में प्राण छोड़कर अनेक त्रस स्थावर योनियों में जन्म मरण करने के अनन्तर राजगृही नगर के राजा विश्वभूति की रानी जयंति के विश्वनन्दनी नाम का पुत्र हुआ।

एक समय विश्वभूति राजा कोई निमित्त पाकर वैराग्य को प्राप्त हो गये और अपने पुत्र को बालक जानकर अपने लघु भ्राता विशाखभूति को राज्य और अपने पुत्र विश्वनंदि को युवराज पद देकर आप दीक्षा लेकर तप करने लगे।

युवराज विश्वनंदी ने अपने मनोरंजनार्थ एक बाग तैयार कराया, सो उस बाग में नित्य प्रति अपना चितरंजन किया करता था।

वर्तमान राजा विशाखभूति ने बाग देखकर अत्यंत आश्चर्य किया। और इससे उनको विश्वनन्दि पर द्वेषबुद्धि उत्पन्न हो गई। इसलिये उसने विश्वनंदिको किसी प्रकार वहाँ से निकाल देने का दृढ निश्चय कर लिया और उसने युवराज को आज्ञा दी, कि तुम अमुक देश पर्यटन करने के लिये जाओ। युवराज विश्वनंदि राजाज्ञा से देश परदेश को गया और उसके क्रीड़ा करने का जो बाग था सो राजा ने स्वपुत्र को दे दिया।

बहुत काल बाद जब युवराज देश भ्रमण कर लौटा तो अपने क्रीड़ा करने का बाग अपने काका के पुत्र के हाथों में गया जानकर कुपित हो उसे मारने के लिये चला। सो वह विशाखभूति का पुत्र भय के मारे वृक्ष पर चढ़ गया।

विश्वनंदी ने उस वृक्ष को ही उखाड़ दिया। यह देखकर वह राजपुत्र युवराज के चरणों में मस्तक झुकाकर क्षमा माँगने लगा। युवराज ने अपने भाई को क्षमा करके उठाया और आप संसार को असार जानकर काका सहित दीक्षा ले ली। काका विशाखभूति बारह प्रकार के दूर्द्धर तप करके दशवें स्वर्ग में देव हुए।

युवराज ने विश्वनंदि अनेक प्रकार के दुर्द्धर तप करते हुए मासोपवास के अन्तर भिक्षा के निमित्त नगर में पधारे सो किसी पशु ने उन्हें अपने सीगों से प्रहार कर भूमि पर गिरा दिया।

इस समय राजा विशाखनंदि अपने महलों में बैठा यह सब दृश्य देख रहा था सो अविचारी, मुनि का उपहास करके कहने लगा कि सब बल अब कहाँ गया? इत्यादि

मुनिराज विशाखनंदी राजा के वचन सुनकर और अन्तराय हो जाने से वन में चले गये और उन्होंने निदान करके आयु अन्त में प्राण छोड़कर दशवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया।

कुछ काल के बाद विशाखनंदि भी दीक्षा ले, तपकर दशवें स्वर्ग में देव हुआ। सो ये दोनों देव देवोचित सुख भोगने लगे और अन्त समय वहाँ से चयकर विशाखपंदिका जीव, सौरम्यदेश पोदनपुर नगरी के प्रजापति राजा की मृगावती रानी के गर्भ से विश्वनंदिका जीव दसवें स्वर्ग के चयकर त्रिपृष्ठ नाम का नारायण पदधारी पुत्र हुआ।

रथनूपुर के राजा ज्वलनजटी की प्रभावती नाम की कन्या के साथ नारायण का ब्याह हुआ। सो विशाखनंदि का जीव जो विजयार्द्धगिरि का राजा अश्वग्रीव प्रतिनारायण हुआ था उक्त ब्याह का समाचार सुनकर बहुत कुपित हुआ। और बोला कि क्या ज्वलनजटी की कन्या त्रिपृष्ठ जैसा रंक ब्याहकर सकता है? चलो, इस दुष्ट को इसी की इस धृष्टता का फल चखावें।

यह विचारकर तुरन्त ही ससैन्य त्रिपृष्ठ राजा (जो कि होनहार नारायण थे) पर जा चढा और घोर संग्राम आरम्भ कर दिया जिससे पृथ्वी पर हाहाकार मच गया परन्तु अन्याय का फल भी अच्छा नहीं हुआ, न होगा।

अन्त में त्रिपृष्ठ नारायण की ही विजय हुई और अश्वग्रीव अपने किये का फल पाकर दुःख भोगने मरकर नर्क में चला गया। क्या कोई किसी की मांग या विवाहित स्त्री को ले सकता है या लेकर सुखी हो सकता है?

देखो पर स्त्री की इच्छा मात्र से अश्वग्रीव प्रतिहर त्रिपृष्ठ द्वारा मारा गया और त्रिपृष्ठ को नारायण पद का उदय हुआ संपूर्ण तीन

खण्ड, बिना ही प्रयास त्रिपृष्ठ के हाथ आ गये। यर्थात् है, पुण्य से क्या नहीं हो सकता है?

इस प्रकार बहुत काल तक त्रिपृष्ट नारायण ने संसार के विविध प्रकार के सुख भोगे और अन्त समय रौद्रध्यान से मरणकर सातवें नर्क गया। वहाँ 33 सागर तक घोर दु:ख भोग कर निकला, सो सिंह हुआ। वहाँ से अनेक जीवों को मार कर खाया, जिससे घोर हिंसा के कारण मरकर पुन: प्रथम नरक में गया।

वहाँ से निकल कर पुन: सिंह हुआ। सो चारण मुनि अमितकीर्ति ने उसे धर्मोपदेश देकर सम्बोधन किया । उस समय मुनि की शांत मुद्रा और सरल उपदेश का उस सिंह पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने हिंसा त्याग दी और अनशन व्रत धारण करके फाल्गुन वदी चतुर्दशी को प्राण त्यागकर प्रथम स्वर्ग में हरिध्वज नाम का देव हुआ।

वह देव पुण्य के प्रभाव से अनेक प्रकार के सुख भोगता और निरन्तर धर्म सेवन करता हुआ वहाँ से चयकर धातकी खण्ड द्वीप के सुमेरुगिरी के पूर्वदिशा में सीता नदी की उत्तर दिशा में जो कक्षावती देश है उस देश की हेमप्रभ नगरी में कनकप्रभ नाम राजा की कनकमाला पट्टरानी के गर्भ से हेमध्वज नाम का पुत्र हुआ। यह हेमध्वज राजा एक समय अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना स्तुतिकर ध र्म श्रवण करने के अनन्तर अपने भवांतर पूछने लगा।

तब श्री गुरु ने कहा तू इससे तीसरे भव में सिंह था सो मुनि के उपदेश से हिंसा त्याग कर जिनरात्रि व्रत धारण किया और अनशन व्रत के प्रभाव से प्रथम स्वर्ग में देव हुआ। अब वहाँ से चयकर तूँ हेमध्वज नाम का राजा हुआ। यह सुनकर राजा ने व्रत की विधि पूछी।

तब श्री गुरु ने बताया कि फाल्गुन वदी 14 को उपवास करें, श्री जिनालय में जावें और अभिषेकपूर्वक अष्टद्रव्यों से भगवान की त्रिकाल पूजन, सामायिक और स्वाध्याय करें। रात्रि को भी धर्मध्यानपूर्वक भजन व आराधना करें।

दूसरे दिन अतिथि को भोजन कराकर आप भोजन करें सुपात्रों को चार प्रकार का दान देवें। इस प्रकार 14 वर्ष यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करें।

अतीत, अनागत और वर्तमान चौबीसी का विधान (पाठ) रचावें, चौदह ग्रंथ (शास्त्र) मन्दिरों में पधरावें तथा अन्य उपकरण सब चौदह मन्दिरों में भेंट करें। कम से कम चौदह श्रावक और चौदह श्राविकाओं को श्रद्धा से भक्तिपूर्वक सादर मिष्ठान्नादि भोजन करावें, नवीन वस्त्र पहिरावें, कुमकुम का तिलक कर उनका भले प्रकार सम्मान करें। चौदह बजौठा देवें। चतुर्विधि दान शालाएँ खोलें इत्यादि उत्सव करें और जो शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

इस प्रकार राजा हेमध्वज ने व्रत की विधि सुनकर भक्तिभाव से व्रत धारण किया और उसे यथाविधि पालन भी किया। अन्त समय में जिन दीक्षा लेकर बारह प्रकार के तप करते हुए आयु पूर्ण कर आठवें स्वर्ग में देव हुआ।

वहाँ से चयकर अवन्ती देश की उज्जैन नगरी में वज्रसेन राजा के सुशीला रानी के हरिषेण नाम का पुत्र हुआ। सो योग्य वय होने पर पंचाणुव्रत पालन करते हुए बहुत काल तक राज्य किया। पश्चात् दीक्षा ले उग्र तपकर सन्यास पूर्वक प्राण त्याग कर दशवें स्वर्ग में देव हुआ।

वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह के कक्षावती देश की क्षेमपुरी नगरी धनंजय राजा की प्रभावती पट्टरानी से प्रियमित्र नाम का पुत्र हुआ। सो पुण्य फल से चक्रवर्ती पद को प्राप्त हो षट्खण्ड का राज्य प्राप्त कर अनेक सुख भोगे। पुनः जिनरात्रि व्रत किया और अन्त समय क्षेंमकर स्वामी के निकट दीक्षा लेकर दुर्द्धर तप किया और आयु पूर्ण कर बारहवें स्वर्ग में सूर्यप्रभ देव हुआ। वहाँ से चयकर भरत क्षेत्र के श्वेतछत्रपुर नाम के राजा नन्दिवर्द्धन की वीरमती

रानी के श्रीनंदन नाम का पुत्र हुआ, सो प्रियंकर नाम राजकन्या से व्याह कर सानन्द रहने लगा।

पुनः जिनरात्रि व्रत किया और बहुत काल राज्य कर अन्त में पुत्र को राज्य देकर आपने महाव्रत धारण किया और सोलह कारण भावना भायीं जिससे तीर्थंकर नाम कर्मप्रकृति का बन्ध कर प्राण त्याग सोलहवें पुष्पोत्तर विमान में देव हुआ। फिर वहाँ से चयकर भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड मगध देश की कुण्डलपुर नगरी के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशलादेवी के पंचकल्याणकों के धारी श्री वर्द्धमान नाम के चौबीसवें तीर्थंकर हुए। प्रभु का जन्म चैत्र सुदी त्रयोदशी को हुआ था।

आपने कुमार अवस्था में ही मार्गशीर्ष वदी दशमी को दीक्षा धारण कर ली और बारह वर्ष घोर तपश्चरण करने के अनन्तर वैशाख सुदी 10 को केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशों में बिहार कर धर्मोपदेश दे भव्य जीवों को कल्याण का उपदेश दिया।

पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या को प्रातः काल पावापुरी के वन से शेष अघाति कर्मों को भी नाश करके परम पद (मोक्ष) को प्राप्त किया।

इस प्रकार इस व्रत के प्रभाव से सिंह भी अनेक उत्तम भव लेकर अन्तिम तीर्थंकर हो लोकपूज्य सिद्धपद को प्राप्त हुआ, सो यदि अन्य भव्य जीव भाव सहित इस व्रत को पालन करे तो अवश्य ही उत्तम फल को प्राप्त हावेंगे।

"पालन कर जिनरात्रि व्रत, सिंह महा दुठ जीव।
अनुक्रम तीर्थंकर भयो, पायो मोक्ष सदीव।।"

□□□

ज्येष्ठजिनवर व्रत कथा

श्री जिनराज ऋषभदेव को नमस्कार करता हूँ, सुख सिद्धि के हेतु शारदा (सरस्वती-जिनवाणी) को नमस्कार करता हूँ और शुभमति (सद्बुद्धि) प्राप्ति के हेतु गौतम गणराजा को नमस्कार कर ज्येष्ठ जिनवर व्रत की कथा कहता हूँ।

भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड में गुजरात नाम का देश है जिसमें सुप्रसिद्ध खम्मपुरी वर्तमान खंभात नाम की नगरी है। इस नगरी का शासक चन्द्रशेखर राजा था जो कि गुणवान था उसकी रानी चन्द्रमती थी। इसी नगरी में एक सोमशर्मा ब्राह्मण था जो अपनी सोमिल्या पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहता था। सोमशर्मा ब्राह्मण के जज्ञ बालक नामक एक पुत्र था और इस जज्ञ बालक को सोमश्री नामक स्त्री थी।

अपने पिता सोमशर्मा की मृत्यु से जज्ञ बालक को अत्यंत दुःख हुआ। सोमिल्या सास ने सोमश्री को रजत कलश भरने को दिये और कहा-ये कलश ब्राह्मणों के घर भेज देना तथा पीपर (पिप्पल वृक्ष) को जल चढ़ाना। सास की आज्ञा लेकर सोमश्री पनघट पर गई वहाँ उसे एक सखी मिली तो वह खड़ी हो गई। वहाँ एक बड़ा जैन मंदिर था, सखी ने कहा कि आज नगरी के सब लोग यहाँ पूजन करते हैं।

सोमश्री ने यह सुना और उसकी बुद्धि जाग्रत हुई, और कलश में पानी भरकर जैन चैत्यालय गयी तो वहाँ गुरु के पास ज्येष्ठ जिनवर व्रत लिया, जिसकी संक्षिप्त विधि निम्न प्रकार है-

यह व्रत ज्येष्ठ महीने में किया जाता है। ज्येष्ठ कृ. प्रतिपदा को उपवास फिर 14 एकाशन, व ज्येष्ठ शु. 1 को प्रोषधोपवास के बाद फिर 14 एकाशन, इस प्रकार एक मास पर्यन्त 28 एकाशन और 2 उपवास किये जाते हैं। प्रतिदिन ऋषभनाथ भगवान की कलशाभिषेक पूर्वक पूजन गीत नृत्य और संगीत के साथ करना चाहिए, और अत्यंत उत्साह पूर्वक शास्त्रोक्त विधि के अनुसार इस व्रत का पालन करना चाहिए। ज्येष्ठ जिनवर व्रत उत्कृष्ट 24 वर्ष और मध्यम 12 वर्ष तक

व जघन्य 1 वर्ष भी किया जाता है। यह व्रत लेकर सोमश्री ने जिनेन्द्र भगवान की पूजन कर संपूर्ण मिथ्याबुद्धि का परिहार किया तो किसी दुष्ट ने सोमश्री की सास से कहा कि तुम्हारी बहु तो चैत्यालय (जिन मंदिर) गई है यह सुनते ही सोमिल्या सास अत्यंत कुपित हुई।

सोमश्री जब अपने घर आई तो सास ने कडुवे वचन कहे और कहने लगी कि तू मेरे घर तभी आ सकती है। जब कि मेरा घड़ा ले आयेगी। सास के ऐसे वचन सुनकर सोमश्री माथा धुनने लगी और वह वहाँ गई जहाँ कि कुम्हार रहता था।

कुम्हार से कहा-भाई! मेरी बात सुनो, तुम यह सोने का कंगन (कड़ा) ले लो और 30 दिन तक एक मिट्टी का घड़ा प्रतिदिन देते रहो। कुम्हार ने वह कंगन नहीं लिया और सोमश्री को घड़ा दिया वह कहने लगा- हे पुत्री! तुझे धन्य है, तुझे धन्य है, तू व्रत (ज्येष्ठ जिनवर) पालन कर और मुझसे प्रतिदिन घड़ा लेती रहना। सोमश्री ने ज्येष्ठ मास तक यह व्रत किया तथा कुम्हार से घड़ा लेती रही और पानी भरकर घड़े सास को देती रही।

व्रत की अनुमोदनापूर्वक कुम्हार की मृत्यु हुई और वह श्रीधर नाम का राजा हुआ और विधि सहित व्रत का पालन कर सोमश्री इसी श्रीधर राजा की पुत्री हुई जिसका नाम कुम्भश्री रखा गया जो कि हमेशा ही अपने हृदय में जिनेन्द्र भगवान का मंदिर बनाये रहती थी।

इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया। एक दिन वहाँ मुनिराज का शुभागमन हुआ, तो नगर के सभी लोग आनंदित हुवे और राजा अपने परिजन सहित मुनि की वंदनार्थ गया।

मुनिवर ने दो प्रकार के धर्म (मुनि और श्रावक) का उपदेश दिया जिससे सुनकर राजा को महान् हर्ष हुआ। उस समय सोमिल्य (पूर्वभव की सोमश्री की सास) भी वहाँ थी जो कि अत्यंत दु:खी और दरिद्रावस्था में थी। राजा ने पूछा-हे मुनिवर! इस सोमिल्या ने ऐसा कौन सा पाप किया है जो इस प्रकार दु:खी है?

मुनिराज ने अवधिज्ञान से बताया कि यह सोमश्री की सास है, ज्येष्ठ जिनवर व्रत की निन्दा करने से उसके फल को यह भोग रही है। इसके मस्तिष्क में जो कुग नामक रोग है वह पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का फल है हे राजन! सोमश्री मरकर कुम्भश्री नाम से तेरी पुत्री हुयी जो कि सर्वगुणसंपन्न है। कुम्भश्री ने हाथ जोड़कर कहा-

हे मुनिनाथ! मुझ पर कृपा करो। मेरी सास अत्यंत दु:खित और विकृत शरीर है। आप ऐसा उपदेश दें जिससे इनके सर्व दु:ख दूर हो जायें। ऋषिराज ने कहा-तू इसका स्पर्श कर और गंधोदक छिड़क तथा यह जिनेन्द्र भगवान के चरण-कमलों को सेवन करे जिससे इसकी सब दरिद्रता और दु:ख शीघ्र ही मिट जावेंगे।

तब कुम्भश्री ने उस पर उपकार किया तो उस दुर्गन्धा सोमिल्या की विकृति (विवर्ण एवं कुरुपता) नष्ट हो गई, फिर सोमिल्या आर्जिका हुई व तप करके प्रथम स्वर्ग में देव हुई।

कुम्भश्री ने पुन: दूसरी बार इस ज्येष्ठ जिनवर व्रत का पालन किया और दूसरे स्वर्ग में देव हुई वह देव क्रमश: मुक्ति प्राप्त करेगा। भव्य जीवों को यह व्रत विधि सहित पालन करना चाहिए।

णमोकार पैंतिसी व्रत

यह व्रत 1ऋ वर्ष अर्थात् एक वर्ष और छ: मास में समाप्त होता है। और इस डेढ़ वर्ष अवधि के भीतर सिर्फ पैंतीस दिन ही व्रत के होते हैं। आषाढ सुदी 7 से यह व्रत शुरू होता है जिसकी विधि इस प्रकार है-

1-प्रथम आषाढ सुदी 7 का उपवास करें। फिर श्रावण की सप्तमी 2 भादों की सप्तमी 2 आश्विन की सप्तमी 2 इस प्रकार सात उपवास करें। पश्चात् कार्तिक कृष्ण पंचमी को पौष कृष्ण पंचमी अर्थात् पांच पंचमियों के पांच उपवास करें। फिर पौष कृष्ण चतुर्दशी से चैत्र कृष्ण चतुर्दशी तक सात चतुर्दशीयों के सात उपवास करें। फिर चैत्र शुक्ल चतुर्दशी से आषाढ कृष्ण चतुर्दशी तक सात

चतुर्दशीयों के सात उपवास करें। फिर श्रावण कृष्ण नवमी से अगहन कृष्ण नवमी तक नवमियों के नव उपवास करें। इस प्रकार 35 उपवास द्वारा यह व्रत पूरा करें। प्रतिदिन अभिषेक पूर्वक नवकार मन्त्र पूजन करें। पश्चात् उद्यापन करें।

इस णमोकार मन्त्र पैंतीसी व्रत के प्रभाव से तो गोपाल नामक ग्वाला चम्पानगरी में ऋषभदत्त सेठ के यहाँ सुदर्शन नाम का पुत्र हुआ था और यह निमित्त पाकर वैराग्य धारण कर उसने कर्मों का नाशकर मोक्ष प्राप्त किया।

दशलक्षण व्रत कथा

उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप जान।
त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य, मिल ये दशलक्षण धर्म बखान।।
ये स्वाभात्रिक आतम के गुण, जे नर धरैं सुधी गुणवान।
तिन पद वन्द्य कथा दशलक्षण, व्रत की कहूँ सुनो मन आन।।1।।

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में विशाल नाम का एक नगर है। वहाँ का प्रियंकर नाम का राजा अत्यंत नीतिनिपुण और प्रजावत्सल था। रानी का नाम प्रियंकरा था, और इसके गर्भ से उत्पन्न हुई कन्या का नाम मृगांकलेखा था।

इसी राजा के मन्त्री का नाम मतिशेखर था। इस मन्त्री के उसकी शशिप्रभा स्त्री के गर्भ से कमलसेना नाम की कन्या थी।

इसी नगर के गुणशेखर नामक एक सेठ के यहाँ उसकी शीलप्रभा नाम की सेठानी से एक कन्या मदनवेगा हुयी थी। और लक्षभट नामक ब्राह्मण के घर चन्द्रभागा भार्या से रोहिणी नाम की कन्या हुई थी।

ये चारों (मृगांकलेखा, कमलसेना, मदनवेगा और रोहिणी) कन्याएँ अत्यंत रूपवान, गुणवान तथा बुद्धिमान थीं। वे सदैव धर्माचरण में सावधान रहतीं थीं। एक समय वसंत ऋतु में ये चारों कन्याएँ

अपने-अपने माता पिता की आज्ञा लेकर वनक्रीड़ा के लिए निकलीं, सो भ्रमण करतीं करतीं कुछ दूर निकल गयीं। ये वन की स्वाभाविक शोभा को देखकर आल्हादित हो रहीं थीं कि उसी समय उनकी दृष्टि उस वन में विराजमान श्री महामुनिराज पर पड़ी और वे विनयपूर्वक उनको नमस्कार करके वहाँ बैठ कर धर्मोपदेश सुनने लगीं। पश्चात् मुनि तथा श्रावकों का द्विविध प्रकार उपदेश सुनकर वे चारों कन्याएँ हाथ जोड़कर पूछने लगीं-हे नाथ। यह तो हमने सुना, अब दया करके हमको ऐसा मार्ग बताइये कि जिससे इस पराधीन स्त्री पर्याय तथा जन्म मरणादि के दुःखों से छुटकारा मिले। तब श्री गुरु बोले-बालिकाओ ! सुनो-

यह जीव अनादिकाल से मोहभाव को प्राप्त हुआ विपरीत आचरण करके ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों को बांधता है और फिर पराधीन हुआ संसार में नाना प्रकार के दुःख भोगता है। सुख यथार्थ में कहीं बाहर से नहीं आता है न कोई भिन्न पदार्थ ही है, किन्तु वह (सुख) अपने निकट ही आत्मा में, अपने ही आत्मा का स्वभाव है, सो जब तीव्र उदय होता है, उस समय यह जीव अपने उत्तमक्षमादि गुणों को (जो यथार्थ में सुख-शांति स्वरूप ही है) भूलकर इनसे विपरीत क्रोधादि भावों को प्राप्त होता है और इस प्रकार स्वपर की हिंसा करता है। कदाचित यह अपने स्वरूप का विचार करके अपने चित्त को उत्तमक्षमादि गुणों से रंजित करे, तो निःसंदेह इस भव और परभव में सुख भोगकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है। स्त्री पर्याय से छूटना तो कठिन ही क्या है? इसलिए पुत्रियो ! तुम मन, वचन, काय से इस उत्तम दशलक्षण रूप धर्म को धारण करके यथाशक्ति व्रत पालो, तो निःसंदेह मनवांछित (उत्तम) फल पाओगे।

भगवान ने उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः' अर्थात् उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य, इस प्रकार ये धर्म के दशलक्षण बताये

हैं। ये वास्तव में आत्मा के ही निजभाव हैं जो क्रोधादि कषायों से ढँक रहे हैं।

उत्तम क्षमा, क्रोध के उपशम या क्षय होने से प्रगट होती है। इसी प्रकार उत्तम मार्दव, मान के उपशम, क्षयोपशम व क्षय से होता है। उत्तम आर्जव, माया के नाश होने से होता है। सत्य, मिथ्यात्व (मोह) के नाश से होता हैं। शौच, लोभ के नाश से होता है। संयम, विषयानुराग कम वा नाश होने से होता है। तप, इच्छाओं को रोकने (मन वश करने) से होता है। त्याग, ममत्व (राग) भाव कम वा नाश करने से होता है। आकिंचन्य, निस्पृहता से उत्पन्न होता है और ब्रह्मचर्य काम विकार तथा उनके कारणों को छोड़ने से उत्पन्न होता है। इस प्रकार ये दशों धर्म अपने प्रति घातक दोषों के क्षय होने से प्रगट हो जाते हैं।

(1) क्षमावान् प्राणी कदापि किसी जीव से बैर विरोध नहीं करता है और न किसी को बुरा भला कहता है। किन्तु दूसरों के द्वारा अपने ऊपर लगाये हुये दोषों को सुनकर अथवा आये हुये उपद्रवों पर भी विचलित चित्त नहीं होता है, और उन दुःख देने वाले जीवों पर उल्टा करुणाभाव करके क्षमा कर देता है, तथा अपने द्वारा किये हुए अपराधों की क्षमा माँग लेता है। इस प्रकार यह क्षमावान् पुरुष सदा निर्बैर हुआ, अपना जीवन सुख शांतिमय बनाता है।

(2) इसी प्रकार मार्दव धर्मधारी नर के क्षमा तो होती ही है किन्तु जाति, कुल, ऐश्वर्य, विद्या, तप और रूपादि समस्त प्रकार के मदों के नाश होने से विनयभाव प्रकट होता है, अर्थात् वह प्राणी अपने से बड़ों में भक्ति व विनयभाव रखता है और छोटा में करुणा व नम्रता रखता है, सबसे यथायोग्य मिष्टवचन बोलता है और कभी भी किसी से कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं करता है। इसी से यह मिष्टभाषी विनयी पुरुष सर्वप्रिय होता है और किसी से द्वेष न होने से सानन्द जीवन यात्रा करता है।

(3) आर्जव धर्मधारी पुरुष क्षमा और मार्दव धर्मपूर्वक ही आर्जवधर्म (सरलता) को धारण करता है। इसके जो कुछ बात मन में होती है, सो ही वचन से कहता है एवं कही हुई बात को पूरी करता है। इस प्रकार यह सरल परिणामी पुरुष निष्कपट होने के कारण निश्चिंत तथा सुखी होता है।

(4) सत्यवान पुरुष सदैव जो बात जैसी है, उसे वैसी ही जानता समझता है, वैसी ही कहता है, अन्यथा नहीं कहता, कहे हुए वचनों को नहीं बदलता और न कभी किसी को हानि व दुःख पहुंचाने वाले वचन बोलता है। वह तो सदैव अपने वचनों पर दृढ़ रहता है। इसके उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव ये तीनों धर्म अवश्य ही होते हैं। वह पुरुष अन्यथा प्रलापी न होने से विश्वास पात्र होता है और संसार में सम्मान व सुख को प्राप्त होता है।

(5) शौचवान नर उपर्युक्त चारों धर्मों को पालता हुआ अपनी आत्मा को लोभ से बचाता है और जो पदार्थ न्यायपूर्वक उद्योग करने से उसके क्षयोपशम के अनुसार उसे प्राप्त होते हैं वह उसमें सन्तोष करता है और कभी स्वप्न में भी परधन हरण करने के भाव इनके नहीं होते है। यदि अशुभ कर्म के उदय से इसे कभी किसी प्रकार का घाटा हो जाय अथवा किसी प्रकार से द्रव्य चला जाये, तो भी यह दुःखी नहीं होता और अपने कर्मों का विपाक समझकर धैर्य धारण करता है, परन्तु अपने घाटे की पूर्ति के लिए कभी किसी दूसरे को हानि पहुँचाने की चेष्टा नहीं करता है। इसको तृष्णा न होने के कारण सदा आनंद में रहता है और इसीलिए कभी किसी से ठगाया भी नहीं जाता है।

(6) संयमी पुरुष भी उक्त पाँचों व्रतों को पालता हुआ अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकता है। ऐसी अवस्था में इसे कोई पदार्थ इष्ट व अनिष्ट प्रतीत नहीं होते हैं। क्योंकि विषयानुरागता के ही कारण अपने ग्रहण योग्य पदार्थ इष्ट और आरोचक व ग्रहण न

करने योग्य अनिष्ट माने जाते हैं, सो इष्टानिष्ट कल्पना न रहने के कारण उनमें हेयोपादेय कल्पना भी नहीं रहती है, तब समभाव होता है। इसी से यह समरसी आनंद को प्राप्त होता है।

(7) तपस्वी पुरुष इन्द्रियों को वश करता हुआ भी मन को पूर्ण रीति से वश करता है और उसे यत्र तत्र दौड़ने से रोकता है। किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न नहीं होने देता है। जब इच्छा ही नहीं रहती तो आकुलता किस बात की वह अपने ऊपर आने वाले सब प्रकार के उपसर्गों को धीरता पूर्वक सहन करने में उद्यमी व समर्थ होता है। वास्तव में ऐसा कोई भी सुरनर वा पशु संसार में नहीं जन्मा है, जो इस परम तपस्वी को उसके ध्यान से किंचित्मात्र भी डिगा सके। इसलिए ही इस महापुरुष के एकाग्र चिंतानिरोध रूप धर्म व शुक्ल ध्यान होता है जिससे यह अनादि से लगे हुये कठिन कर्मों का अल्प समय में नाश करके सच्चे सुखों का अनुभव करता है।

(8) त्यागी पुरुष के उक्त सातों व्रत तो होते ही हैं किन्तु उस पुरुष की आत्मा बहुत उदार हो जाती है। यह अपने आत्मा से रागद्वेषादि भावों को दूर करने तथा स्वपर उपकार के निमित्त आहारादि चारों दान देता है, और दान देकर अपने आपको धन्य व स्वसम्पत्ति को सफल हुई समझता है। यह कदापि स्वप्न में भी अपनी ख्याति व यश नहीं चाहता और न दान देकर उसे स्मरण रखता है अथवा न कभी किसी पर प्रगट ही करता है। वास्तव में दान देकर भूल जाना ही दानी का स्वभाव होता है। इससे यह पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है और मृत्यु का समय उपस्थित होने पर भी निराकुल रहता है। इसका चित्त धनादि में फंसकर आर्त रौद्ररूप कभी नहीं होता और उसकी आत्मा सद्गति को प्राप्त होती है।

(9) आकिंचन्य-बाह्य आभ्यंतर समस्त प्रकार के परिग्रहों से ममत्व भावों को छोड़ देने वाला पुरुष सदैव निर्भय रहता है, उसे न कुछ सम्हालना और न रक्षा करनी पड़ती है। यहाँ तक कि वह अपने

शरीर तक से निस्पृह रहता है, तब ऐसे महापुरुष को कौन पदार्थ आकुलित कर सकता है, क्योंकि वह अपने आत्मा के सिवाय समस्त परभावों वा विभावों को हेय अर्थात् त्याज्य समझता है। इसी से कुछ भी ममत्व शेष नहीं रह जाता और समय समय असंख्यात व अनन्तगुणी कर्मों की निर्जरा होती रहती है, इसी से यह सुखी रहता है।

(10) ब्रह्मचर्यधारी महाबलवान योद्धा सदैव उक्त नव व्रतों को धारण करता हुआ, निरन्तर अपने आत्मा में ही रमण करता है वह बाह्य स्त्री आदि से विरक्त रहता है उसकी दृष्टि में सब जीव संसार में एक समान प्रतीत होते हैं और स्त्री पुरुष व नपुसंकादि का भेद कर्म की उपाधि जानता है। यह सोचता है कि यह देह हाड़, माँस, मल, मूत्र, रुधिर, पीव आदि रागी जीवों को सुहावना सा लगता है। यदि वह चाम की चादर हटा दी जाय अथवा वृद्धावस्था आ जाय तो फिर इसकी ओर देखने को भी जी न चाहे इत्यादि, ऐसे घृणित शरीर में क्या ? क्रीड़ा करना क्या है ? मानों विष्टा (मल) के कीड़ा व्रत उसमें अपने आपको फंसाकर चतुर्गति के दु:खों में डालता है। इस प्रकार यह सुभट काम के दुर्जय किले को तोड़कर अपनी अनंत सुखमई आत्मा में ही बिहार करता है। ऐसे महापुरुषों का आदर सब जगह होता है और तब कोई भी कार्य संसार में ऐसा नहीं रह जाता है कि जिसे वह अखण्ड ब्रह्मचारी न कर सके। तात्पर्य वह सब कुछ करने को समर्थ होता है।

इस प्रकार इन दशधर्मों का संक्षिप्त स्वरूप कहा सो तुमको निरन्तर इन धर्मों को अपनी शक्ति अनुसार धारण करना चाहिए। अब इस दशलक्षण व्रत की विधि कहते हैं-

भादों, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में पंचमी से चतुर्दशी तक 10 दिन पर्यंत व्रत किया जाता है। दशों दिन त्रिकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, वन्दना, पूजन, अभिषेक, स्तवन, स्वाध्याय तथा धर्मचर्चा आदि कर और क्रम से पंचमी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमल समुद्गताय

उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः इस मन्त्र का 108 बार एक एक समय इस प्रकार दिन में 324 बार तीन काल सामायिक के समय जाप्य करें और इस उत्तम क्षमा गुण की प्राप्ति के लिए भावना भावें तथा उसके स्वरूप का बारंबार चिन्तवन करें। इसी प्रकार छठमी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः का जाप कर भावना भावें। फिर सप्तमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय नमः, अष्टमी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसत्यधर्माङ्गाय नमः, नवमी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमशौचधर्माङ्गाय नमः, दशमी ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्ताम संयमधर्माङ्गाय नमः, एकादशी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम तप धर्माङ्गाय नमः, द्वादशी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम त्यागधर्माङ्गाय नमः, त्रयोदशी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम आकिंचन्यधर्माङ्गाय नमः, चतुर्दशी को ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम ब्रह्मचर्य-धर्माङ्गाय नमः इत्यादि मंत्रों का जाप करके भावना भावें।

समस्त दिन स्वाध्याय पूजादि धर्म कार्यों में बितावें रात्रि को जागरण भजन करें, सब प्रकार के रागद्वेष व क्रोधादि कषाय तथा इन्द्रिय विषयों को बढ़ाने वाली विकथाओं का तथा व्यापारादि समस्त प्रकार के आरंभों का सर्वथा त्याग करें।

दसों दिन यथाशक्ति प्रोषध (उपवास), बेला, तेला आदि करें ऐसी शक्ति न हो तो एकाशन, ऊनोदर तथा रस त्याग करके करें, परन्तु कामोत्तेजक, सचिक्कण, मिष्टगरिष्ठ (भारी) और स्वादिष्ट भोजनों का त्याग करें, तथा अपना शरीर स्वच्छ खादी के कपड़ों से ही ढकें। बढ़िया वस्त्रालंकार न धारण करें और रेशम, ऊन तथा फैन्सी विदेशी व मिलों के बने वस्त्र तो छुयें भी नहीं, क्योंकि वे अनंत जीवों के घात से बनते हैं एवं कामादिक विकारों को बढाने वाले होते हैं।

इस प्रकार यह व्रत दश वर्ष तक पालन करने के पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करें। अर्थात् छत्र, चमर आदि अष्ट मंगल द्रव्य, जपमाला, कलश, वस्त्रादि धर्मोपकरण प्रत्येक दश-दश श्री मन्दिरजी में पधराना चाहिये, तथा पूजा, विधानादि महोत्सव करना चाहिये दुखित-भुखितों को भोजनादि दान देना चाहिये।

वाचनालय, विद्यालय, छात्रावास, औषधालय, अनाथालय, पुस्तकालय तथा दीन प्राणीरक्षक संस्थाएं आदि स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार द्रव्य खर्च करने में असमर्थ हों तो शक्ति प्रमाण प्रभावनांग को बढाने वाला उत्सव करें अथवा सर्वथा असमर्थ हों तो द्विगुणित वर्षों प्रमाण (20 वर्ष) व्रत करें। इस व्रत के फल से स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस उपदेश व व्रत की विधि सुन उन चारों कन्याओं ने मुनिराज की साक्षी पूर्वक इस व्रत को स्वीकार किया, और निज घरों को गयी। पश्चात् दश वर्ष तक उन्होंने यथाशक्ति व्रत पालकर उद्यापन किया सो उत्तमक्षमादि धर्मों का अभ्यास हो जाने से उन चारों कन्याओं का जीवन सुख और शांतिमय हो गया। वे चारों कन्याएं समाधि मरण करके महाशुक्र नामक दशवें स्वर्ग में अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महाऋद्धिक देव हुए।

वहाँ पर अनेक प्रकार के सुख भोगते और अकृत्रिम जिन चैत्यालयों की भक्ति वन्दना करते हुए अपनी आयु पूर्ण कर वहाँ से चले सो जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मालवा प्रांत के उज्जैन नगर में मूलभद्र और पद्मकुमार नाम के रूपवान व गुणवान पुत्र हुए और भले प्रकार बाल्यकाल व्यतीत करके कुमारकाल में सब प्रकार की विद्याओं में निपुण हुए। पश्चात् इन चारों का व्याह नन्दनगर के राजा इण तथा उनकी पत्नी तिलकसुन्दरी के गर्भ से उत्पन्न कलावती, ब्राह्मी, इन्दुगात्री और कंकू नाम की चार अत्यंत रूपवान तथा गुणवान कन्याओं के साथ हुआ, और ये दम्पति प्रेमपूर्वक काल क्षेप करने लगे।

एक दिन राजा मूलभद्र ने आकाश में बादलों को बिखरे देखकर संसार के विनाशीक स्वरूप का चिन्तवन किया और द्वादशानुप्रेक्षा भायीं। पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र को राज्यभार सौंपकर आप परम दिगम्बर मुनि हो गये। इन चारों पुत्रों ने यथायोग्य प्रजा का पालन व मनुष्योचित भोग भोगकर कोई एक कारण पाकर जिनेश्वरी दीक्षा ली और महान तपश्चरण करके केवलज्ञान को प्राप्त हो, अनेक देशों में बिहार करके धर्मोपदेश दिया। फिर शेष अघातिया कर्मों का भी नाश कर आयु के अंत में योग निरोध करके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार उक्त चारों कन्याओं ने विधिपूर्वक इस व्रत को धारण करके स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग तथा मनुष्य गति के सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया। इसी प्रकार जो और भव्य जीव मन, वचन, काय से इस व्रत को पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त होंगे।

मृगांकलेखादि कन्यायें दसलक्षण व्रत धार।
'दीप' लहो निर्वाण पद, वन्दूं बारम्बार।।1।।

द्वादशी व्रत कथा

नमों शारदा पद कमल, स्याद्वाद भय सार।
जो प्रसाद द्वादशी कथा, कहूँ भव्य हितकार।।

मालवा प्रदेश में पद्मावती पुर नगर था। जहाँ नरब्रह्मा राजा अपनी विजयावती रानी सहित राज्य करता था। इस राजा को एक कुबड़ी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीलावती पड़ा।

एक दिन शीलावती को रोती हुई देखकर राजा रानी को अत्यन्त दुःख हुआ व अनेक प्रकार की चिन्ता करने लगे। फिर किसी दिन भाग्योदय से उसी नगर में श्रमणोत्तम नामक मुनिराज बिहार करते हुए आये। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हो नगर के लोगों सहित वन्दना को गया और स्तुति वन्दना के अनन्तर धर्मोपदेश श्रवण किया।

पश्चात् अवसर पाकर राजा ने पूछा-प्रभु! मेरी पुत्री शीलावती को कौन पाप के उदय से यह दुःख प्राप्त हुआ है? तब श्री गुरु ने अवधिज्ञान से विचार कर कहा-ऐ राजा! सुनो, अवन्ती देश में आडलपुर नगर है, वहाँ राजपुरोहित देहुशर्मा और उसकी कालमुरी नाम की कन्या थी।

एक दिन यह कन्या सखियों सहित वनक्रीड़ा निमित्त उपवन में गई और वहाँ आम के वृक्ष के नीचे परम दिगम्बर ऋषिराज को कायोत्सर्ग ध्यान करते हुए देखा। अपने रूपादिक मद से मदोन्मत्त उस कन्या ने मुनि को बहुत निन्दा की। कुत्सित शब्द भी कहने लगी कि यह नंगा, ढोंगी और अत्यन्त कामासक्त व्यभिचारी है। यह स्त्रियों को अपना गुप्त अंग दिखलाता फिरता है यह लज्जा रहित हुआ कभी वन और कभी बस्ती में भटकता फिरता है, और लंघने करके अपने को महात्मा बताता है, इत्यादि।

निंदा करते हुए मुनिराज पर मिट्टी, धूल आदि डाली मस्तक पर थूका, तथा और भी बहुत उपसर्ग किये। सो मुनि तो उपसर्ग जीतकर शुक्लध्यान के योग से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए और वह कन्या मरकर पहिले नर्क में गई, जहाँ बहुत दुःख भोगे।

वहाँ से निकलकर गधी हुई, सूकरी हुई, फिर हथिनी हुई, फिर बिल्ली हुई, फिर नागिन हुई, फिर चांडाल के घर कन्या हुई और वहाँ से आकर अब यह तुम्हारे घर पुत्री हुई है। इस पुत्री के भवांतर की कथा सुनकर राजा ने कहा-प्रभु! इस पाप के निवारण करने के लिए कोई धर्म का अवलम्बन बताइये, तब श्री गुरु ने कहा कि यदि यह द्वादशी का व्रत करे, तो पाप का नाश होकर परम सुख को प्राप्त हो।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी 12 के दिन उपवास करें और संपूर्ण दिन धर्मध्यान में बितावें, तीनों काल सामायिक करें, जिन मंदिर में जाकर वेदी के सन्मुख पंच रंगों में तंदुल रंगकर साँथिया काढ़े, तथा मंडल बनावे उस पर सिंहासन रख चतुर्मुखी जिनबिंब पधरावें, फिर अभिषेक करें, अष्टद्रव्य से पूजन

करें। भजन और जागरण कर स्वच्छ और सुगंधी पुष्पों से जाप देवें। फिर जल से परिपूर्ण कलश लेकर उस पर नारियल तथा नवीन कपडे से ढांककर एक रकाबी में अर्घ्य सहित लेकर तीन प्रदक्षिणा देवें, धूप खेवें और कथा सुनें।

इस प्रकार श्रद्धायुक्त बारह वर्ष तक यह व्रत पालें। फिर उद्यापन करें। अर्थात् नवीन चार प्रतिमा पधरावें अथवा चार महान शास्त्र लिखाकर जिनालय में पधरावें कलश, छत्र, चमर, झारी, दर्पण आदि अष्टमंगल द्रव्य तथा अन्य आवश्यक उपकरण मंदिर में भेंट देवें, चार प्रकार के संघ को भक्तियुक्त तथा दीन दु:खियों को करुणाभाव से चारों प्रकार के दान देवे। जिसे उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार व्रत की विधि कहकर श्री गुरु ने कहा- हे राजा! तुम्हारी पुत्री शीलावती के अर्ककेतु और चन्द्रकेतु नाम के दो पुत्र होंगे। इनमें से अर्ककेतु निज बाहुबल से संग्राम में अनेक राजाओं को जीतकर प्रख्यात राजा होगा, पश्चात् संसार भोगों से विरक्त हो जिनदीक्षा लेकर परम तप करेगा।

उसके साथ उसकी माता शीलावती भी दीक्षा लेगी और आयु के अन्त में समाधिमरण कर स्त्रींलिंग छेदकर बारहवें स्वर्ग में देव होगी।

वहाँ से आकर छत्रपति राजा होगी। फिर दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगी। अर्ककेतु और चन्द्रकेतु भी मोक्ष जावेंगे। यह समाचार सुनकर राजा ने मुनि को नमस्कार किया और श्रद्धापूर्वक व्रत की विधि सुनकर घर आया।

फिर मुनिराज कहे प्रमाण व्रत पालन तथा उद्यापन विधिपूर्वक किया जिससे भवांतरों के पापों का नाश हुआ। इस प्रकार द्वादशी व्रत का माहात्मय है। जो कोई भव्य जीव श्रद्धा और भक्तियुक्त यह व्रत करेंगे और कथा सुनेंगे उनको अक्षयपुण्य और सुख की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार द्वादशी कथा, पूरण भई सुखकार।
व्रतफल शीलवती लियो, अक्षय सुख भण्डार।।

दुरति निवारण व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अवन्ति देश के चम्पापुर नगर में एक श्रीपाल राजा अपनी रानी लक्ष्मीमति सहित राज्य करता था। एक दिन उस नगरी के उद्यान में श्रुतसागर नाम के मुनि अपने सघ सहित आकर विराजमान हुये। उद्यान में मुनि सघ आया है, इस प्रकार के समाचार वनमाली से राजा को प्राप्त होते ही वह पुरजन परिजन सहित दर्शनार्थ वन को गया, नमस्कारादि करके धर्मश्रवण के लिए सभा में बैठ गया। धर्मश्रवण के बाद लक्ष्मीमति रानी मुनिराज से हाथ जोडकर विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगी कि हे गुरुदेव! आप मेरे लिए कोई व्रत विधान कहिए, जिससे मुझे इस भव में तथा पर भव में भी सुख मिले। तब मुनिराज उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर कहने लगे कि हे बेटी! तुम दुरति निवारण व्रत का पालन करो, इस व्रत के पालन से जीव को अतिशय पुण्य की प्राप्ति होती है तथा परम्परा से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

मुनिराज ने व्रत की विधि बताई, मुनिराज के मुख से व्रत की विधि सुनकर लक्ष्मीमति ने व्रत को स्वीकार किया। एक मनोहरी नाम की श्राविका हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि स्वामी मेरे नि सन्तान होने का क्या कारण है और मेरे घर में दरिद्रता का निवास है सो कैसे, क्या करूं? मेरा कष्ट निवारण हो? मैने पूर्व भव में कौन सा पाप किया? आप कृपा करके सब कहें।

तब मुनिराज कहने लगे कि हे मनोहरी! तुम्हारे पूर्व के तीसरे भव के द्वारिका नगरी में धनपाल की पत्नी वसुमति थी, वह वसुमति तुम्हारी सौत थी, तूँ वहाँ पर नि सन्तान थी, तेरी सौत के चार पुत्र थे, तूने डाह से उन चारों पुत्रों के ऊपर विष प्रयोग करके उन्हें मार

डाला। पुत्र वियोग से तुम्हारी सौत आर्तध्यान से मरकर व्यंतरी हो गई, वही विभगावधि से जानकर वो तुमको अब कष्ट दे रही है, इसलिए तुम भी इस दुरित निवारण व्रत को करो, जिससे तुम्हारा सर्व सकट टल जावेगा। तब मनोहरी ने अपने किये हुऐ पूर्व भव के पाप को नष्ट करने के लिए दुरित निवारण व्रत को स्वीकार किया और सब लोग नगर को वापस लौट आये।

रानी और श्राविका मनोहरी ने यथाविधि व्रत का पालन किया, अन्त में उद्यापन किया जिसके प्रभाव से रानी मरकर स्वर्ग में देव हुई, और मनोहरी को सम्पत्ति सुख दोनों ही प्राप्त हुए। अन्त में वह भी समाधिमरण के बल से स्वर्ग में देव हुई। आगे नियम से दोनों ही देव मनुष्य भव धारणकर मोक्ष को जायेंगे। इस व्रत का यही प्रभाव है। भव्यजीवो! तुम भी इस व्रत को पालो।

नित्यानंद व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अवति देश में हस्तिनापुर नगर है, उस नगर में जयन्धर राजा जयावति रानी के साथ में आनन्द से राज्य करता था। एक बार नगरी में उद्यान के 500 मुनियों का सघ आया। वनपाल के द्वारा राजा को खबर मिलने से वह आनन्द से मुनि दर्शन को परिजन पुरजन सहित चला। वहाँ जाकर दर्शन किये, दर्शनों के बाद धर्मश्रवण के लिए सभा में बैठ गया, धर्मोपदेश के अनन्तर रानी कहने लगी कि हे स्वामिन! मुझे अनन्त सुख का कारण हो ऐसा कोई व्रत बताइए। तब मुनिराज ने रानी जयावति को नित्यानंद व्रत का स्वरूप और विधि कही। रानी ने उस व्रत को सहर्ष स्वीकार किया। मुनिराज कहने लगे कि इस व्रत को किसने पालन किया और उसको क्या फल मिला? उसकी कथा कहता हूँ रानी तुम सुनो।

इस भरत क्षेत्र के अन्तर्गत मगध देश में एक राजगृही नगरी है, उस नगरी में एक सिंहरथ राजा अपनी लक्ष्मीमति रानी के साथ में सुख से राज्य करता था। राजगृही नगर में एक धनपाल सेठ अपनी नंदावति सेठानी के साथ रहता था। उस सेठ के कालक्रम से सुरदत्त, विमल व विशाल ऐसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए। एक दिन सेठ को वैराग्य उत्पन्न होने के कारण वह जंगल में जाकर मुनिराज से दीक्षा ग्रहण करके तपश्चरण करने लगा। उसका जो ज्येष्ठ पुत्र सुरदत्त था, वो सप्तव्यसनी होकर बहुत पाप कमाने लगा। मरकर नरक में उत्पन्न हुआ, वहाँ से निकलकर विजयार्द्ध भाग में मेघकूट नगर में रुद्रदत्त नामक वैश्य के यहाँ दुर्मुख नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। दुर्मुख के उत्पन्न होते ही उमके माँ बाप मर गये, बड़े कष्ट से बड़ा हुआ, जैसा नाम वैसा उसका रूप भी था। गाँव के लोग उस दुर्मुख से घृणा करते थे इसलिए वह बहुत दु.खी रहा करता था।

एक दिन अवधिज्ञानधारी विमलवाहन नामक महामुनि आहार के निमित्त उस नगर में आये। मुनिराज को देखकर उस दुर्मुख के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि जब ये मुनिश्वर आहार करके जगल को जायेंगे,तब मैं भी इनके पीछे जगल को जाऊँगा। मुनिराज का आहार हो जाने के बाद वे जगल को चले तो दुर्मुख भी मुनिश्वर के पीछे चला गया, महाराज एक स्फटिक शिला के ऊपर ध्यानस्थ बैठ गये, दुर्मुख भी उनके निकट जाकर बैठ गया। मुनिराज का धर्म ध्यान समाप्त हो जाने के बाद निकट बैठे हुए व्यक्ति को देखा, अवधिज्ञान से उसके भवान्तर जान लिए, मुनिराज उस दुर्मुख को कहने लगे कि हे दुखिया! तुम पहले नरक के दुःख भोगकर मनुष्य भव में आये हो और तुम्हारी आयु मात्र तीन दिन की रह गई है।

यह सुनकर वह दुर्मुख, मुनिराज को भक्ति से नमस्कार करके कहने लगा कि स्वामिन! मेरे दुःख का निवारण हो ऐसा उपाय बताइये। तब मुनिराज कहने लगे कि हे भव्य! तुम शीघ्र जिन दीक्षा धारण करो, ऐसा सुनकर उसने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और तीन दिन का सन्यास धारण कर मरा और ब्रह्मकल्प में देव होकर उत्पन्न हुआ। देव पर्याय के सागरों तक सुख भोगकर आयु समाप्त करके विजयार्धपर्वत के दक्षिण श्रेणी में रथनुपुर नगर के राजा बज्रबाहु रानी विनयावती के यहाँ अनन्तवीर्य नाम का पुत्र हुआ। कालक्रम से यौवन सम्पन्न हुआ, एक समय वह मेरु पर्वत पर अकृत्रिम चैत्यालय की वदना करने गया। उस चैत्यालय मे उसकी अभयघोष मुनिराज से भेंट हुई, मुनिराज को नमस्कार करके उसने कहा कि हे स्वामिन! आप मुझे कोई ऐसा व्रत दीजिए जो मुझे अनन्त सुख का कारण बने। तब मुनिराज कहने लगे कि हे भव्य! तुम्हें नित्यानद व्रत का पालन करना चाहिए। उस ने भक्ति से व्रत को ग्रहण किया और नमस्कार करके वापस नगर मे आया। व्रत को यथाविधि पालन कर फिर उद्यापन किया। व्रत के प्रभाव से उसको अवधिज्ञान प्रकट हुआ, थोडे दिन बाद जिनदीक्षा ग्रहण कर तपश्चर्या करने लगा और सर्वकर्मों का क्षय कर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार व्रत का कथन व व्रतविधि सुनकर सब को आनन्द हुआ। जयन्धर राजा विनयावति रानी के साथ मुनिराज से व्रत ग्रहण कर प्रजा सहित नगर में वापस आ गये। कालानुसार उन्होंने व्रत को पालन करके व्रत का उद्यापन किया, आयु के अन्त में समाधिपूर्वक मरकर स्वर्ग गये। वहॉ की आयु पूर्ण कर मनुष्य भव धारण किया, दीक्षा धारण कर मोक्ष चले गये।

नित्य सुखदाष्टमी व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्यखण्ड में चन्द्रवर्धन देश है, उसके चन्द्रपुर नामक नगर में चन्द्रशेखर राजा अपनी रानी चन्द्रलेखा सहित सुख से राज्य करता था।

एक दिन नगरी के उद्यान में 3700 मुनीसंघ सहित यशस्तिलक नाम के महामुनि आये, इस शुभवार्ता को राजा ने सुना, शीघ्र ही मुनीसंघ के दर्शन के लिए पुरजन परिजन को लेकर चला। वहाँ जाकर सघ को तीन प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार किया, धर्मोपदेश सुनने के लिए सभा में बैठ गया, कुछ समय धर्मोपदेश सुनकर चन्द्रलेखा रानी कहने लगी कि हे गुरुदेव! सघ नायक आचार्य भगवान आज मुझे बहुत आनन्द हो रहा है, मेरा ससार दुःख दूर हो उसके लिए मेरे लायक कोई व्रत प्रदान कीजिए। तब मुनिराज कहने लगे कि हे पुत्री! तुम नित्यसुखदा अष्टमी व्रन करो, जिससे शीघ्र ससार से पार हो जाओगी ऐसा कहकर मुनिराज ने यथाविधि व्रत का स्वरूप वर्णन किया। हे पुत्री सुनो इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक विशाल देश है, उस देश में नित्यवसत नाम का नगर है, उस नगर में सत्य सागर राजा अपनी पटरानी चित्तोत्सवा सहित राज्य करता था। उस नगर में नित्य रोग नाम का एक गृहस्थ रहता था, उसकी नित्यदु:खी नाम की स्त्री रहती थी, इस गृहस्थ को माणिक, वदन, विजय, मनोहर ऐसे चार पुत्र थे। ये सब दरिद्र अवस्था में समय निकाल रहे थे, एक बार भूतानंद नामक महामुनिश्वर आहार के लिये नगर में आये, तब नित्यरोग नामक गृहस्थ के यहाँ मुनिराज का आहार हुआ, मुनिराज का निरंतराय आहार होने पर मुनिराज को अपने घर के आँगन में बिठाकर नित्यदु:खी श्राविका कहने लगी कि हे मुनिराज! आप मुझे

मेरे घर की दरिद्रता नष्ट हो ऐसा कोई उपाय अवश्य बताइये। उसके नम्र वचन सुनकर मुनिराज कहने लगे कि हे पुत्री! तुम नित्य सुखदा अष्टमी व्रत का पालन करो, इस प्रकार कहकर सर्व विधि कह सुनाई, उसको सुनकर भक्ति से व्रत ग्रहण किया, मुनिराज वहाँ से वन को चले गये। उस गृहस्थ ने यथाविधि व्रत का पालन किया अन्त में व्रत का उद्यापन किया, व्रत के प्रभाव से सुखद अवस्था को प्राप्त हुए। यह व्रत कथा सुनकर चन्द्रलेखा रानी ने इस व्रत को ग्रहण किया।

एक दिन चन्द्रलेखा रानी ने सामुद्रिक से सुना कि मेरी आयु मात्र सात दिन की रह गई है, तब एक आर्यिका माताजी के पास दीक्षा ग्रहण कर अंत में समाधिमरण कर स्वर्ग को गई, फिर परपरा से मोक्ष को गई।

निरतिशय व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में काबोज नामक एक विशाल देश है उस देश में उज्जयिनी नाम की एक नगरी है।

उस नगर में एक पराक्रमी, गुणवान, धर्मनिष्ठ, मदनपाल नाम का राजा था। उसकी मदनावती रानी बहुत सुन्दर गुणवान व शीलवान थी। एक दिन नगरी के उद्यान में मुनीगुप्त नाम के एक दिव्यज्ञानी मुनिराज आये, वनपाल के द्वारा समाचार प्राप्त होने पर राजा मुनिराज के दर्शनों को सपरिवार रवाना हुआ। वहाँ जाकर मुनिराज को तीन प्रदक्षिणा देकर उपदेश सुनने के लिए निकट बैठ गये। धर्मोपदेश समाप्त होने के उपरान्त राजा की रानी मदनावती मुनिराज से कहने लगी कि हे संसार सिन्धु से पार उतारने वाले गुरुदेव! मुझे एहिकलोक सुख की प्राप्ति होकर परमार्थ सुख की प्राप्ति होवे ऐसा कोई एक व्रत दीजिए।

रानी के ऐसे वचन सुनकर मुनिराज कहने लगे कि हे बेटी! तुम को निरतिशय व्रत का पालन करना चाहिए। इस व्रत को जो कोई स्त्री पुरुष भक्ति, श्रद्धा से विधि पूर्वक पालन करता है उस भव्य को इस लोक में सुख की प्राप्ति होती है और क्रम से मोक्ष सुख की भी प्राप्ति भी होती है। रानी ने व्रत का फल सुनकर श्रद्धा से व्रत को ग्रहण किया, वापस नगर में आकर व्रत को यथाविधि पालन करने लगी। उस समय उस नगरी में निर्विशुद्धि नामक एक वैश्य रहता था। उस वैश्य की शीलवती नाम की एक सुन्दर भावुक स्त्री थी, उस वैश्य के चौंतीस पुत्र थे। इतना सब होते हुए भी सेठ को दारिद्र ने घेर रखा था, उस दरिद्रता के कारण उन लोगों को पेट भर खाना नहीं मिलता था, और शरीर पर वस्त्र भी पहनने को नहीं मिल पाता था।

एक दिन वह स्त्री जिन मन्दिर में दर्शन को गई, भगवान के दर्शन को करने के बाद जब रानी को व्रताचरण करते हुए देखा तो उसके मन में भी व्रताचरण करने की भावना उत्पन्न हुई। रानी के साथ उसने भी व्रताचरण करना प्रारम्भ किया, अन्त में दोनों ने व्रत का उद्यापन किया। आगे व्रताचरण के फलस्वरूप शीलवती के घर में बहुत ही धन-सपदा की समृद्धि हो गई। उसने अपने सब पुत्रो की शादी कर दी। वो सब लोग आनन्द से अपना समय निकालने लगे, उन लोगों को जिन धर्म के ऊपर बहुत ही श्रद्धा उत्पन्न हुई, दीन अनाथ दुःखी लोगों को दान करने लगे, उसी प्रकार जिनपूजा, शास्त्र स्वाध्यायादि करने लगे. बहुत ही पुण्यसचय करने लगे। अन्त में जिनदीक्षा धारण कर तपस्या करने लगे, समाधिमरण कर स्वर्गसुख की प्राप्ति कर क्रमशः मोक्षसुख की प्राप्ति की।

इसलिए हे भव्यजनो! आप लोग भी इस व्रत का विधि पूर्वक पालन करो, आपको भी अनन्त सुख की प्राप्ति होगी।

निर्दोषसप्तमी व्रत कथा।

सहित आठ अरु बीस गुण, नमूँ साधु निर्ग्रन्थ
सप्तमी व्रत निर्दोष की, कथा कहूँ गुण ग्रन्थ।।

मगध देश के पाटली पुत्र (पटना) नगर में पृथ्वीपाल राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मदनावती था। उसी नगर में अर्हदास नाम का एक सेठ रहता था। जिसकी लक्ष्मीमती नाम की स्त्री थी। दूसरा सेठ धनपति जिसकी स्त्री का नाम नन्दनी था, नन्दनी सेठानी के मुरारी नाम का एक पुत्र था जो सांप के काटने से मर गया इसलिये नन्दनी तथा उसके घर के लोग अत्यन्त करुणाजनक विलाप करते थे अर्थात् सब ही शोक में निमग्न थे।

नन्दनी तो बहुत शोकाकुल रहती थी। उसे ज्यों-ज्यों समझाया जाता था त्यों-त्यों अधिकाधिक शोक करती थी। एक दिन नन्दनी के रुदन (जिस में पुत्र के गुणगान करती हुई रोती थी) को सुनकर लक्ष्मीमती सेठानी ने समझा कि नन्दनी के घर गायन हो रहा है, तब वह सोचने लगी कि नन्दनी के घर तो कोई मंगल कार्य नहीं है अर्थात् व्याह व पुत्र जन्मादि उत्सव तो कुछ भी नहीं है तब किस कारण गायन हो रहा है? अच्छा चलकर पूंछूँ तो सही, क्या बात है?

ऐसा विचार कर लक्ष्मीमती सहज स्वभाव से हँसती हुई नन्दनी के घर गई और नन्दनी से हँसते हँसते पूछा-हे बहिन! तुम्हारे घर कोई मंगल कार्य है। ऐसा तो सुना नहीं गया, तब यह गायन किसलिए होता रहता है। कृपया बताओ।

तब नन्दनी रीस करके बोली-अरी बाई! तुझे हँसी की पड़ी है और मुझ पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है, मेरा कुल का दीपक प्यारा, आंखों का तारा पुत्र सर्प के काटने से मर गया है, इसी से मेरी नींद और भूख प्यास सब चली गई है, मुझे संसार में अन्धेरा लगता है।

दुःखियों ने दुःख रोया, सुखियों ने हँस दिया। मुझे रोना आता है और तुझे हँसना। जा जा! अपने घर। एक दिन तुझे भी अतुल दुःख आवेगा, तब जानेगी कि दूसरे का दुःख कैसा होता है?

इस पर लक्ष्मीमती अपने घर चली गई और नन्दनी उससे निःकारण बैर करके सांप मंगाया, और एक घड़े में रख कर लक्ष्मीमती के घर भिजवा दिया और कहला दिया कि इस घड़े में सुन्दर हार रखा है सो तुम पहनो।

नन्दनी का अभिप्राय था कि जब लक्ष्मीमती घड़े में हाथ डालेगी तो सांप इसे काटेगा और वह दुःखियों की हँसी करने का फल पावेगी।

जब दासी लक्ष्मीमती के घर वह विषैला सांप का घड़ा लेकर गई और यथा योग्य सुश्रषा के वचन कहकर घड़ा भेंट कर दिया, तब लक्ष्मीमती दासी को पारितोषिक देकर विदा किया और अपने घड़े को उघाड़कर उसमें से हार निकालकर पहिन लिया (लक्ष्मीमती के पुण्य के प्रभाव से सांप का हार हो गया है।) और हर्ष सहित जिनालय की वन्दना गई। मदनावती रानी ने उसे देख लिया और राजा से लक्ष्मीमती जैसा हार मंगा देने के लिये हठ करने लगी।

इस पर राजा ने अर्हदास सेठ को बुलाकर कहा-हे सेठ। जैसा हार तुम्हारी सेठानी का है वैसा ही रानी के लिये बनवा दो और जो द्रव्य लगे भण्डार से ले जाओ। तब अर्हदास श्रेष्ठि ने सेठानी से लेकर वही हार राजा को दिया, राजा के हाथ पहुंचते ही हार का पुनः सर्प हो गया।

इस प्रकार वह सांप अर्हदास के हाथ में हार और राजा के हाथ में सांप हो जाता था। यह देखकर राजा और सभाजन सभी आश्चर्ययुक्त हो हार का वृत्तांत पूछने लगे परन्तु सेठ कुछ भी कारण न बता सका।

भाग्योदय से वहाँ मुनि संघ आया सो राजा और प्रजा सभी वन्दना को गये। वन्दना कर धर्मोपदेश सुना और अन्त में राजा ने वह हार और सांप वाली आश्चर्य की बात पूछी तब मुनिराज ने कहा-हे राजा! इस सेठ ने पूर्व भव में निर्दोष साप्तमी का व्रत किया है, उसी के पुण्य फल से यह सांप का हार बन जाता है और तो बात ही क्या है, इस व्रत के फल से स्वर्ग और अनुक्रम से मोक्षपद भी प्राप्त होता है, और इस व्रत की विधि इस प्रकार है सो सुनो-

भादों सुदी 7 को आवश्यक वस्त्रादि परिग्रह रख शेष समस्त आरम्भ व परिग्रह का त्याग करके श्री जिनमंदिर में जावें और प्रभु का अभिषेक आरम्भ करें। अष्टद्रव्य से भाव सहित पूजन करें और स्वाध्याय करें।

इस प्रकार धर्मध्यान में बितावें। पश्चात् दूसरे दिन हर्षोत्सव सहित जिनदेव पूजन अर्चन करके अतिथि को भोजन कराकर और दीन दुःखियों को यथावश्यक दान देकर आप भोजन करें। इस प्रकार सात वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करें और यदि उद्यापन की शक्ति न हो, तो दूने वर्षों तक व्रत करें।

उद्यापन इस प्रकार करें-बारह प्रकार का पकवान और बारह प्रकार के फल, तथा मेवा श्रावकों को बांटे। बारह-बारह कलश, झारी, झालर, चन्दोवा आदि समस्त उपकरण जिन मन्दिर में चढावें। बारह शास्त्र लिखाकर पधरावें और चतुर्विध दान करें।

राजा ने यह सब व्रत विधान सुनकर स्वशक्ति अनुसार श्रद्धा सहित इस व्रत का पालन किया और अन्त में आयु पूर्ण कर (समाधि मरण कर) सातवें स्वर्ग में देव हुआ। जो भव्य जीव श्रद्धा सहित इस व्रत को पालेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त होंगे।

नरपति पृथ्वी पाल अरु, अरदास गुणवान।
व्रत सातम निर्दोष कर लहो स्वर्ग सुखदान।।

निःशल्याष्टमी व्रत कथा

वन्दूँ नेमि जिनेन्द्र पद, बाईसवें अवतार।
कथा निःशल्य आठम तनी, कहूँ सुखदातार।।

भरतक्षेत्र के आर्य खण्ड में सोरठ नामक देश है (वर्तमान में काठियावाड कहते हैं) इस देश में द्वारका नाम की सुन्दर नगरी है यहाँ पर श्री नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकर का जन्म हुआ था। जिस समय भगवान नेमिनाथ दीक्षा लेकर गिरनार पर्वत पर तपश्चरण करते थे और द्वारका में श्री कृष्णचन्द्र जी नवमें नारायण राज्य करते थे, ये

त्रिखण्डी नारायण थे। इनकी मुख्य पट्टरानी सत्यभामा थी सो सत्यभामा के द्वारा एक बार नारद का अपमान हुआ, इस पर नारद क्रोधवश इसे दण्ड देने के अभिप्राय से रुक्मिणी नाम की राज कन्या से नारायण का विवाह कराकर सत्यभामा के सिर पर सौत का वास करा दिया। निःसंदेह सौत का स्त्रियों को बहुत बड़ा दुःख होता है।

एक समय जब भगवान नेमिनाथ को केवलज्ञान प्रगट हो गया तो श्री कृष्ण रानियों और पुरजनों सहित वन्दना को गये और वन्दना करके धर्मोपदेश सुनकर अनन्तर रुक्मिणी नामक रानी के भवान्तर पूछे?

तब भगवान ने कहा कि मगधदेश में राजगृही नगर है वहाँ पर रूप और यौवन के मद से पूर्ण एक लक्ष्मीमती नाम की ब्राह्मणी रहती थी। एक दिन एक मुनिराज क्षीण शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहार के निमित्त इस नगर में पधारे। उन्हें देखकर ब्राह्मणी ने उनकी बहुत निन्दा की और दुर्वचन कहकर ऊपर थूक दिया।

मुनि-निन्दा के कारण से इसको तिर्यंच आयु का बन्ध हो गया और इसी जन्म में उसको कोढ़ आदि अनेक व्याधियाँ भी उत्पन्न हो गयी। पश्चात् वह आयु के अन्त में कष्ट से मरकर भैंस हुई सूकरी हुई, कुत्ती हुई, धीवरनी हुई। सो मछली मारकर आजीविका करती हुई जीवनकाल पूरा करने लगी।

एक दिन वटवृक्ष तले श्रीमुनि ध्यान लगाये तिष्ठे थे कि यह कुरूपा और दुष्ट चित्ता धीवरी जाल लिए हुए वहाँ आई और मछली पकडने लिये नदी में जाल डाला।

यह देख श्री गुरु ने उसे दुष्ट कार्य से रोका और उसके भवांतर सुनाकर कहा कि तूँ पूर्व पाप के फल से ऐसी दुःखी हुई है और अब भी जो पाप करेगी तो तेरी अत्यन्त दुर्गति होगी। इस धीवरी को मुनि द्वारा अपने भवांतर सुनकर मूर्छा आ गई। पश्चात् सचेत हो प्रार्थना करने लगी- हे नाथ! इस पाप से छूटने का कोई उपाय हो तो बताइये।

तब श्री गुरु ने दया करके सम्यग्दर्शन व श्रावकों के पाँच अणुव्रतों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण) का उपदेश दिया।

अष्टमूलगुण (पंच उदम्बर और तीन मकारों का त्याग करना) धारण कराये, इस प्रकार वह धीवरी श्रावक के व्रत ग्रहण कर आयु के अन्त में समाधिमरण कर दक्षिण देश में सुपारानगर के नन्दश्रेष्ठि के यहाँ नन्दा सेठानी के लक्ष्मीमती नाम की कन्या हुई। वह कन्या रूपवान तो थी तथापि अशुभ आचरण के कारण सभी उसकी निंदा करते थे।

एक समय उसी नगर में वन में नंद मुनि पधारे। सब लोग मुनि के वन्दना को गये। राजा आदि सभी जनों ने स्तुति वन्दना कर धर्मोपदेश सुना। पश्चात् नन्दश्रेष्ठि ने पूछा-हे प्रभो! यह मेरी कन्या उत्तम रूपवान होकर भी अशुभ लक्षणों से युक्त है जिससे सभी इसकी निन्दा करते हैं।

तब श्री गुरु ने कहा कि इसने पूर्व जन्म में मुनि की निंदा की थी जिससे भैंस, सूकरी, कूकरी, धीवरी आदि हुई। धीवरी के भव में मुनि के उपदेश से पंचाणु व्रत धारण करके सन्यास से मरी तो तेरे घर पुत्री हुई।

अभी इसके पूर्ण असाता कर्म का बिल्कुल क्षय न होने से ही ऐसी अवस्था हुई है सो यदि यह समयक्त्वपूर्वक निःशल्य अष्टमी व्रत पाले तो निःसन्देह इस पाप से छूट जावेगी।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

भादों सुदी अष्टमी को चारों प्रकार के आहारों का त्याग करके श्री जिनालय में जाकर विशेष अभिषेक पूर्वक पूजन करे। त्रिकाल सामायिक और रात्रि को जिन भजन करते हुए जागरण करे, पश्चात् नवमी को अभिषेकपूर्वक पूजन करके अतिथियों को भोजन कराकर आप पारणा करे। चार प्रकार के संघ को औषधि, शास्त्र, अभय और आहार दान देवे।

इस प्रकार यह व्रत सोलह वर्ष तक करके उद्यापन करे। सोलह-सोलह उपकरण मन्दिरों में भेंट चढ़ावें, अभिषेकपूर्वक विधान पूजन करे। कम से कम सोलह श्रावकों को मिष्ठान भोजन प्रेमयुक्त हो करावे, दुःखित भुखितों को करुणायुक्त दान देवे और चारों प्रकार के संघ में वात्सल्यभाव प्रकट करे। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार इस श्रेष्ठि कन्या ने विधि सुनकर यह व्रत धारण किया और विधियुक्त पालन भी किया, श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये तथा सम्यग्दर्शन जो कि सब व्रतों और धर्मों का मूल है, धारण किया। व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन किया और अन्त समय में शील श्री आर्यिका के उपदेश से चार प्रकार के आहारों का त्याग, तथा आर्त्त, रौद्र भावों को छोड़कर समाधिमरण किया तथा सोलहवें स्वर्ग में देवी हुई।

वहाँ पर पचपन पल्य (55) तक नाना प्रकार सुख भोगे और आयु पूर्ण कर वहाँ से चयी सो यह भीष्म राजा के यहाँ रुक्मिणी नाम की कन्या हुई है। अब अनुक्रम से स्त्रीलिंग छेदकर परमपद को प्राप्त करेगी।

इस प्रकार रानी रुक्मिणी ने अपने भवांतर सुनकर संसार देह भोग से विरक्त फल से अपने पूर्वभवों के समस्त पापों को नाशकर उत्तम पद प्राप्त किया। जो भव्य जीव श्रद्धा सहित इस व्रत को पालेंगे, वे इसी प्रकार उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त करेंगे।

निःशल्यष्टमी व्रत थकी, लक्ष्मीमती त्रिय सार।
सकल पाप को नाशकर, पायो सुख अधिकार।।

□□□

पुष्पांजलि व्रत कथा

नमों सिद्ध परमात्मा, सकल सिद्ध दातार।
पुष्पांजलि व्रत की कथा, कहूँ भव्य सुखकार।।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में सीता नदी के दक्षिण तट पर मंगलावती देश में रत्नसंचयपुर नाम का एक नगर है। वहाँ राजा बज्रसेन अपनी जयावती रानी सहित सानन्द राज्य करता था। परन्तु घर में पुत्र न होने के कारण उदास रहता था।

एक दिन वह राजा जब रानी सहित जिन मंदिर में दर्शन करने को गया, तो वहाँ उसने ज्ञानसागर मुनिराज को बैठे देखा और भक्ति सहित उनकी पूजा वन्दना करके धर्मोपदेश सुना।

पश्चात् अवसर पाकर विनय सहित राजा ने पूछा- हे प्रभो! हमारी रानी के पुत्र न होने से वे अत्यन्त दु:खित रहती हैं, सो क्या इसके कोई पुत्र न होगा? तब मुनिराज ने विचार कर कहा- राजा! चिंता न करो, इसके अत्यंत प्रभावशाली पुत्र होगा, जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा।

यह सुनकर राजा रानी हर्षित होकर घर आये और सुख से रहने लगे, पश्चात् कुछ दिनों के बाद रानी को शुभ स्वप्न हुए और एक स्वर्ग देव रानी के गर्भ में आया नव मास पूर्ण होने पर रत्नशेखर नामधारी सुन्दर पुत्र हुआ।

एक दिन रत्नशेखर अपने मित्रों के साथ जब क्रीड़ा कर रहा था तब इसे आकाशमार्ग से जाते हुए मेघवाहन नाम के विद्याधर ने देखा, देखते ही प्रेम से विव्हल होकर नीचे आया और राजपुत्र को अपना परिचय देकर उसका मित्र बन गया। ठीक है-'पुण्य से क्या नहीं होता हैं?

पश्चात् राजपुत्र ने भी उसे अपना परिचय देकर मेरुपर्वत की वन्दना करने की इच्छा प्रगट की। तब मेघवाहन बोला-हे कुमार! हमारे विमान में बैठकर चलो, परन्तु रत्नशेखर ने यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि मुझे ही विमान रचना की विधि या मंत्र बताओ।

विद्याधर ने ऐसा ही किया तब विद्याधर की सहायता से 500 विद्याएँ साधी। पश्चात् मित्रों सहित ढाईद्वीप के समस्त जिन मंदिरों की वन्दनार्थ प्रस्थान किया सो विजयार्द्ध पर्वत के सिद्धकूट चैत्यालय में पूजा स्तवन करके रंगमण्डम में बैठा था कि इतने में दक्षिण श्रेणी रथनुपुर नगर की राज्यकन्या मदनमंजूषा भी दर्शनार्थ सखियों सहित वहाँ आई और रत्नशेखर को देखकर मोहित हो गई, परन्तु लज्जावश कुछ कह न सकी और खेदचित्त होकर घर लौट गई।

राजा रानी ने उसके खेद का कारण जानकर स्वयंवर मण्डप रचा और सब राजपुत्रों को आमन्त्रण दिया, शुभ तिथि में बहुत से राजपुत्र वहाँ आये, उनमें चन्द्रशेखर भी आया।

जब कन्या वरमाला लेकर आई तो उसने रत्नशेखर के कण्ठ में यह वरमाला डाली। इस पर विद्याधर राजा बहुत बिगड़े कि यह विद्याधर की कन्या है भूमि गोचरी को नहीं व्याह सकती है, परन्तु रत्नशेखर ने उनको युद्ध के लिये तत्पर देख सबको थोड़ी देर में जीतकर यथास्थान विदा कर दिया।

इनका पराक्रम देखकर बहुत से राजा इनके आज्ञाकारी हुए और वहीं इनको, शुभोदय से चक्ररत्न की प्राप्ति भी हुई, तब छः खण्डों को वश करके वे कुमार चक्रवर्ती पद से भूषित होकर निज नगर में आये और पितादि गुरुजनों से मिलकर आनन्द से राज्य करने लगे।

एक दिन राजा रत्नशेखर मातापिता सहित सुदर्शनमेरु की वन्दना को गये थे तो बड़े भाग्योदय से दो चारण मुनियों को देखकर भक्तिपूर्वक वन्दना स्तुति कर धर्मोपदेश सुना और अवसर पाकर अपने भवांतरों का कथन पूछा तथा यह भी पूछा कि मदनमंजूषा और मेघवाहन का मुझ पर अत्यंत प्रेम था?

तब श्री मुनि ने कहा-राजा सुनो! इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र आर्यखण्ड में मृणालपुर नाम का एक नगर है, वहाँ राजा जितार और कनकावती सुख से राज्य करते थे। इसी नगर में श्रुतिकीर्ति नाम का

ब्राह्मण और उसकी बन्धुमती नाम की स्त्री रहती थी। इसके प्रभावती नाम की एक पुत्री थी जिसने जैन गुरु के पास शिक्षा पाई थी।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नी वनक्रीड़ा को गया था, वहाँ पर उसकी स्त्री को सांप ने काटा और वह मर गई। तब ब्राह्मण अत्यंत शोक से विह्वल हो गया, उदास रहने लगा। यह समाचार पाकर उसकी पुत्री प्रभावती वहाँ आई और अनेक प्रकार से पिता को संबोधन करके बोली-पिताजी! संसार का स्वरूप ऐसा ही है। इसमें इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग प्रायः हुआ ही करते हैं। यह इष्टानिष्ट कल्पना मोह भावों से होती है। यथार्थ में कुछ इष्ट है, न अनिष्ट है, इसलिये शोक का त्याग करो।

पश्चात् प्रभावती ने अपने पिता को जैन गुरु के पास संबोधन कराकर दीक्षा दिला दी। सो ब्राह्मण ने प्रारम्भ में तपश्चरण किया, परन्तु पश्चात् चारित्र भ्रष्ट होकर मंत्र यंत्र तंत्रादि के व्यर्थ झगड़ों में फंस गया, विद्या के योग से नई बस्ती बसाकर उसमें घर बनाकर रहने लगा और विषयासक्त हो स्वच्छन्द प्रवर्तने लगा।

तब पुनः प्रभावती उसे संबोधन करने के लिये वहाँ गई और कहा-पिताजी! जिन दीक्षा लेकर इस प्रकार का प्रवर्तन अच्छा नहीं है। इससे इस लोक में निंदा और परलोक में दुःख सहना पड़ेंगे।

यह सुनकर ब्राह्मण कुपित हुआ और उसे वन में अकेली छोड़ दिया। वहाँ प्रभावती णमोकार मन्त्र जपती हुई वन में बैठी थी, वहाँ वन देवी आई और पूँछा बेटी, तूँ क्या चाहती है? तब प्रभावती ने कैलाश यात्रा करने की इच्छा प्रगट की।

यह सुनकर देवी ने उसे कैलास पर पहुँचा दिया। प्रभावती वहाँ भादों सुदी पांचम के दिन पहुँची थी, उस दिन पुष्पांजलि व्रत था, इसलिये स्वर्ग तथा पातालवासी देव की वहाँ पूजन वन्दनादि के लिये आये थे। सो पद्मावती देवी ने प्रभावती का परिचय पाकर कहा-बेटी! तू पुष्पांजलि व्रत कर इससे तेरा सब दुःख दूर होगा। इस व्रत की

विधि इस प्रकार है कि भादों माघ, चैत्र सुदी 5 से 9 तक पाँच दिन नित्यप्रति पंचमेरु की स्थापना करके चौबीस तीर्थंकरों की अष्ट द्रव्यों से पूजा अभिषेक करे पाँच अष्टक तथा पाँच जयमाला पढे और इस मन्त्र का 108 बार जाप करे, पाँच का उपवास कर और शेष दिनों में रस त्याग कर ऊनोदर भोजन करे। हो सके तो 5 उपवास करें, रात्रि को जाप साधना एवं भजन जागरण करे, विषय कषायों को घटावें, ब्रह्मचर्य रखें और घर का आरम्भ त्यागें।

इस प्रकार पाँच वर्ष तक व्रत करके फिर उद्यापन करें, सो पाँच प्रकार के उपकरण पाँच पाँच जिनालयों में भेंट देवें, पाँच शास्त्र पधरावें, पाँच श्रावकों को भोजन करावें, चारों प्रकार के दान देवें इत्यादि।

यदि उद्यापन करने की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें। इस प्रकार प्रभावती ने व्रत की विधि सुनकर सहर्ष स्वीकार किया और उसे यथाविधि 5 वर्ष तक पालन किया तथा उद्यापन भी किया इससे उसे बहुत शांति हुई। पद्मावती देवी ने उसे विमान में बैठाकर उसके नगर मृणालपुर में पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर प्रभावती ने स्वयंप्रभ गुरु के पास दीक्षा ली और तप करने लगी, तप के प्रभाव से उनकी बहुत प्रशंसा फैली।

यह प्रशंसा उस पिता से सहन नहीं हुई, और उसने उसे दु:ख देने की विद्याएं भेजी। सो विद्याएं बहुत उपसर्ग करने लगी, परन्तु प्रभावती रंच मात्र भी नहीं डिगी और अन्त में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुई। वहाँ उसका नाम पद्मनाभ हुआ।

इसी बीच मृणालपुर की एक रुक्मणी नाम की श्राविका मरकर उसी देव की देवी हुई। वे दोनों सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे। एक दिन उस पद्मनाभ देव ने विचारा, कि हमारा पूर्व जन्म का पिता मिथ्यात्व में पड़ा है उसे संबोधन करना चाहिए।

यह विचार कर उसके पास गया और अपना सब वृत्तांत कहा, सो सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ और सब प्रपंच छोड़कर शांतिचित्त

हुआ। पश्चात् जिनोक्त तपश्चरण किया और समाधि से मरण कर स्वर्ग में प्रभास देव हुआ।

वह पद्मनाभदेव स्वर्ग से चयकर तू रत्नशेखर चक्रवर्ती हुआ है, और पद्मनाभदेव की देवी तेरी मदनमंजूषा नाम की पट्टरानी हुई हैं। तथा प्रभासदेव वहाँ से चयकर यह तेरा मित्र मेघवाहन विद्याधर हुआ है।

हे राजा! तूने पूर्व भव में पुष्पांजलि व्रत किया था जिस के फल से स्वर्ग से सुख भोगकर यहाँ चक्रवर्ती हुआ है और ये दोनों भी तेरे पूर्वजन्म के सम्बन्धी हैं इससे इनका तुझ पर परम स्नेह है।

यह सुनकर राजा ने पुष्पांजलि व्रत धारण किया और यात्रा करके घर आया व विधि सहित व्रत किया, पश्चात् बहुत काल तक राज्य कर के संसार से विरक्त होकर निज पुत्र को राज्यभार सौंपकर जिन दीक्षा ले ली घोर तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अनेक भव्य जीवों को धर्मोपदेश दिया पश्चात् शेष कर्मों को नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया। मदनमंजूषा ने दीक्षा ले ली, तपकर के सोलहतें स्वर्ग में देव हुई। मेघवाहन आदि अन्य राजा भी यथायोग्य गतियों को प्राप्त हुए। इस प्रकार और भी भव्य जीव श्रद्धासहित यह व्रत पालेंगे तथा कषायों को कृश करेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम पद को प्राप्त होंगे।

पुष्पांजलि व्रत पालकर, प्रभावती गुणमाल।
लहो सिद्ध पद अन्त में, नमों त्रियोग सम्हाल॥

बारहसौ चौंतीस व्रत की कथा

वन्दूँ आदि जिनेन्द्र पद, मन वच तन सिर नाय।
बारह सौ चौंतीस व्रत, कथा कहूँ सुखदाय॥

मगध देश में राजगृही नगर का स्वामी राजा श्रेणिक न्यायपूर्वक राज्य शासन करता था। इसकी परम सुन्दरी और जिनधर्मपरायण श्रीमती चेलना पट्टरानी थी,जब विपुलाचल पर महावीर भगवान का समवशरण आया तब राजा प्रजा सहित वंदना को गया और वंदना स्तुति करके मनुष्यों की सभा में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगा।

पश्चात् राजा ने पूछा-हे प्रभु! षोडशकारण व्रत से तो तीर्थंकर पद मिलता ही है, परन्तु क्या अन्य प्रकार से भी मिल सकता है, कृपाकर कहिये। तब गौतम स्वामी ने कहा-राजन् सुनो! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड में अवन्ती देश है, वहाँ उज्जियनी नगरी है, जहाँ हेमवर्मा राजा अपनी शिवसुन्दरी रानी सहित राज्य करता था।

एक दिन राजा वनक्रीडा करने को वन में गया था वहाँ चारण मुनियों को देखकर नमस्कार किया तथा मन में समताभाव धरकर विनय सहित पूछने लगा-भगवान! कृपा करके बताइये कि मैं किस प्रकार तीर्थंकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करूँ? तब श्री गुरु ने कहा-

राजन! तुम बारह सौ चौंतीस व्रत करो। यह व्रत भादों सुदी 1 से प्रारम्भ होता है। 1234 उपवास तथा एकाशन करना चाहिए। यह व्रत दश वर्ष और साढ़े तीन माह में पूरा होता है, यदि एकांतर करे तो 5 वर्ष पौने दो मास में ही पूर्ण हो जाता है। व्रत के दिन रस त्यागकर नीरस भोजन करें, आरम्भ परिग्रह का त्याग कर भक्ति और पूजा में निमग्न रहें। और 'ॐ ह्रीं असिआउसा चारित्रशुद्धिव्रतेभ्यो नमः' इस मन्त्र का 108 बार त्रिकाल जाप करें। जब व्रत पूरा हो जावे, तब उद्यापन करें।

झारी, थाली, कलश आदि उपकरण चैत्यालय में भेंट करें, चौसठ ग्रंथ पधरावें, चार प्रकार का दान करें तथा 1234 लाडू श्रावकों के घर बाँटे, पाठशालादि स्थापन करें इत्यादि और यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

इस प्रकार राजा ने व्रत की विधि सुनकर उसे यथा विधि पालन किया व उद्यापन भी किया।

अन्त में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से चयकर वह विदेहक्षेत्र के विजयापुरी में धनंजय राजा के चन्द्रभानु प्रभु नाम का तीर्थंकर पदधारी हुआ। उसके गर्भादिक पांच कल्याणक हुए।

इस प्रकार राजा हेमवर्मा स्वर्ग के सुख भोगकर तीर्थंकर पद प्राप्त करके इस व्रत के प्रभाव से मोक्ष गया। इसलिये हे श्रेणिक! तीर्थंकर पद प्राप्त करने के लिये यह व्रत भी एक साधन है।

यह सुनकर राजा श्रेणिक ने भी श्रद्धासहित इस व्रत को धारण किया और षोडशकारण भावनाएँ भी भायीं सो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। अब आगामी चौबीसी में वे प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार भी जो भव्य जीव इस व्रत का पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखों को पाकर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

बारह सौ चौंतीस व्रत, हेमवर्म नृप पाल।
नर सुर के सुख भोगकर, लहि मुक्ति गुणमाल।।

बुधाष्टमी व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्यखण्ड है, उसके अग देश में चपापुर नगर है। उस नगर का राजा विजिताक अपनी रानी गुणवती सहित सुख से राज्य करता था।

उस नगर में गुणवर्मा नाम का ब्राह्मण सावित्री स्त्री के साथ रहता था, गुणवर्मा का पिता पुत्रमोह से मरकर कुत्ता की पर्याय में गया, लोग उसको देखकर ग्लानि से पत्थर मारते थे। एक दिन उस नगर के कुछ श्रावक लोग बुधाष्टमी व्रत करने को जिनमन्दिर में जा रहे थे, तब वह कुत्ता भी सब लोगों के साथ जिनमन्दिर में गया,श्रावक लोग अपने अपने पाँव धोकर आलोड़ित करके मन्दिर में गये, वह कुत्ता भी पाँव धोये हुये पानी में अपना शरीर आलोड़ित करके मन्दिर में चला गया। श्रावकों द्वारा होने वाली बुधाष्टमी व्रत की पूजा को अच्छी तरह से देखने लगा, पूजा को देखते ही शांत हो गया। वही कुत्ता पूजा देखने के पुण्य से मरकर उस नगर के राजा विजितांक की रानी गुणवती के गर्भ से रूपमति नामक कन्या होकर

उत्पन्न हुआ। वह रूपमति कन्या सुन्दर व विद्यावान हुई। कन्या तारुण्य अवस्था में आने पर एक दिन अपने महल के गच्छी पर बैठी थी, कि एक चित्रवाहन नाम का विद्याधर राजा अपने विमान में बैठकर कहीं जा रहा था, अचानक दृष्टि उसी कन्या पर पड़ी कन्या को देखते ही विद्याधर नीचे उतर आया और विजितांक राजा को नमस्कार कर राज्यसभा में बैठ गया, राजा से कहने लगा कि राजन मैं विद्याधर राजा हूँ, मेरा नाम चित्रवाहन है, आपकी लड़की पर मैं मोहित हो गया हूँ अपनी लडकी का विवाह मेरे साथ कर दीजिए।

राजा ने यह सब सुना और मन में प्रसन्नता व्यक्त की और अपनी लड़की का विवाह शुभ मुहूर्त में विद्याधर राजा के साथ कर दिया। कुछ दिन अपनी रानी के साथ उस नगरी में रहकर अपने राज्य में चला गया। वह विद्याधर राजा अपनी रानी के साथ में सुख से राज्य करता था।

एक दिन मासोपवासी ज्ञानसागर मुनिमहाराज आहार के लिए राजमहल में आये। रूपमति रानी ने नवधाभक्ति से आहार दान दिया। दान के प्रभाव से पचाश्चर्य वृष्टि हुई, आहार होने के बाद मुनिराज को रानी ने ऊँचे आसन पर बैठाया, तब रूपमती रानी ने मुनिराज से कहा कि हे देव, मेरे पूर्व भव बताइए, मुनिराज ने उसके सर्व भव प्रपच को कह सुनाया, तब रानी ने कहा- हे देव आप कृपा करके बुधाष्टमी व्रत की विधि कहिए। मुनिराज ने व्रत की विधि कही तब रानी ने व्रत को स्वीकार किया और व्रत को विधिपूर्वक पाला, अन्त में उद्यापन किया।

एक दिन रूपमति अपने पीहर चंपापुर में आयी, सहस्रकूट जिनमन्दिर में दर्शन को गई, वहाँ मन्दिर की तीन प्रदक्षिणा लगाकर भगवान को नमस्कार किया, सभा मडप में आई, वहाँ श्रीमती नामक

आर्यिका जी को देखा, उनको नमस्कार किया, धर्मोपदेश सुना और घर को गई। आगे उस व्रत को अपने पति सहित पालन कर व्रत का उद्यापन किया, राजऐश्वर्य का भोग कर दोनों ही अन्त में दीक्षा लेकर स्वर्ग में गये, परम्परा से मोक्ष को जायेंगे।

भवरोग हराष्टमी व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में काश्मीर नाम का विशाल देश है उस देश में एक केशवाक नाम का राजा अपनी कौशिक पटरानी के साथ राज्य करता था। उस नगरी में कुसुमदत्त नाम का राज्य श्रेष्ठि अपनी भार्या कुसुमदत्ता के साथ रहता था। उस सेठ के 32 पुत्र थे, महान सपत्तिशाली था, इसलिए सुख से रहता था। एक दिन भुवनभूषण नाम के दिव्यज्ञानी महामुनि अपने सघ सहित नगरी में पधारे, राजा को समाचार प्राप्त होते ही पुरजन-परिजन सहित मुनिराज के दर्शन करने को गया, कुछ समय धर्मोपदेश सुनने के बाद, कुसुमदत्ता सेठानी हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी कि हे देव! हमने पूर्व भव में कौन सा ऐसा पुण्य किया, जिससे हमारे घर में अक्षय संपत्ति बनी हुई है ? ऐसा प्रश्न सुनकर मुनिराज कहने लगे कि हे देवी, सुनो! इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कलिग नाम का देश है, उस देश में कनकपुर नाम का मनोहर नगर है। उस नगर में एक बहुत गरीब कमलमुख नाम का सेठ अपनी कमलमुखी सेठानी के साथ रहता था, उस सेठ के बहुत सन्तान होने से कभी पेट भरकर भोजन नहीं मिलता था, बहुत कष्ट से दु:खपूर्वक जीवन व्यतीत करता था।

एक बार देवपाल व यशोभद्र नाम के दो मुनिश्वर मासोपवास करके पारणा के लिए नगर में आये, शुभ योग से कमलमुख सेठ के घर में निरन्तराय आहार हुआ। आहार होने के बाद सेठ मुनिराज को

कहने लगा कि हे देव! मेरा नर जन्म पाना व्यर्थ हो रहा है, मेरे घर में दरिद्रता का वास हो गया है, मैं महादुःखी हूँ, मेरा कष्ट दूर कीजिये। ऐसे वचन सेठ के सुनकर मुनिराज ने दयाबुद्धि से कहा कि हे सेठ तुम भवरोगहराष्टमी व्रत का पालन करो, इस व्रत के प्रभाव से सर्व दुःखों का निवारण होता है। ऐसा कहकर उस व्रत की विधि कह सुनायी।

व्रत का विधान सुनकर उन दोनों ने इस व्रत को ग्रहण किया, मुनिराज व्रत की विधि बताकर नगर से वापस लौट गये, सेठानी ने विधिपूर्वक व्रत का पालन किया,उद्यापन करके अन्त में समाधिपूर्वक मरकर व्रत के फल से, तुम इस कुसुमदत्त सेठ की पत्नी हुई हो। वहाँ से ही तुम्हारे पुत्र हुये है, यह सब सुनकर सबको बहुत आनन्द हुआ, सब लोगों ने भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार करके व्रत को ग्रहण किया और वापस नगर लौट आये। सबने व्रत को विधिपूर्वक पालन किया। व्रत के प्रभाव से सब लोग सद्गति को प्राप्त हुये। वो कुसुमदत्ता अपने मरणकाल में दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुई। कुसुमदत्त मेठ भी दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

मुक्तावली व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में कच्छ नामक एक विस्तीर्ण देश है, उसके विजयार्द्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी में चक्रवालपुर नामक एक अत्यन्त मनोहर नगर है। वहाँ यशोधर नाम का राजा राज्य करता था, उसकी विजयावती नाम की सौन्दर्यवती स्त्री थी। उस राजा का सोमदत्त नाम का पुरोहित और मदनवेगा नाम की उसकी सुन्दर स्त्री थी। उस पुरोहित का एक विशाखदत्त नाम का पुत्र था। उसी नगर में विष्णुदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था, ब्राह्मण की मदनमुखी

नाम की रूपवान स्त्री थी, उसके कामसेना नाम की गुणवान कन्या उत्पन्न हुई। कन्या को विवाह के योग्य समझकर विवाह कर दिया।

एक दिन कामसेना अपनी सखी के साथ में बंसत ऋतु की क्रीड़ा करने को निकली। रास्ते में यशोभद्र नाम के दिगम्बर मुनि को देखकर मिथ्यात्व कर्म के उदय से ग्लानिपूर्वक निन्दा की, मुनि निन्दा के प्रभाव से अन्त में मरण कर छठे नरक में उत्पन्न होकर बाईस सागर पर्यन्त दुःख भोगने लगी।

वहॉ से निकलकर कपिल पुरोहित की स्त्री सुप्रभा के यहाँ उत्पन्न हुई, पैदा होते ही उसके माता पिता मर गये, फिर वह घर घर भिक्षा माँगकर भोजन करने लगी। उसका शरीर दुर्गन्ध से युक्त था, इसलिए लोग उसको दुर्गन्धा के नाम से पुकारते थे। यौवनवती होने के बाद एक दिन वन में लकडी लेने गई वहाँ नाभिगिरि पर्वत के ऊपर गुफा में मनोगुप्ति नाम के महामुनिश्वर दृष्टिगत हुए।

तब दुर्गन्धा ने मुनिराज को नमस्कार किया और कहने लगी कि हे स्वामिन्! मैंने कौन से पाप किये जिससे मेरा शरीर दुर्गन्ध मय है? आप कृपा करके मुझे बताइए। तब मुनिराज कहने लगे कि हे कन्या! तुमने पूर्व जन्म में मुनि निन्दा की है, इस कारण मरकर नरक में गई, वहाँ का दुख भोगकर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुई और दरिद्री होकर दु.ख भोग रही हो।

यह पूर्वभव की वार्ता सुनकर दुर्गन्धा बहुत ही पश्चाताप करने लगी, मुनिराज को कहने लगी, हे भवोदधितारक! अब मुझे मेरे पाप कर्म दूर हों ऐसा कोई उपाय बताइये। उस दुःखी दुर्गन्धा के वचन सुनकर मुनिराज कहने लगे कि हे बेटी! तुम अपने किये हुए पापों को दूर करना चाहती हो तो मुक्तावली व्रत को विधिपूर्वक करो जिससे तुम्हारा सर्व रोग नष्ट होकर सुख सम्पत्ति प्राप्त होगी। ऐसा कहकर

उसको व्रत का स्वरूप बताया। दुर्गन्धा को बहुत ही आनन्द आया, उसने खुशी पूर्वक व्रत को स्वीकार किया और अपने गाव में वापस आ गई। आगे उसने यथाशक्ति व्रत को विधिपूर्वक पालन किया, उद्यापन किया। अन्त में समाधिपूर्वक मरण कर स्त्रीलिग छेद करती हुई सौधर्म स्वर्ग में विभूतिशाली देव हुई। वहा दो सागर सुख का अनुभव कर इस जम्बूद्वीप के मिथिलापुर नाम के एक रम्य नगर में एवं पृथ्वीपाल नामक भद्र परिणामी राजा पृथ्वीदेवी रानी के गर्भ से पद्मरथ नामक बलिष्ठ पुत्र होकर जन्म लिया, थोडे ही दिन में वह कुमार तारुण्य अवस्था को प्राप्त हुआ।

एक दिन चतुरग सेना के साथ हाथी पकडने के लिए वन में गया था तब वहॉ हाथी, सिह, गाय, हरिण, लोमडी, कुत्ता, आदि पशु अपना स्वाभाविक बैर छोडकर शात भाव से परस्पर क्रीडा करते हुये बैठे थे। यह देखकर कुमार को बहुत ही आश्चर्य हुआ, वहाँ उसे पर्वत की गुफा मे बैठे एक निर्ग्रन्थ मुनि उसकी दृष्टि में आये। तब उसने सब के साथ वहॉ जाकर तीन प्रदक्षिणा लगाकर नमस्कार किया।

तब कुमार मुनिराज को कहने लगा कि हे स्वामिन! आपके तपोबल का माहात्म्य जैसा है वैसा मैंने कहीं पर नहीं देखा, ऐसा मुनिश्वर ने सुना तब उन्होंने कहा कि हे युवराज! हमारे तपोबल का ही ऐसा आश्चर्य है इस प्रकार तुम मत समझो, अगदेश के चपापुर नगर में मेरुपर्वत के समान आत्मध्यान में निश्चल रहने वाले और जिनके सर्वांग से मेघगर्जना के समान दिव्यवाणी प्रकट होती है और प्रातः काल के सूर्य की जैसे कांति होती है, वैसी उनकी कांति है। ऐसे भगवान श्री वासुपूज्य तीर्थंकर का समवशरण आकर ठहरा हुआ है, उन्हीं का यह प्रभाव है, कारण जहाँ तीर्थंकर रहते हैं वहाँ 100 योजन

तक सुभिक्षता रहती है। इसलिए सर्व पशुपक्षी परस्पर बैर भाव छोड़कर प्रेम से खेलते रहते हैं।

ऐसा सुनकर युवराज को बहुत आनन्द आया, तब यह कुमार मुनिराज को नमस्कार करके बड़ी उत्सुकता से लोगों के साथ अपने नगर में वापस आया। दूसरे दिन अपने माता पिता की आज्ञा लेकर बडे उत्साह से श्री वासुपूज्य तीर्थंकर का दर्शन करने को हाथी पर बैठकर निकल गया। उस समय उसके मनोबल की परीक्षा करने के लिए धनपूज्य और विश्वानुलोम नाम के दोनों देवों ने आकर नगर के परकोटे का ध्वस कर दिया। यह देखकर मन्त्री वर्ग ने राजपुत्र को कहा कि हे स्वामिन्! बहुत अपशकुन हो रहा है, आप कहाँ जा रहे हो रुको।

ऐसा सुनकर और देखकर भी भयभीत नहीं होता हुआ अपशकुनों की परवाह नहीं करता हुआ, युवराज **ॐ नमो भगवते वासुपूज्याय नमः** ऐसा उच्चारण करके आगे बढा फिर उन दोनों देवों ने आगे जाकर युवराज का मार्ग रोकने के लिए सर्प के विषमिश्रित रक्त को रास्ते में भर दिया, तो भी युवराज **ॐ नमो भगवते वासुपूज्याय नमः** कहता हुआ हाथी को वहा से आगे बढा दिया तब देव उस कुमार की दृढभक्ति को देखकर कुमार के सामने प्रत्यक्ष हुए और क्षमा माँगने लगे कि हमने आपका बडा अपराध किया है। आपकी भक्ति में प्रतिबधक हुए ऐसा कहकर दोनों देवों ने राजकुमार से क्षमा याचना की फिर वह राजकुमार आतुरता से आगे चला। दूर से समवशरण को देखकर हाथी से नीचे उतरा अपने दोनों हाथों को जोड़ता हुआ, समवशरण के द्वार पर जा पहुँचा श्री वासुपूज्याय नम कहता हुआ समवशरण में प्रवेश किया, गधकुटी की तीन प्रदक्षिणा देकर तीर्थंकर को साष्टाग नमस्कार करके अष्टद्रव्य से भगवान की पूजा स्तुति करके मनुष्य के कोठे में जाकर बैठ गया।

भगवान का धर्मोपदेश सुनकर हाथ जोड़कर सुधर्म गणधर को कहने लगा, हे भवसागरोद्धारक दयानिधि स्वामिन्! आज आप भवावली कहने की कृपा करें। गणधर स्वामिन् कहने लगे हे कुमार! तुम प्रथम भव में कामसेन पुरोहित की लड़की थे दूसरे भव में छठे नरक में थे, तीसरे भव में ब्राह्मण के घर दुर्गन्धा होकर पैदा हुये, मुक्तावली व्रत को पालन करके देवपर्याय प्राप्त की, वर्तमान में तुम मिथिलापुरी के पृथ्वीपाल राजा के घर पद्मरथ नाम के पुत्र होकर जन्में।

इस प्रकार अपने पूर्वभवों को सुनकर तत्काल वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब जिनदीक्षा धारण कर समशवरण में धर्मरथ नाम के गणधर बन गये। आगे घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञानी हुये, फिर अघातिया कर्मों का भी नाश करके मोक्ष को गये।

इसलिए हे भव्यो! आप भी मुक्तावली व्रत को भक्तिभाव से यथाविधि पालन करो और उस व्रत का उद्यापन करो, तुमको भी सद्गति की प्राप्ति होगी।

मुकुटसप्तमी व्रत कथा।

पंच परमपद प्रणम करि, शारद माथ नमाय।
मुकुटसप्तमी व्रत कथा, भाषा कहूँ बनाय।।

जम्बूद्वीप कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नगर है। वहाँ के राजा विजयसेन की रानी विजयावती से मुकुटशेखरी और विधिशेखरी नाम की दो कन्याएँ थी। इन दोनों बहिनों में परस्पर ऐसी प्रीति थी कि एक दूसरी के बिना क्षणभर भी नहीं रह सकती थीं। निदान राजा ने दोनों कन्याएँ अयोध्या के राजपुत्र त्रिलोकमणि को ब्याह दी।

एक दिन बुद्धिसागर और सुबुद्धिसागर नाम के दो चारण ऋद्धि मुनिराज आहार के निमित्त नगर में आये। राजा ने उन्हें विधिपूर्वक पड़गाहकर आहार दिया और धर्मोपदेश श्रवण करने के अनंतर राजा

ने पूछा-हे नाथ! मेरी इन दोनों पुत्रियों में परस्पर इतना विशेष प्रेम होने का कारण क्या है ?

तब श्री ऋषिराज बोले-इसी नगर में धनदत्त नामक एक सेठ था, उनके जिनवती नाम की एक कन्या थी और वहीं एक माली की वनमती कन्या भी थी इन दोनों कन्याओं ने मुनि के द्वारा धर्मोपदेश सुनकर मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया था। एक समय ये दोनों कन्याएँ उद्यान में खेल रही थी, कि इन्हें एक सर्प ने काट खाया सो नवकार मन्त्र का आराधन करके देवी हुई और वहाँ से चयकर तुम्हारी पुत्री हुई हैं। सो इनका यह स्नेह भवांतर से चला आ रहा है। इस प्रकार भवांतर की कथा सुनकर दोनों कन्याओं ने प्रथम श्रावक के पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत लिये और पुनः मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। प्रतिवर्ष श्रावण सुदी सप्तमी को प्रोषध करती और 'ॐ ह्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभजिनेन्द्राय नमः' इस मन्त्र का जाप्य करती तथा अष्टद्रव्य से श्री जिनालय जाकर भाव सहित जिनेन्द्र की पूजा करती थीं।

इस प्रकार यह व्रत उन्होंने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करके सात-सात उपकरण जिनालय में भेंट किये। इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अन्त में समाधि मरण करके सोलवें स्वर्ग में स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रतीन्द्र हुईं। वहाँ पर देवोचित सुख भोगे और धर्मध्यान में विशेष समय बिताया।

पश्चात् वहाँ से चयकर ये दोनों इन्द्र प्रत्येन्द्र मनुष्य होकर कर्म काट के मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार सेठजी तथा माली की कन्याओं ने मुकुटसप्तमी व्रत पालकर स्वर्गों के अपूर्व सुख भोगे। अब वहाँ से चयकर मनुष्य होकर मोक्ष जावेंगे। धन्य हैं! वे भव्य जीव जो भाव सहित यह व्रत धारण करेंगे, तो वे भी इसी प्रकार सुखों को प्राप्त होवेंगे।

श्रेष्ठी अरु माली सुता, मुकुटसप्तमीं व्रत धार।
भये इन्द्र प्रतिन्द्र द्वय, अरु हुई हैं भव पार।।

मेघमाला व्रत कथा

महावीर पद प्रणमि कर, गौतम गुरु सिर नाय।
कथा मेघमाला तनी, कहूँ सबहि सुखदाय।।

वत्सदेश कौशाम्बीपुरी में जब राजा भूपाल राज्य करते थे जब वहाँ पर एक वत्सराज नाम का श्रेष्ठि और उसकी सेठानी पद्मश्री नाम की रहती थी। सो पूर्वकृत अशुभ कर्म के उदय से उस सेठ के घर में दरिद्रता का वास रहा करता था, इस पर भी इसके सोलह (16) पुत्र और बारह (12) कन्याएँ थी।

गरीबी की अवस्था में इतने बालकों का लालन-पालन करना और गृहस्थी का खर्च चलाना कैसा कठिन हो जाता है, इसका अनुभव उन्हीं को होता है जिन्हें कभी ऐसा प्रसंग आया हो या जिन्होंने अपने आसपास रहने वाले दीन दुःखियों को ओर कभी अपनी दृष्टि डाली हो। परम स्नेह करने वाले माता-पिता ही ऐसे समय में अपने प्यारे बालकों को अनुचित और कठोर शब्दों में केवल सम्बोधन ही नहीं करते हैं। किन्तु उन्हें बिना मूल्य या मूल्य में बेच तक देते हैं।

प्राणों से प्यारी संतान जिसके लिए संसार के अनेकानेक मनुष्य लालायित रहते हैं और अनेक यंत्र मंत्रादि कराया करते हैं। हाय उस दरिद्रावस्था में वह भी भाररूप हो पड़ती है। वत्सराज सेठ इसी चिंता में चिंतित रहता था।

जब ये बालक क्षुधातुर होकर माता से भोजन मांगते तो माता कठोरता से कह देती-जाओ मरो, लंघन करो, चाहे भीख मांगो तुम्हारे लिये मैं कहाँ से भोजन दे दूं? यहाँ क्या रखा है जो दे दूँ? सो वे नन्हें नन्हें बालक झिड़की खाकर जब पिता जी के पास जाते, तब वहाँ से भी निराशा की पल्ले पड़ती। हाय उस समय का करुण-क्रन्दन किसके ह्रदय को विदीर्ण नहीं कर देता है।

एक दिन भाग्योदय से एक चारण ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आये। उन्हें देखकर वत्सराज सेठ ने भक्तिसहित पड़गाहा और घर में जो

रूखासूखा भोजन शुद्धता से तैयार किया गया था, सो भक्ति सहित मुनिराज को दिया।

मुनिराज उस भक्तिपूर्वक दिये हुए स्वाद रहित भोजन को लेकर वन की ओर गये। तत्पश्चात् सेठ भी भोजन करके जहाँ श्री मुनिराज पधारे, वहाँ खोजते-खोजते पहुँचा और भक्तिपूर्वक वंदना करके बैठा। श्री गुरु ने इसे सम्यक्त्वादि धर्म का उपदेश दिया।

पश्चात् सेठ ने पूछा- हे दयानिधि! मेरे दरिद्रता होने का कारण क्या है? और अब यह कैसे दूर हो सकती है?

तब श्री गुरु बोले- हे वत्स, सुनो! कौशल देश की अयोध्या नगरी में देवदत्त नामक सेठ की देवदत्ता नाम की सेठानी रहती थी। वह धन कण और रूप लावण्य कर संयुक्त तो थी परन्तु कृपण होने के कारण दान धर्म में धन लगाना तो दूर ही रहे किन्तु उल्टा दूसरे का धन हरण करने को तत्पर रहती थी।

एक दिन कहीं से एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी जो अत्यन्त हीन शरीर था। भोजन के निमित्त उसके घर आ गये। उसे देख सेठानी ने अनेक दुर्वचन कहकर निकाल दिया। वह कृपणा कहने लगी- अरे जा जा, यहाँ से निकल, यहाँ से घर के बच्चे भूखों पर रहे हैं, फिर दान कहाँ से करें? जो चाहे सो यहीं ही चला आता है।

इतने ही में उसका स्वामी सेठ भी आ गया और उसने अपनी स्त्री की हाँ में हाँ मिला दी। निदान कुछेक दिनों में वहीं हुआ, जैसी मनसा वैसी दशा हो गई। अर्थात् उसका सब धन चला गया और वे यथार्थ में भूखों मरने लगे। अति तीव्र पाप का फल कभी-कभी प्रत्यक्ष ही दीख जाता है।

वे सेठ सेठानी आर्त ध्यान से मरे सो एक ब्राह्मण के घर महिष (भैंस) के पुत्र (पाडा-पाडी) हुए। सो वहाँ भी भूख प्यास की वेदना से पीड़ित हो पानी पीने के लिए एक सरोवर में घुसे थे कि कीच (कादव) में फंस गये और जब तड़फड़ाकर मरणोन्मुख हो रहे थे, तब उसी दयाल श्रावक ने आकर उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया और मिष्ट शब्दों में संबोधन किया।

सो वे पाड़ा-पाड़ी वहाँ से मरकर णमोकर मंत्र के प्रभाव से तुम मनुष्य भव को प्राप्त हुए, परंतु पूर्व संचित पापकर्मों का शेषांश रह जाने से अब तक दरिद्रता ने तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ा है।

ऐ वत्स! यह दान न देने और यति आदि महात्माओं से घृणा करने का फल है। इसलिए प्रत्येक गृहस्थ को सदैव यथाशक्ति दान धर्म में अवश्य ही प्रवर्तना चाहिये।

अब तुम सत्यार्थ देव अर्हंत, गुरु निर्ग्रंथ और दयामयी धर्म में श्रद्धान करो और श्रद्धापूर्वक मेघमाला व्रत का पालन करो तो सब प्रकार इस लोक और परलोक संबन्धी सुखों को प्राप्त होवोगे।

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदा से लेकर आश्विन सुदी प्रतिपदा तक प्रति वर्ष एक एक मास करके पाँच वर्ष तक किया जाता है अर्थात् भादों सुदी पड़िमा से आसोज सुदी पड़िमा तक (एक मास) श्री जिनालय के आंगन में (चौक में) सिंहासनादि स्थापन करें और उस पर श्री जिनबिंब स्थापन करके महाभिषेक और पूजन नित्य प्रति करें, श्वेत वस्त्र पहिनें, श्वेत ही चंदोवा बंधावे मेघ धारा के समान 1008 कलशों से महाभिषेक करके पश्चात् पूजा करें।

पांच परमेष्ठी का 108 बार जाप करें पश्चात् संगीतपूर्वक जागरण भजन इत्यादि करें। भूमिशयन व ब्रह्मचर्य व्रत पालन करें। यथाशक्ति चारों प्रकार का दान देवें, हिंसादि पंच पापों का त्याग करें तथा एक मास पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक एक भुक्त उपवास, बेला तेला आदि शक्ति प्रमाण करें। निरन्तर षट्रसी व्रत पालें अर्थात् नित्य एक रस छोड़कर भोजन करें।

इस प्रकार जब पाँच वर्ष पूर्ण हो जावें तब शक्ति प्रमाण भाव सहित उद्यापन करें अर्थात् पाँच जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करावें पाँच महान ग्रंथ लिखावें, पाँच प्रकार पकवान बनाकर श्रावकों को पाँच घर देवें। पाँच पाँच घण्टा, झालर, चंदोवा, चमर, छत्र, अछार आदि उपकरण देवें। पाँच श्रावकों (विद्यार्थियों) को भोजन करावें, सरस्वती भवन बनावें, पाठशाला चलावें इत्यादि और अनेकों प्रभावना बढ़ाने वाले कार्य करें।

इस प्रकार व्रत की विधि सुनकर सेठ सेठानी ने श्रद्धापूर्वक इस व्रत का पालन किया, सो व्रत के प्रभाव से उनका सब दारिद्रय दूर हो गया और वे स्त्री-पुरुष सुख से काल व्यतीत करते हुए आयु के अन्त में संन्यासपूर्वक मरण कर दूसरे स्वर्ग में देव हुए।

फिर वहाँ से चयकर वे पोदनपुर में विजयभद्र नाम के राजा और विजयावती नाम की रानी हुई, सो पूर्व पुण्य के प्रभाव से धन, धान्य, पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति अधिकारी हुए।

आयु के अन्तिम भाग (वृद्धावस्था) में दोनों राजा और रानी अपने पुत्र को राज्य का अधिकार देकर आप जिनेश्वरी दीक्षा ले तप करने लगे सो तप के प्रभाव से आयु पूर्णकर राजा तो सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुआ और रानी भी स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई। वहाँ से चयकर वे दोनों प्राणी मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार मेघमाला व्रत के प्रभाव से देवदत्त और देवदत्ता नाम के कृपण सेठ और सेठानी भी मोक्ष पद पावेंगे सो यदि और नरनारी श्रद्धासहित यह व्रत पालें तो अवश्य उत्तम फल पावेंगे।

मेघमाला व्रत धारणकर, सेठ सेठानी सार।
लहो स्वर्ग अरु लहेंगे, मोक्ष सुख अधिकार।।

मौनएकादशी व्रत कथा

घाति घात केवल लहो, लहो चतुष्क अनन्त।
सरल मोक्ष मग जिन कियो, वन्दूँ सो अर्हंत।।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कौशल्य देश है। उस में यमुना नदी के तट पर कौशांबी नाम की नगरी है, उसी नगर में परम पूज्य छठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभ का जन्मकल्याणक हुआ था। एक समय इसी नगर में हरिवाहन नाम का राजा और उसकी शशिप्रभा पट्टरानी थी।

राजपुत्र का नाम सुकौशल था। यह राजकुमार सर्व विद्या और कलाओं में निपुण होने पर भी निरन्तर खेल तमाशों आदि क्रीड़ाओं

में निमग्न रहता था और राजकाज की ओर बिलकुल भी ध्यान न देता था। इसलिये राजा को निरन्तर चिंता रहने लगी कि राजपुत्र राज्यकार्य में योग नहीं देता है, तब भविष्य में कार्य कैसे चलेगा?

एक समय भाग्योदय से सोमप्रभ नाम के महामुनिराज संघ सहित विहार करते हुए इसी नगर में उद्यान में पधारे। राजा ने वनमाली द्वारा ये शुभ समाचार सुनकर पुरवासियों सहित हर्षित होकर श्री गुरु के दर्शनों को प्रयाण किया। और वहाँ पहुँचकर भक्तिभाव से वन्दना स्तुति करके धर्मश्रवण की इच्छा से नतमस्तक होकर बैठ गया।

श्री गुरु ने प्रथम मिथ्यात्व के छुडाने वाले और संसार में भय उत्पन्न कराने वाले ऐसे मोक्षमार्ग का व्याख्यान सुनाया, मुनि और श्रावक के धर्म को पृथक्‌कर-कर के समझाया और यह भी परम्परा मोक्ष का कारण समझना चाहिए। यथार्थ में तो भव्य जीवों को मुनिधर्म ही पालन करना चाहिए, परन्तु यदि शक्तिहीनता के कारण एकाएक मुनिधर्म न धारण कर सकें, तो कम से कम प्रतिमारूप श्रावक का धर्म ही धारण करे और निरन्तर अपने भावों को बढाता और शरीरादि इन्द्रियों तथा मन को वश करता जावे, तब ही अभीष्ट सुख को प्राप्त हो सकता है।

श्रावक धर्म केवल अभ्यास ही के लिये है। इसलिये इसी में रंजायमान होकर इति नहीं कर देना चाहिए। किन्तु मुनिधर्म की भावना भाते हुए उसके लिये तत्पर रहना चाहिए।

राजा ने उपदेश सुन स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण किया और विशेष बातों का श्रद्धान किया। पश्चात् अवसर देखकर पूँछने लगे- हे नाथ! मेरा पुत्र विद्यादि में निपुण होने पर भी बाल क्रीड़ाओं में अनुरक्त रहता है और राज्य-भोग में कुछ भी नहीं समझता है। अतः इसकी चिन्ता है कि भविष्य में राज्य स्थिति कैसे रहेगी?

राजा का प्रश्न सुनकर श्री गुरु ने कहा-इसी देश के कूट नाम नगर में राजा रणवीर सिंह और उसकी त्रिलोचना नाम की रानी थी।

इसी नगर में एक कुणबी रहता था। उसकी पुत्री तुंगभद्रा थी। इस भाग्यहीन कन्या के पापोदय से शैशव अवस्था में ही माता-पिता आदि बन्धु-बाँधव सब कालवश हो गये और यह अनाथनी अकेली अन्न वस्त्र से वंचित हुई, जुठन पर गुजार करती समय बिताने लगी।

वह जब आठ वर्ष की हुई, एक दिन घास काटने को वन में गई थी वहाँ पिहिताश्रव मुनिराज के दर्शन हो गये। यह बालिका भी लोगों के साथ श्री गुरु को नमस्कार करके धर्मश्रवण करने लगी, परन्तु भूख की वेदना से व्याकुल हुई। इसके कुछ भी समझ में नहीं आता था, तब इस दुःखित कन्या ने दुःख से कातर होकर पूँछा- हे दयानिधान गुरुदेव ! मैं जन्म से अनाथिनी अन्न वस्त्र तक का कष्ट पा रही हूँ, इसलिये कृपाकर ऐसा कोई उपाय बताइये कि जिससे मेरा दुःख दूर होवे।

तब श्री गुरु ने कहा- हे पुत्री! यह सब तेरे पूर्वजन्म के पाप का फल हैं। अब तू श्री जिनेन्द्रदेव निग्रंथ गुरु, दयामयी धर्म पर श्रद्धा करके भाव सहित मौन एकादशी व्रत का पालन कर जिससे तेरे पाप का क्षय होवे और संसार का अन्त आवे। सुन, इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

पौष एकादशी को सोलह प्रहर का उपवास कर और ये सोलह प्रहर जिनालय में धर्मकथा पूजाभिषेकादि धर्मध्यान में व्यतीत कर, तीनों काल सामायिक कर, सोलह प्रहर मौन से रह, अर्थात् मुंह से न बोल। हाथ, नाक, आंख आदि से संकेत भी न कर।

इस प्रकार जब सोलह प्रहर हो जावें तब द्वादशी के दोपहर को अभिषेकपूजा करके सामायिक व स्वाध्याय करें और फिर अतिथि (मुनि, गृहत्यागी) श्रावक तथा साधर्मी गृहस्थ व दीन दुःखित भूखित को भोजन कराकर आप पारणा करें। जो कोई व्रती पुरुष हों उनको नारियल या खारक, बादाम आदि बांटे। इस प्रकार ग्यारह वर्ष तक यह व्रत करके फिर उद्यापन करें। उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत

करें। उद्यापन विधि इस प्रकार है कि शक्ति होवे तो श्री जिनमंदिर बनवायें। 24 भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करके पधरावें। घण्टा, झालर, चौकी, चन्दोवा, छत्र, चमर, शास्त्रादि 24-24 जिनालय में पधरावें। शास्त्रभंडार की स्थापना करें, ग्रन्थ वितरण करें, विद्यार्थियों को भोजन करावें, यथाशक्ति संघ को जिमायें।

नारियल आदि साधर्मियों को बांटे, महापूजा विधान करे, दुःखी अपाहिजों को भोजन, वस्त्र औषधि आदि दान करें।

भयभीत जीवों को अभयदान दें, इत्यादि विधि सुन, उस दरिद्र कन्या ने भावसहित व्रत पालन किया और अन्त समय सन्यास सहित णमोकार मन्त्र का स्मरण करते हुए शरीर छोडकर तेरे घर यह पुत्र हुआ है। यह पुत्र चरमशरीरी है, इसी से राज्यभोग में इसका चित्त नहीं लगता है, यह बहुत ही थोड़े समय घर रहेगा।

राजा इस प्रकार श्री गुरु के मुख से अपने पुत्र का वृत्तांत सुनकर घर आया वह संसार, देह भोगों से विरक्त होकर उसने अपने पुत्र को राज्य तिलक किया। पश्चात् पिहिताश्रव आचार्य के पास दीक्षा ले ली। इसके साथ और भी बहुत से राजाओं ने दीक्षा ली।

और राजा सुकौशल राज्य करने लगा। सो वह अल्पसंसारी राजनीति की कुटिलता को न जानता और सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगा।

एक समय मतिसागर नाम भण्डारी ने श्रुतसागर नाम मन्त्री से मन्त्रा की कि राजा राजनीति से अनभिज्ञ है, इसलिये इसे कैद करके मैं तुम्हें राजा बनाये देता हूँ, और मैं मन्त्री होकर रहूँगा। परन्तु वह वार्ता मतिसागर के पुत्र और राजा के बालसखा द्वारा राजा के कान तक पहुँच गई। राजा ने मतिसागर को इस कुटिलता व धृष्टता के बदले अपमान सहित देश से निकाल दिया और श्रुतसागर को राज्यभार सौंपकर आप अपने पिता के पास गये और दीक्षा ले ली।

यह मतिसागर भण्डारी भ्रमण करते हुए दुःख से (आर्त्तभावों

से) मरणकर सिंह हुआ, सो विकराल रूप धारण कर अनेक जीवों को घात करता हुआ विचरता था कि उसी वन में बिहार करते हुये वे हरिबाहन और सुकौशल स्वामी आ पहुँचे। सिंह ने इन्हें देखकर पूर्व बैर के कारण क्रोधित होकर शरीर को विदीर्ण कर दिया। वे मुनिराज उपसर्ग जानकर निश्चल ही शुक्लध्यान को धारणकर आत्मा में निमग्न हो गये तब सिंह भी उपशांत होकर वहाँ से चला गया और वे मुनि अंतकृत केवली होकर सिद्धपद को प्राप्त हुए और सिंह मुनिहत्या के कारण मरकर नरक में घोर दु:ख भोगने को चला गया।

प्राणी नि:सन्देह अपने ही किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल सुख व दु:ख भोगा करते हैं।

इस प्रकार एक दरिद्र कन्या ने भी मौन एकादशी व्रत श्रद्धा व भक्तिपूर्वक पालन किथा जिसके फल से वह सुकौशल स्वामी होकर सकल कर्मों का क्षय कर सिद्धपद को प्राप्त हुई। जो कोई भव्यजीव ज्ञान व श्रद्धापूर्वक यह व्रत करें तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखों को पावेंगे।

तुंगभद्र कन्या कियो, मौन व्रत चित धार।
पायो अविचल सिद्ध पद, किये काम सब छार।।

रत्नत्रय व्रत कथा

दाता सम्यक् रत्नत्रय, गुरुशास्त्र जिनराय।
कर प्रणाम वरणूं कथा, रत्नत्रय सुखदाय।।1।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, इन बिन मुक्ति न होय।
तासों प्रथम हि रत्नत्रय, कथा सुनों भविलोय।।2।।

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में कच्छ नाम का एक देश और वीतशोकपुर नाम का एक नगर है। वहाँ एक अत्यन्त पुण्यवान वैश्रवण नाम का राजा रहता था, जो कि पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था।

एक दिन वह (वैश्रवण) राजा बसंत ऋतु में क्रीड़ा के निमित्त उद्यान में यत्र तत्र सानंद विचर रहा था कि इतने ही में उसकी दृष्टि एक शिला पर विराजमान ध्यानस्थ श्री मुनिराज पर पड़ी। सो तुरन्त ही हर्षित होकर राजा श्री मुनिराज के समीप आया और विनयपूर्वक नमस्कार करके बैठ गया। श्री मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो उन्होंने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे-

यह जीव अनादिकाल से मोहकर्म वश मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करता हुआ पुनः पुनः कर्मबन्ध करके संसार में जन्म मरणादि अनेक प्रकार दुःखों को भोगता है इसलिए जब तक इसे रत्नत्रय (जो कि आत्मा का निज स्वभाव है) की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक यह (जीव) दुःखों से छूटकर निराकुलता रूप सच्चे सुख व शांति को प्राप्त नहीं कर सकता, जो कि वास्तव में इस जीव का हितकारी है। इसलिए भगवान ने 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है और सच्चा सुख मोक्ष अवस्था में ही मिलता है, इसलिए मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करना मुमुक्षु जीवों का परम कर्तव्य है।

(1) पुद्गलादि परद्रव्यों से भिन्न निज स्वरूप का श्रद्धान (स्वानुभव) तथा उसके कारण स्वरूप सप्त तत्त्वों और सत्यार्थ देव, गुरु व शास्त्र का श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन अष्ट अंग सहित और 25 मल दोष रहित धारण करना चाहिए अर्थात् जिन भगवान के कहे हुए वचनों में शंका नहीं करना, संसार के विषयों की अभिलाषा न करना, मुनि आदि साधर्मियों के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि न करना, धर्मगुरु के सत्यार्थ तत्त्वों की यथार्थ पहिचान करना, अर्थात् कुगुरु (रागीद्वेषी, भेषी, परिग्रही, साधु, गृहस्थ) कुदेव (रागीद्वेषी, भयंकर) कुधर्म हिंसापोषक क्रियाओं की प्रशंसा भी न करना, धर्म पर लगते हुए मिथ्या आक्षेपों को दूर करना और अपनी

बड़ाई व परनिन्दा का त्याग करना, सम्यक् श्रद्धान और चारित्र से डिगते हुए प्राणियों को धर्मोपदेश तथा द्रव्यादि देकर किसी प्रकार स्थिर करना, धर्म और धर्मात्माओं में निष्कपट भाव से प्रेम करना और सर्वोपरि सर्व हितकारी श्री दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा बताये हुए पवित्र जिनधर्म का यथार्थ प्रभाव सर्वोपरि प्रकट कर देना ये आठ अंग हैं।

इनसे विपरीत शंकादि आठ दोष, 1. जाति, 2. कुल, 3. बल, 4. ऐश्वर्य, 5. धन, 6. रूप, 7. विद्या और 8. तप इन आठ के आश्रित हो गर्व करना सो आठ मद, कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु सेवक, कुदेव आराधक तथा कुधर्म आराधक, ये छः अनायतन देव 1. देवमूढ़ता (लौकिक चमत्कारों के कारण लोभ में फंसकर रागी द्वेषी देवों का पूजन) 2. लोकमूढ़ता (पहाड़ से गिरना, नदी स्नान में धर्म मानना आदि) और तीन गुरु मूढ़ता (कुलीन आडम्बरधारी गुरुओंकी सेवा करना) इस प्रकार ये पच्चीस सम्यक्त्व के दूषण हैं। इससे सम्यक्त्व का एकदेश घात होता है इसलिए इन्हें त्याग देना चाहिए।

(2) पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय आदि दोषों से रहित जानना सो सम्यग्ज्ञान है।

(3) आत्मा की निज परिणति (जो वीतराग रूप है) में ही रमण करना, अर्थात् रागद्वेषादि विभाव भावों क्रोधादि कषायों से आत्मा को अलग करने व बचाने के लिये व्रत, संयम तपादिक करना सो सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार इस रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग को समझकर और उसे स्वशक्ति अनुसार धारण करके जो कोई भव्यजीव तपाचरण धारण करता है वही सच्चे (मोक्ष) सुख को प्राप्त होता है।

इस प्रकार रत्नत्रय का स्वरूप कहकर अब बाह्य व्रत पालने की विधि कहते हैं-

भादों, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में, तेरस, चौदस और पूनम इस प्रकार तीन दिन यह व्रत किया जाता है और 12 को व्रत

की धारणा तथा प्रतिपदा को पारणा किया जाता है, अर्थात् 12 को श्री जिन भगवान का पूजनाभिषेक करके एकाशन (एकभुक्त) करें और फिर मध्याह्नकाल की सामायिक करके उसी समय से चारों प्रकार के (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय) आहार तथा विकथाओं और सब प्रकार के आरम्भों का त्याग करें। इस प्रकार तेरह, चौदस और पूनम को तीन दिन प्रोषध (प्रोषधोपवास) करें और प्रतिपदा (पड़वा) को भी जिनदेव के अभिषेक पूजन के अनन्तर सामायिक करके तथा किसी अतिथि, दुःखित वा भूखित को भोजन कराकर भोजन करें, इस दिन भी एक भुक्त ही करना चाहिए।

इन व्रतों के पाँचों दिन में समस्त सावद्य (पाप बढ़ाने वाले) आरम्भ और विशेष परिग्रह का त्याग करके अपना समय सामायिक, पूजा, स्वाध्यायादि धर्मध्यान में बितावें। इस प्रकार यह व्रत 12 वर्ष तक करके पश्चात् उद्यापन करें यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें, यह व्रत की उत्कृष्ट विधि है।

यदि इतनी भी शक्ति न होवे तो बेला करें या कांजी आहार करें तथा आठ वर्ष करके उद्यापन करें यह मध्यम विधि है। जो इतनी शक्ति न होवे तो एकाशना करके करें और तीन ही वर्ष या पाँच वर्ष तक करके उद्यापन करें, यह जघन्य विधि है। सो स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण कर पालन करें। नित्य प्रतिदिन में त्रिकाल सामायिक तथा रत्नत्रय पूजन विधान करें और तीन बार इस व्रत का जाप्य 108 बार जपें 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः'।

इस प्रकार व्रत पूर्ण होने पर श्री जिनमंदिर में जाकर महोत्सव पूर्वक उद्यापन करें। छत्र, चमर, झारी, कलश, दर्पण, पंखा, ध्वजा और ठमनी (ठौना) आदि मंगल द्रव्य चढावें, चन्दोवा बँधावे और कम से कम तीन शास्त्र मंदिर में पधरावें, प्रतिष्ठा करें, उद्यापन के हर्ष में विद्यादान करें, पाठशाला, छात्रावास, अनाथालय, पुस्तकालय, आदि संस्थाएँ ध्रौव्यरूप से स्थापित करें और निरन्तर रत्नत्रय की भावना भाते रहे।

इस प्रकार श्री मुनिराज ने राजा वैश्रवण को उपदेश दिया राजा ने उपदेश सुनकर श्रद्धापूर्वक इस व्रत को यथा विधि किया। पूर्ण अवधि होने पर उत्साह सहित उद्यापन किया।

पश्चात् एक दिन वह राजा एक बहुत बड़े बड़ के वृक्ष को जड़ से उखड़ा हुआ देखकर वैराग्य को प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर अन्त समय समाधिमरण कर अपराजित नाम विमान में अहमिन्द्र हुआ और फिर वहाँ से चयकर मिथिलापुरी में महाराज कुम्भराय के यहाँ, सुप्रभावती रानी के गर्भ से मल्लिनाथ तीर्थंकर हुए जो पंचकल्याणकों को प्राप्त होकर अनेक भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगाकर परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार वैश्रवण राजा ने व्रत पालनकर स्वर्ग और मनुष्यों के सुख को प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया और सदा के लिये जन्म मरणादि दु:खों से छूटकर अविनाशी स्वाधीन सुख को प्राप्त हुए। इसलिए जो नरनारी मन, वचन, काय से इस व्रत की भावना भाते हैं। रत्नत्रय को धारण करते हैं। वे भी राजा वैश्रवण के समान स्वर्गादि मोक्षसुख को प्राप्त होते हैं।

महाराज वैश्रवण ने, रत्नत्रय व्रत पाल।
लही मोक्ष लक्ष्मी तिनहिं, दोष नमै त्रैकाल।।

रविवार व्रत कथा

काशी देश की बनारस नगरी का राजा महीपाल अत्यंत प्रजावत्सल और न्यायी था। उसी नगर में मतिसागर नाम का एक सेठ और गुणसुन्दरी नाम की उसकी स्त्री थी। इस सेठ के पूर्व पुण्योदय से उत्तमोत्तम गुणवान तथा रूपवान सात पुत्र उत्पन्न हुए।

उनमें छः का तो विवाह हो गया था, केवल लघुपुत्र गुणधर कुंवारे थे गुणधर एक दिन वन में क्रीड़ा करते विचर रहे थे, वहाँ उनको गुणसागर मुनि के दर्शन हो गये। वहाँ मुनिराज का आगमन सुनकर और भी बहुत लोग वन्दनार्थ वन में आये थे और सब स्तुति

वन्दना करके यथास्थान बैठे। श्री मुनिराज उनको धर्मवृद्धि कहकर अहिंसादि धर्म का उपदेश करने लगे।

जब उपदेश हो चुका तब साहूकार की स्त्री गुणसुन्दरी बोली, स्वामी! मुझे कोई व्रत दीजिये। तब मुनिराज ने उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत का उपदेश दिया और सम्यक्त्व का स्वरूप समझाया और पीछे कहा-बेटी! तू रविवार का व्रत कर। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि आषाढ मास के अंतिम रविवार से लेकर नव रविवारों तक यह व्रत करना चाहिये।

प्रत्येक रविवार के दिन उपवास करना या बिना नमक के अलोना भोजन एक बार (एकाशना) करना पार्श्वनाथ भगवान की अभिषेक पूजा करना। घर के सब आरम्भ का त्यागकर विषय और कषाय भावों को दूर करना, ब्रह्मचर्य से रहना, रात्रि जागरण भजनादि करना और 'ॐ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथाय नमः' इस मंत्र की 108 बार जाप करना।

इस प्रकार नव वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करना। प्रथम वर्ष नव उपवास करना, दूसरे वर्ष नमक बिना भात और पानी पीना, तीसरे वर्ष नमक बिना दाल भात खाना, चौथे वर्ष बिना नमक की खिचड़ी खाना, पाँचवें वर्ष बिना नमक की रोटी खाना, छट्ठे वर्ष बिना नमक दही भात खाना, सातवें तथा आठवें वर्ष नमक बिना मूँग की दाल और रोटी खाना और नववें वर्ष एक बार का परोसा हुआ नमक बिना भोजन करना, फिर दूसरी बार नहीं लेना और थाली में जूठन भी नहीं छोड़ना।

नवधा भक्ति कर मुनिराज को भोजन कराना और नव वर्ष पूर्ण होने पर उद्यापन करना। नव-नव उपकरण मन्दिरों में चढाना, नव शास्त्र लिखवाना, नव श्रावकों को भोजन कराना, नव नव फल श्रावकों को बाँटना समवशरण का पाठ पढ़ना, पूजन विधान करना आदि।

इस प्रकार गुणसुन्दरी व्रत लेकर घर आई और सब कथा घर के लोगों को कह सुनाई तो घरवालों ने सुनकर इस व्रत की बहुत निंदा की। इसलिये उसी दिन से उस घर में दरिद्रता का वास हो गया। सब लोग भूखों मरने लगे, तब सेठ के सातों पुत्र सलाह करके परदेश को निकले। सो साकेत (अयोध्या) नगरी में जिनदत्त सेठ के घर जाकर नौकरी करने लगे और सेठ सेठानी बनारस ही में रहे।

कुछ काल के पश्चात् बनारस में अवधिज्ञानी मुनि पधारे, सो दरिद्रता से पीड़ित सेठ सेठानी भी वन्दना को गये और दीन भाव से पूछने लगे- हे नाथ! क्या कारण है कि हम लोग ऐसे रंक हो गये? तब मुनिराज ने कहा- तुमने मुनि प्रदत्त रविव्रत की निंदा की है इससे यह दशा हुई है।

यदि तुम पुनः श्रद्धा सहित इस व्रत को करो तो तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति तुम्हें फिर मिलेगी सेठ सेठानी ने मुनि को नमस्कार करके पुनः रविव्रत किया और श्रद्धा सहित पालन किया जिससे उनको फिर से धन धान्यादि की अच्छी प्राप्ति होने लगी।

परन्तु इनके सातों पुत्र साकेतपुरी में कठिन मजूरी करके पेट पालते थे तब एक दिन लघु भ्राता गुणधर वन में घास काटने को गया था, शीघ्रता से गट्ठा बाँधकर घर चला आया और हँसिया (दांतडु) वही भूल आया। घर आकर उसने भावज से भोजन माँगा। तब वह बोली-

लालाजी! तुम हँसिया भूल आये हो, सो जल्दी जाकर ले आओ पीछे भोजन करना, अन्यथा हँसिया कोई ले जायेगा तो सब काम अटक जायेगा। बिना द्रव्य नया दांतडा कैसे आयेगा? यह सुनकर गुणधर तुरन्त ही पुनः वन में गया सो देखा कि हँसिया पर बड़ा भारी सांप लिपट रहा है।

यह देखकर बहुत दुःखी हुये कि दांतडा बिना लिये तो भोजन नहीं मिलेगा और दांतडा मिलना कठिन हो गया है तब वे विनीत भाव से सर्वज्ञ वीतराग प्रभु की स्तुति करने लगे उनकी एकाग्रचित्त स्तुति

करने के कारण धरणेन्द्र का आसन हिला, उसने समझा कि अमुक स्थानों में पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के भक्त को कष्ट हो रहा है।

तब करुणा करके पद्मावती देवी को आज्ञा की कि तुम जाकर प्रभुभक्त गुणधर का दुःख निवारण करो। यह सुनकर पद्मावती देवी तुरन्त वहाँ पहुँची, और गुणधर से बोली-

हे पुत्र! तुम भय मत करो। यह सोने का दांतडा और रतन का हार तथा रत्नमई पार्श्वनाथ प्रभु का बिंब भी ले जाओ, सो भक्ति भाव से पूजा करना इससे तुम्हारा दुःख शोक दूर होगा।

गुणधर देवी द्वारा प्रदत्त द्रव्य और जिनबिंब लेकर घर आये। प्रथम तो उनके भाई यह देखकर डरे, कि कहीं यह चुराकर तो नहीं लाया है, क्योंकि ऐसा कौन सा पाप है जो भूखा नहीं करता है, परन्तु पीछे गुणधर के मुख से सब वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार दिनों दिन उनका कष्ट दूर होने लगा और थोड़े ही दिनों में वे बहुत धनी हो गये। पश्चात् उन्होंने एक बड़ा मन्दिर बनवाया, प्रतिष्ठा कराई, चतुर्विध संघ को चारों प्रकार का यथायोग्य दान दिया और बड़ी प्रभावना की।

जब यह सब वार्ता राजा ने सुनी, तब उन्होंने गुणधर को बुलाकर सब वृत्तांत पूछा- और अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी परम सुन्दरी कन्या गुणधर को ब्याह दी तथा बहुत सा दान दहेज दिया। इस प्रकार बहुत वर्षों तक वे सातों भाई राज्यमान्य होकर सानन्द वहीं रहे, पश्चात् माता-पिता का स्मरण करके अपने घर आये और मात-पिता से मिले। पश्चात् बहुत काल तक मनुष्योचित सुख भोगकर संन्यासपूर्वक मरण कर यथायोग्य स्वर्गादि गति को प्राप्त हुए और गुणधर उससे तीसरे भव मोक्ष गये।

इस प्रकार व्रत के प्रभाव से मतिसागर सेठ का दारिद्र दूर हुआ और उत्तमोत्तम सुख भोगकर उत्तम उत्तम गतियों को प्राप्त हुए। जो

और भव्यजीव श्रद्धा सहित बारह वर्ष व्रत पूर्वक इस व्रत का पालन करेंगे, वे उत्तम गति पावेंगे।

यह विधि रविव्रत फल लियो, मतिसागर गुणवान।
दुःख दरिद्र नशो सकल, अन्त लहो निरवान।।

□□□

राजा श्रेणिक की कथा

मध्यलोक के बीचों बीच जम्बूद्वीप है इसको घेरे हुए कई द्वीप एवं समुद्र हैं। यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तार वाला है। इस द्वीप के बीच में स्वर्णाभा युक्त सुदर्शन मेरु है। यह एक लाख चालीस योजन ऊँचा और भद्रशाल, नंदन, सौमनस एवं पाण्डुक चार वनों से सुशोभित है, इन वनों में चारों दिशाओं में 16 जिनालयों से पूज्य एवं चतुर्थ वन में चार पाण्डुक शिलाओं के कारण इसकी पवित्रता एवं वन्दनीयता सर्वविदित है। चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों की साधना स्थली एवं देवों का क्रीड़ा स्थल है। अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन एवं योगियों के स्मरण मात्र से मनुष्यों के समस्त पाप कट जाते हैं। इस मेरु की दक्षिण दिशा में भरतक्षेत्र है, इसका आकार धनुष के समान है इसमें वाण के समान गंगा तथा सिन्धु नाम की दो नदियाँ बहती हैं इस भरत क्षेत्र के बीच में पूर्व से पश्चिम तक लम्बा एवं 25 योजन ऊँचा विजयार्द्ध पर्वत है। जिसकी दोनों श्रेणियों में विद्याधर हमेशा निवास करते हैं। विजयार्द्ध पर्वत और गंगा सिंधु नदियों के कारण भरत क्षेत्र के छह भाग हो गये हैं। भरत क्षेत्र के दक्षिण भाग में आर्यखण्ड नाम का प्रदेश है, जिसमें सुख-दुख सहित पाप-पुण्य को धारण करने वाला छह कालों का समूह सदा प्रवर्तित होता रहता है जो उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो भेद रूप है।

उत्सर्पिणी-में शरीर, आयु, सुख आदि बढ़ते क्रम में और अवसर्पिणी में घटते क्रम में रहते हैं यह सुखमा-सुखमा, सुखमा,

सुखमा-दुखमा, दुखमा-सुखमा, दुखमा, एवं दुखमा-दुखमा रूप होती हैं।

आर्यखण्ड में अनेक बड़े बड़े देश, नगर व ग्राम हैं। इस आर्यखण्ड में मध्यभाग में एक मगध नामक देश है। इस देश में एक गाँव दूसरे गाँव के बहुत निकट है यहाँ के लोग धन-धान्य से सम्पन्न है, फलों की प्रचुरता है सरोवरों में निर्मल जल भरा हुआ है, यहाँ के प्रत्येक वन प्रान्त में पहाड़ की चोटियों पर तथा नदियों के किनारे मुनिगण दिव्य उपदेश देते हुए आत्मचिन्तन में लीन रहते हैं। श्रावकों के पुण्योदय से महामुनिराजों का सान्निध्य समय-समय पर प्राप्त होता रहता है। इस मगध देश में जन-धन से पूर्ण राजगृह नाम का अत्यन्त रमणीय नगर है यह जन-धन एवं अन्न का भण्डार है। यहाँ सभी ज्ञानवान, धनवान हैं। स्त्रियाँ शीलवती एवं देवांगनाओं की तरह सुन्दर हैं। यहाँ के निवासी धर्मपरायण एवं व्रतों को धारण करने वाले भव्य जीव हैं। ये चारों प्रकार के दान देने में सदा तत्पर रहते हैं। ये आपसी बैर-भाव छोड़कर दान पूजा में प्रतिइन्दता रखते हैं। इस राजगृह नगर में उपश्रेणिक राजा राज्य करते थे। राजा उपश्रेणिक यशस्वी, प्रतापी, ज्ञानी, धर्मात्मा एवं ऐश्वर्यशाली थे। आप दानशीलता, तेजस्विता, प्रताप, वैभव तथा गंभीरता की प्रतिमूर्ति थे। अनेक राजा आपके सेवक थे। उपश्रेणिक की पटरानी का नाम इन्द्राणी था नाम के सदृस्य वह इन्द्राणी के समान गुण संपन्न थी। दोनों का दाम्पत्य जीवन सुखमय एवं पवित्र था। इनकी कीर्ति-पताका चारों ओर फहरा रही थी। धर्म एवं पुण्य कर्म के उदय से ही श्री, स्त्री कीर्ति मिलती है, इस समस्त वैभव की जड़ धर्म है। अतः भव्य जीवों को धर्म का मार्ग ही सच्चा मार्ग है, इन्हें सदा धर्म की आराधना करना चाहिए। धर्म के प्रभाव से उपश्रेणिक और इन्द्राणी का जीवन सुखपूर्वक चल रहा था। कुछ समय के बाद उनके श्रेणिक नामक एक प्रतिभाशाली पुत्र हुआ। यह पुत्र उत्तम लक्षणों से युक्त, शुभ आकार वाला, कांति वर्धक एवं अत्यन्त सुन्दर था। बुद्धि की प्रखरता बाल्यकाल में ही प्रकट हो गई

थी। अल्प समय में ही शास्त्रों के अध्ययन से निपुणता प्राप्त कर ली थी। उपश्रेणिक के 500 पुत्र थे जो अनेक गुणों से युक्त थे।

उस समय चन्द्रपुर में सोमशर्मा नामक एक अभिमानी राजा राज्य करता था। वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था उपश्रेणिक ने उसके अहंकार को चूर करने के लिए अपनी सेना लेकर चढ़ाई कर दी।

युद्ध हुआ, विजयश्री उपश्रेणिक को मिली तथा सोमशर्मा का मान गलित करके नीतिपूर्वक उसे उसका राज्य लौटा दिया। सोमशर्मा युद्ध में हार जाने के कारण बड़ा दुखी हुआ। हार की कसक उसे सदैव कचोटती रहती थी, वह प्रतिशोध लेने का मौका देखता रहा। एक दिन उसने महाराज उपश्रेणिक के पास स्वर्ण धन-धान्य एवं रत्नाभूषणों के साथ एक दुष्ट दगाबाज अश्व भेंट स्वरूप भेजा। अश्व की सुन्दरता से प्रभावित होकर उसकी परीक्षा हेतु उस पर आरूढ़ होकर वन की ओर गये। चाबुक लगते ही घोड़ा सरपट भागने लगा और जब तक महाराज सम्हलते तब तक वह अश्व उन्हें अंधकार पूर्ण गढ़डे में गिराकर वन में विलुप्त हो गया। राजा मूर्छित अवस्था में वहाँ पड़े रहे मूर्च्छा दूर होने पर अस्वस्थ अवस्था में णमोकार मंत्र का जाप करते रहे। वन में भीलों के गाँव का मुखिया यमदण्ड घूमते घूमते उस अंधकार पूर्ण गड्ढे के पास पहुँचा और आवाज सुनकर उन्हें बाहर निकाला और महाराज को अपने साथ घर ले आया वहाँ उसकी तिलकवती राजा की सेवा। एवं भोजन व्यवस्था से महाराज स्वस्थ होने लगे। नीरोग होते ही उनका मन तिलकवती के रूप सौंदर्य की ओर आकृष्ट हो गया। राजा उपश्रेणिक ने यमदण्ड से कहा कि मैं आपकी कन्या से बहुत प्रसन्न हूँ, अतः आप इस कन्या को मुझे प्रदान कर यश के भागी बनिये। यमपाल ने कहा यदि मैं कन्या आपको दे दूँ तो वह दासी की तरह और उसका पुत्र दास की तरह जीवन व्यतीत करेगा अतः आप वचनबद्ध हों कि मेरी कन्या के पुत्र

को ही आप अपना उत्तराधिकारी बनायेंगे तो मैं अपनी कन्यार का विवाह विधिवत् आपके साथ कर सकता हूँ। महाराज उपश्रेणिक ने यमदण्ड की बात स्वीकार कर ली। तिलकवती का विवाह उपश्रेणिक के साथ हो गया। महाराज अपनी राजधानी राजगृही आ गये। सुखपूर्वक रहते हुए कालान्तर में तिलकवती के चिलाती नाम का रूपवान पुत्र हुआ। महाराज उपश्रेणिक का जीवन सुखपूर्वक बीत रहा था किन्तु यमदण्ड को दिया हुआ वचन बार-बार चिन्ता का विषय बना हुआ था। वे सोचते थे कि तिलकवती के पुत्र चिलाती को राज सिंहासन पर बैठाने का वचन तो दे दिया किन्तु अपने योग्य पुत्रों के रहते मैं उसको राज्य किस प्रकार दे सकूंगा। एक दिन उपश्रेणिक ने ज्योतिषी को बुलाकर कहा हमारे इन पुत्रों में राजा कौन बनेगा? ज्योतिषी ने कुछ उपाय बताकर पुत्रों की परीक्षा करने को कहा, जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो वह राजा बनेगा ऐसा जानना। सभी परीक्षाओं में श्रेणिक उत्तीर्ण हुआ। उपश्रेणिक को निश्चय हो गया कि श्रेणिक ही राजा होगा। ऐसा विचार कर राजा चिन्ता में पड़ गये। चिन्ता के निवारण के लिए अपने सुमति एवं मतिसागर नामक दो बुद्धिमान मंत्रियों को बुलाया और अपनी चिंता का कारण कहा। मतिसागर मंत्री ने उपश्रेणिक को विश्वास दिलाया कि मैं कुमार श्रेणिक को अन्यत्र भिजवा दूंगा। मतिसागर मंत्री को अपने अनुकूल पाकर महाराज प्रसन्न हो गये। एक दिन मतिसागर मंत्री ने राजकुमार श्रेणिक से कहा कि कुमार महाराज आपसे किसी कारणवश विशेष रुष्ट हो गये हैं। यदि आप रहेंगे तो वे न जाने आपको कौन सा दण्ड देंगे अतः आपके हित में यही उत्तम है कि आप यहाँ से कहीं अन्यत्र चले जाये। जिससे कि महाराज की क्रोधाग्नि से आपकी रक्षा हो जाये कुमार श्रेणिक मंत्री मतिसागर के कपट जाल में फंस गये और अपने पाँच हजार अंगरक्षकों के घेरे में छुपकर राजगृही नगर को छोड़कर गुप्त प्रवास हेतु निकल पड़े। राजकुमार श्रेणिक के चले जाने से माता इन्द्राणी शोकाकुल हो गई नगर में कोहराम मच गया।

कुमार श्रेणिक की मुलाकात राह चलते गुणी एवं वयोवृद्ध सेठ इन्द्रदन्त से हो गई, उनके सद्व्यवहार एवं मिलनसार स्वभाव से कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुए। मार्ग में चलते हुए कुमार को बौद्ध साधुओं का संघ मिला उनमें से एक साधु ने राजकुमार श्रेणिक के लक्षणों से अनुमान लगा लिया कि यह भविष्य में राजा बनेगा यह निश्चित है। ऐसा विचार कर उसने राजकुमार से कहा हे राजकुमार ! आप यहाँ अकेले कैसे भ्रमण कर रहे हैं। कुमार ने उत्तर दिया मैं राजा के क्रोध के कारण राज परिवार को छोड़कर आया हूँ। कुमार का उत्तर सुनकर बौद्ध साधुओं के आचार्य ने कुमार का सम्मान किया और कहा कि आपके अच्छे दिन शीघ्र आवेंगे आप ही मगधाधिपति होंगे। अतः आप बौद्ध धर्म ग्रहण कर लीजिए। इसकी कृपा से राज्य सुख तथा मनोरथ की सिद्धि अवश्य होगी और बौद्ध धर्म की विशेषताएँ एवं उसके फल आदि का वर्णन करने लगे कि बौद्धधर्म ही संसार में सर्वश्रेष्ठ है। बौद्धाचार्यों के वचनों का प्रभाव वांछित कार्य कर गया राजकुमार श्रेणिक के हृदय में बौद्धधर्म के प्रति अगाध श्रद्धा हो गयी। कुछ समय बाद इन्द्रदत्त के साथ राजकुमार आगे प्रस्थान कर गये सेठ इन्द्रदत्त के साथ राह में चलते हुए अनेक बुद्धिमत्ता पूर्ण वार्तालाप हुए जिनका अभिप्राय इन्द्रदत्त नहीं समझ सका। घर जाकर सब बातें अपनी पुत्री नंदश्री से कही। पुत्री बुद्धिमान थी उसने उन्हें बुद्धिमान समझकर कर पर बुलवाया। उन्होंने अनेक बौद्धिक क्रियाकलाप वचनालाप के द्वारा एक दूसरे की परीक्षा की जिसमें दोनों सफल रहे। गुणों की श्रेष्ठता से दोनों में परस्पर प्रेम हो गया और इन्द्रदत्त ने भी शुभ मुहूर्त में दोनों का पाणिग्रहण संस्कार कर दिया। कुमार श्रेणिक सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे। कालान्तर में नंदश्री के अभयकुमार का जन्म हुआ जिससे जीवन में प्रतिदिन आनंदोत्सव होने लगा।

राजगृह नगर में महाराजा उपश्रेणिक ने जब अपनी मृत्यु की निकटता का अनुभव किया। तब उन्होंने अपने प्रिय पुत्र चिलाती को

अपने विशाल राज्य का युवराज बना दिया और स्वयं राज्यकार्य से विरक्त होकर आत्मचिन्तन में समय व्यतीत करने लगे। थोड़े दिन में ही उपश्रेणिक का देहान्त होते ही युवराज चिलाती मगध देश का सम्राट बन गया। राज्य प्राप्त होने पर वह स्वतंत्र होने के साथ स्वच्छन्द भी हो गया जिससे उसके अत्याचार से समस्त प्रजा परेशान रहने लगी। उसकी अयोग्यता से सभी लोगों ने विचार किया कि राज्य शासन इससे चलने वाला नहीं है अत: सबका ध्यान निर्वासित निर्दोष युवराज श्रेणिक पर गया। जिसे राजा ने राज्याधिकार से वंचित कर राज्य से निर्वासित कर दिया था। सभी प्रजाजन एवं मंत्रियों के परामर्श से कुशल दूत के द्वारा श्रेणिक के पास शीघ्र पधारने के लिए एक पत्र भेजा। जिसमें राज्य शासन सम्हालने की प्रार्थना की गई थी। दूत के द्वारा समाचार प्राप्त कर श्रेणिक अत्यन्त दुखी हुए। इन्द्रदत्त से अनुमति एवं नंदश्री से राजगृह पहुँचकर अभयकुमार सहित बुलवाने का आश्वासन देकर जाने को तैयार हुए। तब सेठ इन्द्रदत्त ने पाँच हजार बलवान सैनिक साथ में भेजे। सैनिकों के साथ श्रेणिक मगध की सीमा पर पहुँच गये मंत्री गणों ने श्रेणिक से राजगृह चलने की प्रार्थना की। उधर चिलाती ने जब श्रेणिक के आने का समाचार सुना तब वह भयभीत होकर कुछ धन लेकर एक दुर्ग में छिप गया। मगध वासियों ने श्रेणिक का स्वागत किया एवं मगध देश का राज्यभार श्रेणिक को सौंप दिया महाराज श्रेणिक ने राज्य सम्हालते ही योग्य रीति नीति से राज्य का संचालन किया। जिससे प्रजाजन सुखी समृद्ध एवं खुशहाल होने लगे।

बहुत समय बीत जाने पर भी मगध देश का कोई संदेश नहीं मिला तब सेठ इन्द्रदत्त ने नंदश्री और अभयकुमार को राजगृह के लिए विदा किया। राजगृही आते हुए राजा श्रेणिक के कोप से ग्रसित नंद ग्राम के ग्रामवासियों से राजा श्रेणिक द्वारा पूछे गये विलक्षण एवं गूढ़ प्रश्नों का बुद्धिमतापूर्ण सटीक समाधान देकर उनकी रक्षा की। ने गुप्तचरों से अभय कुमार एवं नंदश्री के आगमन का समाचार सुन

श्रेणिक प्रसन्न हुए उन्होंने अभय कुमार को सम्मान सहित राजगृह बुलवा लिया।

आर्यखण्ड के ही अयोध्या में भरत नामक चित्रकार रहता था। चित्रकारी में वह अत्यन्त निपुण था। चित्रकला को निखारने के लिए उसने विचार किया कि कोई ऐसी युक्ति प्राप्त हो जिससे तूलिका रखते ही सुन्दर चित्र बन जायें। इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसने पद्मावती देवी की आराधना की और उनसे इच्छित वरदान माँग लिया।

अब वह चिन्तन किये गए चित्र को तूलिका रखते ही बनाने लगा। असंभव एवं विलक्षण चित्र भी कुशलता से चित्रित करने के कारण उसका यश चारों ओर फैलने लगा। वह चित्रकार समस्त भूखण्ड पर भ्रमण कर यशकीर्ति एवं वैभव का उपयोग करने लगा।

एक समय वह भ्रमण करता हुआ सिन्ध देश में विशालापुरी नामक नगर में पहुँचा। यहाँ के राजा चेटक एवं पट्टरानी सुभद्रा थी। महाराज चेटक की सात कन्यायें थी। जिनके नाम मनोहरा, मृगावती, वसुप्रभा, प्रभावती, ज्येष्ठा, चेलना और चन्दना थे। ये सभी बहनें जैन धर्म में दृढ़ आस्था रखती थी। विशालापुरी में चित्रकार भरत के आने का समाचार फैलते-फैलते महाराज चेटक के कानों तक जा पहुँचा। महाराज ने चित्रकार को दरबार में बुलाया और अपनी कन्याओं के चित्र बनाने को कहा। आज्ञा पाते ही चित्रकार भरत ने राजकुमारियों के सुन्दर चित्र चित्रित कर दिये। महाराज के प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार दिया। महाराज चेटक की प्रथम कन्या मनोहरा का विवाह कुण्डलपुराधीश नाथ वंशीय सिद्धार्थ के साथ दूसरी कन्या मृगावती का कौशाम्बी नरेश नाथ वंशीय नृपति नाथ के साथ तीसरी कन्या व सुप्रभा का विवाह हरकच्छपुर के सूर्यवंशी राजा दशरथ के साथ तथा चतुर्थ कन्या प्रभावति का विवाह कच्छदेश के रोरुकपुर के नृपति महाचतुर के साथ किया। अन्य तीन कन्याओं का विवाह अभी नहीं

हुआ था। एक समय वे तीनों कुमारी राजकन्यायें अपनी बड़ी बहिन ज्येष्ठा के साथ भरत चित्रकार के पास गई और ज्येष्ठा ने भरत से कहा कि मैं तुम्हें श्रेष्ठ चित्रकार तभी मानूँगी जब तुम चेलना का निरावरण व निर्दोष चित्र बना सकोगे। ऐसा करना भरत को कोई बड़ी बात नहीं थी, उसने तूलिका रखते ही चेलना का निरावरण चित्र बना दिया जिसमें समस्त बारिकियों को ध्यान में रखा गया था। जिसे देखकर ज्येष्ठा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। इसकी सूचना किसी तरह राजा चेटक को लगी, तो उन्होंने कुपित होकर चित्रकार भरत को देश से निकाल दिया। चित्रकार देश से निष्कासित होकर भ्रमण करता हुआ राजगृह आ गया, उसने प्रतिशोध की भावना से चेलना का एक मनोहारी चित्र बनाकर राजा श्रेणिक को भेंट कर दिया। चित्र को देखकर श्रेणिक चेलना पर आसक्त हो गये और उदास रहने लगे। पिता की उदासी का कारण जानकर अभयकुमार ने चेलना को लाने की रूपरेखा बनाई। राजा चेटक जैन धर्मानुयायी था उसकी तीनों कुमारी कन्यायें जैन धर्म में अनन्य श्रद्धा रखती थी। अतः राजा चेटक ने अपनी कन्याओं का पाणिग्रहण जैन राजा से करने का निश्चय कर रखा था। जबकि राजा श्रेणिक बौद्ध धर्मावलम्बी था अतः अभयकुमार ने छद्म रूप से जैनधर्म धारण कर छलपूर्वक चेलना को राजगृह ले आया तथा राजा श्रेणिक का विवाह कर दिया गया। चेलना ने राजगृह में देखा कि यहाँ कोई जैनधर्म नहीं मानता है उसके साथ छल किया गया है तब वह अत्यन्त दुःखी हुई। चेलना को दुखी देखकर श्रेणिक ने कहा कि तुम्हारी जिस धर्म में आस्था हो उसे पालन करो ऐसा सुनकर चेलना ने नियमानुसार देव दर्शन पूजा स्वाध्याय आदि प्रारंभ कर दिया। बौद्ध साधुओं को पता चला कि राजमहल में जैनधर्म का प्रचार-प्रसार प्रारंभ होने वाला है तब वे राजा श्रेणिक के पास आये और उन्हें सचेत किया कि तुम्हारे महल में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार हो रहा है जो बौद्धधर्म के लिए अत्यन्त घातक है अतः आप शीघ्र ही इसका निराकरण कीजिए। राजा श्रेणिक ने कहा कि हे महात्मन्!

हमने उसे बहुत समझाया किन्तु उसने हमारे सभी तर्क बे असर कर दिये। अब कृपाकर आप ही समझाइये। बौद्ध भिक्षुओं ने चेलना को बहुत समझाया, चेलना के एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने अपने को सर्वदर्शी कहा तब चेलना ने उन्हें भोजन के लिए बुलाकर उनके बायें पैर की पादुका के टुकड़े कर स्वादिष्ट भोजन में मिलाकर उन्हें खिला दी फिर उनके पूछने पर चेलना ने कहा कि आप सर्वदर्शी हैं आप ही बताइये कि पादुका कहाँ पर हैं। जब वे ज्ञात नहीं कर पाये तब चेलना ने कहा कि वह पादुका आपके पेट में है, वमन करने पर पादुका के टुकड़े निकले। इस पर वे अत्यन्त लज्जित एवं क्रोधित हुए तथा राजा श्रेणिक के पास आकर सारा वृतान्त सुनाया और अपमान का घूंट पीकर वापस चले गये। अनेक प्रसंगों पर राजा श्रेणिक ने बौद्ध गुरुओं द्वारा रानी चेलना को दीक्षित करने का प्रयास किया किन्तु चेलना पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं हुआ। अपितु भिक्षुओं को ही निरुत्तर होना पड़ा। निरन्तर स्वाध्याय एवं दृढ़ श्रद्धान के बल पर एक नारी ने अपने ज्ञान बल के सहारे साधु को पराजित कर दिया। राजा श्रेणिक ने भिक्षुओं की पराजय एवं अपमान से उद्विग्न होकर अन्तस के क्रोध को सम्हालते हुए चिन्तन किया कि मेरी ही शिथिलता रही नहीं तो रानी चेलना कभी का बौद्धधर्म स्वीकार कर लेती, मैं उन्हें एक दिन अवश्य बौद्धधर्म धारण करा के रहूँगा।

कुछ समय उपरान्त एक दिन आखेट क्रीड़ा के लिए वन प्रान्तर में गये। वहाँ पर उन्हें ध्यानस्थ यशोधर मुनि दिखाई दिये। मुनिराज को देखकर राजा श्रेणिक को बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि उन्होंने इससे पहले कभी भी दिगम्बर मुनि को ध्यानस्थ नहीं देखा था। श्रेणिक ने अपने अनुचर से पूछा कि यह सिर मुड़ाकर नग्नावस्था में सर्वांग मलीन होकर कौन खड़ा है?

अनुकूल अवसर देखकर बौद्ध अनुयायी अनुचर ने राजा को उत्तेजित करने के भाव से कहा कि हे पृथ्वीनाथ! यह वही पाखंडी

है जिसके वाग्जाल से भ्रमित होकर रानी चेलना जैनी बनी है। यह उनका गुरु है। श्रेणिक की बौद्ध भिक्षुओं के अपमान की प्रतिशोध ज्वाला प्रज्वलित हो गई उन्होंने जैन मुनि को अपमानित करने का निश्चय कर लिया। जिससे चेलना की हठवादिता स्वयमेव निरस्त हो जावेगी। ऐसा विचार कर श्रेणिक राजा ने 500 प्रशिक्षित शिकारी कुत्तों को महामुनि के ऊपर छोड़ दिया। राजा सोचता था कि ये कुत्ते मुनिराज के टुकड़े टुकड़े कर देंगे। किन्तु उस समय उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उनके व्याघ्र सदृश नृशंस कुत्ते मुनिराज के समीप जाकर भेड़ के समान शांत हो गये और दुम हिलाते हुये मुनिराज के चरणों में निस्तेज होकर बैठ गये। राजा ने विचार किया कि मुनि ने कुत्तों पर किसी प्रकार मंत्र बल का प्रयोग किया है। अतः उसका क्रोध इतना प्रचण्ड हो गया कि उन्होंने मुनिराज के ऊपर शर-संधान कर प्राण दण्ड देने का निश्चय कर लिया/ तभी एक भयानक सर्प विकराल फण फैलाकर सामने आ गया नाग प्राणघातक हो सकता है इसका वध करना चाहिए ऐसा विचार कर सर्प को मारकर तीव्र काषायिक परणामों तथा बदले की भावना के साथ मुनिराज के गले में डाल दिया। राजा श्रेणिक ने तीव्र अशुभ परिणामों के साथ मुनिराज के ऊपर उपसर्ग करके सप्तम नरक का बन्ध कर लिया। अपने दुष्कृत्य से प्रसन्न होकर श्रेणिक राजमहल लौट आये। बौद्ध भिक्षुओं ने समाचार सुनकर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए राजा की प्रशंसा की। दो तीन दिन तक महाराज की चेलना से भेंट नहीं हो सकी। चौथे दिन वे चेलना के महल में गये। उन्होंने यशोधर मुनि के साथ किये दुष्कर्म का वर्णन प्रसन्नता पूर्वक किया। महाराज के द्वारा मुनिराज का अपमान एवं उपसर्ग की खबर सुनकर चेलना अत्यन्त दुःखी हुई। रुंधे कण्ठ से चेलना ने कहा कि महाराज! आपने बहुत ही अनर्थ कर लिया है आपने अपने लिए घोर नरक का मार्ग प्रशस्त किया है। चेलना अपने-आपको धिक्कारने लगी उसका एक क्षण भी रुकना दुष्कर लगने लगा। अपने शांत और अथाह श्रद्धा

सरोवर को अशान्त न होने देने वाली चेलना का मन इस समाचार से उद्वेलित होने लगा। चेलना की बेचैनी देखकर श्रेणिक ने कहा इस तुच्छ घटना के लिए व्यर्थ में क्यों अधीर हो रही हो? शोक करना उचित नहीं है क्योंकि वह पाखंडी मुनि अपने गले से मृत सर्प निकालकर कभी का भाग गया होगा। चेलना ने दुःख एवं दृढ़ता से कहा कि जैनमुनि सामान्य आपत्तियों से विचलित नहीं होते हैं वे उसी स्थान पर उसी अवस्था में अखण्ड समाधि लगाये बैठे होंगे। चेलना के युक्तिपूर्ण वचनों से राजा निरुत्तर हो गये और कहने लगे कि हे रानी ! शांत हो जाओ यदि तुम्हें विश्वास है तो चलो चल कर देखते हैं कि मुनिराज क्या कर रहे हैं ? मुनिराज के पास जाने की बात सुनकर चेलना प्रसन्न चित्त होकर मुनि दर्शन के लिए उत्साहित हो उठी। राजा श्रेणिक प्रमुख नागरिक अंगरक्षक के साथ रानी को पालकी में बैठाकर अल्पकाल में ही मुनिराज के पास पहुँच गये। राजा ने मुनिराज के गले में जिस अवस्था में सर्प डाला था उसी अवस्था में ध्यानस्थ मुनिराज को देखकर श्रेणिक आश्चर्य चकित हो गये। राजा-रानी ने मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दी चेलना ने मुनिराज के गले से मृत सर्प को हटाया। मृत सर्प में हजारों चीटियाँ लग गई थी जिससे मुनिराज का शरीर छलनी हो गया था। जगह-जगह रक्त निकलने लगा था। चेलना ने कोमल वस्त्र से चीटियों को अलग कर पीड़ा को शमन करने के लिए चन्दन का लेप किया। महाराज श्री ध्यानमग्न थे राजा रानी सहित सभी लोग मुनिराज के चरणों में श्रद्धा के साथ नमस्कार करके बैठ गये। प्रातःकाल होने पर रानी चेलना ने मुनिराज की स्तुति कर क्षमा याचना की। परमज्ञानी मुनिराज ने राजा-रानी दोनों पर समान भाव से वात्सल्य भाव प्रकट कर धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देकर उपदेश दिया। उनकी समदर्शिता को देखकर राजा ने निश्चय किया कि ये साधारण पुरुष नहीं है। ये महामुनि हैं ये धन्य हैं जिन्होंने सर्प डालने वाले और निकालने वाले में कोई अन्तर नहीं किया असहनीय कष्ट देने वाले को भी वात्सल्य पूर्वक क्षमा

किया। मेरे समान संसार में और कोई पापी नहीं होगा। मैंने बहुत भारी दुष्कर्म किया है महामुनि के साथ घोर अन्याय किया है, जिसके कारण मुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। मैं इस पाप का प्रायश्चित कैसे करूं? अब एक ही उपाय शेष है कि मैं अपने हाथों से अपने खडग द्वारा अपना पापी मस्तक काट कर छिन्न भिन्न कर डालूँ। इसके अलावा और कोई रास्ता प्रतीत नहीं होता है। इस प्रकार सोचते हुए श्रेणिक का हृदय अपने दुष्कर्म का स्मरण कर शोक संप्त हो गया। आंखों से अश्रुधारा बहने लगी शीश लज्जा से झुक गया और मुख से शब्द निकल पड़े हे प्रभु ! मेरे अपराध क्षमा कीजिए मैं घोर पापी हूं। मुनिराज ने श्रेणिक से आत्म अवज्ञा के शब्द सुनकर उन्हें शान्त करते हुए कहा, हे राजन! तुम्हारे हृदय में इस समय पापपूर्ण विचार उठ रहा है तुम आत्महत्या करना चाहते हो ! आत्मघात का विचार त्याग दो। मुनिराज का उपदेश सुनकर श्रेणिक के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने चेलना से कहा-मुनिराज ने मेरे हृदय की बात कैसे जान ली? इसका मुझे आश्चर्य हो रहा है। अब मेरी समझ में आ गया कि ये सामान्य पुरुष नहीं है। तब चेलना ने कहा कि महामुनि अनंतज्ञान के भंडार हैं। उनके ज्ञान में चराचर की घटनायें हस्तरेखा के समान स्पष्ट हैं उन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा आपकी समस्त मनोभावनाएं ज्ञात कर ली है। ये रागद्वेष से रहित निर्विकारी एवं समताभाव को धारण करने वाले हैं। ये आपके पूर्वभव का वृतान्त कह सकते हैं। महामुनि के ज्ञान की महिमा सुनकर श्रेणिक के नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी उनके हर्ष का पारावार नहीं रहा। श्रेणिक ने मुनिराज से करबद्ध निवेदन किया कि हे महाराज! मेरे पूर्वभव का वृतान्त कहिए-मुनिराज के मुख से पूर्वभव का वृतान्त सुना तो पूर्वजन्म की समस्त घटनायें चलचित्र वत स्मरण हो आई। श्रेणिक विचार करने लगे यशोधर महामुनि का ज्ञान अनंत है, इनकी धीरता, सहृदयता, सहनशीलता अनुपम है। इनके समान दुनिया में कोई क्षमाशील नहीं है। मुनिराज जिनागम के सिद्धान्त एवं सत्य की

प्रत्यक्ष प्रतिमा हैं। इनके उपदेश में जो जीवादि तत्वों का वर्णन है उससे परे समस्त मिथ्यात्व है। जैनागम के प्रति श्रेणिक की अगाध श्रद्धा हो गई। उनका हृदय परिवर्तित हो चुका था। श्रावक के व्रत ग्रहण कर मुनिराज के चरणों में नमन कर राजा रानी के साथ राजमहल में लौट आये। चेलना के साथ पूजा स्वाध्याय एवं मुनि भक्ति करते हुए समय व्यतीत करने लगे। इस प्रकार महासती चेलना का राजा श्रेणिक को जिनधर्म पर आरूढ़ करने का संकल्प पूर्ण हो गया। इसके लिए रानी चेलना ने देवदर्शन के अभाव में कई दिन निराहार रहकर भी हार नहीं मानी। विधर्मी राजा के साथ विपरीत परिस्थियों में रहकर उसका श्रद्धान डगमगाया नहीं था। बौद्ध साधुओं द्वारा ली गयी परीक्षा में निर्भीकता पूर्वक जैन सिद्धांतों से उन्हें निरुत्तर ही नहीं किया उनकी झूठी श्रद्धा एवं दंभ को भी झंझोरकर उन्हें सोचने पर मजबूर करदिया। स्वयं के आचरण को सम्यक् रूपेण रखते हुए सदैव जिनभक्ति साधना एवं स्वाधयाय से आत्मशक्ति वृद्धिंगत की थी।

दृढ़ संकल्पशक्ति से असंभव कार्य भी संभव हो जाते हैं। रानी चेलना ने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपने दृढ़ श्रद्धान एवं अडिग आत्मविश्वास से जहाँ बौद्ध धर्मावलंबी महाराजा श्रेणिक के तीव्र मिथ्यात्व का गलन किया वहीं उन्हें सद्श्रावक के सम्यक् आचरण को भक्ति के जल से सिंचित करके संयम, त्याग एवं तपस्या से पुष्ट भी किया।

बुद्धिमान मंत्रियों से सुशोभित राजदरबार में राजा श्रेणिक विराजमान थे तभी वनमाली ने षट्ऋतुओं के पुष्प एवं फल भेंट कर विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर के समवशरण के आगमन की सूचना दी। माली के मुख से समवशरण की सूचना सुनकर श्रेणिक आनंद विभोर हो उठे। सिंहासन से उतरकर भगवान महावीर को भक्तिभाव से परोक्ष साष्टांग नमन किया। भक्तिभाव से सराबोर राजा ने समवशरण चलने की आज्ञा प्रसारित कर दी। समवशरण में पहूंचकर श्रेणिक ने अष्ट

द्रव्य से पूजा करके भक्तिपूर्वक से स्तुति की और उपदेश सुनने के लिए सभा में बैठ गया। उपदेश सुनकर श्रेणिक के हृदय में जैनधर्म के प्रति जो शंकायें थी उन सबका पूर्ण रूपेण समाधान हो गया। गणधर परमेष्ठी से श्रेणिक के अपने विषय में प्रश्न करने पर गणधर ने कहा कि हे श्रेणिक! पवित्र पुराणों के श्रवण से तुम्हारा हृदय पवित्र हो गया है। आपको सम्यकदर्शन की प्राप्ति हो गई है सम्यकदर्शन के प्रभाव से तुम इस भारत भूमि में पद्मनाभ नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे, आप आसन्न भव्य हैं। श्रेणिक ने सद्विचारों से अर्हत भक्ति द्वारा सातवें नरक की आयु का अपकर्षण प्रथम नरक आयु में कर लिया। रानी चेलना ने सरागता को वीतरागता से परिमार्जित करके राजा श्रेणिक के श्रद्धान को इतना परिपक्व किया कि वह भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में प्रथम श्रोता बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सके। राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से 60 हजार प्रश्नों के माध्यम से अपने ज्ञान एवं परिणामों को अत्यंत विशुद्ध किया। तीनों लोकों के जीवों के कल्याण की भावना के साथ अपाय विचय धर्मध्यान की भूमिका में दर्शन विशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी उन्होंने भगवान महावीर के पादमूल में कर लिया। श्रेणिक ने गौतम गणधर से पूछा कि हे भगवन् ! मेरे विचार निर्मल होने पर भी मुझे व्रत ग्रहण करने के भाव क्यों नहीं होते हैं? तब गणधर परमेष्ठी ने कहा-हे श्रेणिक ! जिसने अपना जीवन भोगों में व्यतीत किया हो, प्रगाढ़ मिथ्यात्व का अवलम्बन लिया हो, जिसने मुनिराज के गले में सर्प डाला हो, जिसने दुराचरण से नरकायु का बंध किया हो उसे व्रत ग्रहण के भाव नहीं होते हैं। तुम चिन्तित नहीं होओ तुम आसन्न भव्य हो। ऐसा आश्वासन प्राप्त कर श्रेणिक का मन स्थिर हो गया। फिर भी मन में ऊहापोह होता रहा कि व्रतादि ग्रहण करने के भाव सभी के नहीं होते व्रताचरण के भाव केवल उन्हें ही होते हैं जो भव्य जीव शुभगति का बंध कर लेते हैं या जो तद्भव मोक्षगामी होते हैं। धन्य है व्रतों की अचिन्त्य

महिमा! जिनके प्रभाव से जीव सद्गति प्राप्त करता है। अथवा सद्गति वालों को ही व्रतों का निर्दोष पालन हो पाता है। व्रत मानव जीवन की सौगात हैं।

इन्हें जो धारण करते हैं, वे धन्य हो जाते हैं। व्रत व्यक्ति को जीना सिखाते हैं, मोक्षमार्ग में चलने की प्रथम प्रक्रिया व्रतों से ही प्रारंभ होती है। व्रत व्यक्ति को उठना, बैठना, चलना, जागना, सोना, बोलना, मौन रहना आदि सभी क्रियायें सिखाते हैं। व्रतों से शरीर के साथ आत्मा संस्कारित होती है। व्रत वह महाऔषधि है जिसके बिना जन्म, जरा, मृत्यु जैसे भयानक रोग शान्त नहीं हो सकते हैं। व्रत सुख के भंडार की कुंजी है। संसार में ऐसा कोई सुख नहीं जो व्रतों से प्राप्त न हो, व्रत यह सूचना पट हैं जो दुर्घटना से पहले सावधान होने की सूचना देकर सुरक्षित मंजिल तक पहुँचा देते हैं। व्रत वह नौका हैं जो जिनसे संसार रूपी समुद्र पार किया जा सकता है। जिन्होंने व्रतों को ग्रहण किया वे संसार सुख भोगकर मुक्त हो गये। व्रत वह अकारण बन्धु हैं जो निस्वार्थ भाव से दूसरों का उपकार ही करते हैं। इन परम उपकारी व्रतों को धारण कर जीवन धन्य करना चाहिए। राजा श्रेणिक व्रताचरण ग्रहण नहीं कर सके, किन्तु उनकी व्रतों में अपार श्रद्धा थी। व्रतों के पालन करने का सौभाग्य सभी के जीवन में नहीं आता।

अनन्त काल बीत गया हमने समीचीन विधि से व्रतों का पालन नहीं किया या तो अनुकूल वातावरण नहीं मिला या देव शास्त्र गुरु का सान्निध्य नहीं मिला, अतः हम हमेशा से दुःख उठाते आ रहे हैं। अब यदि अवसर मिला है सभी अनकूलतायें प्राप्त हैं तो हमें व्रत धारण कर उन्हें विधिवत् पालन करना चाहिए जिस व्रत की जो तिथि जितनी अवधि, जिस मंत्र का जाप, जिस पूजा एवं कथा आदि का उल्लेख किया है उसे उसी प्रकार विधिपूर्वक पालन करना चाहिए। तभी उसका फल प्राप्त होता है। व्रताचरण की विधि आगम के अनुसार होनी चाहिए, मनमानी विधि से वह फलीभूत नहीं होते हैं।

कभी-कभी देखा देखी भी व्रत विधि अपना ली जाती है जिसे जैनागम स्वीकार नहीं करता है।

व्रतों के पालन में श्रद्धा, व्रतों के प्रति बहुमान, विनय, सर्मपण, रुचि, उत्साह एवं त्याग की भावना प्रमुख होती है। व्रतों को आत्म कल्याण की भावना से करना चाहिए, मात्र दिखावे के लिए किया गया व्रताचरण सांसारिक सुख भले दे देवें, किन्तु आत्म सुख प्राप्त नहीं करा सकेगा। अतः आप प्रक्षालन के लिए प्रत्येक मानव के जीवन में व्रतों की सरिता अवश्य प्रवाहित होना चाहिए।

विशेष ध्यान योग्य यह बात है कि अशुभ गति का बंध होने से राजा श्रेणिक प्रतिमा व्रतों को अंगीकार नहीं कर सके। परन्तु दृढ़ संकल्पशक्ति श्रद्धान से उन्होंने सम्यक् दर्शन को प्राप्त कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया और 33 सागर की सप्तम नरक की आयु का अपकर्षण प्रथम नरक की आयु में कर लिया। इस प्रकार भक्ति की शक्ति से उनका असीम संसार सिमटकर चुल्लु प्रमाण (एक पर्याय) ही रह गया।

वर्तमान में श्रावकों पर थोड़ी सी विपत्ति या असाता कर्मोदय आते ही उनका श्रद्धान विचलित हो जाता है। वह लौकिक कामनाओं की पूर्ति करने के लिए मिथ्यात्व की शरण में चले जाते हैं। थोड़ी सी प्रतिकूलता में ही विचलित होने वाले श्रावकों को राजा श्रेणिक एवं रानी चेलना के जीवन चरित्र से शिक्षा लेकर स्वयं के श्रद्धान को दृढ़ करना चाहिए। जिनशासन की शाश्वत महिमा को स्वीकार करके स्वयं को धन्य मानना चाहिए कि हमें इस हुंडावसर्पिणी पंचम काल में भी देव, शास्त्र एवं गुरु का सान्निध्य सहज ही प्राप्त हुआ है। इस सौभाग्य से मोक्षपथ पर अग्रेसित होकर आत्म कल्याण कर सकते हैं।

इस प्रकार रानी चेलना के दृढ़ श्रद्धान ने अपने पति का आत्मकल्याण करते हुए समस्त राज्य में जिनधर्म का प्रचार-प्रसार करके जिनधर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की।

❑❑❑

रूपातिशय व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्यखड में काश्मीर देश है। उस देश में हस्तिनापुर नाम का एक नगर है। उस नगर में जिनमित्र नाम का एक वैश्य रहता था, उस वैश्य की स्त्री का नाम जिननंदी था। वैश्य के सुमति नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई वह कन्या सौन्दर्य से रहित थी, इसलिये उसके साथ कोई भी विवाह करने को तैयार नहीं था। वैश्य को रात दिन इसी बात की चिन्ता रहती थी।

एक दिन मासोपवासी यशोधर नाम के मुनिराज पारणा के लिए नगर में आये, घूमते-घूमते सेठ के घर पर आये, जिनमित्र ने नवधाभक्ति पूर्वक मुनिराज को आहार दिया, आहार होने के बाद हाथ जोड नमस्कार करके कहने लगा कि हे गुरुदेव! मेरी यह कन्या रूप सौन्दर्य से रहित क्यों उत्पन्न हुई, इससे कोई विवाह करने को तैयार नहीं है, इस दु ख के निवारण होने के क्या उपाय है ?

तब मुनिराज कहने लगे कि हे जिनमित्र! इस कन्या ने पूर्वभव में अपने रूप-सौन्दर्य के मद में आकर एक दिगम्बर मुनिराज के ऊपर ग्लानि से थूक दिया था। इस कारण यह कन्या रूप सौन्दर्य से रहित उत्पन्न हुई है, अगर यह कन्या रूप सौन्दर्य से सहित बने ऐसी तुम्हारी इच्छा है तो तुम इसको रूपातिशय व्रत कराओ। व्रत की विधि पूर्णरूप से मुनिराज ने बताई लड़की ने व्रत को श्रद्धा से ग्रहण किया, मुनिराज उन सबको आशीर्वाद देकर पुन. जंगल में चले गये। इधर सुमति कन्या ने विधिपूर्वक व्रत का पालन किया, अन्त में व्रत का उद्यापन किया, व्रत के प्रभाव से सुमति को पुन· रूप सौन्दर्य प्राप्त हुआ। एक श्रेष्ठि की प्राणवल्लभा होकर सुख भोगने लगी, उसके गर्भ से देवकुमारादि पुत्र उत्पन्न हुये। एक दिन उसके घर पर सामुद्रिकशास्त्र

का ज्ञाता एक ज्योतिषी आया और कहने लगा कि हे सुमति! अब आप की आयु मात्र सात दिन की रह गई है। ऐसा सुनकर सुमति को वैराग्य हुआ और एक आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ले ली और तपश्चरण करने लगी। अन्त में समाधिमरण कर स्त्रीलिंग का छेद करती हुई अच्युत कल्प में देव होकर उत्पन्न हुई, बाईस सागर तक सुख को भोगकर मनुष्यभव धारण करके मुनीदीक्षा ग्रहण कर घोर तपश्चरण करते हुए कर्म काट कर मोक्ष को गई।

रोटतीज व्रत कथा

एक समय विपुलाचल पर श्री वर्धमान स्वामी समवसरण सहित पधारे। तब राजा श्रेणिक ने नमस्कार करके हाथ जोड़ कर प्रार्थना करी कि महाराज ! रोट तीज व्रत कैसा है इस व्रत से किसको लाभ हुआ और यह कैसे और किस विधि से किया जाता है, सो कृपा करके कहो।

तब वर्धमान स्वामी राजा श्रेणिक से कहते भये राजन् एक समय उज्जयिनी नगरी में एक सागरदत्त नाम का सेठ रहता था। उसके छप्पन करोड़ दीनारों की लक्ष्मी थी देशान्तरों में माल भरकर उसके प्रोहन (जहाज) जाते थे। उस सेठ के सात पुत्र थे। एक दिन श्री मन्दिर जी में एक व्रती मुनिराज ने यति और श्रावक के धर्मों का वर्णन किया। श्रावकों ने अपनी शक्ति के अनुसार व्रत लिये। सागरदत्त की सेठानी ने भी प्रार्थना करी कि महाराज मुझे भी ऐसा व्रत दीजिये जो कि एक साल में एक ही व्रत आवे और उसमें मैं कुछ खा सकूँ। श्री मुनिराज ने कहा कि हे सेठानी थोड़े से भी व्रत नियम इस पामर जीव को संसार से पार लगा देते हैं।

श्री चौबीसी व्रत जिसे रोट तीज भी कहते हैं। साल में एक वक्त करना होता है। भाद्रपद शुक्ल तृतीया (तीज) को सामायिक, स्नान, ध्यान करके चौबीस महाराज की पूजन विधान करना चाहिये।

एक वक्त छहों रस का त्याग करके एकमात्र और एक ही अन्न से उसी वक्त अन्न और पानी से अन्तराय रहित नियम पूर्वक करना चाहिये इससे लक्ष्मी अटल रहती है। व्रत के दिन कुप्रथाओं का त्याग करके शील सहित धर्म ध्यान में लीन रहना चाहिये। चार प्रकार का दान देना चाहिये।

यह व्रत तीन, बारह व चौबीस वर्ष तक करना चाहिये। श्रावक के षट् कर्म का (देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान) पालन करना चाहिये। सेठानी श्री गुरू को नमस्कार करके और व्रत लेकर घर आई। घर आकर सेठानी ने अपने कुटुम्ब परिवार से व्रत लेने के विषय में कहा, कुटुम्ब परिवार ने कहा कि फूलों में रखकर कोमल चावल, घी, शक्कर, मेवा आदि उत्तम पदार्थों के मिश्रण से जो भोजन बनाया जाता है। वह खाया जाता है तो ऐसा कठोर व्रत कैसे किया जावेगा।

कुटुम्ब परिवार की निन्दा से सेठानी ने लिये हुये व्रतों का त्याग कर दिया। व्रत भंग के पापोदय से सर्व लक्ष्मी नष्ट हो गई। मोतियों का पानी हो गया। रत्नों व सोने चाँदी के ढेर थे वो पत्थर कंकड़ों के ढेर हो गये। देशान्तरों से प्रोहन (जहाज) जहाँ के तहाँ रह गये। धन के अभाव में दास दासियाँ सब भाग गये। दिन बड़े ही कष्ट में व्यतीत होने लगे।

जब सेठ सेठानी उनके सातों पुत्र और उनकी स्त्रियाँ इस प्रकार सोलह प्राणियों ने देशान्तर जाने का विचार किया और उज्जैनी नगरी छोड़कर निकल गये।

हस्तिनापुर में सागरदत्त सेठ की पुत्री परनाई थी। संकट के कुछ दिन काटने की इच्छा से हस्तिनापुर जाकर पुत्री को खबर पहुंचाई कि हमारे ऊपर संकट पड़ गया है, सो तेरे पास मदद के लिये आये हैं। हमारे संकट के कुछ दिन के लिये सहायक होना चाहिये। पुत्री ने ऐसी बात सुन कर खबर लाने वाले को कहा कि मेरे ससुराल वाले यह कहने लग जावेंगे कि हमारा धन चोरी चोरी कर पीहर पहुँच देती

है। अतः मेरे से ऐसा कष्ट नहीं सहा जायेगा, इसलिये ये कष्ट के दिन दूसरी जगह बितावें। और थाली में दाल भात भोजन की सामग्री, एक वक्त का भोजन और उसमें पांच रत्न रखकर छिपाकर भेज दिये। सेठ के पापोदय और सेठानी के व्रत भंग के दोष से वो थाल मिट्टी का बर्तन, भोजन सामग्री कीड़ों सहित और मोहरों के कोयले बन गये। ऐसा होने पर उसी जगह छोड़ दिये और बसंतपुर ससुराल थी वहीं कुछ समय कष्ट के दिन काट देने की इच्छा से गये। उस दिन सागरदत्त सेठ के साला रामजी सेठ के यहां जीमनवार थी। इस जीमनवार की खबर सुनकर उन्होंने विचार किया कि इस वक्त रामजी सेठ के यहां जीमने वाले बड़े-बड़े लोग आये होंगे ऐसी गरीबी अवस्था में हमारा वहां पहुँचना ठीक नहीं होगा। रात के वक्त अंधेरे में चलेंगे। कई दिनों की भूख से सभी अधीर हो रहे थे। सागरदत्त सेठ की स्त्री ने कहा कि शांति के लिये मैं जाकर थोड़ा सा चावलों का पानी (मांड) जो मकान के पिछवाड़े से नाले में गिर रहा है ले आती हूँ। यह कहकर वहाँ जाकर एक मटकी (हाँडी) मकान के नीचे रख दी। मकान के ऊपर रामजी सेठ की स्त्री खड़ी देख रही थी। उसने अपनी ननद को ऐसी गरीब हालत में देखकर विचार किया कि इनका धन नष्ट हो गया है और अब यहां हमको सताने आये हैं। ऐसा विचार करते हुये जिस नाले से चावल का मांड जा रहा था उस नाले में एक पत्थर सरका दिया। वो पत्थर पड़ने से नीचे रखी हुई मटकी (हाँडी) फूट गई और चावल का गरम-गरम मांड सेठानी के पैरों पर गिरा जिससे वह जल गई पुत्र खबर पाकर कपड़े की झोली में डालकर उठा ले गये।

अयोध्या में सागरदत्त का मित्र रहता था। सेठ अपने कुटुम्ब को दूसरे ठिकाने छोड़कर अकेला ही अपने मित्र से मिलने गया। मित्र ने भलीभाँति आदर सम्मान किया और धैर्य देते हुए कहा कि हे मित्र संतोष धारण करो। हमारे धन को तुम अपना ही समझकर यहाँ रहो। तुम कुटुम्ब को दूसरे ठिकाने छोड़कर क्यों आये? क्या इस घर को तुमने दूसरा समझा था।

दोनों को आपस में रात के वक्त महल में दुख-सुख की बात करते हुये आधी रात व्यतीत हो गई मित्र तो उठकर दूसरे ठिकाने सोने को चला गया और सागरदत्त सेठ वहाँ ही रहा। उस वक्त वहाँ चित्राम का मँडा हुआ मोर था उसके गले में सोने का हार लटक रहा था, पापोदय से चित्राम का मढ़ा हुआ मोर उस हार को निगल रहा था और सेठ पड़े पड़े देख रहे थे। सेठ ने विचार किया कि दिन निकलते ही मुझे यह चोरी की कलंक लगेगा और मैं इसे कैसे सहूँगा। ऐसा विचार कर वह रात्रि में ही चला गया और अपने कुटुम्ब से जाकर सब हकीकत कही।

उधर मित्र ने बहुत अफसोस किया। मैं बहुत सेवा करने वाला था वह चला क्यों गया ? वहाँ से चलकर वे चम्पापुरी में समुद्रदत्त सेठ के घर पहुँचकर अपने दुख की सब हकीकत कही। सेठ ने हर एक प्राणी को दो सेर खाई के गले हुए जौ और दो पैसे भर कड़वा तेल रोज की मजदूरी में रख लिया। स्त्रियाँ घर का काम करती थीं और पुरुष दुकान का काम करते थे। समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने सबको कहा कि कल हर एक काम सफाई से करना क्योंकि कल व्रत का दिन है।

सागरदत्त के छोटे बेटे की स्त्री ने पूछा कि कल कौन सा व्रत है और इससे क्या होता है और कैसे किया जाता है। समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने व्रत की उपरोक्त विधि बताते हुए कहा कि इससे लक्ष्मी बढ़ती है। सागरदत्त की पुत्र वधू ने व्रत पर दृढ़ श्रद्धा करते हुए अपने भाग्य की जौ का नैवेद्य बनाकर सबके साथ गुप्त रीति से ले गई और चढ़ाते हुए प्रार्थना करी कि हे प्रभु ! हम तो रत्नों का नैवेद्य चढ़ाने लायक थे, परन्तु आज हमारी ऐसी संकटापन्न स्थिति है कि मैं उपवास करके अपने भाग्य का नैवेद्य बनाकर आपको अर्पण कर रही हूँ और करुणा भरी पुकार करी। व्रत में दृढ़ श्रद्धा की वजह से इतना पुण्य उपार्जन हुआ कि चढ़ाया हुआ नैवेद्य तुरन्त ही सुवर्णों का बन गया और पंचों को खबर मिलने पर वे लोग आश्चर्य करने लगे।

उस तरफ समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने एक बड़ा रोट बनवा कर सागरदत्त की स्त्री को देते हुए कहा कि भौजाई यह रोट आज तुम्हारे बच्चों को दे देना। उसने पूछा कि ननदजी आज कौन-सा त्यौहार हैं कि आज उत्सव मनाया जा रहा है। उसने कहा आज चौबीसी व्रत अर्थात् रोट तीज व्रत है और इससे कभी संकट नहीं आता है।

वहां पर श्रद्धा होने से और भूल का पश्चाताप होने से पुण्य का उदय हुआ, जिसके प्रभाव से हाथ में रक्षा हुआ रोट तुरन्त ही स्वर्ण का बन गया। स्वर्ण का रोट देखकर लोभ उत्पन्न होने से समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने कहा कि भौजाई आटा और सुवर्ण का रोट दोनों पास रक्खे थे सो गलती से यह स्वर्ण का रोट आ गया है और गेहूँ का वहीं रह गया है। यह सुवर्ण का रोट मुझे वापिस दे दो। गेहूँ का रोट मैं तुम्हारे लिये ले आती हूँ। यह रोट समुद्रदत्त सेठ की स्त्री के हाथ में जाते ही गेहँ का बन गया तब समुद्रदत्त की स्त्री कहने लगी कि भौजाई अब तुम्हारे पुण्य का उदय आ गया है जिससे तुम्हारे हाथ में आते ही स्वर्ण का रोट बन जाता है।

उधर सागरदत्त ने व्यापार धन्धा किया जिससे वापिस करोड़पति हो गये। वहाँ से रवाना होकर मित्र के घर अयोध्या आये। मित्र ने जैसा सम्मान पहले किया था वैसा ही व प्रेमपूर्वक अब भी किया।

लेकिन नौकर लोग कहने लगे कि यह तो वही सेठ है जो पहले मोर के गले से हार निकालकर ले गये थे। उसी द्रव्य से कमाई करके करोड़पति बनकर आये हैं और अब भी कुछ लेने आये हैं इनकी चौकस रखना। रात के वक्त उसी चित्रशाला में दोनों मित्र दुःख सुख की बात कर रहे थे उस वक्त वो ही मढ़ा हुआ मोर उस हार को वापिस उगलने लगा। तब सबको बुलाकर दिखाया कि एक दिन वो था जब चित्राम का मोर हार निगल गया था और आज यह दिन है कि चित्राम का मोर हार उगल रहा है। वहाँ कुछ दिन रहकर सेठ अपनी ससुराल बसंतपुर आये। रामजी सेठ खबर पाकर लेने आये। बहन ने कहा कि भाई तुम हमारे धन को देखकर ही हमें लेने आये

हो अगर हमें चाहते तो संकट में पहले मदद करते। उस वक्त भोजाई ने माँड भी नहीं लेने दिया। गरम गरम चावलों के मांड से पत्थर गिराया जिससे मेरा अंग जला जो अभी तक अच्छा नहीं हुआ। रामजी सेठ ने कहा बहिन उस वक्त तुम्हारे पापोदय से कुबुद्धि सूझती थी। इस प्रकार समझाकर उन्हें ससम्मान अपने घर ले गये।

कुछ दिन बाद हस्तिनापुर में अपनी पुत्री के यहाँ चले गये। पुत्री खबर पाकर बहुत सी सहेलियों को साथ लेकर गाजे बाजे के साथ अगवानी को आई।

भाईयों ने कहा कि हे बहन उस दिन को याद कर जब हम संकटग्रस्त आये थे तो तू एक दिन भी रखने को राजी न थी, न मिलने ही को आई बल्कि ठीकरे में कीड़े और कोल भरकर भेजे थे जिन्हें हम यहाँ छोड़ गये थे। बहन ने कहा कि भाइयों मैंने तो भोजन ही भेजा था। तुम्हारे पापोदय से ऐसा बन गया। अगर मैं मिलने को उस अवस्था में आती तो मेरी ससुराल और तुम्हारी दोनों की बदनामी होती।

सागरदत्त सेठ ने अपनी पुत्री को धन जेवर देकर विदा किया। वहाँ से अपने देश उज्जैन को वापिस आ गये जो लक्ष्मी पहले विलुप्त हो गई थी वह सब अपनी अवस्था में मिली। दास दासी नौकर चाकर सब मिले। देशांतरों के प्रोहन जो जहाँ के तहाँ रुक गये थे वे सब पुण्य के प्रभाव, व्रत के दृढ़ श्रद्धा से आ मिले। इससे हे जीवो व्रत भंग को महादोष समझकर हर एक कोव्रत दृढ़ श्रद्धा से करना चाहिये और उसकी कथा वाचना, सुनना, अनुमोदन करना चाहिये। चाहे कोई भी व्रत हो व्रत करने वाले को पूजा दान, सामायिक जरूर ही करना चाहिये।

ॐ ह्रीं वृषभादि-महावीर-पर्यन्त चतुर्विंशति-तीर्थंकर अ सि आ उ सा नमः स्वाहाः। जाप 108 करें।

❑❑❑

रोहिणी व्रत कथा

वन्दूँ श्री अर्हन्त पद, मन वच शीश नमाय।
कहूँ रोहिणी व्रत कथा, दुःख दारिद्र नश जाय।।

अंग देश में चम्पापुरी नामक नगरी का स्वामी माधव नाम का राजा था। उसकी परम सुन्दरी लक्ष्मी मती नाम की रानी थी। उसके सात गुणवान पुत्र और एक रोहिणी नाम की कन्या थी। एक समय राजा ने निमित्त ज्ञानी से पूछा कि मेरी पुत्री का वर कौन होगा? तब निमित्तज्ञानी ने विचार कर कहा कि हस्तिनापुर का राजा विगतशोक और उसकी रानी विद्युतश्रवा का पुत्र अशोक तेरी पुत्री के साथ पाणिग्रहण करेगा।

यह सुनकर राजा ने स्वयंवर मण्डप रचाया और सब देशों के राजकुमारों को आमन्त्रण पत्र भेजे। जब नियत समय पर राजकुमार एकत्रित हुऐ। कन्या रोहिणी एक सुन्दर पुष्पमाला लिये हुए सभा में आई और सब राजकुमारों का परिचय पाने के अनन्तर अंत में राजकुमार अशोक के गले में वरमाला डाल दी। राजकुमार अशोक रोहिणी से पाणिग्रहण कर उसे घर ले आया और बहुत काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया।

एक समय हस्तिनापुर के वन में श्री चारण मुनिराज आये। यह समाचार सुनकर राजा निज प्रिया सहित श्री गुरु की वंदना को गया और तीन प्रदक्षिणा दे दण्डवत नमस्कार करके बैठ गया। पश्चात् श्री गुरु के मुख से तत्त्वोपदेश सुनकर राजा हर्षित मन हो पूछने लगा-स्वामी! मेरी रानी इतनी शांतचित्त क्यों है?

तब श्री गुरु ने कहा-सुनो, इसी नगर में वस्तुपाल नाम का राजा था और उसका धनमित्र नाम का मित्र था। उस धनमित्र के एक दुर्गन्धा कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्या को देखकर माता-पिता निरन्तर चिंतावान रहते थे कि इस कन्या को कौन वरेगा? जब वह कन्या सयानी हुई तब धनमित्र ने उसका ब्याह धन का लोभ देकर एक

श्रीषेण नाम के लड़के (जो कि उसके मित्र सुमित्र का पुत्र था) से कर दिया।

वह सुमित्र का पुत्र श्रीषेण अत्यन्त व्यसनासक्त था। एक समय वह जुआ में सब धन हार गया, तब चोरी करने किसी के घर में घुसा। उसे यमदण्ड नामक कोतवाल ने पकड़ लिया और दृढ बन्धन से बाँध दिया। इसी कठिन अवसर में धनमित्र ने श्रीषेण से अपनी पुत्री के ब्याह करने का वचन ले लिया था। इसीलिए श्रीषेण ने उससे ब्याह तो कर लिया, परन्तु वह स्वस्त्री के शरीर की अत्यन्त दुर्गन्ध से पीड़ित होकर एक ही मास में उसे परित्याग करके देशांतर को चला गया। निदान वह दुर्गन्धा अत्यन्त व्याकुल हुई और अपने पूर्व पापों का फल भोगने लगी।

इसी समय अमृतसेन नाम के मुनिराज इसी नगर के वन मे बिहार करते हुए आये। यह जानकर नगर के सभी लोग वन्दना को गये और धनमित्र भी अपनी दुर्गन्धा कन्या सहित वन्दना को गया। सो धर्मोपदेश सुनने के अनन्तर उसने अपनी पुत्री के भवांतर पूछे तब श्री गुरु ने कहा-

सोरठ देश में गिरनार पर्वत के निकट एक नगर है। वहाँ भूपाल नामक राजा राज्य करता था। उसके सिन्धुमती नाम की रानी थी। एक समय बसन्तऋतु में राजा रानी सहित वनक्रीड़ा को गया मार्ग में श्री मुनिराज को देखकर राजा ने रानी से कहा कि तुम घर जाकर श्री गुरु के आहार की विधि लगाओ।

राजाज्ञा से यद्यपि रानी घर तो गई तथापि वनक्रीड़ा के समय वियोग जनित संताप से तप्त उस रानी ने इस वियोग का सम्पूर्ण अपराध मुनिराज के माथे मढ़ दिया और जब वे आहार को बस्ती में आये को पड़गाहकर कड़ुवी तुम्बी का आहार दिया, जिससे मुनिराज के शरीर में अत्यन्त वेदना उत्पन्न हो गई और उन्होंने तत्काल प्राण त्याग कर दिये।

नगर के लोग यह वार्ता सुनकर आये और मुनिराज के मृतक शरीर की अन्तिम क्रिया कर रानी के इस दुष्कृत्य की निन्दा करते हुए निज-निज स्थान को चले गये। राजा को भी इस दुष्कृत्य की खबर लग गई तो उन्होंने रानी को तुरन्त ही नगर से बाहर निकाल दिया।

इसी पाप से रानी के शरीर में उसी जन्म में कोढ़ उत्पन्न हो गया, जिससे शरीर गल गलकर गिरने लगा तथा शीत, उष्ण और भूख प्यास की वेदना से उसका चित्त विह्वल रहने लगा।

इस प्रकार वह रौद्र भावों से मरकर नर्क में गई। वहाँ पर भी मारन, ताड़न, छेदन, भेदन, शूलीरोहणादि घोरान्घोर दुःख भोगे। वहाँ से निकल कर गाय के पेट में अवतार लिया और अब यह तेरे घर दुर्गन्धा कन्या हुई है।

यह पूर्व वृत्तांत सुनकर धनमित्र ने पूछा- हे नाथ! कोई व्रत विधानादि धर्म कार्य बताइये जिससे यह पातक दूर होवे, तब स्वामी ने कहा-सम्यग्दर्शन सहित रोहिणीव्रत पालन करो अर्थात् प्रति मास में रोहिणी नाम का नक्षत्र जिस दिन होवे, उस दिन चारों प्रकार के आहार का त्याग करे और श्री जिन चैत्यालय में जाकर धर्मध्यान सहित सोलह पहर व्यतीत करे, अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, धर्म चर्चा, पूजा, अभिषेकादि में काल बितावे और स्वशक्ति अनुसार दान करे।

इस प्रकार यह व्रत 5 वर्ष और 9 दिन तक करे। पश्चात् उद्यापन करे। अर्थात् छत्र, चमर, ध्वजा, पाटला आदि उपकरण मंदिर में चढावे, साधुजनों व साधर्मी तथा विद्यार्थियों को शास्त्र देवे, वेष्टन देवे, चारों प्रकार के दान देवे और जो द्रव्य खर्च करने की शक्ति न हो तो दूना व्रत करे।

दुर्गन्धा ने मुनि श्री के मुख से व्रत की विधि सुनकर श्रद्धापूर्वक उसे धारण कर पालन किया और आयु के अन्त में संन्यास सहित मरण कर प्रथम स्वर्ग में देवी हुई वहाँ से आकर माधव राजा की पुत्री

और तेरी परमप्रिया स्त्री हुई हैं। इस प्रकार रानी के भवांतर सुनकर राजा ने अपने भवांतर पूछे-

तब स्वामी ने कहा - तू प्रथम भव में भील था। तूने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया था। सो तू वहाँ से मरकर पाप के फल से सातवें नरक गया। वहाँ से तैतीस सागर दुःख भोगकर निकला। सो अनेक कुयोनियों में भ्रमण करता हुआ तूने एक वणिक के घर जन्म लिया। सो अत्यन्त घृणित शरीर पाया। लोग दुर्गन्ध के मारे तेरे पास न आते थे। तब तूने मुनिराज के उपदेश से रोहिणी व्रत किया, उसके फल से स्वर्ग में देव हुआ। फिर वहाँ से चयकर विदेह क्षेत्र में अर्ककीर्ति चक्रवर्ती हुआ, वहाँ से दीक्षा ले तप करके देवेन्द्र हुआ और स्वर्ग से आकर तू अशोक नामक राजा हुआ है।

राजा अशोक यह वृत्तांत सुनकर घर आया और कुछ काल तक सानन्द राज्य भोगा। पश्चात् एक दिन वहाँ वासुपूज्य भगवान का समवशरण आया सुनकर राजा वन्दना को गया और धर्मोपदेश सुनकर अत्यन्त वैराग्य को प्राप्त हो श्री जिन दीक्षा ली। रोहिणी रानी ने भी दीक्षा ग्रहण की।

सो राजा अशोक ने तो उसी भव में शुक्लध्यान से घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये और रोहिणी आर्या भी समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेद स्वर्ग में देव हुई। अब वह देव वहाँ से चयकर मोक्ष प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा अशोक और रानी रोहिणी, रोहिणीव्रत के प्रभाव से स्वर्गादि के सुख भोगकर मोक्ष को प्राप्त हुए व होंगे इसी प्रकार अन्य भव्य जीव भी श्रद्धासहित यह व्रत पालेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुख पावेंगे।

व्रत रोहिणी रोहिणी कियो, अरु अशोक भूपाल।
स्वर्ग मोक्ष सम्पति लही, 'दीप' नवावत भाल।।

❑❑❑

लब्धिविधान व्रत कथा

प्रथम नमूँ जिन वीर पद, मुनि गुरु गौतम पाय।
लब्धि विधान कथा कहूँ, शारद होहु सहाय।।

काशी देश में वाराणसी नाम की नगरी का महाप्रतापी विश्वसेन राजा था। उसकी रानी का नाम विशालनयना था, एक दिन राजा ने कौतुकपूर्ण हृदय से नाटक का खेल करवाया। नाटक के पात्रों ने राजा को प्रसन्नतार्थ अनेक प्रकार गीत, नृत्य, हावभाव, विभ्रमादिक पूर्वक नाटक का खेल खेलना आरम्भ कर दिया, राजा रानी और सब पुरजन अपने योग्य आसनों पर बैठकर सहर्ष अभिनय देखने लगे।

उन नाटक का पात्रों के विविध भेष और हावभावों से रानी का चित्त चंचल हो उठा और वह चमरी और रंगी नाम की अपनी दो सखियों सहित घर से निकल पड़ी। तथा कुसंग में पड़कर अपना शीलधर्मरूपी भूषण खो बैठी। वह ग्रामोग्राम भ्रमण करती हुई वेश्या कर्म करने लगी।

जीवों के भाव तथा कर्मों की गति विचित्र है। देखो रानी, रनवास के सुख छोड़कर गली-गली की कुत्ती हो गई। सत्य है, इन नाटकों से कितने घर नहीं उजड़े? रानी जैसी को यह दशा हुई तो अन्य जनों का कहना ही क्या है?

राजा भी अपनी प्रियतमा के वियोगजनित दुःख को न सह सकने के कारण पुत्र को राज्य देकर वन में चला गया और इष्टवियोग (आर्तध्यान) से मरकर हाथी हुआ, वन में भटकते भटकते एक समय किसी पुण्य संयोग से श्री मुनिराज का दर्शन हो गया और धर्मबोध भी मिला, जिसे वह हाथी सम्यक्त्व को प्राप्त करके अणुव्रत पालन करने लगा और आयु के अंत में मरकर, पाटलीपुत्र नगर में महीचन्द्र नाम का राजा हुआ।

यह महीचन्द्र राजा एक दिन वनक्रीड़ा को गया थ। इसके पुण्योदय से वहाँ (उद्यान में) श्री मुनिराज के दर्शन हो गये। तब

सविनय साष्टांग नमस्कार कहके राजा धर्मश्रवण की इच्छा से वहाँ बैठ गया। इतने में कानी, कुबडी और कोढ़ी ऐसी तीन कन्याएँ अत्यन्त दुःखित हुई वहाँ आई। उन्हें देखकर राजा महीचन्द्र को मोह उत्पन्न हुआ, जब राजा ने श्री गुरु से अपने मोह उत्पन्न होने का कारण पूछा-

तब श्री गुरु ने इनके भवांतर का संबन्ध कह सुनाया कि राजन्! तू अब से तीसरे भव में बनारस का राजा विश्वसेन था। और रानी तेरी विशालनयना थी, सो नाटक का अभिनय देखते हुए नाटककार पात्रों के हावभावों से चंचलित होकर तेरी रानी अपनी रंगी और चमरी नामक की दो दासियों सहित निकल कर कुपथगामिनी हो गई।

सो वे तीनों वेश्याकर्म करती हुई एक समय किसी राजा के पास कुछ याचना को जा रही थीं कि रास्ते में परम दिगम्बर मुनिराज को देखकर अपने कार्य के साधन में अपशुकन मानने लगी और रात्रि समय मुनिराज के पास आकर अपने घृणित स्वभावनुसार हावभाव दिखाने और मुनिराज के ध्यान में विघ्न करने लगी, परन्तु जैसे कोई धूल फेंककर सूर्य को मलीन नहीं कर सकता है, उसी प्रकार से वे कुलटाएँ श्री मुनिराज को किंचित् भी ध्यान से न चला सकीं। सत्य है क्या प्रलय की पवन कभी अचल सुमेरु को चला सकती है?

स्त्री चरित्र के साथ साथ स्त्रियों की प्यारी रात्रि भी पूर्ण हुई। प्रातः काल हुआ। सूर्य उदय होते ही वे दुष्टनी विफल मनोरथ होकर वहाँ से चली गयीं और यहाँ मुनिराज के निश्चल ध्यान के कारण देवों ने जय-जयकार शब्द करके पंचाश्चर्य किये।

निदान वे तीनों मुनि को उपसर्ग करने के कारण गलित कोढ़ को प्राप्त हुई रूप, कला, सौन्दर्य सब नष्ट हो गया और आयु के अन्त में मकर पाँचवें नरक गई। बहुत काल तक वहाँ से दुःख भोगकर उज्जैनी के पास ग्रामपलास नाम के एक गृहस्थ की पुत्रियाँ हुई हैं, सो छोटी अवस्था में माता-पिता मर गये।

पूर्व पाप के कारण ये तीनों प्रथम कुरुपां, कानी, कुबडी, कोढ़ी और तिसपर भी मूंड वचन बोलनेवाली हैं, इसलिये ग्राम से बाहर निकाल दी गई हैं। वहाँ से भटकती हुई यहाँ आई हैं और तू अपनी पट्टरानी के वियोग से दु:खित होकर मरा, सो हाथी हुआ, तब श्री मुनिराज के उपदेश से सम्यक्त्व सहित पंचाणुव्रत पालन करके मरा, सो स्वर्ग में देव हुआ। और देव पर्याय से आकर यहाँ महीचन्द्र नाम का राजा हुआ है। इनका तेरा पूर्वजन्मों का सम्बन्ध होने से तुझे यह मोह हुआ है।

तब राजा ने कहा-महाराज! क्या कोई उपाय ऐसा है कि जिससे ये कन्याएँ पापों से छूटे?

तब श्री गुरु ने कहा-राजन! सुनो, यदि वे श्रद्धापूर्वक लब्धि विधान व्रत करें तो सहज ही इस पाप से छुटकारा पावेंगी। इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

भादों, माघ और चैत्र सुदी एकम से तीज तक यह व्रत एक वर्ष में ऐसे 5 वर्ष तक करें। पश्चात् उद्यापन करें अथवा दुगुना व्रत करें। व्रत के दिनों में या तो तेला करे या एकांतर उपवास करे या एकाशना ही नित्य करें। और श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा का अभिषेक पूर्वक पूजनार्चन करें।

तीनों काल सामायिक करें-'ॐ ह्रीं श्री क्लीं अर्हं श्री महावीर स्वामिने नम:' यह 108 जाप करें। जागरण और भजन करें।

उद्यापन की विधि-जब व्रत पूर्ण हो जावे, तब सकल संघ को भोजन करावें, और संघ में चार प्रकार का दान करें। शास्त्रों का प्रचार करें, पूजन के उपकरण व शास्त्र श्री जिनालय में पधरावें इत्यादि।

इस प्रकार व्रत की विधि और फल सुनकर उन तीनों कन्याओं ने राजा की सहायता से व्रत पालन किया। और समाधिमरण कर पाँचवें स्वर्ग में देव हुई। राजा महीचन्द्र भी दीक्षा धर तप करके स्वर्ग गया।

विशालनयना नाम रानी का जीव जो देव हुआ था, मगधदेश के वाडवनगर में कश्यप गौत्रीय सांडिल्य नाम ब्राह्मण की सांडिल्या स्त्री के गौतम नाम का पुत्र हुआ था तथा चमरी व रंगी के जीव भी देव पर्याय से चयकर मनुष्य हो तप कर उत्तम गति को प्राप्त हुए।

जब श्री महावीर भगवान को केवलज्ञान हुआ परन्तु वाणी नहीं खिरी इसका कारण इन्द्र ने जाना कि गणधर बिना वाणी नहीं खिरती है, सो इन्द्र गौतम ब्राह्मण के पास 'त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं' इत्यादि नवीन श्लोक बनाकर साधारण भेष में गया और उसका अर्थ पूछा-

जब गौतम उसका अर्थ लगाने में गड़बड़ाया तब इन्द्र उसे भगवान के समवशरण में ले आया, सो मानस्तम्भ देखते ही गौतम का मान भंग हो गया और उन्होंने प्रभु के सम्मुख जाकर नमस्कार करके दीक्षा ली। सो जिनकथित चारित्र के प्रभाव से उसे चारों ज्ञान हो गया और वह भगवान के गणधरों में प्रथम गणधर हुए, बहुत काल जीवों को संबोधन किया और महावीर प्रभु के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाणपद की प्राप्ति हुआ। उन गौतम स्वामी को हमारा नमस्कार हो।

लब्धि विधान व्रत फल थी, विशालनयना नार।
गणधर हो लह मोक्षपद, किये कर्म सब क्षार।।

वस्तुकल्याण व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्य खण्ड है, वहाँ एक मगध देश है, उस मगध देश में राजगृह नाम का सुन्दर नगर है। उस नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे, श्रेणिक की रानी का नाम चेलना था। राजा श्रेणिक का एक धनमित्र नाम का सेठ था, उस सेठ की धनवति नाम की गुणवान पत्नी थी, उस सेठ का एक पुत्र नंदिमित्र था, जो सप्तव्यसन में लिप्त था।

एक दिन उस नगर के उद्यान में स्थित सहस्रकूट चैत्यालय में दर्शन के लिए एक पिहिताश्रव नाम के महामुनीश्वर अपने सघ सहित

पधारे। नन्दीमित्र अपने मित्रों सहित वहाँ आया, मुनि समुदाय को देखकर बहुत ही क्रोध से व कामांहकार से संतप्त होकर मुनिराज को मारकर यहीं डालकर चला जाऊँ, ऐसा विचार करके प्रयत्न करने लगा। लेकिन मुनिराज आहार के लिए नगर में चले गये, उसने देखा कि मेरा कार्य नहीं हुआ तब वह मुनिराज के बैठने के स्थान पर शव डाल कर चला गया।

इस पाप से वह सातवें दिन भयंकर कुष्ट से ग्रसित हो गया और अत्यधिक दु:खित होता हुआ मर गया। मरकर एक जगल में बहुत बडा व्याघ्र हुआ। एक दिन शिकारी ने उस व्याघ्र को मार गिराया। मरकर प्रथम नरक में नारकी तथा क्रमश: सूकर,सर्प, भैंसा, मेंढक, पर्याय धारण कर कौशल देश के कौशाम्बी नगर में पाडा हुआ। एक दिन बरसात काल में होने वाले कीचड में फँस गया और उसके ऊपर बिजली गिर गयी वह पाड़ा मरणासन्न हो गया।

वहॉ एक दयाबुद्धि को धारण करने वाले मुनिराज ने उसके कान में पंचनमस्कार मन्त्र दिया, मन्त्र को शान्ति से सुनकर मरने से वह पुष्कलावती देश के पुण्डरीकिणी नगर में विद्युत्प्रभ राजा की विमलामती पटरानी के गर्भ से पुत्र होकर पैदा हुआ। जन्मते समय ही उसके हाथ, पाँव, लूले,लगड़े और शरीर कुबडा था, राजा ने उसको देखा देखते ही राजा का मन बहुत ही खेद खिन्न हुआ-राजा ने उसका नामकरण भी नहीं किया। बडा हुआ तो उसको बोलना नहीं आता था, इसलिए लोग उसको चबु कहकर बुलाने लगे।

एक दिन उस नगर के उद्यान में जिनचैत्यालय का दर्शन करने के लिए दो चारण मुनिश्वर आये, वनपाल ने राजा को समाचार दिया, सुनते ही राजा बहुत आनन्दित हुआ, सर्व वस्त्राभरण वनपाल को दे सन्तुष्ट किया। अपने पुरजन-परिजन सहित पैदल उद्यान में गया।

भगवान का दर्शन करके मुनिराज को भक्ति से नमोस्तु किया, मुनिराज का धर्मोपदेश सुनने के बाद हाथ जोड़कर विनती करने लगा कि हे स्वामिन्! आप इस राजकुमार के भवप्रपंच को सुनाइये मुनिराज ने राजा को कुमार का जैसा भव भ्रमण था सुनाया। इस कुमार ने पूर्व जन्म में मुनिराज के ऊपर उपसर्ग किया था, इसलिए इसको इतना कष्ट भोगना पड़ा। अगर इसको सुख चाहिए तो वस्तुकल्याण व्रत करे, व्रत के प्रभाव से कामदेव के समान सुन्दर होकर सर्वसुखों की प्राप्ति होगी।

ऐसा कहकर राजा को व्रत का विधान कह सुनाया, आगे उस कुमार ने व्रत को ग्रहण कर यथाशक्ति पालन किया, उद्यापन किया। इस कारण उसको इस लोक का सुख मिलकर परलोक का सुख भी प्राप्त हुआ।

अत. हे भव्य जीवो! आप भी सुखी होने के लिए इस व्रत का यथाशक्ति पालन करो।

श्रावणद्वादशी व्रत कथा।

प्रणमूँ श्री अरहन्त पद, प्रणमूँ शारद माय।
श्रावण द्वादशी व्रत कथा, कहूँ भव्य हितदाय।।

मालवा प्रान्त में पद्मावतीपुर नामक एक नगर था, वहाँ का राजा नरब्रह्मा और रानी विजयवल्लभा थी। इनके शीलवती नाम की एक अति कुरूपा, कानी, कुबड़ी कन्या उत्पन्न हुई ज्यों-ज्यों वह कन्या बड़ी होती थी त्यों-त्यों माता-पिता को चिंता बढ़ती जाती थी।

एक दिन वे राजा रानी इस प्रकार चिंता कर रहे थे कि इस कुरूपा कन्या से पाणिग्रहण कौन करेगा? कि पुण्य योग से उन्हें वनमाली द्वारा यह समाचार मिला कि उद्यान में श्रवणोत्तम नामके यतीश्वर मुनिराज देश देशांतरों में बिहार करते हुए आये हैं। सो राजा

उत्साह सहित स्वजन और पुरजनों को साथ लेकर श्री गुरु की वन्दना के लिये वन में गया और तीन प्रदक्षिणा देकर प्रभु को नमस्कार करके यथायोग्य स्थान में बैठा।

श्री गुरु ने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और मुनि श्रावक के धर्म का उपदेश देकर निश्चय, व्यवहार व रत्नत्रय धर्म का स्वरूप समझाया।

पश्चात् राजा ने नतमस्तक हो पूछा- हे प्रभो! यह मेरी पुत्री किस पाप के उदय से ऐसी कुरूपा हुई है?

तब श्री गुरु ने कहा-अवंती देश में पांडलपुर नाम का नगर था। वहाँ का राजा संग्राममल्ल और रानी वसुन्धरा थी। उसी नगर में देवशर्मा नामक पुरोहित और उसकी कालसुरी नाम की स्त्री थी। इस ब्राह्मण के अत्यन्त रूपवान एक कपिला नाम की कन्या थी। एक दिन यह कपिला अपनी सखियों के साथ अठखेलियाँ करती हुई वनक्रीड़ा के लिये नगर के बाहर गई, सो वहाँ श्री परम दिगम्बर साधु को देखकर उनकी अत्यंत निंदा की और घृणा की दृष्टि से वह सखियों से कहने लगी-देखो री बहनों, यह कैसा निर्लज्ज पापी पुरुष है कि पशु के समान नग्न फिरा करता है और अपना गुप्त अंग स्त्रियों को दिखाता है। लोगों को ठगने के लिये लंघन करके वन में बैठा रहता है, धिक्कार है इसके नरजन्म पाने को। इत्यादि अनेकों कुवचन कहकर मुनि के मस्तक पर धूल डाल कर थूक भी दिया।

सो अनेकों उपसर्ग आने पर भी श्री मुनिराज तो ध्यान से किंचित्मात्र भी विचलित न हुए और समभावों से उपसर्ग जीतकर केवल ज्ञान प्राप्त कर परम पद को प्राप्त हुए। परन्तु वह कपिला जिसने मदोन्मत्त होकर श्री योगीराज पर उपसर्ग किया था, मरकर प्रथम नरक में गई। वहाँ से निकल कर गधी हुई फिर हथिनी, बिल्ली, नागिन, चांडालनी हुई और वहाँ से मरकर तुम्हारे घर पुत्री हुई है। सो हे राजा! इस प्रकार मुनि निंदा के पाप से इसकी यह दुर्गति हुई।

राजा ने यह भवांतर का वृत्तांत सुनकर पूछा-हे नाथ! इसका यह पाप कैसे छूटे सो कृपाकर कहिये?

तब स्वामी ने कहा-राजा! सुनो, संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है कि जिसका उपाय न हो। यदि मनुष्य अपने पूर्व कर्मों की आलोचना निंदा व गर्ह्या करके आगे को उन पापों से परांग-मुख होकर पुनः न करने की प्रतिज्ञा करें और पूर्व पापों की निर्जरार्थ व्रतादिक करे तो पापों से छूट सकता है।

इसलिये यह पुत्री सम्यक्त्व पूर्वक श्रावण शुक्ला द्वादशी व्रत को धारण करे तो इस कष्ट से छूट सकती है। इस व्रत की विधि निम्न प्रकार है-श्रावण सुदी एकादशी को प्रातःकाल स्नानादि करके श्री जिन पूजा करें पश्चात् भोजन करके सामायिक के समय द्वादशी व्रत के उपवास की धारणा (नियम) करें। इसी समय से अपना काल धर्मध्यान में बितावें और द्वादशी को भी नियमानुसार उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त हो श्री जिन मंदिर में जाकर उत्साह सहित अष्टद्रव्य से पूजन करे अर्थात् पाठ और मंत्रों को स्पष्ट बोलकर प्रासुक अष्टद्रव्य चढ़ावे और णमोकार मंत्र (35 अक्षर) का 108 बार जाप करके सामायिक स्वाध्यायादि धर्मध्यान में काल बितावे। फिर त्रयोदशी को इसी प्रकार अभिषेक पूर्वक पूजनादि करने के पश्चात् किसी अतिथि वा दीन दुःखी को भोजन दान करने के बाद भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष में एक बार करे। यह व्रत बारह वर्ष तक करें। पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे।

उद्यापन में चारमुखी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करावें अथवा जहाँ मन्दिर हो वहाँ चार महान् ग्रंथ लिखाकर जिनालय में पधरावें वेष्टन चौकी छत्र चमरादि उपकरण चढावें, परोपकार में द्रव्य खर्च करें। व्यापार रहितों को व्यापारार्थ पूँजी लगा देवें, पठनाभिलाषियों को छात्रवृत्ति देकर पढ़ने को भेजें, रोगी को औषधि, निःसहाय दीनों को अन्न वस्त्र औषधि देवें, भयभीत जीवों को भयरहित करें, मरते को बचावे इत्यादि और यदि उद्यापन की शक्ति न हो तो दूना व्रत करें।

इस व्रत के फल से यह तेरी कन्या यहाँ से मरण करके तेरे ही घर अर्ककेतु नाम का पुत्र होगा और उनसे छोटा चन्द्रकेतु होगा। चन्द्रकेतु युद्ध में मरकर पीछे अर्ककेतु का पुत्र होगा पश्चात् अर्ककेतु कितने काल राज्य करके अन्त में माता सहित जिन दीक्षा लेगा तथा समाधिमरण करके बारहवें स्वर्ग में महर्दिक देव होगा और मनुष्य भव लेकर तप के योग से केवलज्ञान को प्राप्त हो मोक्षपद प्राप्त करेगा। इसकी माता विजयवल्लभा प्रथम स्वर्ग में देवी होगी। चन्द्रकेतु का जीव भी अवसर पाकर सिद्धपद को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार राजा व्रत की विधि और उसका फल सुनकर घर आया और उसकी कन्या ने यथाविधि व्रत पालन करके श्री गुरु के कथनानुसार उत्तमोत्तम फल प्राप्त किये। इस प्रकार और भी जो स्त्री पुरुष श्रद्धा सहित इस व्रत को पालन करेंगे वे भी इसी प्रकार फल पावेंगे।

श्रावण द्वादशी व्रत कियो, शीलव्रती चित्त धार।
किये अष्ट विधि नष्ट सब, लह्यो सिद्धपद सार।।

श्रुत स्कन्ध व्रत कथा

श्रुतस्कन्ध वन्दूँ सदा, मन वच शीश नवाय।
जा प्रसाद विद्या लहूँ, कहूँ कथा सुखदाय।।1।।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक अंग नाम का देश है, उसके पाटलीपुत्र (पटना) नगर में राजा चन्द्ररुचि की पट्टरानी चन्द्रप्रभा के श्रुतशालिनी नाम की एक अत्यंत रूपवान कन्या थी, इस कन्या को जिनमति नाम की आर्या (गुरानी) के पास पढ़ने भेजा जिससे वह थोड़े ही दिनों में विद्या में निपुण हो गई। एक दिन इस कन्या ने अपनी ही बुद्धि से चौकी पर श्रुतस्कन्ध मण्डल बनाया। इसे देखकर गुरु रानी को आश्चर्य हुआ और कन्या की बहुत प्रशंसा की उन्होंने समझा कि अब वह विद्या में निपुण हो चुकी है, इसलिये उसे सहर्ष

राजा के पास घर जाने की आज्ञा दी। राजा कन्या को विदुषी देखकर बहुत हर्षित हुआ और गुरु रानी की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा विनयभाव निवेदित दिया।

एक दिन इसी नगर में उद्यान में श्री 108 वर्द्धमान मुनि आये। यह समाचार सुनकर राजा अपने परिवार तथा पुरजनों सहित उत्साह पूर्वक वन्दना को गये और भक्तिपूर्वक वन्दना करके मुनि चरणों के निकट बैठ गये। मुनिराज ने धर्मवृद्धि कहकर धर्म का स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर लोगों ने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। पश्चात् राजा ने कन्या की ओर देखकर पूछा - हे ऋषिराज ! यह कन्या किस पुण्य से ऐसी रूपवान और विदुषी हुई है? तब मुनि श्री बोले -

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देश में पुण्डरीकनी नगरी है। वहाँ के राजा गुणभद्र और रानी गुणवती थी। एक समय यह राजा रानी सपरिवार सीमन्धरस्वामी की वंदना को गये और यथायोग्य भक्ति वंदना करके नर कोठे में बैठे। पश्चात् सप्त तत्त्व और पुण्य पाप का स्वरूप सुनकर श्री गुरु से पूछा - हे प्रभु! कृपाकर श्रुतस्कन्ध व्रत का क्या स्वरूप है? सो समझायें। तब गणधर महाराज ने कहा - श्रीजिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि सातिशय निरक्षरी (वाणी) मेघ की गर्जना के समान ॐकार रूप भव्य जीवों के हितार्थ उनके पुण्य अतिशय के कारण और भगवान की वचन वर्गणा के उदय से खिरती है। इसे सर्व सभाजन अपनी-अपनी भाषाओं में समझ लेते हैं। इस वाणी को ज्ञानधारी गणनायक मुनि अल्पज्ञानी जीवों के संबोधनार्थ (आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादकदशांग प्रश्नव्याकरणांग, सूत्रविपाकांग और दृष्टिप्रवादांग) इस प्रकार द्वादशांग रूप से कथन किया। फिर इन्हीं के आधार से और मुनियों ने भी भेदाभेद पूर्वक देश भाषाओं में कथन किया है। यह जिनेन्द्र वाणी समस्त लोकालोक के स्वरूप और त्रिकालवर्ती पदार्थों को प्रदर्शित करने वाली समस्त प्राणियों के हितरूप मिथ्या

मतों की उत्थापक, पूर्वा पर के विरोध से रहित अनुपमेय है, सो जो भव्यजीव इस वाणी को सुनकर हृदयरूप करता अथवा उसकी भावना भाकर व्रत संयम धारण करता है, वह भी अनेक शास्त्रों का पारगामी हो जाता है। इस व्रत की विधि इस प्रकार है, कि भाद्रो मास में नित्य श्री जिन चैत्यालय में श्रुतस्कन्ध मण्डल मांडकर श्रुतस्कन्ध पूजन विधान करें और एक मास में उत्कृष्ट 16, मध्यम 10 और जघन्य आठ उपवास करें। पारणा के दिन यथाशक्ति नीरस व एक दो आदि रस छोड़कर एक भुक्ति करें। इस प्रकार यह व्रत बारह वर्ष तक अथवा पाँच वर्ष तक करें, पीछे उद्यापन करें बारह-बारह उपकरण घण्टा, झालर, पूजा के बर्तन, छत्र, चमर, चन्दोवा, चौकी वेष्टनादि मंदिर में भेंट करें, शास्त्र लिखाकर जिनालय में पधरावें, तथा श्रावकों को भेंट देवें और शास्त्र-भण्डारों की सम्हाल करें, नवीन सरस्वती भवन बनावें, सर्व साधारण जनों को श्री जिनवाणी का उपदेश करें और करावें। इस प्रकार यह व्रत धारण करने से अनुक्रम से केवल ज्ञान की प्राप्ति होकर सिद्धपद प्राप्त होता है।

जाप्य नित्य दिन में तीन बार जपें- 'ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भूतस्याद्वाद-नयगर्भितद्वादशांग श्रुतज्ञानाय नमः' और भावना भावें। इस प्रकार राजा गुणभद्र और गुणवती रानी ने व्रत की विधि सुनकर भाव सहित धारण किया और भावना भायी। सो अन्त समय समाधिमरण कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र-इन्द्राणी हुए। वहाँ से वह रानी का जीव (इन्द्राणी) चयकर यह तेरे श्रुतशालिनी नाम की कन्या हुई।

इस प्रकार गुरुमुख से भवांतर सुनकर उस कन्या ने पुनः श्रुतस्कन्ध व्रत धारण किया और चारित्र के प्रभाव से विषयकषायों को अतिशय मंद किया, पश्चात् अन्त समय में समाधि से मरण कर स्त्रीलिंग को छेदकर इन्द्रपद प्राप्त किया और वहाँ से अनुपम सुख भोगकर अपरविदेह कुमुदवती देश के अशोक पुर में पद्मनाभ राजा की पट्टरानी जितपद्मा के गर्भ से नयन्धर नाम तीर्थंकर हुआ। साथ

ही चक्रवर्ती और कामदेव पद को भी सुशोभित किया। बहुत समय तक नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया। पश्चात् एक दिन इन्द्र धनुष को आकाश में विलीन होते देख वैराग्य उत्पन्न हुआ। सो अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म वैराग्य को दृढ़ करने वाली इन बारह भावनाओं का चिंतवन कर दीक्षा ग्रहण की और कितने का काल तक उत्कृष्ट संयम पालकर शुक्लध्यान के योग से केवलज्ञान प्राप्त किया, तब देवों ने समवशरण की रचना की। इस प्रकार अनेक देशों में बिहार करके भव्य जीवों को वस्तु स्वरूप का उपदेश दिया और आयु के अन्त समय में अघातिया कर्मों को नाश करके अविनाशी सिद्धपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भी जो नरनारी भाव सहित इस व्रत का पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम पद को प्राप्त होवेंगे।

श्रुतशालिनी कन्या कियो, श्रुतस्कन्ध व्रत सार।
'दीप' कर्म सब नाश कर, लहो मोक्ष सुखकार।।

शुद्धदशमी व्रत

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे अवति नाम का देश है, उस देश में उज्जयनी नाम की सुन्दर नगरी है, उस नगर का राजा जिनसेन और रानी जितसेना थी। उस राजा का जिनदत्त नाम का राजश्रेष्ठी था, उस श्रेष्ठी की स्त्री का नाम धनवती था, सेठ के श्रीकात आदि पॉच पुत्र थे, इस प्रकार अपने परिवार के साथ सेठ आनन्द से समय निकाल रहा था।

एक बार की बात है कि नगर के बाहर एक मुनिराज रात्रियोग धारणा कर खड़े हुए, प्रात काल में सेठ की बडी पुत्रवधु गोबर डालने के लिए गई और मुनिराज के ऊपर गोबर डाल घर वापिस आ गई। थोड़े समय के बाद श्रेष्ठी भगवान की पूजा के लिए उद्यान में गया रास्ते में उस सेठ की दृष्टि मुनिराज के ऊपर पडी। मुनिराज उपसर्ग

समझकर जैसे के तैसे ही खड़े थे, सेठ ने देखा कि मुनिराज के ऊपर गोबर डला है, सेठ भयभीत हुआ और उष्ण जल से मुनिराज का शरीर धोया और मुनिराज को चैत्यालय मं लेकर गया। पूजाभिषेक करने के बाद सेठ अपने घर आया, मुनिराज आहार चर्या के निमित्त नगर में आये और सेठ ने नवधाभक्तिपूर्वक आहार दिया, आहार लेकर मुनिराज वन में वापस चले गये।

कुछ समय बाद सेठ की बडी पुत्रवधु रोगाक्रात हो मर कर एक नगर में राजा की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई। गर्भ के सहवास से रानी का रूप बिगड गया, यह देखकर राजा ने रानी को महल से बाहर रख दिया, तब मन्त्री रानी को अपने घर ले गया रानी ने नौ मास पूरे किये। नव मास बीतने पर रानी ने एक लडकी को जन्म दिया और उस प्रसूत कन्या को मारने के लिए दासी के हाथ में सौप दिया। दासी उस नवजात कन्या को नगर के बाहरी उद्यान में अति दूर एक पेड के नीचे वस्त्र बिछा कर सुला कर वापिस लौट आई। थोडे समय के बाद दो आर्यिकाएँ वहॉ शौच-क्रिया के लिए गई थी। उस बालिका को आर्यिकाओं ने देखा, उस छोटी सी कन्या को लेकर अपने स्थान पर वापिस लौट आई। आर्यिकाओं ने कन्या का श्रावकों के यहाँ पालन पोषण किया और उसका नाम मदनावली रखा।

इधर वह रानी पहले के समान ही रूपवती हो गई, यह जानकर राजा रानी को राजमहल ले गया, और सुख से दोनों समय निकालने लगे। इधर वह मदनावली दस वर्ष की होकर आनन्द से क्रीडा करने लगी।

एक दिन आर्यिका माता जी आहार के लिए नगर में गई थी और इधर मदनावली के आगे पद्मावती देवी प्रत्यक्ष प्रकट होकर

कहने लगी कि हे बालिके! तुम शुद्ध दशमी व्रत का पालन करो जिससे कि तुमको श्री सम्पत्ति सुख प्राप्त होगा, ऐसा कहकर देवी अदृश्य हो गई। आर्यिका माता जी को लडकी ने सब वृतात सुनाया, यह सुनकर आर्यिकाजी को बहुत आनन्द हुआ।

दूसरे दिन फिर माता जी आहार के लिए नगर में गई, तब फिर मदनावली! के सामने देवी प्रकट होकर कहने लगी कि हे मदनावली मैं तुमको शुद्ध दशमी व्रत की विधि कहती हूँ, सुनो ऐसा कहकर देवी ने पूर्ण व्रत विधि का स्वरूप कहा और अदृश्य हो गई। जब आर्यिकाजी आहार करके वापिस आयी तो मदनावली ने पीछे घटने वाली घटना सुनाई माताजी ने उसको आशीर्वाद दिया, मदनावली विधि से व्रत को पालने लगी।

एक समय राजा के पुत्र को साँप ने काट खाया और पुत्र मरणासन्न हो गया। उस पुत्र के ऊपर माँ का बहुत प्रेम था। इसलिए माँ रानी उस पुत्र का सस्कार नहीं होने दे रही थी। तब मन्त्री वर्ग ने विचार करके एक गाड़ी में एक हजार स्वर्ण मोहरें भरकर नगर में सूचना करवाई कि जो कोई राजकुमार को जिन्दा कर देगा उसको ये एक हजार सुवर्ण मोहरें दी जायेंगी, यह सब समाचार मदनावली ने सुना और वह राज सेवक के साथ राजमहल में गई और कहने लगी कि आप लोग इस शव का दाहसस्कार न करते हुए, इसको जिन मंदिर ले चलो।

तब मरणासन्न राजकुमार को उठाकर मन्दिर के समीप योग्य स्थान पर सेवकों की सुरक्षा में रखा, मन्दिर में जाकर मदनावली अपने मन में परमात्मा का चिन्तवन करने लगी, उस समय पद्मावती देवी का आसन कम्पायमान हुआ, तत्क्षण देवी वहाँ आकर मदनावली को

कहने लगी कि तुम चिन्ता मत करो, पार्श्वनाथ भगवान का अभिषेक करके गंधोदक राजकुमार के ऊपर डालो राजकुमार जिन्दा हो जाएगा, ऐसा कहकर देवी अदृश्य हो गई।

तब मदनावली ने विधिपूर्वक पार्श्वनाथ का अभिषेक करके राजकुमार के ऊपर गधोदक का छिड़काव किया, राजकुमार का शरीर तत्क्षण निर्विष हो गया। राजकुमार उठकर जिन मन्दिर में गया और भगवान को नमस्कार करने लगा, यह सब वार्ता सेवकों ने राजा को जाकर कही। राजा मन्त्री आदि सब जिन मन्दिर में आये, उस लड़की का परिचय पूछा, मदनावली ने व्रत का माहात्म्य सबको कह सुनाया, व्रत का माहात्म्य सुनकर सबको बहुत आनन्द हुआ, सब लोग नगर में वापस आ गये, आगे मदनावली आर्यिका दीक्षा लेकर तपस्या करने लगी, अन्त में समाधिमरण कर स्त्रीलिंग को छेद स्वर्ग में देव हुई। आगे मोक्ष को प्राप्त करेगी।

शीलव्रत कथा

सब द्वीपों में श्रेष्ठ जम्बूद्वीप में कौशल देश स्वर्ग से भी सुन्दर था। वहाँ का राजा पद्मसेन उसकी पत्नी कचनमाला थी। राजा बड़ा ही धर्म प्रेमी, प्रजाहित तत्पर न्यायी और चतुर था।

यहीं पर एक राजा महिपाल रहता था। वह भी धनाढ्य था। उसकी सम्पत्ति 16 कोटि दीनार की थी। उसकी पत्नी गुणमाला भी गुणी व शील सम्पन्न थी। उसके सुखानन्द का जन्म हुआ। जन्म का दिन श्रेष्ठी ने बडे उत्सव के साथ मनाया।

पुत्र हुआ दिन-दिन वह बढने लगा थोड़े ही दिन में वह सब विद्याओं में पारगत हुआ। विद्यापूर्ण होने पर घर वापस आया।

इस नगरी के पश्चिम में उज्जयनी नामक नगर था। वहाँ नगर श्रेष्ठी महिदत्त उसकी शीलवती पत्नी श्रीमती उसकी लड़की मनोरमा

थी। वह बहुत सुन्दर तथा गुणवान थी। आठवें वर्ष उसे आर्यिका के पास पढने भेजा। थोड़े ही दिन में उसने सब विद्याएँ सीख ली।

मनोरमा 16 वर्ष की हो गई तो उसके पिताजी को शादी की चिन्ता हुई। श्रेष्ठी ने ब्राह्मण को एक हार दिया और कहा। जो इस हार की कीमत द्वादश कोटि कहेगा उसके गले में हार डालना, वही मेरी लडकी का पति होगा।

ब्राह्मण हार लेकर निकला। वह नाना देशों में गया पर कोई भी हार का सच्चा पारखी नहीं मिला। तब ब्राह्मण हार को लेकर महीपाल के पास गया और उस हार की कीमत पूछी 12 कोटि दीनार बतायी और खजाची को कहा कि इनको चाहिए जितना धन दो और हार खरीद लो तब पुरोहित ने कहा श्रेष्ठी मै हार बेचने नहीं आया हूँ। जो इसकी मही कीमत बतायेगा उसके साथ हमारे श्रेष्ठी लडकी का विवाह करेंगे।

श्रेष्ठी को उसकी बात समझ में नही आयी। तब विप्र ने कहा कि श्रेष्ठी ने यह हार लेकर मुझे भेजा है कि जो इमकी सही कीमत करेगा उसी के साथ उसकी लडकी की शादी करायी जावेगी। तब सुखानन्द को बुलाया और ब्राह्मण ने उसके गले में यह हार पहना दिया महीपाल ने बडा भारी महोत्सव किया और ब्राह्मण को बहुत धन देकर सम्मान किया।

मनोरमा की शादी शुभ मुहूर्त में हो गई। जब वह ससुराल जा रही थी तब उसके पिताजी ने कहा तुझे अच्छा घर मिला है। तेरा भाग्य बहुत ही अच्छा है। इसलिए तू अपना जैन धर्म छोड़ना नहीं और तूने जो व्रत लिया है उसका पालन कर शीलव्रत का पालन करना वही ससार में श्रेष्ठ है। ऐसा मान तू तो गुणी है, सुख से जा और आनन्द से रह जिससे दोनों कुलों का उद्धार हो। वहाँ पर वह सुख से रहने

लगी पर उसका पति थोड़ा उदासी से रह रहा था। तब मनोरमा ने पूछा कि नाथ आप उदास क्यों है? तब सुखानन्द ने कहा कि पिता जी की कमाई पर कितने दिन रहूँगा? मुझे भी कुछ व्यापार धन्धा करना चाहिए घर बैठकर धन्धा होगा नहीं।

दूसरे दिन सुखानन्द पिता जी के पास गया और अपने विचार प्रकट किये तब पिताजी ने कहा हे बालक! अपनी सम्पत्ति कम है क्या तू आनन्द से रह और सुख भोग। पर सुखानन्द ने कहा कोई भी कर्तव्य करके दिखाने से ही मेरे मन में शान्ति मिलेगी उद्योग के बिना जीना निरर्थक है।

तब पिता ने विचारकर उसे परदेश जाने की आज्ञा दी और कहा जाते समय तेरी सुख सुविधा की सब सामग्री ले जा। धन भरपूर ले जा जिससे तू उस पर अपना धन्धा कर सके।

सुखानन्द ने निकलने की पूरी तैयारी की। निकलते हुए उसे मनोरमा ने समझाया कि स्त्री की जात बडी चचल होती है इसलिए आप उनसे दूर रहें उनको माता व पुत्री समान देखना। शीलव्रत का पालन करना, इतनी ही इस दासी की विनती है।

फिर वह जिन मन्दिर के दर्शन कर 500 शूर सिपाही को लेकर हसद्वीप को गया। व्यापार के लिए योग्य स्थान देखकर उसने व्यापार शुरू किया।

इधर मनोरमा अपने 16 श्रृगार सहित जिन मन्दिर में गयी। रास्ते में राजकुमार की दृष्टि उसके ऊपर गयी, वह उसके रूप को देखकर पागल हो गया। यह सुन्दरी मुझे कैसे मिलेगी? ऐसी उसको चिन्ता हुई। अत. उसने घर आकर चतुर दासी को उसके पास भेजा।

दासी ने मनोरमा को नाना प्रकार के भाषण से उसका मन

चलायमान करना चाहा। पर मनोरमा का मन थोड़ा भी चलायमान नहीं हुआ। और उल्टा दासी को चाबुक से मारकर भगा दिया।

दासी राजमहल में गयी, सब समाचार राजकुमार को बता दिया। उसने कहा यह बात मेरे वश की नहीं है वहाँ मुझे मार भी खानी पड़ी है इसलिए यह काम मैं नहीं कर सकती हूँ।

पर दासी को मनोरमा का वर्ताव अपमानजनक लगा। अपमान की सुई उसे लगी। तब उसने उसका बदला लेना चाहा। इसलिए वह मनोरमा की सास को कुछ कुछ भिड़ाने लगी। जिससे उसकी सास के मन में शका उत्पन्न हो गई। वह कहने लगी कि पति नहीं है तो भी ये इतनी सजधज के क्यों जाती है ? अब उसको पूरा सशय होने लगा और दासी उसमें तेल डालने लगी। अब उसमे आग लगने की देर क्या थी ? सास ने दासी की बात मान ली। मनोरमा को बुलाया उसे कहा तुम अब इतनी सज कर क्यों जाती हो और उसने श्रेष्ठी से नमक मिर्ची लगाकर कहा मनोरमा को घर से बाहर निकालना चाहिए। तब ससुर ने रथ सजाकर मनोरमा को जाने हेतु सारथी को कहा और सब बात समझा दी। सारथी मनोरमा को लेकर जगल में गया। मनोरमा से कहा है बहिन तुम यहीं रुको मुझे यहीं छोडने को कहा है।आपके ऊपर चरित्र भ्रष्ट होने का आरोप लगाया है।

मनोरमा ने कहा मुझे इस संसार में दो ही जगह है। एक तो पतिगृह दूसरा पितृगृह। पति के घर से बाहर निकाला है इसलिए अब मुझे पितृगृह छोड़े।

सारथी को दया आई इसलिए वह उसे उज्जयनी लाया और महीपाल को खबर दी। महीपाल को सशय हुआ क्यों घर से निकली है। जब उसे सब बात मालूम हुई तो अपने यहाँ उसने उसे आश्रय

नहीं दिया। तब सारथी उसे वापस जंगल में ले गया। उसने उसे भयानक जंगल में छोड़ा उसकी आँखों में आँसु आ गये। उसने कहा बहिन तुम व्यर्थ शोक मत करो, वह बोली मेरे कर्म ही उदय में आये हैं कुछ उपाय नहीं। यह सब मुझे भोगना ही पड़ेगा। आप अब जाएँ।

एक दिन वहाँ राजगृह का युवराज वन क्रीड़ा के लिए आया। उसकी दृष्टि मनोरमा पर पड़ी उसका सौन्दर्य देखकर वह पागल हो गया जिससे उसने मनोरमा को जबरदस्ती उठाकर रथ में बिठा दिया और अपने घर ले आया। अपने पर संकट आया जानकर उसने अन्न पानी का त्याग कर दिया, वह विचार करने लगी यह मेरे कर्मों का दोष है और मन में पचपरमेष्ठी का ध्यान और चितन करने लगी। इधर इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ, उसने अवधि लगाई और जान लिया मनोरमा पर सकट है, उसके शील की रक्षा करनी है। यदि उसकी रक्षा नहीं हुई तो वह अपने प्राण त्याग देगी और शील की कीमत ससार में नहीं रहेगी, इसलिए एक देव से कहा कि उसकी रक्षा के लिए तुम जाओ। तब इन्द्र की आज्ञा से देव ने ब्राह्मण का रूप बनाया तथा मनोरमा जिस महल में थी उस महल में गया और उसकी रक्षा के लिए दरवाजे पर खड़ा रहा इतने में राजकुमार वहाँ आया, वह महल के अन्दर जाने लगा लो उस ब्राह्मण ने उसे जाने नहीं दिया। कुमार को गुस्सा आया दोनों के बीच में वहाँ झगडा हुआ। ब्राह्मण ने उसे उठाकर जमीन पर फेंक दिया और उसके हाथ पैर बाँधकर चाबुक से मारा तब उसका विलाप सुनकर गाँव के सब लोग एकत्रित हो गये।

मारने वाला किसी को दिखाई नहीं दिया पर राजकुमार को कोई मार ही रहा था। अन्त में ब्राह्मण ने कहा कुमार जाओ, मनोरमा से

माफी माँगो यदि उसने माफ कर दिया तो तुम मुक्त हो जाओगे। तब वह राजकुमार मनोरमा के पास गया और माफी माँगने लगा तो मनोरमा सोचने लगी कि ऐसा क्यों हुआ ? शायद धर्म ने ही सहायता की होगी इसके सिवाय मेरा कौन होगा। उसने कुमार को माफ किया और ब्राह्मण से कहा इसे मुक्त कर दो।

देव ने अपना सच्चा रूप प्रकट किया, नम्रतापूर्वक अभिवादन किया और बोला देवी! तुम्हारे जैसी पतिव्रता नारी और कोई नहीं है। इन्द्र की आज्ञा से में आपकी रक्षा के लिए आया हूँ। अब आप जरा भी चिन्ता न करें आज से आपकी रक्षा का भार मेरे ऊपर है। इतना कहकर वह चला गया।

फिर राजकुमार ने उसे रथ में बैठाकर वन में छोड़ दिया। वन में आकर वह णमोक"र मत्र का जाप करने लगी।

ऐसे कई दिन निकल गये तब एक दिन काशी देश से बनारस के प्रवासी प्रवास करते-करते इस वन में आये। मनोरमा को देखकर उससे पूछा "बाला तू कौन है और किसकी पुत्री हे ? और इस वन में अकेली कैसे आयी है ?"

मनोरमा ने अपनी कहानी बतायी। तब धनदत्त ने कहा मैं तेरा मामा धनदत्त हूँ, अब तुम हमारे घर चलो,ऐसा कहकर अपने घर ले गये। वहाँ वह अपना समय धर्मध्यानपूर्वक बिताने लगी। सुखानन्द ने नगर में आते ही नौकर को घर भेजकर हाल मालूम किया। नौकर ने आकर सारी हकीकत श्रेष्ठी को कह सुनाई। यह सुनकर उसके मन पर भारी आघात हुआ। उसने सबको घर जाने की आज्ञा दी व स्वत· मनोरमा की खोज करने को अकेला ही चल पड़ा। घूमता-घूमता वह वाराणसी आया, उधर मामा के घर मनोरमा से भेंट हुई। पति के आने से मनोरमा को आनन्द हुआ।

इस प्रकार सुख से कई दिन निकल गये तब वह मनोरमा से कहने लगा चलो अब हम अपने घर जायेंगे यहाँ कितने दिन रहेंगे तब मनोरमा ने कहा मेरे ऊपर ससुर ने शीलभंग का दोष लगाया है और मुझे घर से बाहर निकाला है। वह दूर नहीं होगा तब तक मैं घर कैसे जा सकती हूँ। उसकी यह बात सुनकर वह भी वहीं रहने लगा।

राजा ने महीपाल को बुलाया और उससे कहा कि सही बात क्या है वह मुझे बताओ, यदि नहीं बताया तो तुम्हें सजा होगी। तब महीपाल ने कहा मुझे तो पूरी बात मालूम नहीं है पर आपकी दासी के कहने पर उसकी सास ने मनोरमा पर आरोप लगाकर घर से निकाल दिया है। तब राजा ने दासी को बुलाया और कहा कि सच्ची बात क्या हुई है यह बताओ। दासी घबरा गयी यदि सच बताती हूँ तो राजकुमार की मुसीबत होगी वह ऐसा सोच ही रही थी कि राजा ने कहा सच बताओ नहीं तो तुम्हें सूली पर चढाऊँगा। तब मरने के भय से दासी ने सच्ची बात राजा को बता दी। तब यह बात सुनकर राजा व महीपाल को आश्चर्य हुआ। राजा ने राजकुमार को बुलाकर उसको राज्य से बाहर निकाल दिया। महीपाल भी आकर अपनी पत्नी से बोला कि तेरे कहने पर मैंने निर्दोष मनोरमा को घर से बाहर निकाल दिया है। महीपाल बहुत विलाप करने लगा और कहने लगा यदि मैंने मनोरमा को नहीं ढूँढ़ा तो राजा मुझे दण्ड दिये बिना नहीं रहेगा। ऐसा कहकर वह देश विदेशों में ढूँढ़ने निकला। घूमते घूमते वह बनारस में आया धनदत्त के घर उसकी भेंट हुई। सुख दुःख की बातचीत करके महीपाल ने अपनी गलती की माफी माँगी व उसको घर चलने की विनती की। तब मनोरमा ने कहा।

"मेरे पर कलंक लगा है जब तक वह दूर नहीं होगा तब तक में अपने घर की एक भी सीढ़ी नहीं चढूँगी। हाँ मैं आपके साथ आऊँगी पर गाँव के बाहर रहूँगी।"

राजा को उसके आने की बात मालूम हुई। उसके कहे अनुसार राजा ने न्याय करने का निश्चय किया और दरबार में बुलाया। देवों को भी अवधिज्ञान से यह बात मालूम हुई जिससे उन्होंने सोचा कि यदि इस समय शील का माहात्म्य नहीं बताया तो लोगों को इसका महत्व ज्ञात नहीं होगा।

उन्होंने नगर के बाहर के दरवाजे बद किये, वह दरवाजा किसी से भी नहीं खुले, यह बात नगर के अन्दर बाहर सब जगह फैल गई। इतना ही नहीं यह बात राजा के कान में भी गयी। दरवाजे खोलने के लिए सबने बहुत प्रयत्न किये पर सब व्यर्थ गये। राजा को बड़ी चिन्ता हुई। राजा ने अन्न पानी त्याग किया। सारी जनता चिन्ता ग्रस्त थी। दो दिन निकल गये फिर राजा को स्वप्न में आकर देव ने कहा।

"राजन! जो कोई स्त्री पतिव्रता होगी उसके अँगूठे के स्पर्श मात्र से दरवाजा खुलेगा नहीं तो कितना भी प्रयत्न किया व्यर्थ जायेगा। दूसरे दिन राजा ने पूरे राज्य में कहलवा दिया, हजारों स्त्रियाँ दरवाजे खोलने के लिए गयी सब व्यर्थ गया अन्त में मनोरमा का नम्बर आया। उसके स्पर्श से ही दरवाजे खुल गये।"

स्वर्ग के देवों ने उसका जय जयकार किया व पुष्पवृष्टि की और उसके शील के गीत गाये। इस प्रकार मनोरमा अपने दोषों को दूर कर ससुर के घर गयी।

शील का उत्तम रीति से पालन करना चाहिए, इसी से जीव का कल्याण है, शीलव्रत का पालन मोक्ष है।

सकलसौभाग्य व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्यखण्ड नाम का देश है, उस देश में सौराष्ट्र नाम का प्रदेश है, सौराष्ट्र में द्वारावती नाम की नगरी में बहुत बड़ा पराक्रमी कृष्ण नाम का राजा राज्य करता था, उसकी पटट्रानी का नाम सत्यभामा था, कृष्णराजा और भी अनेक स्त्रियों के साथ राजवैभव का उपभोग कर रहा था। एक दिन उसके राजमहल में नारद ऋषि आये, कृष्ण से भेंट कर रनवास में पहुँच गये, उस समय सत्यभामा दर्पण में मुख देख रही थी, इसलिए नारद मुनि को पूर्ण सम्मान न दे पाई, इसलिए नारद ऋषि रुष्ट होकर चले गये।

सत्यभामा के द्वारा सम्मान न मिलने पर नारद को बहुत बुरा लगा, विचारते रहे कि कौन सा ऐसा कार्य करूँ जिससे सत्यभामा को कष्ट उत्पन्न हो, विचारते-विचारते उपाय ढूँढ निकाला,वह यह कि कृष्ण महाराज की किसी विशिष्ट सुन्दर कन्या के साथ शादी करवा देना चाहिए, जिससे सत्यभामा घमण्डी को सौत का कष्ट सहन करना पड़े, कन्या की खोज करते करते कुन्दनपुर नगर में भीष्मराजा की कन्या रुक्मणी को देखा रुक्मणी बहुत ही सुन्दर थी, इसलिए नारद ने रुक्मणी का चित्र बनाकर कृष्ण को दिखाया, चित्र देखते ही कृष्ण मोहित हो गये, नारद ने उपाय बताया कि आप बलदेव के साथ कुन्दनपुर जाइए और रुक्मणी का हरण कर द्वारिका लेकर आ जाइए।

कृष्ण और बलदेव रथारूढ़ होकर कुन्दनपुर के उद्यान में जाकर छिपकर बैठ गये, रुक्मणी कामदेव की पूजा करने उद्यान में गई तब कृष्ण ने रुक्मणी को उठाकर रथारूढ़ कर दिया और पंचजन्य शंख को बजाया और कहा कि मैं द्वारिका नगरी का राजा कृष्ण रुक्मणी को

हरकर ले जा रहा हूँ, जिसमें भी ताकत हो मुझसे छुड़ा लेवे। ऐसा सुनते ही रुक्मणी का भाई रूप्यकुमार राजा शिशुपाल सहित युद्ध के लिए युद्धभूमि में आ गये। घोर युद्ध होने लगा, एक तरफ दो और एक तरफ अनेकों तो भी कृष्ण और बलदेव ने रूप्यकुमार को बन्धन में डालकर, शिशुपाल को मार गिराया। रुक्मणी को द्वारिका नगरी में लाकर उसके साथ कृष्ण ने विवाह कर लिया और उसको मुख्य पट्रानी का पद देकर राजमहल में रख लिया तथा कामसुख का अनुभव करते हुए आनन्द से रहने लगे। कालक्रम से रुक्मणी और सत्यभामा गर्भवती हई नौ महीने होने पर दोनों ने पुत्रों को जन्म दिया, प्रसूति के छठे दिन की रात्रि में रुक्मणी से उत्पन्न होने वाले पुत्र को पूर्वभव का शत्रु आकर हरण कर एक भयंकर अटवी में ले गया और मारने के लिए एक विशाल शिला के नीचे रखकर चला गया। कर्मयोग से राजा कालसवर अपनी पत्नी कनकमाला सहित विजयार्ध पर्वत से निकलकर वन क्रीड़ा को वहाँ आया और शिला को हिलती हुई देखकर आश्चर्यचकित हुआ।

जब शिला को अपने विद्या बल से ऊपर उठाया तो नीचे एक सुन्दर छोटे से बालक को देखा, तुरन्त ही राजा ने बालक को उठाया और रानी कनकमाला की गोद में रख दिया। कनकमाला के कोई सन्तान नहीं होने से उस बालक को घर ले जाकर अपना ही पुत्र है ऐसा समझकर पालन किया। उस पुत्र का नाम प्रद्युम्नकुमार रखा, प्रद्युम्नकुमार धीरे-धीरे रूप यौवन सम्पन्न होने लगा, विद्याधरों की नगरियों में घुम-घूमकर सोलह कलाओं से युक्त हुआ।

उधर द्वारिका नगरी में पुत्रहरण शोक कृष्ण को और रुक्मणी को बहुत ही दुःख देने लगा, यह बात नारदजी को पता लगते ही

विदेह क्षेत्र पहुँचे सीमंधर भगवान से प्रद्युम्नहरण की वार्ता कहकर सुनाई। स्वयं के समाधान के लिए वहाँ के चक्रवर्ती ने सीमंधर भगवान से प्रश्न किया कि भगवान रुक्मणी के पुत्र की क्या हालत है? कहाँ है? मरा या जिन्दा है, मेरी सुनने की इच्छा है। तब भगवान ने कहा कि पुत्र का हरण एक असुर ने किया है। असुर बालक को मारने के लिए सिंह अटवी में शिला के नीचे रखकर चला गया, वहाँ विद्याधरों का राजा कालसवर वन क्रीड़ा के लिए आया था, शिला को हिलती हुई देखकर शिला को उठाया और बालक को उठाकर ले गया, वहाँ उसका अच्छी तरह पालन पोषण हो रहा है। सोलह वर्ष पूर्ण होने के बाद कारणवश कालसंवर राजा का और प्रद्युम्न का विरोध पड़ेगा और वह द्वारिका जावेगा।

यह सब प्रद्युम्न का चरित्र सुनकर नारद को बहुत आनन्द हुआ। वहाँ से चलकर राजा कालसवर की नगरी में गया, बालक को देखा, आशीर्वाद दिया और द्वारिका नगरी में आकर रुक्मणी और कृष्ण को जैसा सीमंधर भगवान ने कहा था वैसा कह सुनाया, कृष्ण को बहुत ही आनन्द हुआ, रुक्मणी का भी शोक दूर हुआ। उधर प्रद्युम्नकुमार का रूप सौन्दर्य बढ़ता ही गया। एक दिन पूर्वकर्मानुसार रानी कनकमाला प्रद्युम्नकुमार को रूपवान देखकर उसके ऊपर आशक्त हो गई और प्रद्युम्नकुमार को अपने पास बुलाकर कामवासना की शान्ति करने की याचना करने लगी, यह सब सुनकर प्रद्युम्न को बहुत ही आश्चर्य हुआ और जिन मन्दिर में जाकर अवधिज्ञानी मुनि से पूछा, सब अपने भवों का वृतांत जाना, शीघ्र जाकर कनकमाला रानी से दो विद्या प्राप्त कर ली और वहाँ से माँ कहकर चला गया।

कनकमाला ने देखा कि इसने मुझे ठग लिया है। तब तिरिया-चरित्र दिखाते हुए राजा को भड़काया, राजा ने अपने पाँच सौ पुत्रों को और

सेना को प्रद्युम्न के साथ लड़ाई के लिए भेजा, प्रद्युम्न ने सबको हराकर राजा को भी युद्ध में जिंदा पकड़ लिया। नारद जी वहाँ पहुँच गये, कालसंवर राजा को छुड़ाकर प्रद्युम्नकुमार को द्वारिका नगरी ले आये। पुत्र आगमन को सुनकर कृष्ण और रुक्मणी बहुत ही खुश हुए, द्वारिका नगरी में उत्सव मनाया गया, सब ही सुखी हुए। विशेष जानकारी के लिए प्रद्युम्न चरित्र पढ़ें। इस प्रकार राजा कृष्ण और रानी रुक्मणी सुख से द्वारिका नगरी में सुख भोगने लगे।

एक दिन गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ तीर्थंकर का समवशरण आया, कृष्ण अपने समस्त प्रजाजन सहित सर्व परिवार को लेकर समवशरण में पहुँचा, भगवान को साष्टाग नमस्कार करके मनुष्यों के कोठे में बैठ गया, कुछ समय उपदेश सुनकर रुक्मणी हाथ जोड विनयपूर्वक गणधर भगवान को कहने लगी हे भगवान! मैंने कौन सा ऐसा पुण्य किया था जिससे कि मुझे ऐसा अखण्ड सौभाग्य मिला है?

तब गणधर भगवान कहने लगे कि इस भरत क्षेत्र के मगध देश में लक्ष्मीग्राम नाम का एक गाँव है, उस गाँव में सोमसेन नाम का ब्राह्मण लक्ष्मीमती स्त्री के साथ रहता था।

एक दिन अपने सौन्दर्य के अभिमान में चूर होकर दर्पण में मुख देख रही थी। वहाँ समाधिगुप्त नाम के महामुनि चर्या के निमित्त उसके घर के सामने से जा रहे थे, उनको देखकर लक्ष्मी मती ने मुनिराज की बहुत ही निन्दा की। उसके फल से लक्ष्मीमती को भंयकर भगंदर रोग हो गया और मरकर भैस, कुत्ता, सूकर, गधा हुई वहाँ से छठे नरक में उत्पन्न होकर महान दुःख भोगने लगी, नरक से निकलकर नर्मदा नदी के तट पर एक गाँव में नीचकुलोत्पन्न हुई।

वहाँ उसके माँ बाप मर गये, अन्य लोगों ने उसका पालन पोषण किया, वह भीख माँगकर अपना पेट भरने लगी, एक दिन नर्मदा नदी के तीर पर महामुनीराज को योग धारण कर बैठे थे, प्रातः काल में वह लड़की नदी पर गई और मुनिराज को देखकर सतुष्ट हुई, नमस्कार किया, मुनिराज के मुख से धर्मोपदेश सुनकर व्रत को ग्रहण किया, अन्त में मरकर कोंकण देश के शोभा नगर में नन्दन नाम का एक श्रेष्ठी रहता था, उसकी नन्दावती नाम की सेठानी थी, उस सेठानी के गर्भ से लक्ष्मीवती नाम की कन्या उत्पन्न हुई।

एक समय सेठ के घर में श्री नन्दस्वामी नाम के महामुनि आहार के लिए आये,सेठ ने नवधाभक्ति पूर्वक मुनिराज को आहार दान दिया। लक्ष्मीवती अपने भवान्तर को पूछने लगी, मुनिराज ने उसके सात भवों की कथा सुनाई, तब लक्ष्मी मती ने कहा कि स्वामी! आप मुझे मेरा सौभाग्य अखण्ड रहे, इसके लिए कोई उपाय बताओ तब मुनिराज कहने लगे कि हे बेटी! तुम सकल सौभाग्य व्रत का पालन करो। व्रत पूर्ण होने के बाद उद्यापन करो। इस व्रत को उसने विधिपूर्वक पालन किया और अन्त में राजा भीष्म की रुक्मणी नाम की कन्या होकर उत्पन्न हुई, इसलिए तुम राजा श्री कृष्ण की प्रिय पत्नी हुई हो। पूर्व जन्म में तुमने यथाशक्ति सकल सौभाग्य व्रत को पाला है, इस कारण तुमको सकल सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

ऐसा सुनकर रुक्मणी ने पुनः सकल सौभाग्य व्रत गणधर स्वामी से स्वीकार किया, नेमीश्वर को नमस्कार करके द्वारिका में वापस आये, कालानुसार रुक्मणी ने सर्व यादवों के साथ व्रत का यथाविधि पालन किया, यथाविधि उद्यापन किया, आर्यिका दीक्षा लेकर तपश्चरण

किया अन्त में समाधिमरण करके स्त्रीलिग का छेद करके सोलहवें स्वर्ग में देव उत्पन्न हुई।

हे भव्य जीवो! तुम भी इस व्रत का पालन करो, इस व्रत के कारण तुम को भी स्वर्ग सुख की प्राप्ति होकर मोक्ष गति मिलेगी।

सप्तपरमस्थान व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के दक्षिण में मिटलिका नाम की एक नगरी थी। उसका राजा वारिषेण था, उसने अपनी सम्पत्ति से कुबेर को और सौन्दर्य से चन्द्रमा को भी जीत लिया था।

वहॉ का सेठ नन्दीमित्र था। वह स्वभाव से ही मृदु और धार्मिक था। उसका पूरा समय धर्मध्यान में बीतता था। एक बार उस नगर में ज्ञानसागर नामक मुनि बिहार करते हुए आये। उनका दर्शन करने के लिए श्रेष्ठी दम्पति गये। आचार्य महाराज से धर्म श्रवण किया और मेरी शक्ति के अनुसार मैं कौन सा व्रत धारण कर सकता हूँ ऐसा उसने पूछा तब मुनि महाराज ने उन्हें सप्त परमस्थान का माहात्म्य बताया। उन दोनों ने वह व्रत लिया तथा पूछा यह व्रत किस-किस ने किये है ? मुनि महाराज ने उन्हें बताया।

इस भरत क्षेत्र में नेपाल देश में ललितपुर नामक नगरी है। वहाँ राजा भूपाल राज्य करता था, उसको कोई सन्तान नहीं थी अतः वह दुःखी था। एक बार बिहार करते-करते एक मुनि महाराज वहाँ आये। तब राजा अपने परिवार सहित उनके दर्शन के लिए गया। तब धर्म श्रवण करके राजा ने प्रश्न पूछा कि महाराज हम मुनी दीक्षा कब लेंगे ? तब महाराज ने बताया कि जब तुम्हें पुत्र प्राप्ति होगी तभी तुम दीक्षा लोगे, तब राजा ने पूछा पुत्र पैदा होगा वह कौन होगा और उसका काल क्या है ?

तब महाराज कहने लगे राजन! कश्मीर प्रान्त में हस्तिनापुर नामक नगर है, उसका राजा अरिमर्दन, उसकी रानी विनोदमजरी, उसका पुत्र अच्युत और उसके राज्य का श्रेष्ठी रुद्रदत्त और स्त्री रुद्रदत्ता उसे 16 पुत्र थे, उन सब की शादी करा दी 15 लड़कों को उसने 18 कोटि धन दिया और नागरुद्र को 4 कोटि धन दिया बचा हुआ 8 कोटि धन उसने जिनधर्म की प्रभावना के लिये जिन मंदिर, जीर्णोद्धार आदि में खर्च किया। फिर रुद्रदत्त ने पिहिताश्रव मुनि महाराज के पास दीक्षा ली। 12 वर्ष तक आचार्य के पास रहकर कठोर तपश्चरण किया। ज्ञान प्राप्त कर आचार्य की आज्ञा से भूतल पर बिहार करने लगे।

नागरुद्र व्यसनी निकला, उसने अपना पूरा धन व्यसन में गवाँ दिया। अन्त में वह निर्धन हो गया, तब वह अपना गाँव छोडकर अन्य जगह चला गया। वहाँ पर वह साधु का भेष धारण कर रहने लगा और कुशास्त्र का अध्ययन करने लगा एव उसका प्रचार करने के लिए सद्गुरु की निन्दा करने लगा। वह स्वेच्छाचारी बना अन्त में मरकर नरक गया। वहाँ पर वह दुःखमय आयु भोगकर कुक्कट गाँव में कुत्ता बना, वह जन्म से ही लगड़ा था। उसका पूरा अग रोग से जर्जरित था, दुःख से मरण हुआ। पुनः उसने हस्तिनापुर में एक गरीब ब्राह्मण के यहाँ जन्म लिया वहाँ पर करककंटक राजा राज्य करता था। उसी नगर में कुबेर दत्त श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी कनकमाला, उसका पुत्र धनदेव था। वह ब्राह्मण पुत्र दरिद्री एवं क्रोधी था, धनदेव सम्पन्न एवं शान्त था। परस्पर विरोधी स्वभाव होने पर भी वे सच्चे दोस्त थे।

धनदेव विवेकी था उसने ब्राह्मण पुत्र मनोहर को जिनधर्मी बनाने का निश्चय किया। वह उसे अपने साथ नियम से जिन मन्दिर ले

जाता था, पर धनदेव मन्दिर में जाता था तब वह बाहर खड़ा रहता था।

एक बार दोनों बुद्धिसागर मुनि के दर्शन को गये। उनको नमस्कार करके वह एक ओर बैठ गया तब मनोहर को देखकर मुनि महाराज ने पूछा आप कहॉ से आये है ?

तब वह बोला मैं अपने घर से आया हूँ। तब महाराज ने कहा वह तो हमें मालूम है पर इसके पहले कहाँ से आये हो वह मालूम है क्या ? तब मनोहर कहने लगा, मुझे मालूम नहीं है। वह आप ही मुझे बतावें।

तब मुनि महाराज ने उसका पहला भव बताया। यह सुनकर उसको बहुत दुःख हुआ। तब उसने मुनि महाराज के पास सप्त परमस्थान का व्रत लिया और विधि पूर्वक पालन किया। वह पुनः धनी हो गया और मरकर स्वर्ग में देवेन्द्र हुआ, वहाँ पर वह रोज जिन मन्दिर में पुजा करता था। नदीश्वर द्वीप में दर्शन को जाता था वहाँ उसने अपना पूरा समय धर्मध्यान में ही बिताता था। वहाँ से च्युत होकर राजन तेरे यहाँ जन्म लेगा।

यह सुनकर राजा अपने परिवार सहित अपने निवास स्थान पर आया। उसके बाद रानी को गर्भ रहा और पुत्र जन्म हुआ, उसका नाम श्रीपाल रखा, राजा ने उसको राज्य देकर स्वयं जिन दीक्षा धारण की। कर्मक्षय करके मोक्ष गया। श्रीपाल ने भी बहुत वर्ष तक आनन्द से राज्य किया, यह कथा सुनकर श्रेष्ठी अर्थात् नंदिमित्र और नंदिश्री इन दोनों ने यह व्रत ज्ञानसागर मुनिराज के पास लिया तथा आत्म कल्याण किया।

❑❑❑

सुगन्धदशमी व्रत कथा

वीतराग के पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर दान।
कथा सुगन्ध दशमीं तनी, कहूँ परम सुखदान।।

जम्बद्वीप के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में शिव मन्दिर नाम का एक नगर है। वहाँ का राजा प्रियंकर और रानी मनोरमा थी। वे अपने धन यौवन आदि के ऐश्वर्य में मदोन्मत्त हुए जीवन के दिन पूरे करते थे। धर्म किसे कहते हैं, वह उन्हें मालूम भी न था।

एक समय सुगुप्त नाम के मुनिराज कृश शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहार के निमित्त बस्ती में आये उन्हें देखकर रानी ने अत्यंत घृणापूर्वक उनकी निन्दा की और पान की पिच मुनि पर थूक दी। सो मुनि तो अन्तराय होने के कारण बिना ही आहार लिये पीछे वन में चले गये और कर्मों की विचित्रता पर विचार कर समभाव धारण कर ध्यान में निमग्न हो गये।

परन्तु थोड़े दिन पश्चात् रानी मरकर गधी हुई, फिर सूकरी हुई, कूकरी हुई, वहाँ से मरकर मगध देश के वंसततिलक नगर में विजयसेन राजा की रानी चित्रलेखा की दुर्गन्धा नाम की कन्या हुई। सो इसके शरीर से अत्यन्त दुर्गन्ध निकला करती थी।

एक समय राजा अपनी सभा में बैठा था कि धनपाल ने आकर समाचार दिया कि हे राजन! आपके नगर के वन में सागरसेन नाम के मुनिराज चतुर्विध संघ सहित पधारे हैं।

यह समाचार सुनकर राजा प्रजा सहित वन्दना को गया और भक्तिपूर्वक नतमस्तक हो राजा ने स्तुति वन्दना की। पश्चात् मुनि तथा श्रावक धर्मों के उपदेश सुनकर सबने यथा शक्ति व्रतादिक लिये। किसी ने केवल सम्यक्त्व ही अंगीकार किया। इस प्रकार उपदेश सुनने के अनन्तर राजा ने नम्रतापूर्वक पूछा-

हे मुनिराज! यह मेरी कन्या दुर्गन्धा किस पाप के उदय से ऐसी हुई है सो कृपाकर कहिये। तब श्री गुरु ने उसके पूर्व भवों का समस्त वृत्तांत मुनि की निन्दादिका कह सुनाया, जिसको सुनकर राजा और कन्या सभी को पश्चाताप हुआ। निदान राजा ने पूछा-प्रभो! इस पाप से छूटने का कौन सा उपाय है? तब श्री गुरु ने कहा-

समस्त धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है, सो अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनभाषित धर्म में श्रद्धा करके उनके सिवाय अन्य रागी-द्वेषी देव-भेषी गुरु, हिंसामय धर्म का परित्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण इन पाँच व्रतों को अंगीकार करें और सुगन्ध दशमी का व्रत पालन करें जिससे अशुभ कर्म का क्षय होवे।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी दशमी के दिन चारों प्रकार के आहारों का त्यागकर समस्त गृहारम्भ का त्याग करें और परिग्रह का भी प्रमाणकर जिनालय में जाकर श्री जिनेन्द्र की भाव सहित अभिषेक पूर्वक पूजा करें। सामायिक स्वाध्याय करें। धर्म कथा के सिवाय अन्य विकथाओं का त्याग करें, रात्रि में भजनपूर्वक जागरण करे। पश्चात् दूसरे दिन चौबीस तीर्थंकरों की अभिषेकपूर्वक पूजा करके अतिथियों (मुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करें। चारों प्रकार दान देवे। इस प्रकार दश वर्ष तक यह व्रत पालन कर पश्चात् उद्यापन करे।

अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दश-दश उपकरण जिन मंदिरों में भेंट देवें और दश प्रकार के श्री फल आदि फल दश घर के श्रावकों को बाँटे। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करें।

उत्तम व्रत उपवास करने से, मध्यम काजी आहार और जघन्य एकाशन करने से होता है।

इस प्रकार राजा प्रजा सबने व्रत की विधि सुनकर अनुमोदना की और स्वस्थान को गये। दुर्गन्धा कन्या ने मन, वचन काय से

सम्यक्त्वपूर्वक व्रत को पालन किया। एक समय दसवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान के कल्याण के समय देव तथा इन्द्रों का आगमन देखकर उस दुर्गन्धा कन्या ने निदान किया कि मेरा जन्म स्वर्ग में होवे, सो निदान के प्रभाव से यह राजकन्या स्वर्ग में अप्सरा हुई और उसका पिता राजा मरकर दसवें स्वर्ग में देव हुआ।

वह दुर्गन्धा कन्या अप्सरा के भव से आकर मगध देश के पृथ्वीतिलक नगर में राजा महिपाल की रानी मदनसुन्दरी के मदनावती नाम की कन्या हुई, सो अत्यन्त रूपवान और सुगंधित शरीर हुई। और कौशाम्बी नगरी के राजा अरिदमन के पुत्र पुरुषोत्तम के साथ इस मदनावती का ब्याह हुआ। इस प्रकार वे दम्पति सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक समय वन में सुगुप्ताचार्य नाम के आचार्य संघ सहित आये सो वह राजकुमार पुरुषोत्तम अपनी स्त्री सहित वन्दना को गया तथा और भी नगर के लोग वन्दना को गये सो स्तुति नमस्कार आदि करके अनन्तर श्री गुरु के मुख से जीवादि तत्त्वों को उपदेश सुना। पश्चात् पुरुषोत्तम ने कहा-

हे स्वामी! मेरी यह मदनावती स्त्री किस कारण से ऐसी रूपवान और अति सुगन्धित शरीर है? तब श्री गुरु ने मदनावती के पूर्व भवांतर कहे और सुगन्धदशमी के व्रत का माहात्म बताया तो पुरुषोत्तम और मदनावती दोनों अपने भवांतर की कथा सुनकर संसार देहभोगों से विरक्त हो दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे।

इस प्रकार तपश्चरण के प्रभाव से मदनावती स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। वहाँ बाईस सागर सुख से आयु पूर्ण करके अन्त समय चयकर मगध देश के वसुन्धरा नगरी में मकरकेतु राजा के यहाँ देवी पट्टरानी के कनककेतु नाम का सुन्दर गुणवान पुत्र हुआ।

पिता के दीक्षा ले जाने पर कितने काल राज्य करके वह भी अपने मकरध्वज पुत्र को राज्य दे दीक्षा लेकर तपश्चरण करके और

देश विदेशों में बिहार करके अनेक जीवों को धर्म के मार्ग में लगाने लगे। इस प्रकार कितने काल कनककेतु मुनिनाथ को केवलज्ञान हुआ और बहुत काल तक उपदेश रूपी अमृत की वृष्टि करके शेष अघाति कर्मों का नाशकर परम पद मोक्ष को प्राप्त हुए।

इस प्रकार सुगन्ध दशमी का व्रत पालकर दुर्गन्धा भी अनुक्रम से मोक्ष प्राप्त हुई तो भव्य यह व्रत पाले तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखों को पावेंगे।

सुगन्ध दशमी व्रत कियो, दुर्गन्धा ने सार।
सुर-नर ने सुख भोग में, अनुक्रम गई भवपार।।

सोलहकारण व्रत कथा

षोडशकारण भावना, जो भाई चित्त धार।
कर तिन पद की वन्दना, कहूँ कथा सुखकार।।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्र के मगध (बिहार) प्रांत में राजगृही नगर है। वहाँ के राजा हेमप्रभु और रानी विजयावती थी। इस राजा के यहाँ महाशर्मा नामक नौकर था और उनकी स्त्री का नाम प्रियंवदा था। इस प्रियंवदा के गर्भ से कालभैरवी नामक एक अत्यन्त कुरूपी कन्या उत्पन्न हुई जिसे देखकर माता पितादि सभी स्वजनों तक को घृणा होती थी।

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्ग से गमन करते हुए उसी नगर में आये, तो उस महाशर्मा ने अत्यन्त भक्ति सहित मुनि श्री को पड़गाह कर विधिपूर्वक आहार दिया और उसने धर्मोपदेश सुना। पश्चात् युगल कर जोड़कर विनययुक्त हो पूछा-हे नाथ ! यह मेरी कालभैरवी नाम की कन्या किस पापकर्म के उदय से ऐसी कुरूपी और कुलक्षणी उत्पन्न हुई है, सो कृपाकर कहिये? तब अवधि ज्ञान के धारी श्री मुनिराज कहने लगे, वत्स ! सुनो-

उज्जैन नगरी में एक महिपाल नाम का राजा और उसकी वेगावती नाम की रानी थी। इस रानी से विशालाक्षी नाम की एक अत्यन्त सुन्दर रूपवान कन्या थी, जो कि बहुत रूपवान होने के कारण बहुत अभिमानी थी और इसी रूप के मद में उसने एक भी सद्गुण न सीखा। अहंकारी (मानी) नरों को विद्या नहीं आती है।

एक दिन वह कन्या अपनी चित्रसारी में बैठी हुई दर्पण में अपना मुख देख रही थी कि इतने में ज्ञानसूर्य नाम के महातपस्वी श्री मुनिराज उसके घर से आहार लेकर बाहर निकले, इस अज्ञान कन्या ने रूप के मद से मुनि को देखकर खिड़की से उन के ऊपर थूक दिया और बहुत हर्षित हुई।

परन्तु पृथ्वी के समान क्षमावान श्री मुनिराज तो अपनी नीची दृष्टि किये हुये ही चले गये। यह देखकर राजपुरोहित इस कन्या का उन्मत्तपना देख उस पर बहुत क्रोधित हुआ और तुरन्त ही प्रासुक जल से श्री मुनिराज का शरीर प्रक्षालन करके बहुत भक्ति से वैयावृत्य कर स्तुति की। यह देखकर वह कन्या बहुत लज्जित हुई और अपने किये हुये नीच कृत्य पर पश्चाताप करके मुनि श्री के पास गई और नमस्कार करके अपने अपराध की क्षमा माँगी। श्री मुनिराज ने उसको धर्मलाभ कहकर उपदेश दिया। पश्चात् वह कन्या वहाँ से मरकर तेरे घर यह काल भैरवी नाम की कन्या हुई है। इसने जो पूर्वजन्म में मुनि की निन्दा व उपसर्ग करके जो घोर पाप किया है उसी के फल से यह ऐसी कुरूपा हुई है, क्योंकि पूर्व संचित कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है। इसलिए अब इसे समभावों से भोगना और आगे को ऐसे कर्म न बधें ऐसा समीचीन उपाय करना योग्य है। अब पुनः वह महाशर्मा बोला-हे प्रभो ! आप ही कृपाकर कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिससे यह कन्या अब इस दुःख से छूटकर सम्यक् सुखों को प्राप्त होवे तब श्री मुनिराज बोले-वत्स ! सुनो -

संसार में मनुष्यों के लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है, सो भला यह कितना सा दुःख है? जिनधर्म के सेवन से तो अनादिकाल

से लगे हुए जन्म-मरणादि दुःख भी छूटकर सच्चे मोक्षसुख की प्राप्ति होती है और दुःखों से छूटने की तो बात ही क्या है? वे तो सहज ही में छूट जाते हैं। इसलिये यदि यह कन्या षोडशकारण भावना भावे और व्रत पाले, तो अल्पकाल में ही स्त्रीलिंग छेदकर मोक्ष-सुख को पावेगी। तब वह महाशर्मा बोला हे स्वामी ! इस व्रत की कौन-कौन भावनाएँ हैं और विधि क्या है? सो कृपाकर कहिये। तब मुनिराज ने इन जिज्ञासुओं को निम्न प्रकार षोडशकारण व्रत का स्वरूप और विधि बताई।

(1) संसार में जीव का शत्रु मिथ्यात्व और मित्र सम्यक्त्व है। इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि सबसे प्रथम मिथ्यात्व (अतत्त्व श्रद्धान या विपरीत श्रद्धान) को वमन (त्याग) करके सम्यक्त्वरूपी अमृत का पान करें। सत्यार्थ (जिन) देव, सच्चे (निर्ग्रन्थ) गुरु और सच्चे (जिन भाषित) धर्म पर श्रद्धा (विश्वास) लावें। पश्चात् सप्त तत्त्वों तथा पुण्य पाप का स्वरूप जानकर इनकी श्रद्धा करके अपनी आत्मा को पर पदार्थों से भिन्न अनुभव करें और इनके सिवाय अन्य मिथ्या देव, गुरु व धर्म को दूर ही से इस प्रकार छोड़ दे जैसे तोता अवसर पाकर पिंजरे से निकल भागता है। ऐसे सम्यक्त्वी पुरुषों के प्रशम (मंद कषाय स्वरूप समभाव अर्थात् सुखी व दुःख में समुद्र सरीखा गम्भीर रहना, घबराना नहीं), संवेग (धर्मानुराग सांसारिक विषयों से विरक्त हो धर्म और धर्मायतनों में प्रेम बढ़ाना), अनुकंपा (करुणा दुःखी जीवों पर दयाभाव करके उनकी यथाशक्ति सहायता करना) और आस्तिक्य (श्रद्धा-कैसा भी अवसर क्यों न आवे, तो भी अपने निर्णय किये हुए सन्मार्ग में दृढ़ रहना) ये चार गुण प्रकट हो जाते हैं। उन्हें किसी प्रकार का भय व चिन्ता व्याकुल नहीं कर सकती। वे धीरवीर सदा प्रसन्नचित्त ही रहते हैं, कभी किसी चीज की उन्हें प्रबल इच्छा नहीं होती, चाहे वे चारित्रमोह कर्म के उदय से व्रत न भी ग्रहण कर सकें तो भी व्रत और व्रती संयमी जनों में उनकी श्रद्धा भक्ति व सहानुभूति अवश्य रहती है जो कि मोक्षमार्ग की प्रथम

सोपान (सीढ़ी) है इसलिये इसे ही 25 मलदोषों से रहित और अष्ट अंग सहित धारण करो, इसके बिना ज्ञान और चारित्र सब निष्फल (मिथ्या) है, यही दर्शनविशुद्धि नाम की प्रथम भावना है।

(2) जीव (मनुष्य) जो संसार में सबकी दृष्टि से उतर जाता है, उसका प्रधान कारण केवल अहंकार (मान) है। सो कदाचित् वह मानी अपनी समझ में भले ही अपने आपको बड़ा मानें परन्तु क्या कौआ मन्दिर के शिखर पर बैठ जाने से गरुड़ पक्षी हो सकता है? कभी नहीं। किन्तु सर्व ही प्राणी उससे घृणा ही करते हैं और कदाचित् उनके पूर्व पुण्योदय से उसे कोई कुछ न भी कह सकें, तो भी वह किसी के मन को बदल नहीं सकता है।

सत्य है-जो ऊपर को देखकर चलता है, वह अवश्य ही नीचे गिरता है। ऐसे मानी पुरुष को कभी कोई विद्या सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि विद्या विनय से आती है। मानी पुरुष चित्त में सदा खेदित रहता है, क्योंकि वह सदा सबसे सम्मान चाहता है और ऐसा होना असम्भव है, इसलिये निरन्तर सबको अपने से बड़ों सदा विनय, समान (बराबरीवाले) पुरुषों में प्रेम और छोटों में करुणाभाव से प्रवर्तना चाहिये। सदैव अपने दोषों को स्वीकार करने के लिये सावधानी पूर्वक तत्पर रहना चाहिये और दोष बताने वाले सज्जन का उपकार मानना चाहिये। क्योंकि जो मानी पुरुष अपने दोषों को स्वीकार नहीं करता, उनके दोष निरन्तर बढ़ते ही जाते हैं और इसलिये वह कभी उनसे मुक्त नहीं हो सकता।

इसलिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार इन पाँच प्रकार की विनयों का वास्तविक स्वरूप विचार कर विनयपूर्वक प्रबर्तन करना, सो विनय-सम्पन्नता नाम की दूसरी भावना है।

(3) बिना मर्यादा अर्थात् प्रतिज्ञा के मन वश नहीं होता जैसा कि बिना लगाम (बाग, रास) के घोड़ा या बिना अंकुश के हाथी, इसलिये आवश्यक है कि मन व इन्द्रियों को वश करने के लिये

प्रतिज्ञा रूपी अंकुश पास में रखना चाहिये तथा अहिंसा (किसी भी जीव का अथवा अपने भी द्रव्य तथा भाव प्राणों का घात न करना अर्थात् उन्हें न सताना), सत्य (यथार्थ वचन बोलना, जो किसी को भी पीड़ाजनक न हों), अचौर्य (बिना दिये हुये पर-वस्तु का ग्रहण न करना), ब्रह्मचर्य (स्त्रीमात्र का अथवा स्वदार बिना अन्य स्त्रियों के साथ विषय मैथुन सेवन का त्याग) और स्वपर आत्माओं का विषय कषाय उत्पन्न कराने वाले बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहों का त्याग या प्रमाण (सम्पूर्ण परिग्रहों का त्याग या अपनी योग्यता या शक्ति अनुसार आवश्यक वस्तुओं का प्रमाण करके अन्य समस्त पदार्थों से ममत्वभाव त्याग करना, इसे लोभ को रोकना भी कहते हैं), इस प्रकार ये पाँच व्रत और इसकी रक्षार्थ सप्तशीलों (3 गुणव्रतों और 4 शिक्षाव्रतों) का पालन करें तथा उक्त शील और व्रतों के अतीचारों (दोषों) को भी बचावें। इन व्रतों के निर्दोष पालन करने से न तो राज्यदंड कभी होता है और न पंचदण्ड ही होता है और ऐसा व्रती पुरुष अपने सदाचार से सबका आदर्श बन जाता है। इसके विरुद्ध सदाचारी जनों को इस भव में और परभव में अनेक प्रकार दण्ड व दु:ख सहने पड़ते हैं, ऐसा विचार करके इस व्रतों में निरन्तर दृढ़ होना चाहिये, यह शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

(4) मिथ्यात्व के उदय से हिताहित का स्वरूप बिना जाने यह संसारी जीव सदैव अपने लिये सुख प्राप्ति की इच्छा से विपरीत ही मार्ग ग्रहण कर लेता है, जिससे सुख मिलना तो दूर रहा, किन्तु उल्टा दु:ख का सामना करना पड़ता हैं। इसलिये निरन्तर ज्ञान सम्पादन करना परमावश्यक है। क्योंकि जहाँ चर्मचक्षु काम नहीं दे सकते हैं वहाँ ज्ञानचक्षु ही काम देते हैं। ज्ञानी पुरुष नेत्रहीन होने पर भी अज्ञानी आँख वालों से अच्छा है। अज्ञानी न तो लौकिक कार्यों ही में सफल होते हैं और न ही परलौकिक कुछ साधन कर सकते हैं। वे ठौर-ठौर ठगाये जाते हैं और अपमानित होते हैं, इसलिये ज्ञान उपार्जन करना आवश्यक है। ऐसा विचार करके निरन्तर विद्याभ्यास करना व कराना, सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नाम की वंदना है।

(5) इस संसारी जीवों में से प्रत्येक जीव के विषयानुरागता इतनी बढ़ी हुई है कि कदाचित इसकी तीन लोक की समस्त सम्पत्ति भोगने को मिल जाये तो भी इसकी इच्छा के असंख्यात वें भाग की पूर्ति न हो, सो जीव संसार में अनन्तानन्त हैं और लोक के पदार्थ जितने हैं उतने ही हैं सो सब सभी जीवों की अभिलाषा ऐसी ही बढ़ी हुई है। तब यह लोक की सामग्री किस-किस को कितने कितने अंशों में पूर्ति कर सकती है? अर्थात् किसी को नहीं। ऐसा विचार कर उत्तम पुरुष अपनी इन्द्रियों को विषयों से रोककर मन को धर्मध्यान में लगा देते हैं। इसी को संवेग भावना कहते हैं।

(6) जब तक मनुष्य किसी भी पदार्थ में ममत्व अर्थात् यह वस्तु मेरी है ऐसा भाव रखता है तब तक वह कभी सुखी नहीं हो सकता है क्योंकि पदार्थों का स्वभाव नाशवान है, जो उत्पन्न हुए सो नियम से नाश होंगे और जो मिले हैं, सो बिछुड़ेंगे इसलिये जो कोई इन पदार्थों को (जो इसे पूर्व पुण्योदय से प्राप्त हुए हैं) अपने आप ही इनको छोड़ जाने से पहिले ही छोड़ देवें, ताकि वे (पदार्थ) उसे न छोड़ने पावें, तो निस्सन्देह दुःख आने का अवसर ही न आवेगा ऐसा विचार करके जो आहार, औषध, शास्त्र (विद्या) और अभय इन चार प्रकार के दानों को मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविकाओं (चार संघों) में भक्ति से तथा दीन दुःखी नर पशुओं का करुणाभावों से देता है तथा अन्य यथावश्यक कार्यों (धर्मप्रभावना व परोपकार) में द्रव्य खर्च करता है उसे ही दान या शक्तितस्त्याग नाम की भावना कहते हैं।

(7) यह जीव स्व-स्वरूप भूला हुआ इस घृणित देह में ममत्व करके इसके पोषणार्थ नाना प्रकार के पाप करता है, तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता, दिनो-दिन सेवा और सम्हाल करते-करते क्षीण होता जाता है और एक दिन आयु की स्थिति पूर्ण होते ही छोड़ देता है, सो ऐसे नाशवन्त और घृणित शरीर में ममत्व (राग) न करके वास्तविक सच्चे सुख की प्राप्ति के अर्थ इसको लगाना (उत्सर्ग

करना) चाहिये ताकी इसका जो जीव के साथ अनंतानन्त बार संयोग तथा वियोग हुआ करता है, सो फिर ऐसा वियोग हो कि फिर कभी भी संयोग न हो सके अर्थात् मोक्षपद को प्राप्ति हो जावे। इसमें यही सार है, क्योंकि स्वर्ग नर्क या पशु पर्याय में जो सम्यक् और उत्तम तपश्चरण पूर्ण हो ही नहीं सकता है, इसलिये मनुष्य को श्रेष्ठ अवसर प्राप्त हुआ है ऐसा समझकर अपनी शक्ति व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों का विचार करके अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्याशन और कायक्लेश ये छः बाह्य और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः अभ्यन्तर इस प्रकार बारह तपों में प्रवृत्ति करना सो सातवीं शक्तितस्तप नाम की भावना कहलाती है।

(8) जीव मात्र के कल्याण करने वाले सम्यक् धर्म की प्रवृत्ति धर्मात्माओं से होती है और धर्मात्माओं से सर्वोत्तम सम्यक् रत्नत्रय के धारी परम दिगम्बर साधु हैं, इसलिए साधु वर्गों पर आये हुए उपसर्गों को यथासम्भव दूर करना सो साधु समाधि नाम की भावना है।

(9) साधु समूह तथा अन्य साधर्मी जनों के शरीर में किसी प्रकार की रोगादिक व्याधि आ जाने से उनसे परिणामों में शिथिलता व प्रमाद आ जाना संभव है इसलिये साधर्मी (साधु व गृहस्थ) जनों की भक्ति भाव से उनको दर्शन तथा चारित्र में स्थिर रखने तथा दीन दुःखी जीवों को धर्म मार्ग में लगाकर उनके दुःख दूर करने के लिये उनकी सेवा तथा उपचार करने को वैयावृत्यकरण भावना कहते हैं।

(10) अरिहंत भगवान के द्वारा ही मोक्षमार्ग का उपदेश मिलता है, क्योंकि वे प्रभु केवल कहते ही नहीं हैं किन्तु स्वयं मोक्ष के सन्निकट पहुँच गये हैं, इसलिये उनके गुणों में अनुराग करना उनकी भक्ति पूर्वक पूजन, स्तवन तथा ध्यान करना सो अर्हद्भक्ति भावना है।

(11) बिना गुरु के सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सच्चे निरपेक्ष और हितैषी उपदेशक समस्त संघ के नायक दीक्षा-शिक्षादि

देकर निर्दोष धर्ममार्ग पर चलने वाले आचार्य महाराज के गुणों की सराहना करना व उनमें अनुराग करना सो आचार्य भक्ति नाम भावना है।

(12) अल्पश्रुत अर्थात् अपूर्ण आगम के जानने वाले पुरुषों के द्वारा सच्चे उपदेश की प्राप्ति होना दुर्लभ है क्या? असम्भव ही है। इसलिये समस्त द्वादशांग के पारगामी श्री उपाध्याय महाराज की भक्ति तथा उनके गुणों में अनुराग करना सो बहुश्रुत भक्ति नाम भावना है।

(13) सदा अर्हन्त भगवान के मुखकमल से प्रगटित मिथ्यात्व के नाश करने तथा सब जीवों के हितकारी, वस्तु स्वरूप को बताने वाला श्री जैन शास्त्रों का पठनपाठनादि अभ्यास करना, सो प्रवचन भक्ति नाम भावना है।

(14) मन, वचन, काय की शुभाशुभ क्रियाओं को योग कहते हैं। इन ही योगों के द्वारा शुभाशुभ कर्मों का आस्रव होता है। इसलिये यदि ये आस्रव के द्वारा (योग) रोक दिये जाय, तो संवर कर्मास्रव बन्द हो सकता है और संवर करने का उत्तमोत्तम उपाय सामायिक प्रतिक्रमण आदि षडावश्यक है। इसलिये इन्हें नित्य प्रतिपालन करना चाहिये। पद्मासन या अर्द्ध पद्मासन से बैठकर या सीधे नीचे को हाथ जोड़कर खड़े होकर मन, वचन, काय से समस्त व्यापारों को रोक कर, चित्त को एकाग्र करके एक ज्ञेय (आत्मा) में स्थिर करना सो समभाव रूप 1-सामायिक है। अपने किये हुए दोषों को स्मरण करके उन पर पश्चाताप करना और उनको मिथ्या करने के लिये प्रयत्न करना सो 2-प्रतिक्रमण है। आगे के लिये दोष न होने देने के लिये यथा शक्ति नियम करना और (दोषों को त्याग करना) सो 3-प्रत्याख्यान है। तीर्थंकरादि अर्हन्त आदि पंच परमेष्ठियों तथा चौबीस तीर्थंकरों के गुण कीर्तन करना सो 4-स्तवन है। मन, वचन, काय शुद्ध करके चारों दिशाओं में चार शिरोनति और प्रत्येक दिशा में तीन-तीन आवर्त ऐसे बारह आवर्त करके अष्टांग नमस्कार करना तथा तीर्थंकरों की स्तुति

करना सो 5-वन्दना है और किसी समय विशेष का प्रमाण करके उतने समय तक एकासन से स्थिर रहना तथा उतने समय के भीतर शरीर से मोह छोड़ देना, उस पर आये हुए समस्त उपसर्ग व परीषहों को समभावों से सहन करना सो 6-कायोत्सर्ग है। इस प्रकार विचार कर इन छहों आवश्यकों में जो सावधान होकर प्रवर्तन करता है। सो परम संवर का कारण आवश्यक परिहाणि नाम की भावना है।

(15) काल-दोष के अथवा उपदेश के अभाव से संसारी जीवों के द्वारा सत्य धर्म पर अनेकों आक्षेप होने के कारण उसका लोप सा हो जाता है। धर्म लोप होने से जीव भी धर्म रहित होकर संसार में नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त होते हैं। इसलिये ऐसे समयों में येन-केन प्रकारेण समस्त जीवों पर सत्य (जिन) धर्म का प्रभाव प्रगट कर देना, सो मार्ग करने शास्त्रों के प्रकाशन व प्रसारण से, शास्त्रों के अध्ययन वा अध्यापन करने कराने से, विद्वानों की सभायें कराने, अपने आप सदाचरण पालने लोकोपकारी कार्य कराने, दान देने, संघ निकालने व विद्या मन्दिरों की स्थापना व प्रतिष्ठादि करने, सत्य व्यवहार यथाशक्ति प्रभावनोत्पादक कर्मों में प्रवर्तना सो मार्गप्रभावना नाम की भावना है।

(16) संसार में रहते हुए जीवों की परस्पर सहायता व उपकार की आवश्यकता रहती है, ऐसी अवस्था में यदि निष्कपट भाव से अथवा प्रेमपूर्वक सहायता न की जाय, तो परस्पर यथार्थ लाभ पहुँचना दुर्लभ ही है। इतना ही नहीं किन्तु परस्पर के विरोध से अनेकानेक हानियाँ व दुःख होना सम्भव हैं, जैसे हो भी रहे हैं। इसलिये यह परमावश्यक कर्तव्य है कि प्राणी परस्पर (गाय का अपने बछड़े पर जैसा कि निष्कपट और प्रगाढ़ प्रेम होता है।) वैसा ही निष्कपट प्रेम करें। विशेषकर साधर्मियों के संग तो कृत्रिम प्रेम कभी न करें। ऐसा विचार कर जो साधर्मियों तथा प्राणी मात्र से अपना निष्कपट व्यवहार रखते हैं उसे प्रवचन-वात्सल्य नाम की भावना कहते हैं।

यह 16 भावनायें यदि केवली श्रुतकेवली के पादमूल के निकट अन्तःकरण से चिन्तवन की जाये तथा तदनुसार प्रवर्तन किया जायें तो इनका फल तीर्थंकर नाम कर्म के आस्रव का कारण है आचार्य महाराज इस प्रकार सोलह भावनाओं का स्वरूप कहकर अब व्रत की विधि कहते हैं-

भादों, माघ और चैत्र वदी 1 से आश्विन, फाल्गुन और वैशाख वदी 1 तक (एक वर्ष में तीन बार) पूरे एक मास तक यह व्रत करना चाहिये।

इन दिनों तेला, बेला आदि उपवास करें अथवा नीरस अथवा एक, दो तीन रस त्यागकर ऊनोदर पूर्वक अतिथि या दीन दुःखी नर या पशुओं को भोजनादि दान देकर एक भुक्ति करें। अंजन, मंजन, वस्त्रालंकार विशेष धारण न करें, शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) रक्खे नित्य षोडश कारण भावना भावें और यंत्र बनाकर पूजाभिषेक करें, त्रिकाल सामायिक करें और (ॐ ह्रीं दर्शन-विशुद्धि विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचार - अभीक्ष्ण - ज्ञानोपयोग- संवेग-शक्तितस्त्याग-शक्तितस्तप-साधुसमाधि-वैयावृत्यकरण- अर्हद्भक्ति- आचार्यभक्ति - उपाध्यायभक्ति - प्रवचनभक्ति- आवश्यकापरिहाणि - मार्गप्रभावना-प्रवचनवत्सल्यादि षोडशकारणेभ्यो नमः)। इस महामन्त्र का दिन में तीन बार 108 बार जाप करें। इस प्रकार इस व्रत को उत्कृष्ट सोलह वर्ष, मध्यम 5 अथवा दो वर्ष और जघन्य 1 वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करें। अर्थात् सोलह उपकरण श्री मन्दिर जी में भेंट दें और शास्त्र व विद्यादान करें, शास्त्र भण्डार खोलें, सरस्वती मंदिर बनावें, पवित्र जिन धर्म का उपदेश करें और करावें इत्यादि यदि द्रव्य खर्च करने की शक्ति न हो तो व्रत द्विगुणित करें।

इस प्रकार ऋषिराज के मुख से व्रत की विधि सुनकर काल भैरवी नाम की उस ब्राह्मण कन्या ने षोडशकारण व्रत स्वीकार करके उत्कृष्ट रीति से पालन किया, भावना भायी और विधि पूर्वक उद्यापन किया, पीछे वह आयु के अंत में समाधिमरण द्वारा स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें (अच्युत) स्वर्ग में देव हुई।

वहाँ से बाईस सागर आयु पूर्णकर वह देव, जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र सम्बन्धी अमरावती देश के गंधर्व नगर में राजा श्रीमंदिर की रानी महादेवी के सीमन्धर नाम का तीर्थंकर पुत्र हुआ जिसने योग्य अवस्था को प्राप्त कर राज्योचित सुख भोग जिनेश्वरी दीक्षा ली और घोर तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त करके बहुत जीवों को धर्मोपदेश दिया तथा आयु के अन्त में समस्त अघाति कर्मों का भी नाश कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

इस प्रकार इस व्रत को धारण करने से काल भैरवी नाम की ब्राह्मण कन्या ने सुर नर भवों के सुखों को भोगकर अक्षय अविनाशी स्वाधीन मोक्ष सुख प्राप्त कर लिया, तो जो अन्य भव्यजीव इस व्रत को पालन करेंगे उनको भी अवश्य ही उत्तम फल की प्राप्ति होवेगी।

षोडशकारण व्रत धरो, कालभैरवी सार।
सुरनर के सुख 'दीप' लह, लहो मोक्ष अधिकार।।1।।

सौख्यसुतसम्पत्ति व्रत कथा

एक बार राजा श्रेणिक अपने नगरवासियों के साथ भगवान महावीर के समवशरण गये, उनमें एक राज्यश्रेष्ठि विजयसेन और विजयावती भी थे, कुछ समय भगवान का उपदेश सुनने के बाद विजयावती भगवान को हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि हे जिनेन्द्र देव! मेरे उद्धार का कुछ उपाय बताइए। तब भगवान उसको सम्बोधित करके कहने लगे कि हे देवी तुम सौख्य सपत्ति व्रत का पालन करो, इस प्रकार कहकर भगवान ने उसे व्रत की विधि बतायी। उस सेठानी ने व्रत को भक्ति से ग्रहण किया, सभी नगर में वापस लौट आये, अपनी नगरी में आकर व्रत को अच्छी तरह से पालन किया। अन्त में उद्यापन किया, व्रत के प्रभाव से ऋद्धिसिद्धि बढ़ गई, धन समृद्धि बढ़ी, उसके कारण उसको अहकार बढ़ गया, धर्म को उदासीन भाव से पालन करने लगी।

उसके कारण जितने भी उसके पुत्र थे, वे सब अलग-अलग हो गये और माता पिता का विरोध करने लगे, घर की लक्ष्मी नष्ट हो गई और दरिद्रता से समय व्यतीत करने लगे। एक बार सुभद्राचार्य आहार के निमित्त नगर में आये, विजयावती ने मुनिराज का पड़गाहन कर मुनिराज को आहार दान दिया, आहार होने के उपरान्त, एक पाटे पर मुनिराज को विराजमान करके, सेठानी से पूछा कि हे गुरुदेव हमारे घर में दरिद्रता ने क्यों डेरा डाला है? इसके लिए कुछ उपाय बताओ।

तब मुनिराज ने कहा कि तुमने व्रत को ग्रहण किया और व्रत के प्रभाव से सुख सम्पदा भी बढी, लेकिन अन्त में व्रत के प्रति अहकार के कारण उदासीनता आ गई, व्रत को ठीक ठीक नहीं पाला, इसलिए दरिद्रता ने घर में डेरा डाला है। यह सब सुनकर सेठानी को बहुत दु:ख हुआ, पश्चाताप करने लगी। पुन उसने व्रत को स्वीकार किया, भक्ति से व्रत का पालन किया, अन्त में उद्यापन किया पुन उसके घर में धन समृद्धि बढने लगी, पुत्र आदि भी वापस आकर मिल गये, सब लोग एकत्र होकर सुख का उपभोग करने लगे, अन्त में समाधि धारण कर स्वर्ग को गई।

सौभाग्य व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सुरम्य नाम का देश है, उसमें हस्तिनापुर नामक नगर है, वहाँ पर भूपाल नाम का राजा मनोहर नाम की रानी सहित सुख से राज्य करता था, उसी नगर में धनपाल नाम का सेठ अपनी धनवती नाम की सेठानी के साथ रहता था, सेठानी को सन्तान उत्पन्न न होने के कारण सेठ अपनी सेठानी की ओर कभी भी नहीं देखता था।

एक समय नगर के उद्यान में देशभूषण नामक महामुनीश्वर आये, धनवती सेठानी को मालूम पडते ही दर्शन के लिए उद्यान में गयी, मुनिराज को तीन प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया, धर्मोपदेश सुनकर हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई प्रार्थना करने लगी कि हे महामुनि! मेरे अभी तक सतान उत्पन्न न होने के कारण मेरा जन्म निरर्थक सा दिख रहा है। क्या करूँ?

इस प्रकार उसके दैन्य वचन सुनकर मुनिराज कहने लगे कि हे देवी! मैं तुम्हारे पूर्वभव कहता हूँ सुनो। एक बार तुमने पूर्वभव में एक मुनिराज को देखकर उदासीनता व्यक्त की, ग्लानि की, इसीलिए तुमको सतान उत्पन्न नहीं हुई और उदासीनता हो रही है। यह सुनकर सेठानी को बहुत बुरा लगा, वह प्रार्थना करने लगी कि हे देव इस दुःख से छुटकारा पाने के लिए कुछ उपाय बताओ तब मुनिराज कहने लगे कि हे पुत्री तुम सौभाग्य व्रत का पालन करो, ऐसा कहते हुये व्रत की विधि कही। उस सेठानी ने प्रसन्नतापूर्वक व्रत को स्वीकार किया और अपने घर वापस लौट आयी, उसने व्रत को अच्छी तरह से पाला अन्त में उद्यापन किया, व्रत के प्रभाव से उसको एक बहुत ही सुन्दर भाग्यशाली देवकुमार पुत्र उत्पन्न हुआ तथा सुख से रहने लगी। एक दिन ससार से वैराग्य लेकर सन्यास विधि से मरण किया और स्वर्ग में सुख भोगने लगी।

त्रिकालतृतीया व्रत कथा

इस भरत क्षेत्र के मगध देश में कांची नगर है, वहाँ पिगल नाम का एक गुणवान नीतिवान् पराक्रमी राजा राज्य करता था, उस राजा की सागरलोचना नाम की अत्यन्त रूपवती, लावण्यवती, गुणवती पट्रानी थी, उसके एक सुमंगल नाम का बड़ा प्रतापी राजकुमार था, इस प्रकार प्रजाजनों का पालन करता हुआ राजेश्वर्य भोगता था।

एक दिन युवराज सुमंगल नगर के बाहर उद्यान में गया, वहाँ पूर्णसागर नाम के मुनिराज अवधिज्ञान समन्वित पधारे, युवराज ने मुनिराज को देखते ही तीन प्रदक्षिणा लगाई और साष्टांग नमस्कार किया। धर्मोपदेश सुनने के बाद कहने लगा कि हे मुनिराज! आपकी अत्यन्त मोहक मुद्रा को देखकर मन में आपके प्रति मेरा मोह उत्पन्न हो रहा है, इसका कारण क्या है आप कहिये ?

तब मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से सब वृतात जानकर कहने लगे कि हे राजपुत्र! हमसे तुम्हारा मोह क्यों उत्पन्न हो रहा है मैं सब भव प्रपच कहता हूँ सुनो। करुजागल देश में हस्तिनापुर नाम का नगर है, उस में कामुक नाम का एक राजा राज्य करता था, उसकी रानी का नाम कमललोचना था, उसके विशाखदत्त नाम का सुन्दर पुत्र था। राजा का वरदत्त मन्त्री था वह बहुत होशियार था, मत्री की पत्नी का नाम विशालनेत्री था, उसके गर्भ से विजयसुन्दरी नामक गुणवान सुन्दर पुत्री का जन्म हुआ। इन सब के साथ राजा अपना राज्य सुख आनन्द से भोगता था, उस मत्री की कन्या विवाह के योग्य हो गई तब राजा के पुत्र विशाखदत्त के साथ विवाह कर दिया। दोनों ही आनन्द से अपना समय निकालने लगे, कुछ समय बाद कर्मयोग से राजपुत्र को रोग ने घेर लिया और वह मर गया।

तब सब को बहुत दुःख हुआ, एक दिन ज्ञानसागर नाम के महामुनीश्वर आहार के लिए राज भवन में आये, राजा ने भक्ति से मुनिराज को आहार दिया। मुनिराज से हाथ जोड़कर विनय से राजा ने राजपुत्र के मर जाने की दुःखद वार्ता कह सुनाई तब मुनिराज राजा को सद्‌बोधन देकर जंगल में वापस चले गये। विजयसुन्दरी पति के वियोग से अत्यन्त शोकाकुल रहने लगी।

एक दिन शांतिमति नाम की एक विदुषी आर्यिका राज भवन में आई, रानी ने माता जी को निरंतराय आहार दिया, उन आर्यिका माताजी ने राजकुमार के वियोगजनित होने वाले दुःख से दुःखी राज्य परिवार को सद्बोधन देकर शात किया, राजकुमार की पत्नी को पास बुलाकर सात्वना दिया और कहने लगी कि हे बेटी दुःख करने से कुछ काम नहीं चलेगा, दु·ख निवारण के लिए अब तुम त्रिकाल तृतीया व्रत करो, इस व्रत का पालन करने से सब दुःखों का निवारण होता है।

ऐसा कहकर माताजी ने व्रत की विधि बतलाई, आर्यिका माताजी के मुख से सर्व व्रत विधि सुनकर विजयसुन्दरी का बहुत समाधान हुआ, और उसने भक्तिपूर्वक व्रत को ग्रहण किया और व्रत का पालन करने लगी, व्रत समाप्त होने पर उद्यापन किया तथा अन्त में मरकर स्त्रीलिग का छेद करती हुई सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। आयुष्य समाप्त होने के बाद काची नगर के पिगल नामक राजा के यहाँ तुम सुमगल होकर उत्पन्न हुए हो और मैं वही क्षातिमति आर्यिका का जीव हूँ तुमको मैंने व्रत प्रदान कर सबध जोडा था। मैं मरकर देव हुआ, और वहॉ से मनुष्य होकर मुनि हुआ हूँ इस प्रकार तुम्हारा और हमारा पूर्व भव का सबध है, इसलिए तुमको मेरे पर मोह उत्पन्न हुआ है। तुम इसी भव से मोक्ष जाने वाले हो, यह सब सुनकर युवराज ने शीघ्र ही श्रावक व्रत ग्रहण किया और पुनः अपने नगर में वापस आ गया।

एक समय कमल के अन्दर मरे हुए भ्रमर को देखकर युवराज को वैराग्य उत्पन्न हुआ, जंगल में जाकर मुनिश्वर के पास जिनदीक्षा ग्रहण की और घोर तपश्चरण की शक्ति से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तथा अघातिया कर्मों का भी क्षय करके शाश्वत सुख को प्राप्त किया।

त्रिभुवनतिलक व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में काभोज देश है, उस देश में चित्रांगपुरी नगर है, उस नगर में एक सुखविद नाम का राजा अपनी पटरानी सुभद्रा सहित राज्य करता था, उसी नगर में बधुदत्त नाम का एक सेठ बधुमती सेठानी सहित रहता था, उसके एक नन्दन नाम का पुत्र था।

एक दिन नन्दन देव दर्शन के लिए जिन मन्दिर में गया. दर्शन करके जब सभा मण्डप में आया तो वहॉ एक वरदत्त नामक दिगम्बर महामुनि उपदेश कर रहे थे, उसने भी उपदेश सुना और प्रभावित होकर अणुव्रतों को ग्रहण करके वापस अपने घर लौट आया। कुछ दिनों के बाद वह नन्दन दुष्टजनों की सगति में पड़कर पाप करने लगा और गुरु से दिए अणुव्रतों को छोड दिया, व्रत भग के पाप के प्रभाव से मरकर बाईस सागर आयु वाले तमप्रभा नरक में उत्पन्न होकर दुःख भोगने लगा। वहाँ से आयु समाप्त कर कौशलपुर नगर में सोमदत्त सेठ के घर महिष होकर पैदा हुआ। एक दिन खेत के निकट घास खाते हुए उस भैंसा पर अकस्मात बिजली गिरी और वह कठगत प्राण होकर जमीन पर गिर पड़ा, उसी रास्ते से आर्यिका माता जी बिहार करती जा रही थी, उनने भैंसे की ऐसी अवस्था देख दया से उसके कान में णमोकार मत्र सुनाया वह भैंसा मत्र सुनते ही मर गया, मरकर उज्जयिनी नगरी के राजा यशोभद्र की रानी के गर्भ से कन्या होकर उत्पन्न हुआ। वह कन्या कुब्जक व गूगी थी, बोलना भी उसे नहीं आता था और न चलना ही। एक दिन उस नगरी के उद्यान में अरिंजय और अजितंजय नाम के मुनिराज सहस्रकूट चैत्यालय के दर्शन को आये। यह शुभवार्ता राजा ने सुनी, राजा अपने नगरवासियों

और परिवार को लेकर मुनिराज के दर्शनों को उद्यान में गया, भगवान का दर्शन कर धर्मोपदेश सुनकर राजा ने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि हे देव! मेरी कन्या इस प्रकार गूगी और कुबड़ी क्यों हुई है? पूर्वभव में ऐसा कौन सा पाप किया था ? तब मुनिराज ने उसके पूर्व भवान्तर कह सुनाये, उसने पूर्वभव में गुरु से लिए हुए अणुव्रतों को भंग कर दिया, यही सबसे बडा पाप हुआ, इस पाप से छूटने के लिए इस लडकी को त्रिभुवन तिलक व्रत का पालन करना चाहिए।

ऐसा कहकर मुनिराज ने व्रत का स्वरूप कह सुनाया, तब उस राजकुमारी ने व्रत ग्रहण किया, सब लोग आनन्दित होकर वापस लौट गये। उस राज कन्या ने अच्छी तरह से व्रत को पाला, अन्त में व्रत का उद्यापन किया, व्रत के प्रभाव से उसका गूगापन दूर हो गया, सुख से रहने लगी। उस कन्या का विवाह अवन्ति देश के राजा शत्रुंजय के पुत्र सुख राज के साथ कर दिया, कुछ साल राज्य सुख भोगकर आर्यिका माताजी के सग में जाकर आर्यिका व्रतों को ग्रहण कर लिया और घोर तपश्चरण कर अन्त में समाधिमरण से स्वर्ग में देव हुई, वहाँ से चयकर चक्रवर्ती हुई, कुछ समय भोगों को भोगकर जिनदीक्षा ग्रहण कर मोक्ष सुख को प्राप्त किया।

त्रिलोकतीज व्रत कथा।

वन्दों श्री जिनदेव पद, वन्दूँ गुरु चरणार।
वन्दूँ माता सरस्वती, कथा कहूँ हितकार।।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नामक एक अति रमणीक नगर है। वहाँ के राजा कामदुक और रानी कमल लोचना थी और उनके विशाखदत्त नाम का पुत्र था। उस राजा के वरदत्त नाम का एक मंत्री था, जिसकी विशालाक्षी पत्नी से विजय

सुन्दरी नामक एक बहुत सुन्दर कन्या थी, जिसका पाणिग्रहण राजपुत्र विशाखदत्त से किया था। कुछ दिन बाद राजा कामदुक की मृत्यु होने पर युवराज विशाखदत्त राजा हुआ।

एक दिन राजा अपने पिता के वियोग से व्याकुल हो उदास बैठा था कि उसी समय उस ओर विहार करते हुए श्री ज्ञानसागर नाम के मुनिवर पधारे। राजा ने उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उच्चासन दिया, तब मुनिश्री ने धर्मवृद्धि कह आशीष दिया और इस प्रकार संबोधन करने लगे -

राजा! सुनो, यह काल (मृत्यु), सुर (देव), नर पशु आदि किसी को भी नहीं छोड़ता है। संसार में जो उत्पन्न होता है सो नियम से नाश होता है। ऐसी विनाशीक वस्तु के संयोग- वियोग में हर्ष-विषाद ही क्या? यह तो पक्षियों के समान रैन (रात्री) बसेरा है। जहाज में देश देशांतर के अनेक लोग आ मिलते हैं, परन्तु अवधि पूरी होने पर सब अपने-2 देश को चले जाते हैं।

इसी प्रकार ये जीव एक कुल (वंश-परिवार) में अनेक गतियों से आकर एकत्रित होते हैं और अपनी-अपनी आयु पूर्ण कर संचित कर्मानुसार यथायोग्य गतियों में चले जाते हैं।

किसी की यह सामर्थ्य नहीं कि क्षणमात्र भी आयु को बढ़ा सके। यदि ऐसा होता तो बड़े-बड़े तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि पुरुषों को कोई क्यों मरने देता? मृत्यु से यद्यपि वियोग जनित दुःख अवश्य ही मोह के वश मालूम होता है, तथापि उपकार भी बहुत होता है। यदि मृत्यु नहीं होती तो रोगी रोग से मुक्त न होता, संसारी कभी सिद्ध न हो सकता, जो जिस दशा में होता उसी में रह जाता। इसलिये यह मृत्यु उपकारी भी है, ऐसा समझकर शोक तजो। इस शोक से (आर्तध्यान से) अशुभ कर्मों का बन्ध होता है जिससे अनेकों जन्मांतरों तक रोना पड़ता है। रोना बहुत दुःखदाई है।

मुनि के उपदेश से राजा को कुछ धैर्य बँधा। वे शोक तजकर

प्रजा पालन में तत्पर हुए और मुनिराज भी विहार कर गये।

एक दिन रानी ने संयम भूषण आर्यिका के दर्शन करके पूछा- माताजी ! मेरे योग्य कोई व्रत बताईये जिससे मेरी चिंता दूर होवे और जन्म सुधरे तब आर्यिका जी ने कहा- तुम त्रैलोक्य तीज व्रत करो। भादों सुदी 3 को उपवास करके चौबीस तीर्थंकरों के 72 कोठे का मंडल माँडकर तीन चौबीसी पूजा विधान करो और तीनों काल 108 जाप (ॐ ह्रीं भूत वर्तमान भविष्य काल सम्बन्धिचतुर्विंशतितीर्थङ्करेभ्यो नमः) जपें, रात्रि को जागरण करके भजन व धर्मध्यान में काल बितावें। इस प्रकार तीन वर्ष तक यह व्रत कर पीछे उद्यापन करें, अथवा द्विगुणित व्रत करें।

उद्यापन करने के समय तीन चौबीसी का मण्डल माँडकर बड़ा विधान पूजन करें और प्रत्येक प्रकार के उपकरण श्री मन्दिर जी में भेंट करें चतुसंघ को चार प्रकार का दान देवें। शास्त्र लिखाकर बाँटें। इस प्रकार रानी ने व्रत की विधि सुनकर विधिपूर्वक इसे धारण किया। पश्चात् आयु के अन्त में समाधिमरण करके सोलहवें स्वर्ग में स्त्रीलिंग छेदकर देव हुई वहाँ नाना प्रकार के देवोचित सुख भोगे तथा अकृत्रिम जिन चैत्यालयों की वन्दना आदि करते हुये तथा धर्मध्यान में समय बिताया। पश्चात् वहाँ से चयकर मगध देश के कंचनपुर नगर में राजा पिंगल और रानी कमल लोचना के सुमंगल नाम का अति रूपवान तथा गुणवान पुत्र हुआ। वह राजपुत्र एक दिन अपने मित्रों सहित वनक्रीड़ा को गया वहाँ पर परम दिगम्बर मुनि को देखकर उसे मोह उत्पन्न हो गया, मुनि की वन्दना करके पाद निकट बैठा और पूछने लगा- हे प्रभो ! आपको देखकर मुझे मोह क्यों उत्पन्न हुआ?

तब श्री गुरु कहने लगे-वत्स ! सुन, यह जीव अनादिकाल से मोहादि कर्मों से लिप्त हो रहा है और क्या जाने इसके किस किस समय के बाँधे हुए कौन-कौन कर्म उदय में आते हैं जिनके कारण यह प्राणी कभी हर्ष व कभी विषाद को प्राप्त होता है।

इस समय जो तुझे मोह हुआ है इसका कारण यह है कि इसके तीसरे भव में तूँ हस्तिनापुर के राजा विशाखदत्त की भार्या विजयसुन्दरी नाम की रानी थी। तुझे संयम भूषण आर्यिका ने सम्बोधन करके त्रैलोक्य तीज का व्रत दिया था, जिसके प्रभाव से तूँ स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग में देव हुई और वहाँ से चयकर यहाँ राजा पिंगल के यहाँ शुमंगल नाम का पुत्र हुआ है वह संयम भूषण आर्यिका का जीव वहाँ से समाधि मरण करके स्वर्ग में देव हुआ।

वहाँ से चयकर यहाँ मैं मनुष्य हुआ हूँ, सो कोई कारण पाकर दीक्षा लेकर विहार करता हुआ यहाँ आया हूँ। इसलिये तुझे पूर्व स्नेह के कारण यह मोह हुआ है।

हे वत्स! यह मोह महादु:ख का देने वाला त्यागने योग्य है। यह सुनकर सुमंगल को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने इस संसार को विडम्बना रूप जानकर तत्काल जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। कितने ही काल तक घोर तपश्चरण करके केवलज्ञान को प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रकार विजय सुन्दरी रानी ने त्रैलोक्य तीज व्रत को पालन कर देवों और मुनष्यों के उत्तम सुखों को भोगकर निर्वाण पद प्राप्त किया। यदि और भी भव्य जीव श्रद्धा सहित यह व्रत पालें तो वे भी ऐसी उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे।

विजयसुन्दरी व्रत किया, तीज त्रिलोक महान।
सुरनर के सुख भोगकर, 'दीप' लहा निर्वाण।।1।।

❑❑❑

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कृति अक्षय निधि कथा पूजा
   प्रकाशक आर्यिका धर्ममति राजमति पुस्तकालय, दि जैन मंदिर, पं लूणकरण सिंह रास्ता, ठाकुर पचेवर, जयपुर-3
2. कृति . आचार्य धर्मसागर अभिनंदन ग्रन्थ
   प्रकाशक : श्री दि. जैन नवयुवक मडल, कलकत्ता, सन् 1982 ई.
3. कृति आरोग्य आपका
4. कृति आष्टाह्निक व्रतोद्यापन
   लेखक श्री कल्याण कुमार जैन 'शशि'
   प्रकाशक सरल जैन ग्रन्थ भण्डार, जबलपुर, वी स 2508
5. कृति . कर्मदहन विधान
   प्रकाशक . सेठी बधु श्री वीर पुस्तक मदिर, महावीर जी (राज)
6. कृति कर्म निर्झर व्रत पूजा
   लेखक गुलाबचन्द्र जैन 'दर्शनाचार्य'
   प्रकाशक वीर पुस्तक भण्डार, जयपुर स 2039
7. कृति क्रिया कोश
   लेखक श्री कवि किशन सिह
   प्रकाशक श्री परमयुत प्रभावक मडल, अगास, वि स 2041
8. कृति कुदरती उपचार
9. कृति काजिका द्वादशी व्रतोद्यापन
   प्रकाशक . वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-3
10. कृति · गणधर वलय विधान
   लेखक आर्यिकारत्न ज्ञानमति
   प्रकाशक : दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध सस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र , वी.नि.स 2525
11. कृति चतुर्विंशति विधान
   लेखक कवि रामचन्द्र जी
   प्रकाशक . नेमिचन्द्र बाकलीवाल, किशनगढ (राज)
12. कृति . चारित्र शुद्धि विधान
   प्रकाशक आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला जैन मंदिर, गुलाब वाटिका, लोनी रोड, गाजियाबाद (उ प्र)

13 कृति · चारित्र सार
लेखक . पं लालाराम जी
प्रकाशक : नेमचन्द्र सर्राफ, बड़ौत (मेरठ)
14 कृति : चौसठ ऋद्धि विधान
प्रकाशक : दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गाधी चौक, सूरत (गुज)
15 कृति · जैन पूजा पाठ संग्रह
प्रकाशक · जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता
16 कृति जैन पूजा पाठ संग्रह
प्रकाशक दि जैन मंदिर, गोपालवाडी, जयपुर (राज)
17 कृति . जैनेन्द्र कथा कोश
लेखक प वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
18 कृति जैन व्रत कथा सग्रह
सपादक स्व प वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
प्रकाशक मदन मजरी वर्धमान शास्त्री, सोलापुर-3, सन् 1983 ई
19 कृति जैन व्रत विधान सग्रह
सकलन प बारेलाल जैन 'राजवैद्य', टीकमगढ
प्रकाशक सिघई भगवानदास कुदनलाल जैन अटारी वाले, वी नि स 2478
20 कृति जैन व्रत विधान सग्रह
प्रकाशक शैलेष भाई डाह्या भाई कापडिया, विजय जैन प्रिंटिग प्रेस, गाधी चौक, सूरत, सवत् 2047
21 कृति जैन व्रत विधि
प्रकाशक श्रीमती निर्मला जैन, प्ला न 9335, गोविन्द पथ, किसान मार्ग, वरकत नगर, जयपुर, सन् 1993 ई
22 कृति जैनेन्द्र सिद्धात कोश
लेखक क्षु जिनेन्द्र वर्णी
प्रकाशक · भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सन् 1988 ई
23 कृति . दशलक्षण मंडल विधान
प्रकाशक वीर पुस्तक भण्डार जयपुर, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-3 भाद्रपद स 2038
24. कृति : The Hygenic system

25. कृति नंदीश्वर द्वीप पूजन विधान
लेखक स्व श्री रविलाल
प्रकाशक शाति सेवा सघ, श्री 1008 दि जैन सिद्ध क्षेत्र बडागांव (धसान), टीकमगढ (म प्र) वि स 2048 वी नि स 2517
26 कृति णमोकार पैंतीसी विधान
प्रकाशक जैन साहित्य सदन, लाल मदिर, दिल्ली, वीर नि स 2508
27 कृति णमोकार मत्र का माहात्म्य तथा जिनगुण सपत्ति मत्र
प्रकाशक श्री सेठ मगलचन्द्र पाड्या, हैदराबाद।
28 कृति पचकल्याणक विधान
प्रकाशक जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता
29 कृति पचपरमेष्ठी विधान
प्रकाशक जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता
30 कृति पातजलि योगदर्शन
लेखक श्री पातजलि
31 कृति पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
लेखक आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी
प्रकाशक भारतीय अनेकात विद्वत् परिषद् सन् 1995 ई
32 कृति Fasting can save your life
33 कृति भगवान महावीर और उनका तत्त्वदर्शन
प्रकाशक श्री पारस दास श्रीपाल जैन, मोटर वाले, श्यामा प्रसाद मुखर्जी मार्ग, दिल्ली-6, सितम्बर 1973 ई
34 कृति महावीर कीर्तन
सपादक प भैरव लाल सेठी न्यायतीर्थ
प्रकाशक **गजेन्द्र ग्रन्थमाला**, 2578, धर्मपूरा, दिल्ली-110006
35 कृति रत्नकरण्डक श्रावकाचार
लेखक आचार्य समतभद्र, हिन्दी- प सुखदास जैन
प्रकाशक जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता
36 कृति रत्नत्रय विधान
प्रकाशक वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-3
37 कृति रविवार व्रत विधान
प्रकाशक दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गाधी चौक, सूरत (अहमदावाद)

38 कृति · लब्धि विधान
लेखक कवि श्रीचन्द्र
प्रकाशक · वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-3
39 कृति वर्धमान पुराण
लेखक कविवर श्री नवलशाह
40 कृति व्रत कथा कोष
अनु. सग्रह . गणधराचार्य कुथुसागर
प्रकाशक श्री दि जैन कुथु विजय ग्रथमाला समिति, जयपुर(राज)
41 कृति व्रत तिथि निर्णय
लेखक डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री 'ज्योतिषाचार्य'
प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस सन् 1956 ई
42 कृति व्रत विधि एव पूजा
लेखक आर्यिका ज्ञानमति
प्रकाशक दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध सस्थान हस्तिनापुर (मेरठ) उ प्र , वी नि स 2516
43 कृति वसुनन्दि श्रावकाचार
लेखक आचार्य वसुनन्दि
प्रकाशक अनेकात विद्वत् परिषद् सन् 1989-90 ई
44 कृति वृन्दावन चौबीसी पाठ
प्रकाशक जैन पुस्तक भवन, महात्मागाधी रोड, कलकत्ता
45 कृति श्रावकाचार संग्रह
स व अनु प हीरालाल जी
प्रकाशक जैन सस्कृति सरक्षक सघ, सोलापुर (महा) सन् 1976 ई
46 कृति शिखर सम्मेद विधान
प्रकाशक सेठी बधु श्री वीर पुस्तक मदिर, महावीर जी (राज)
47 कृति सन्मार्ग दैनिक, 4 अगस्त 1989
व्रत पर्व त्योहार विशेषाक
प्रकाशक · सन्मार्ग दैनिक, कार्यालय, वाराणसी
48 कृति समवशरण विधान
प्रकाशक मोहन लाल जी शास्त्री, जवाहरगज, जबलपुर
49 कृति सर्वार्थ सिद्धि
लेखक · आचार्य पूज्यपाद स्वामी, सपा -प फूलचन्द्र जी
प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सन् 1983 ई

50. कृति · सर्वोदयी जैन तत्र
लेखक डॉ. नदलाल जैन
प्रकाशक . पोतदार ट्रस्ट, टीकमगढ (म प्र.)
51 कृति सागार धर्मामृत
लेखक प आशाधर जी, अनु - आर्यिका सुपार्श्वमति
प्रकाशक भारतीय अनेकात विद्वत् परिषद् सोनागिर सन् 1990 ई
52. कृति संस्कृत वागमय शब्द कोश परिच्छेद खण्ड पूर्वार्द्ध
53. कृति सुगध दशमी व्रत कथा
प्रकाशक जैन साहित्य सदन, श्री दि० जैन लाल मदिर, दिल्ली
54 कृति सुदृष्टि तरगणी
सकलन प टेकचन्द्र जी
प्रकाशक श्रीमती सतोष वाला जैन, 1 सी/ 47 न्यू रोहतक रोड, नई दिल्ली-5, सन् 1998 ई
55 कृति हरिवश पुराण
लेखक आचार्य जिनसेन, सपा व अनु - डॉ पन्नालाल जैन
प्रकाशक जैन साहित्य सदन, चादनी चौक, दिल्ली सन् 1994 ई
56 कृति त्रिलोक तीज व्रत पूजा, तीन चौबीसी
प्रकाशक वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-3

संक्षिप्तिका

आ ध.अ.ग्र	आचार्य धर्मसागर अभिनदन ग्रन्थ
क्रि को	क्रियाकोश
व्र वि सं	व्रत विधान सग्रह
जै व्र वि स.	जैन व्रत विधान सग्रह
व्र क को	व्रत कथा कोश
जै व्र. ति नि	जैन व्रत तिथि निर्णय
स वा श को परि ख पू खण्ड पूर्वार्द्ध	सस्कृत वागमय शब्द कोश परिच्छेद
ह पु	हरिवंश पुराण
सु त	सुदृष्टि तरगणी
जै व्र वि	जैन व्रत विधि